एमएएचडी-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

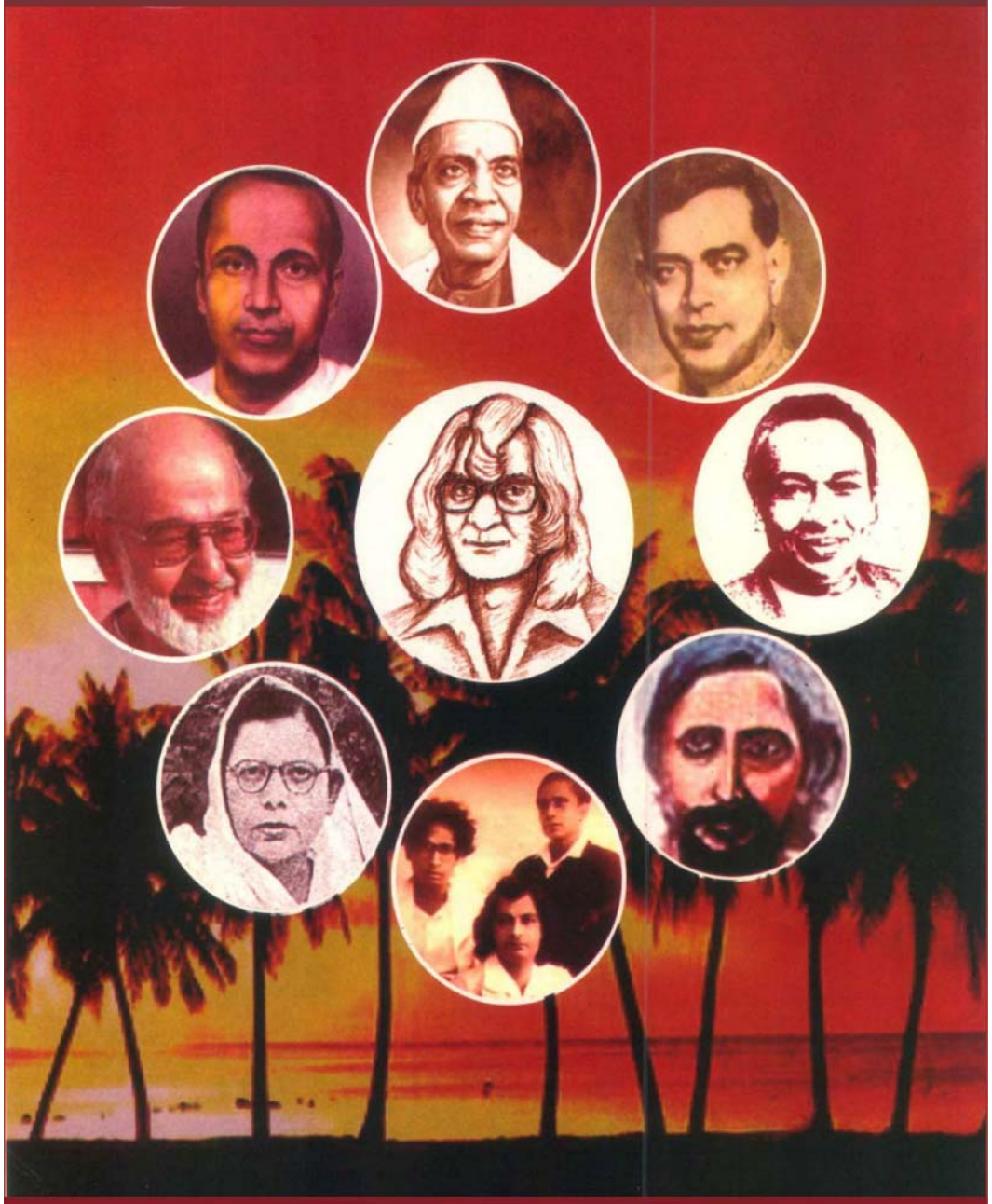

आधुनिक काव्य

2

एमएएचडी–02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आधुनिक काव्य

भाग–2

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं समन्वयक

संयोजक
प्रो. (डॉ.) कुमार कृष्ण
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला

समन्वयक
डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा**
  पूर्व प्राचार्य
  राजकीय महाविद्यालय, सरदारशहर (चुरू)
- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा**
  प्राचार्य
  राज. कन्या महाविद्यालय, अजमेर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक
डॉ. हरिचरण शर्मा
पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ लेखक		इकाई संख्या
डॉ. कमलेश त्रिपाठी स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग **एस.पी. विश्वविद्यालय, बल्लभनगर, गुजरात**	-	**1, 2**
डॉ. छोटा राम कुम्बर एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग **जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर**	-	**3**
डॉ. रीता गौड़ व्याख्याता, हिन्दी विभाग **मालवीय कॉलेज फॉर गर्ल्स, मालवीय नगर, जयपुर**	-	**4,11,14,15, 21**
डॉ. हरिचरण शर्मा पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	-	**5, 6, 16, 17**
प्रो. (डॉ.) दयाशंकर त्रिपाठी हिन्दी विभाग **सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, गुजरात**	-	**7, 8**
डॉ. जगन्नाथ पण्डित स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग **नलिनी अरविन्द आर्ट्स कॉलेज, बल्लभ विद्यानगर, गुजरात**	-	**9, 10, 22, 23**
डॉ. मनोज गुप्ता पूर्व विभागाध्यक्ष **सुबोध महाविद्यालय, जयपुर**	-	**12, 13**

- **डॉ. मीता शर्मा** - **18, 19**
  सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. शाहिद मीर खान** - **20**
  पूर्व प्राचार्य
  स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाड़मेर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अगस्त-2012 ISBN-13/978-81-8496-115-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड - 3 10–121

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 11	दिनकर का काव्य : कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग	10
इकाई - 12	हरिवंशराय बच्चन का काव्य	32
इकाई - 13	हरिवंशराय बच्चन के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	59
इकाई - 14	नरेन्द्र शर्मा का काव्य	77
इकाई - 15	नरेन्द्र शर्मा के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	103

खण्ड - 4 122–311

नयी कविता

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 16	नागार्जुन का काव्य	122
इकाई - 17	नागार्जुन के काव्य का अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष	149
इकाई - 18	अज्ञेय का काव्य - 'असाध्य वीणा'	175
इकाई - 19	अज्ञेय के काव्य का अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष	199
इकाई - 20	दुष्यंत का काव्य	221
इकाई - 21	दुष्यंत के काव्य का अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष	239
इकाई - 22	रघुवीर सहाय का काव्य	257
इकाई - 23	रघुवीर सहाय के काव्य का अनुभूति और अभिव्यंजना पक्ष	288

परिवेश में आया परिवर्तन समाज और सामाजिकों की मानसिकता को नयी दिशा और नया रंग प्रदान करता है। जो चल रहा होता है, वही परिवेश की मांग के अनुरूप नया रूप-स्वरूप प्राप्त करने लगता है। जीवन और साहित्य दोनों ही इस नियम की चोट सहते हैं। अत: सोच बदलता है, तो साहित्य भी बदलने लगता है। आधुनिक कविता का इतिहास प्रमाणित करता है कि प्राचीनकाल से अब तक कविता ने वस्तु और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में कई मोड़ लिए हैं और कितने ही सोपान पार किये हैं। यदि केवल आधुनिक कविता की ही बात करें, तो स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग और छायावादोत्तर युग में कविता कई मोड़ों से गुजरी है और हर मोड़ कोई न कोई नया परिवर्तन, नया सोच और नयी मानसिकता लेकर कविता में अभिव्यक्ति पाता रहा है। एम. ए. पूर्वार्द्ध हिन्दी के द्वितीय प्रश्नपत्र को **"आधुनिक काव्य"** शीर्षक दिया गया है। इस प्रश्नपत्र के अन्तर्गत द्विवेदी युग से लेकर छायावादोत्तर युग के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है।

'आधुनिक काव्य' शीर्षक प्रश्नपत्र के अन्तर्गत 12 कवियों को स्थान दिया गया है। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, नागार्जुन, अज्ञेय, दुष्यन्त कुमार और रघुवीर सहाय प्रमुख हैं। ये सभी कवि अपने युग की कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन सभी कवियों को स्थान देकर प्रश्न पत्र को आधुनिक कविता का प्रतिनिधि स्वरूप प्रदान किया गया है। सम्पूर्ण कवियों को चार खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड **(द्विवेदी युगीन काव्य)** के अन्तर्गत मैथिलीशरण गुप्त को स्थान प्राप्त है और 'उनके साकेत' में आये भरत-मिलन, चित्रकूट प्रसंग और कैकेयी-राम-संवाद को स्थान दिया गया है। इसके साथ ही मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यंजनात्मक पक्ष का विवेचन सम्मिलित किया गया है। गुप्तजी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं और इनके **साकेत** से छायावाद की भूमिका तैयार होती है। इसके पश्चात् द्वितीय खण्ड **(छायावादी काव्य)** में छायावाद के आधार स्तम्भ पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा की कविताओं को आधार बनाकर कई इकाइयाँ लिखाई गयी हैं। छायावाद के इन सभी कवियों की निर्धारित कविताओं के प्रमुख अंशों की प्रसंग और साहित्यिक टिप्पणियों सहित व्याख्या प्रस्तुत की गयी है एवं इन सभी कवियों के अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष पर सोदाहरण विस्तार से विचार किया गया है।

तृतीय खण्ड **(राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य)** के अन्तर्गत राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा के कवि दिनकर, हरिवंशराय बच्चन और नरेन्द्र शर्मा को स्थान दिया गया है। दिनकर का काव्य एक ओर तो छायावादी रोमानियत लिए हुए है और दूसरी ओर राष्ट्रीय सांस्कृतिक संदर्भो में प्रगतिशील चेतना का वाहक भी है। हरिवंशराय बच्चन को भले ही हालावादी कवि कहा गया हो और उनकी कविता को वैयक्तिक काव्यधारा नाम दिया

गया हो, किन्तु उनकी अधिकांश कविताओं की मूल चेतना सांस्कृतिक और समसामयिक संदर्भो से जुड़ी हुई है। नरेन्द्र शर्मा भी इसी श्रेणी के कवि हैं। उनकी जिन कविताओं को पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया है, उनसे सम्बन्धित सामग्री सम्बन्धित इकाइयों में दी गयी है। चतुर्थ खण्ड **(नयी कविता)** के अन्तर्गत प्रगतिशील चेतना के वाहक तथा नयी कविता के प्रमुख कवियों को स्थान दिया गया है। इस खण्ड में अज्ञेय, नागार्जुन, दुष्यन्तकुमार और रघुवीर सहाय की कविताओं को स्थान दिया गया है। अज्ञेय ने प्रयोगवाद से प्रारम्भ करके नयी कविता तक की यात्रा तय की है। वे नयी कविता के शलाका पुरुष हैं, किन्तु पाठ्यक्रम में उनकी दीर्घ कविता ' 'असाध्य वीणा' को ही रखा गया है। यह अकेली कविता उनके कवित्व का उत्तमांश प्रस्तुत करती हुई उनकी भावभूमि और अभिव्यक्ति क्षमता से परिचित कराती है। नागार्जुन मूलत: प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। उनकी कविताओं में छायावादी संदर्भ तो यत्र-तत्र ही देखने को मिलता है, किन्तु हरिजन-गाथा जैसी लम्बी कविताओं में उनके यथार्थबोध और प्रगतिशील चेतना को समसामयिक संदर्भो की भूमिका पर भी भली-भाँति देखा जा सकता है। दुष्यन्तकुमार का काव्य नयी कविता के प्रतिनिधि कवि का काव्य है, किन्तु यहाँ उनकी 'साये में धूप' कृति में संकलित गजलों को ही पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। ये गजलें नयी कविता के कवि द्वारा लिखी गयी हैं और हमारे सामाजिक, राजनैतिक और सामान्य व्यक्ति के जन-जीवन के प्रश्नों, समस्याओं और स्थितियों से सम्बद्ध हैं। इनसे सम्बन्धित सामग्री दो इकाइयों में विभक्त है। इसी क्रम में रघुवीर सहाय का नाम भी लिया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रघुवीर सहाय का काव्य साठोत्तर कवियों में विशिष्ट काव्य है। इनकी जो कविताएँ यहाँ संकलित हैं, वे उनकी समाज सापेक्ष चिन्तना और समसामयिक जीवन की स्थिति का उद्घाटन करती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रश्नपत्र आधुनिक कविता के क्रमिक इतिवृत्त को संक्षेप में समेटता हुआ हमारे सामने आता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण द्वितीय प्रश्नपत्र के अन्तर्गत तेईस इकाइयों को समाहित करते हुए पूरे प्रश्नपत्र के लिए अपेक्षित और अनिवार्य सामग्री जुटायी गयी है। सभी आलेख विषय के विद्वानों, सुधी समीक्षकों और चिन्तकों द्वारा लिखे गये हैं। सामग्री अत्यन्त उपयोगी है। यह सामग्री एम.ए. पूर्वार्द्ध (द्वितीय प्रश्नपत्र) आधुनिक काव्य से सम्बन्धित है जो छात्रों के लिए उपयोगी है और साथ ही आधुनिक कविता के पाठकों और समीक्षकों के लिए भी उपयोगी प्रमाणित होगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है। जिन विद्वानों ने इस प्रश्नपत्र में अपने लेख प्रस्तुत किए हैं, वे सब बधाई के पात्र हैं। जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य समय देकर उपर्युक्त इकाइयों का लेखन किया है, उन सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभार प्रकट करता है और यह अपेक्षा करता है कि भविष्य में भी वे विश्वविद्यालय का सहयोग करते रहेंगे।

इकाई-11 दिनकर का काव्य : कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व :
 11.2.1 व्यक्तित्व परिचय
 11.2.2 कृतित्व परिचय
11.3 काव्य का अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष
 11.3.1 पौरुष एवं ओजस्विता
 11.3.2 राष्ट्रीयता और क्रांति भावना
 11.3.3 प्रतिशोध का स्वर
 11.3.4 सौंदर्य भावना
 11.3.5 काम भावना
 11.3.6 कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन
 11.3.7 आत्मोत्सर्ग
 11.3.8 भाषा-सौष्ठव एवं शैली-सौंदर्य
 11.3.9 अलंकृति
 11.3.10 प्रतीक विधान
11.4 कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य
11.5 कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग
11.6 सारांश
11.7 प्रसंग सहित व्याख्या
11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.9 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

- दिनकर के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- राष्ट्रीय सांस्कृतिक कवि के रूप में दिनकर की स्थिति से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे ।
- दिनकर के कृतित्व से पूर्णत: परिचित होकर उनके काव्य के अनुभूति पक्ष का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे ।
- दिनकर के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से परिचित हो सकेंगे ।
- कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य और संदेश से परिचित होकर कवि की विचारधारा से अवगत हो सकेंगे ।

- कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग की मूल चेतना से परिचित होकर उसके प्रमुख व्याख्येय अंशों को हृदयंगम करते हुए दिनकर की आधुनिक विचारधारा से परिचित हो सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

रामधारी सिंह दिनकर छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के समर्थ एवं सशक्त कवि के रूप में विख्यात है । दिनकर जी शक्ति और पौरुष के कवि हैं । इनके व्यक्तित्व एवं तित्व में देश-प्रेम तथा विश्व-प्रेम की भावनाओं के मणिकांचन योग के कारण एक विशेष प्रकार की दीप्ति पाई जाती है । इनकी कृतियाँ इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि उनकी भावधारा और विचारधारा निरन्तर उनके व्यक्तित्व के अनुसार विकसित होती रही है । विचार-दर्शन के क्षेत्र में ये राष्ट्रीयता से चलकर विश्वबन्धुत्व तक पहुँचे हैं और सृजन-शिल्प की दृष्टि से इन्होंने द्विवेदी युग और छायावाद को आत्मसात करते हुए अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति के द्वार तक पहुँचाया है । आधुनिक हिन्दी कविता में दिनकर जी की विशिष्ट स्थिति रही है । इनकी प्रबन्धात्मक

कृतियों में कुरुक्षेत्र, उर्वशी और 'रश्मिरथी का विशेष स्थान है ।

11.2 दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व

11.2.1 व्यक्तित्व परिचय

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के सिमरिया गाँव में सन् '1908 ईस्वी में हुआ था । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई, फिर पटना विश्वविद्यालय से बी.ए. ऑनर्स करने के बाद ये एक हाईस्कूल में प्रधानाचार्य बन गये । विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए ये भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए । भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया और इनकी प्रसिद्ध कृति 'उर्वशी' पर इन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ । सन् 1974 में हृदयगति रुक जाने से इनका निधन हो गया ।

दिनकर प्रारम्भिक जीवन से ही विद्रोही, क्रांतिदर्शी और शौर्य के प्रतीक बनकर हमारे सामने आते हैं । दिनकर का जन्म उस प्रदेश में हुआ था, जहाँ कला और संस्कृति व युद्ध के प्रेमी मौर्य सम्राटों ने पर्याप्त समय तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया था। एक ओर तो यह सब था और दूसरी ओर शांति और अहिंसा के प्रतीक गौतम बुद्ध ने अवतार धारण किया था । ये दो प्रभाव दिनकर के व्यक्तित्व में भी मिल जाते हैं । उनके व्यक्तित्व में एक ओर शौर्य व उदग्रता है, तो दूसरी ओर गाम्भीर्य और विनम्रता है । उनका स्वभाव एक ओर चाणक्य की बृहमवंशीय आग से युक्त था, तो दूसरी ओर चन्द्रगुप्त जैसा विक्रम और ओज भी उनके स्वभाव में था । दिनकर के बाह्य व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि "गोरा-चिट्टा रंग, लम्बाई पाँच फुट ग्यारह इंच, भारी भरकम शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें जो रचना के दिनों में चिन्तन विलष्ट लगती हैं, पर बात करते समय या कविता पाठ करते समय प्रदीप्त हो

उठती हैं, ललकार भरी बुलन्द आवाज तेज चाल और क्षिप्रबुद्धि, ये हैं, बहिरंग विशेषताएँ जिनसे दिनकर का व्यक्तित्व बना है । वे किसी भी परिस्थिति पर तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं । उनकी कविता उन्हीं प्रतिक्रियाओं का कलात्मक प्रतिफलन है । उनकी कविता में उनका इन्द्रधनुषवर्णी व्यक्तित्व प्रबल रूप में हमारे सामने आता है । दिनकर के व्यक्तित्व में प्रभुत्व की आभा छिटकती है, स्वाभिमान और आत्मविश्वास की प्रबलता भी व्यंजित होती है । दिनकर की पौरुषमयी कविता उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिफल है।उनका व्यक्तित्व एक ओर उर्वशी के सौंदर्य तन्तुओं से बना है, तो दूसरी ओर 'परशुराम की प्रतीक्षा के पृष्ठों पर तरंगित ओजस्विता से । सम्भवत: इसी कारण कहा जाता है कि दिनकर के व्यक्तित्व में एक विशुवियस (अमेरिका में स्थित ज्वालामुखी पहाड़) का तरल लावा है, जिसमें एक साथ तरलता और प्रचण्डता मिलती है ।" दिनकर ने उर्वशी में पुरुरवा के ऊर्जस्वित व्यक्तित्व के प्रसंग में जो निम्नांकित पंक्तियाँ लिखी हैं, वे उनके अपने ही व्यक्तित्व का अंकन प्रतीत होती हैं । कवि ने पुरुरवा का व्यक्तित्व इन शब्दों में मूर्तित किया है-

यह शिला सा वक्ष, ये चट्टान सी मेरी भुजाएँ,
सूर्य के आलोक से दीपित. समुन्नत भाल
मेरे प्राण का सागर, अगम, उत्ताल, उच्छल है ।
सामने टिकते नहीं वनराज पर्वत डोलते हैं,
काँपता है कुण्डली मारे समय का व्याल
मेरी बाँह में मारुत, गरुड गजराज का बल है ।
मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं,
उर्वशी! **टपने समय का सूर्य हूँ मैं ।**

दिनकर के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ हैं । उनके व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को अनेक आलोचकों ने अनेक प्रकार से विश्लेषित किया है । विश्लेषण की शैली कितनी ही भिन्न क्यों न हो, किन्तु प्रमुख बातों में वे एक हैं । दिनकर के आत्मविश्वास, स्वाभिमान और दृढ़ता विषयक भावों की सभी ने प्रशंसा की है । एक ओर यदि वे पौरुष के अवतारी परशुराम हैं तो दूसरी ओर शृंगारी भावों से उत्पन्न कोमल भावों व अनुभूतियों के भी कवि हैं । डॉ.सावित्री सिन्हा ने दिनकर के व्यक्तित्व को इन शब्दों में स्पष्ट किया है- 'दिनकर के व्यक्तित्व में धरती पुत्र का आत्मविश्वास और दृढ़ता, साहित्यकार की अनुभूतिप्रवणता,दार्शनिक का तत्त्व चिन्तन और राजपुरुष का ओज और तेज है । दूसरे शब्दों में उनके जीवन की कहानी हल, हँसिया, लेखनी और पार्लियामेन्ट की बैठक की कहानी है । उनके बाह्य व्यक्तित्व में भी क्षत्रिय का तेज, ब्राह्मण का अहं, परशुराम का गर्जन और कालिदास की कलात्मकता विद्यमान है ।"

11.2.2 कृतित्व परिचय

दिनकर सामाजिक चेतना के कवि हैं । उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ आत्ममंथनपरक हैं । रेणुका' और 'हुंकार में मुख्यत: क्रांतिगीत संकलित हैं । इनमें संवेगात्मक और संवेदात्मक तीव्रता है । 'रसवन्ती सौंदर्यान्वेषी वृत्ति की कृति है । 'कुरुक्षेत्र' 'उर्वशी, रश्मिरथी इनकी प्रमुख प्रबन्ध कृतियाँ हैं । 'कुरुक्षेत्र में कवि ने युद्ध और शांति जैसे विशद, गम्भीर विषय पर अपने विचार भीष्म और युधिष्ठिर के संलाप के रूप में व्यक्त किए हैं । 'उर्वशी विचारप्रधान कृति है । कामायनी के पश्चात् इसे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जा सकता है । स्वयं कवि ने इसे कामाध्यात्म की संज्ञा दी है । दिनकर की कविता में विचार तत्त्व का अभाव नहीं है । यदि अभाव है, तो विचार तत्त्व के प्राचुर्य के अनुरूप गहराई का । दिनकर की शैली में प्रसाद गुण यथेष्ट है, ओज गुण भी है, अनुभूति की तीव्रता है और सच्ची संवेदना है ।

दिनकर जी की काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं- 'रेणुका, 'हुंकार, 'रसवन्ती, 'सामधेनी 'नील कुसुम', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', ' द्वन्द्वगीत, 'धूपछाँह, 'मिट्टी की ओर' 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'अर्द्धनारीश्वर', 'नीम के पत्ते', 'धूप और धुआँ, नये सुभाषित 'कोयला और कवित्व', 'आत्मा की आँखें, 'वेणुवन', 'रेती के फूल', 'उजली आग, 'चक्रवाल', 'बापू, 'इतिहास के आँसू । दिनकर की गद्य-कृतियों में प्रमुख ये हैं- पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण, वटपीपल, देश-विदेश, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, भारत की सांस्कृतिक एकता, संस्कृति के चार अध्याय, धर्म, नैतिकता और विज्ञान, शुद्ध कविता की खोज ।

दिनकर की प्रारम्भिक काव्य-कृतियों में 'रेणुका, 'हुंकार और 'रसवन्ती को स्थान प्राप्त है। ये वे रचनाएँ हैं, जिनमें एक ओर छायावादी रोमानियत मिलती है, तो दूसरी ओर सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति । 'रेणुका' में अतीत के प्रति प्रबल आकर्षण है, तो साथ ही वर्तमान परिवेश की नीरसता भी चित्रित हुई है । सामान्यत: राष्ट्रीय भावनाओं का प्रधान स्वर इस संग्रह की रचनाओं में मिलता है । भहुंकार' में कवि हीनता, दीनता और विपन्नता के प्रति अधिक दरियार्द्र हो उठा है । वह शोषण के प्रति आवाज उठाता है। एक प्रकार से हुंकार में क्रांति का स्वर तो है ही, उसके मूल में राष्ट्रीयता की भावना भी है । रसवन्ती में कवि सौंदर्यान्वेषी हो उठा है । यहाँ उसकी सौंदर्यमूलक और श्रृंगार से संयुक्त रचनाओं को स्थान प्राप्त हुआ है डॉ. सावित्री सिन्हा की यह टिप्पणी उचित ही है कि 'वैयक्तिक सुख-दुख, मधुमास का पराग, यौवनकाल की उष्णता, प्रेम की शीतलता और रूप की चकाचौंध में कुछ दिनों के लिए उनकी 'रसवन्ती' लजीली, शर्मीली, कोमलांगी और तन्वंगी ही रह गयी है । रसवन्ती में उनकी कला-चेतना का यही मधुर-कोमल रूप प्रधान रूप से व्यक्त हुआ है । '

'द्वन्द्वगीत' में सन् 1932 से 1939 तक के पद हैं । इसमें कवि का अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् ,सुख-दुख तथा आस्था और अनास्थ का द्वन्द्व दिखाई देता है । यों तो द्वन्द्वगीत में कवि के विविध विचार प्रकट किए गए हैं, किन्तु कवि का स्वर सर्वत्र द्वन्द्वात्मक है । हां, उनकी ध्वनि में सर्वत्र परपीड़ा के प्रति द्रवित होना ही मुखरित हुआ है । 'सामधेनी' सन् 1946 में प्रकाशित हुई । यह वह समय था, जब सर्वत्र क्रांति की ध्वनि अनुगुंजित थी । इसी कारण इस कृति का मूल स्वर क्रांति का ही है । कवि

की क्रांतिमूलक भावनाएँ धीरे-धीरे क्रांति से शांति की ओर अग्रसर हुई हैं । कलिंग विजय एक ऐसी ही कविता है, जिसमें अशोक के माध्यम से कवि शांति की कामना करता हुआ, अपनी वाणी को स्निग्धता व करुणा से भिगोता गया है । 'कुरुक्षेत्र' युद्ध की समस्या को लेकर लिखा गया काव्य है । यद्यपि इसमें और भी अनेक समस्याएँ चित्रित हुई हैं, तथापि प्रमुख समस्या युद्ध की ही है । यह वह प्रबन्ध काव्य है, जिसमें कवि की प्रतिपादना यह है कि देह की लड़ाई देह से और आत्मा की लड़ाई आत्मा से लड़ी जाती है। वस्तुतः यह एक विचारप्रधान काव्य है और इसमें वर्णित विचार, प्रबन्ध के सूत्र में गूँथ दिये गये हैं । यह वह काव्य है जिसमें भाग्य पर कर्म की, निवृत्ति पर प्रवृत्ति की और शांति पर क्रांति की विजय चित्रित की गयी है ।

'रश्मिरथी' कुरुक्षेत्र के बाद का दूसरा महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य है । सात सर्गों में विभक्त यह प्रबन्ध काव्य कर्ण के जीवन की यशोगाथा है । कर्ण के सहारे कवि ने जो नयी विचारणा प्रस्तुत की है, वह यह है कि व्यक्ति की पूजा उसके गुणों के कारण होनी चाहिए डॉ. सावित्री सिन्हा के शब्दों में, "विचारों और भावों का ऊहापोह, उत्थान और संशोधन परिवर्द्धन के द्वारा दिनकर ने जिस सैद्धांतिक जीवन-दृष्टि का निर्माण किया था, कर्ण के व्यक्तित्व में उन्हीं को उतार दिया । शौर्य और शील का समन्वय, कर्मवादी जीवन दृष्टि, जाग्रत अहंकार व अग्निमय प्रतिशोध दिनकर के अपने आदर्श पुरुष की कल्पना है तथा दान-वीरता, मैत्री-निर्वाह और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि गुण उन्होंने परम्परा से ग्रहण किए हैं ।"नीलकुसुम संग्रह दिनकर के काव्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है । इसकी भूमि और उस पर विकसित विचार लतिका का रंग भी बदला हुआ है । यहाँ कवि प्रयोगोन्मुख हो गया है । इस संग्रह का मूल स्वर कल्पनालोक से धरती पर उतरने का है। रंगीनियों के स्थान पर ठोस धरती ही कवि का लक्ष्य है । इसमें जो भाव हैं, वे बौद्धिकता के पार्श्ववर्ती तो हैं, किन्तु देशोद्धार की कामना यहाँ भी बलवती हो उठी है ।

'परशुराम की प्रतीक्षा' 1963 की रचना है । चीनी आक्रमण के पश्चात् कवि ने तिलमिलाते हुए जन-जागृति के निमित्त इस कृति का सृजन किया है । इसमें कुल 18 कविताएँ हैं । इनमें तीन रचनाएँ- जवानियाँ, जवानी का झण्डा और 'हिम्मत और रोशनी' ऐसी है, जो सामधेनी काव्य-संग्रह से लेकर इसमें जोड़ दी गयी हैं ।'परशुराम की प्रतीक्षा एक लम्बी कविता है । इसमें गरजते भारत के क्रोधमूलक स्वर को वाणी दी गयी है । वास्तव में कवि ने इसमें देश की शांति, अहिंसा, विनय और त्यागशील वृत्तियों की आलोचना करते हुए क्रांति की वाणी में अपनी बातें कही हैं । दिनकर ने अपनी हार के पाप से मुक्ति के लिए ही परशुराम के आगमन की प्रतीक्षा की है । 'कोयला और कवित्व' सन् 1964 की रचना है, जिसमें 40 कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है । इसमें अतुकान्त और नये विचारों की परिचायिका कविताएँ स्थान पाए हुए हैं । कवि ने इस कृति में कला और धर्म दोनों के सामंजस्य पर बल दिया है । 'उर्वशी' दिनकर के प्रबन्धकाव्यों की श्रृंखला में सर्वाधिक महत्त्व रखती है । उर्वशी के कथानक के सूत्र वेद, पुराण, महाभारत और भागवत आदि में निहित हैं । इस पर कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' का पर्याप्त प्रभाव है । उर्वशी के कथानक में काम, आकर्षण व सौंदर्य का मनोवैज्ञानिक रूपांकन मिलता है । इस काव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि काम पूरी तरह त्याज्य

नहीं है, अत: नर-नारी के पारस्परिक संभोग से विरक्त होकर संसार का त्याग उचित नहीं है । उर्वशी में प्रेम, मनोविज्ञान और दर्शन व सौंदर्य आदि सभी भावों का संगम है । काव्यकला की दृष्टि से यह अभिनन्दनीय कृति है । डॉ. नगेन्द्र ने इस कृति के विषय में उचित टिप्पणी की है । उन्होंने लिखा है कि "भाव, कल्पना और विचार से परिपुष्ट उर्वशी की कविता भावों को आंदोलित करने, प्रबुद्ध कल्पना के सामने मूर्त-अमूर्त के रमणीय चित्र अंकित करने और विचारों को उद्‌बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता से युक्त है । " वास्तव में उर्वशी कामाध्यात्म की रचना है । संक्षेप में यही कह सकते हैं कि दिनकर की काव्य- कृतियाँ निश्चय ही उनके काव्य-विकास की कहानी को स्पष्ट करती हैं । उनका काव्य क्रांति, पौरुष, दर्शन, मनोविज्ञान और माधुर्य व प्रगतिशीलता का समन्वित रूप है ।

11.3 काव्य का अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष

दिनकर परवर्ती छायावादी कवियों में चिन्तनशील प्रतिभा और जागरूक सामाजिक व्यक्तित्व के धनी कवि थे । वैयक्तिक चेतना के कवि होते हुए भी दिनकर ने राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन के प्रश्नों को बड़ी सहृयता और स्पष्टता से अभिव्यक्ति दी है । वास्तव में वे समय के वैतालिक थे । इनका काव्य प्रेम, सौंदर्य व नारी-भावना का द्‌योतक और छायावादी रुचि का काव्य भी है, तो उसमें रूढ़ियों का विरोध, शोषितों के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना की स्थापना का वह स्वर भी है, जो मानवतावाद से जुड़ता है । ऐसे कृती कवि दिनकर के काव्य के अनुभूतिपक्ष में निम्नांकित प्रवृत्तियाँ प्रमुखत: से व्यक्त हुई हैं:-

11.3.1 पौरुष एवं ओजस्विता

दिनकर के काव्य में पौरुष और ओज को प्राथमिक स्थान प्राप्त है । उनकी राष्ट्रीयता प्रेरित भावना में उत्साह, पौरुष और प्रतिशोध के भाव बहुत गहरे हैं । जब स्वतन्त्रता संकटग्रस्त होती है, जब जातीयता आहत होती है, और जब स्वाभिमान वांछित होता है, तब पौरुष ही काम आता है । ऐसे ही पौरुष और ओजस्वी भावों की व्यंजना 'अनल किरीट' कविता में हुई है-

लेना अनल किरीट भाल पर ओ आशिक होने वाले ।
कालकूट पहले पी लेना, सुधा बीज बोने वाले ।
जिन्हें देखकर डोल गयी, हिम्मत दिलेर मरदानों की,
उन मौजों पर चली आ रही किश्ती कुछ दीवानों की ।

पौरुष और ओजस्वी भावों का धनी दिनकर तलवार की चमक में पौरुष की छाया देखते हैं और कहते हैं कि “पुण्य खिलता है चन्द्रहास की विभा में तब, पौरुष की जाग्रति कहती धर्मयुद्ध है” । वस्तुत: दिनकर दाहक धर्म के ओजस्वी कवि हैं

11.3.2 राष्ट्रीयता और क्रांति भावना

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुखता से उभरा है । उनकी अनेक रचनाएँ भारतीय संस्कृति और उसके प्राचीन गौरव का ओजपूर्ण शैली में गुणगान करती हैं ।

कतिपय रचनाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें भारत की वर्तमान दशा के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया है तथा स्वदेश के उद्धार और उत्थान के लिए सोयी हुई राष्ट्रीय भावना को जागरण का संदेश दिया गया है । दिनकर की 'हिमालय' कविता इसका प्रसिद्ध उदाहरण है । इस कविता में सुषुप्त चेतना को जगाकर त्याग, तपस्या और वैराग्य की भावनाओं की अपेक्षा नवयुग की शंखध्वनि को सुनाने का प्रयास किया गया है ताकि सोया हुआ भारत जाग्रत हो सके । 'सामधेनी' में भी राष्ट्रशक्ति की बुझती हुई शिखा को नया जीवन देने के लिए परमात्मा से अंगार की याचना की गयी है । दिनकर जी की राष्ट्रीय भावना ने महात्मा गांधी की अहिंसा से बहुत कम मात्रा में समझौता किया । इनकी राष्ट्रीयता सुभाषचन्द्र बोस द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चली है । इन्होंने तलवार और पौरुष के बल पर राष्ट्रोद्धार की कल्पना की है । दिनकर के मतानुसार क्रांति से ही नवनिर्माण सम्भव है, न कि आदर्शवादी पद्धति से । उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि "क्रांतिवाद सूखे वृक्ष को जडसहित उखाड़ कर दूर कर देता है और उसकी जगह नवीन वृक्ष का आरोपण करता है । सुधारवाद नहर की सिंचाई है जो धीरे-धीरे खेतों को उपजाऊ बनाती है । क्रांतिवाद एक उमड़ती हुई बाढ़ है जो दुर्बलों का विनाश करती हुई उनके जीवन के क्षेत्र में नयी मिट्टी भर देती है।" इसी आधार पर रेणुका, हुंकार और सामधेनी में कवि का स्वर क्रांतिकारी हो गया है । कवि की ये पंक्तियाँ देखिए-

शोषण की श्रृंखला के हेतु बनती जो शांति.
युद्ध है यथार्थ में व भीषण अशांति है
सहना उसे ही मौन हार मनुजत्व की है,
ईश की अवज्ञा घोर पौरुष की शांति है
पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता का
ऐसी श्रृंखला में धर्म विप्लव है क्रांति का ।

11.3.3 प्रतिशोध का स्वर

क्रांतिद्रष्टा कवि दिनकर ने शूरवीर के लिए अपमान का बदला अपमान करके और हिंसा का बदला हिंसा से देना ही उसका धर्म माना है । वे गांधी की अहिंसा को मानते तो हैं, किन्तु शक्ति व पौरुष के साथ । उनकी मान्यता है कि त्याग, करुणा और क्षमा की बात कोई शूरवीर ही कर सकता है । कवि की ये पंक्तियाँ देखिए जिनमें कवि ने प्रतिशोध हीनता को महापाप माना है और स्पष्ट कहा है कि-

प्रतिशोध से है होती शौर्य की शिखाएँ दीप्त,
प्रतिशोध हीनता नरों में महापाप है ।
छोड प्रीतिवर पीते मूक अपमान वे ही
जिनमें न शेष शूरता का बह्नि ताप है ।

प्रतिशोध भावना को दिनकर ने पौरुष का गुण ही नहीं, अपितु मानव का जन्मसिद्ध अधिकार भी माना है । इतना ही नहीं. दिनकर ने प्रतिशोध की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्पष्ट लिखा है-

चोट खा परन्तु जब सिंह उठता है जाग,

उठता कराल प्रतिशोध हो प्रबुद्ध है,
पुण्य खिलता है चन्द्रहास की विभा में तब
पौरुष की जागृति कहानी धर्म-युद्ध है ।

11.3.4 सौंदर्य भावना

क्रांति का प्रचारक, पौरुष का प्रत्यक्ष प्रतीक कवि दिनकर के काव्य का एक स्वर वह भी है जो छायावादी संस्कारों से ग्रसित व उसी प्रकार की कोमल कल्पनाओं से युक्त है । रसवन्ती और उर्वशी का कवि प्रेमिल, रोमानी और भावों का सौंदर्यान्वेषी कवि है । उसकी नारी भावना में पावनता, उदात्तता और दिव्यता का स्वरूप बखूबी उपलब्ध है जो छायावादी नारी में मिलता है । रसवन्ती की 'नारी' शीर्षक कविता में कवि की कल्पनाएँ छायावादी अतीन्द्रियता के निकट है । उसका व्यक्तित्व नैसर्गिक सौंदर्य और अलौकिक व्यक्तित्व से युक्त है । वह कोमलता, क्रांति और दिव्यता की साकार प्रतिमा है । वह विधि की साकार प्रतिमा है । वह विधि की अम्लान कल्पना है और ज्योति की कली है । सधस्नाता नारी के सौंदर्य का चित्रण भी दिनकर ने बड़े मनोयोग से किया है । वस्तुत: नारी सौंदर्य को रेखाओं में बाँधने के लिए दिनकर ने बहुत बार उसे सधस्नाता रूप में देखा है-

कढ़ी यमुना से कर तुम स्नान, पुलिन पर खडी हुई कच खोल ।
सिक्त कुंतल से झरते देवि! थ्प्रेय हमने सीकर अनमोल ।

'रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो और क्या है?' कहने वाले दिनकर ने उर्वशी में ही रूपसी नारी को प्रति का मनोहर चित्र माना है । उसने कहा है कि नारी का अतुल श्रृंगार प्रेम और पूजा का विषय है । दिनकर की सौंदर्य भावना और उसकी प्रतिमूर्ति नारी का रूप यह है-

इन कपोलों की ललाई देखते हो?
और अधरों की हँसी यह कुन्द सी जुही-कली-सी?
गौर चम्पक यष्टि-सी यह देह श्लथ पुष्पाभरण-सी
स्वर्ण की प्रतिभा कला के स्वप्न साँचे में ढली-सी?
यह तुम्हारी कल्पना है प्यार कर लो ।

11.3.5 काम भावना

दिनकर ने उर्वशी के माध्यम से अपनी काम-भावना को स्पष्ट किया है । दिनकर ने काम के उदात्त स्वस्थ स्वरूप को ही स्वीकार किया है । पुरूरवा भले ही द्वंद्ग्रस्त होकर यह सोचे कि "'दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है", किन्तु उर्वशी रक्त की भाषा का ही समर्थन करती है । 'मेरे लिए सत्य की वाणी वही तप्त शोणित है ।' अत: वह पुरूरवा को रक्त की भाषा को पढ़ने के लिए प्रेरित करती है । विकल्पयुक्त मानस लेकर पुरूरवा रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन को मानता हुआ कवि द्वारा कथित ये शब्द सुनता है-

ओ गगनचारी! यहाँ मधुमास छाया है

भूमि पर उतरो
कमल कर्पूर, कुसुम से कुटज से
इस अतुल सौंदर्य का श्रृंगार कर लो ।

इससे स्पष्ट है कि दिनकर की काम भावना परिष्त और उदात्त है । उसमें मात्र शरीर का भोग नहीं है । वह तो शरीर के भाव से अनन्त आत्मा का परिष्कार भी करता है ।

11.3.6 कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन

रामधारी सिंह दिनकर ने अपने काव्य में कर्म की श्रेष्ठता को अधिक महत्त्व दिया है । वे भाग्यवादी नहीं हैं । यही कारण है कि उन्होंने भाग्यवाद का खण्डन किया है । वास्तव में कवि हर स्थिति में इस बात पर जोर देता है कि कर्म ही महत्त्वपूर्ण है । कर्म के द्वारा ही मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है । भाग्यवाद के सहारे बैठे रहने से जीवन में कुछ भी उपलब्ध नहीं हो पाता है । कवि द्वारा लिखित निम्नांकित पंक्तियाँ दखिए-

भाग्यवाद आवरण पाप का
और शस्त्र शोषण का
जिससे रखता दबा एक जन
भाग्य दूसरे जन का

इतना ही नहीं, कवि दिनकर ने तो यह भी प्रश्न किया है कि यदि भाग्य ही प्रबल होता तो किसान अपना पसीना बहाता हुआ आँधी, वर्षा, तूफान में भी क्यों मेहनत करता? यदि विधाता के अंक प्रबल और प्रमुख रहे होते तो मनुष्य ने ज़हां भी पैर रखा होता, वही धरती ने रत्न उगल दिये होते । इससे यह प्रमाणित होता है कि भाग्य का लेख वे लोग पढ़ते हैं जो आलसी होते हैं । कायर और आलसी लोग भाग्य के सहारे बैठकर अपनी किस्मत को रोते रहते हैं । कवि की तो स्पष्ट मान्यता है-

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में
मनुष्य नहीं लाया है
अपना सुख उसने अपने
भुजबल से ही पाया है ।

11.3.7 आत्मोत्सर्ग

दिनकर के काव्य में आत्मोत्सर्ग की भावना को भी महत्त्व दिया गया है । उसने बतलाया है कि बलिदान का महत्व सर्वोपरि है । जीवन में अधिकांश उपलब्धियां आत्मोत्सर्ग द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं । संसार में हमें जो कुछ भी मिलता है, वह हमारे आत्मोत्सर्ग अथवा बलिदान का ही परिणाम कहा जा सकता है । दिनकर ने अपनी एक कविता 'भाइयों और बहनों में लोगों को श्रम और बलिदान से जीवन को सुखी बनाने की प्रेरणा प्रदान की है । उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि श्रम का एक बिन्दु बलिदान और आत्मोत्सर्ग से जुड़ता है । आत्मोत्सर्ग एक प्रकार की ऐसी भावना है, जो अपने आपको दे देने से जुड़ी हुई है और यह ठीक है कि जो व्यक्ति जितना देता है,

उतना ही प्राप्त भी करता है । अपवादस्वरूप से ही सही, दिनकर की कविताओं में यह भावना यत्र-तत्र मिल जाती है । उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए-

लो शोणित कुछ नहीं अगर
यह आँसू और पसीना!
सपने ही जब धधक उठे
तब धरती पर क्या जीना?
सुखी रहो, **दे सका नहीं मैं**
जो कुछ रो समझा कर
मिले कभी वह तुम्हें भाइयों
बहनों मुझे गँवाकर ।

11.3.8 भाषा-सौष्ठव एवं शैली-सौंदर्य

दिनकर का अनुभूति पक्ष जितना सहजग्राह्य है, उतना ही सहजग्राह्य उनका अभिव्यंजना शिल्प भी है । अभिव्यक्ति की प्राणशक्ति का नाम भाषा है । प्रतिभाशाली कवि लाक्षणिकता, चित्रोपमता, ध्वन्यात्मकता और व्यंजनात्मकता के सहारे अपनी भाषा को सौष्ठवयुक्त बनाया करते हैं । भाषा यदि प्रेषणीयता के गुण से भी समन्वित हो, तो निश्चय ही वह कवि की प्रतिभा को प्रदीप्त कर सकती है- कविता को 'आकर्षणयुक्त बना सकती है। इसके लिए प्राय: लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करना पड़ता है । दिनकर ने अपनी काव्य-भाषा को सौष्ठवयुक्त बनाने के लिए इन सभी उपर्युक्त गुणों से काम लिया है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़ तथा विशुद्ध साहित्यिक भाषा है । उसमें तत्सम शब्दावली की प्रधानता है तथा वह ओज व माधुर्य गुणों से युक्त है । तत्सम शब्दों के बीच-बीच में उर्दू फारसी के शब्द भी आ गये हैं । ऐसे शब्दों में आशिक, चोट, हार, हिम्मत, दिलेर, मर्दाने, मौज, दीवाने, बेफिक्री. शमा, तराना, जमाना, रूह, स्वाद, जादू और जरा आदि शब्दों को लिया जा सकता है ।'कुरुक्षेत्र' में भाषा की परिषति के साथ-साथ भाषा की सहजता भी देखने को मिलती है । वास्तव में दिनकर की भाषा में प्रेषणीयता चित्रात्मकता और लाक्षणिकता का गुण पर्याप्त मात्रा में विधमान है । उनकी भाषा प्रवाहशील है, भाव और शब्द की मैत्री उनकी कविता में आद्यन्त देखने को मिलती है । भाषा में प्रवाह, गति और अर्थवत्ता लाने के लिए दिनकर ने अनेक स्थानों पर कहावतों और मुहावरों का भी सार्थक प्रयोग किया है । दिनकर की अनेक कविताओं में इस प्रकार के प्रयोग देखे जा सकते हैं । खंजर की जंग छुड़ाना, फूँक-फूँक कर चलना, दाँतों तले उँगली दबाना, पानी में आग लगाना, आग सुलगाना और चन्द्रमा को हाथों से निचोड़ना आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं । इस प्रकार के प्रयोगों से भाषा की अर्थवत्ता बढ़ी है और उसमें लाक्षणिक सौंदर्य भी आ गया है । शैली-प्रयोग की दृष्टि से विचार करें तो दिनकर के काव्य में प्रतीक शैली, चित्रात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली, संवाद शैली, ओजपूर्ण शैली और व्यंग्य शैली का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है । कुरुक्षेत्र का कवि तो शैलियों का धनी प्रतीत होता है । कुरुक्षेत्र में उन्होंने दृष्टान्त शैली,

तर्क शैली, प्रबोधनात्मक़ शैली, तुलनात्मक शैली और सूक्ति शैली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है ।

11.3.9 अलंकृति

अलंकारों का प्रयोग काव्य में भावोत्कर्ष और सौंदर्यवर्द्धन के लिए किया जाता है । कुशल कवि अलंकारों के बोझ से कविता-कामिनी के शरीर को अनावश्यक रूप से बोझिल नहीं बनाते । दिनकर ने सामान्यत: उपमा, रूपक, दृष्टान्त, मानवीकरण जैसे अलंकारों का प्रयोग किया है । कुरुक्षेत्र में भी इन अलंकारों को सरलतापूर्वक देखा जा सकता है । सामान्यत: ये सभी अलंकार कुरुक्षेत्र में मिल जाते हैं । कतिपय उदाहरण देना पर्याप्त होगा-

रूपक : नर संसति की रण-छिन्न लता पर,
शांति सुधा-फल दिव्य फलेगा ।

उल्लेख : यह मनुज ब्रह्माण्ड का सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश,
यह मनुज जिसकी शिखा उद्दाम,
कर रहे जिसको चराचर भक्ति-युक्त प्रणाम,
यह मनुज जो सृष्टि का श्रृंगार,
ज्ञान का विज्ञान का, आलोक का आगार ।

दृष्टांत : हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है ।

विरोधाभास: और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष,
चुपचाप मानो पूछता है मुझसे पुकार ।

वकोक्ति : व्यंग्य, पश्चाताप, अन्तर्दाह का,
अब विजय उपहार भोगो चैन से ।

11.3.10 प्रतीक विधान

दिनकर के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग भी बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है । प्रतीकों का प्रयोग न केवल सार्थक, साभिप्राय और अर्थगर्भित है, अपितु प्रसंग और भाव के अनुकूल भी है । उन्होंने कालकूट को प्राणान्तक वेदना का, सुधाबीन को अमृत भावना का, नवनीत को मधुरता का, शंभु के चाप को परम्परावादी दृष्टिकोण का, मधुमकरन्द को मस्ती का प्रतीक बनाया है । कुरुक्षेत्र में भी प्रतीकों का प्रयोग बड़ी सफलता से किया गया है । इस काव्य में कोमल और कठोर दोनों प्रकार के प्रतीक देखने को मिलते हैं । जहाँ उनके प्रतीक कोमल हैं, वहीं भावना भी कोमल है और जहाँ वे कठोर हैं, वहाँ भावना भी कठोर रूप लेकर सामने आयी है । उदाहरणर्थ कोमलता और कठोरता के सूचक प्रतीकों के उदाहरणस्वरूप ये पंक्तियाँ ली जा सकती हैं-

कोमल प्रतीक: चाँदनी की रागिनी कुछ भोर की मुस्कान
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान ।

कठोर प्रतीक: पर हाय यहाँ भी धधक रहा अम्बर है
उड़ रही पवन में दाहक लोल लहर है ।

उपर्युक्त उदाहरणों में चाँदनी की रागिनी और भोर की मुस्कान जैसे कोमल प्रतीक भावमयी प्रेम व्यंजना के लिए प्रयुक्त हुए हैं तो धधकता अम्बर और लोल लहर जैसे प्रतीक परिवेश की भयानकता को स्पष्ट करने के लिए काम में लिए गए हैं । कवि ने और भी अनेक स्थानों पर प्रतीकों का प्रयोग किया है और उस प्रयोग में कवि पर्याप्त सफल दिखाई देता है । छन्द-प्रयोग की दृष्टि से दिनकर का काव्य पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने अपने काव्य में मात्रिक, वर्णिक और मुक्त छन्द सभी का प्रयोग किया है । मात्रिक छन्दों में सार, रूपमाला, राधिका आदि छन्द उन्हें अधिक प्रिय रहे हैं । कुरुक्षेत्र के तीसरे, चौथे और सातवें सर्ग में सार छन्द का प्रयोग हुआ है । मुक्त छन्द का प्रयोग भी दिनकर ने कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत किया है जिसे हम छठे सर्ग और प्रारम्भिक सर्ग में देख सकते हैं ।

11.4 कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य

दिनकर कृत कुरुक्षेत्र कथा प्रधान काव्य नहीं है । इसमें कथा का आभास मात्र दिखाई देता है । फिर भी इसमें जो थोड़ी बहुत कथा है, वह महाभारत से ली गयी है । महाभारत में संकेत आता है कि युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर को वैराग्य उत्पन्न हो गया था । ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं कि महाभारत के सौप्तिक पर्व में अपने मृत सम्बन्धियों को जलांजलि देते समय युधिष्ठिर को यह ज्ञान हुआ था कि महाबली कर्ण उनके अग्रज थे । यह अनुभूति होते ही उनके मन की ग्लानि भावना जाग पड़ी थी । शांति पर्व में भी नारद ने युधिष्ठिर से पूछा था कि इस राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करके आपके मन में कोई शोक तो नहीं है? इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने बड़े ही विस्तार से अपने शोक को तथा अपने दुष्त्य को स्वीकार कर आत्मनिंदा की थी और अन्त में वन जाने का प्रस्ताव रखा था । युधिष्ठिर के इस वन-प्रस्ताव का भीम, नकुल, सहदेव और अर्जुन सभी विरोध करते हैं । महर्षि व्यास और कृष्ण उन्हें समझाते हैं। अन्त में धर्मराज व्यास और श्रीकृष्ण की सम्मति से युधिष्ठिर हस्तिनापुर आकर राज्य ग्रहण करते हैं । तभी कृष्ण द्वारा प्रेरित किए जाने पर युधिष्ठिर भीष्म के पास जाते हैं और भीष्म उन्हें राज्योचित शिष्टाचार, राजा के नीतिपूर्ण व्यवहार, सर्वसाधारण के धर्म राजधर्म की महत्ता, प्रजा की उन्नति के उपाय, दण्ड नीति की प्रथा, मित्र और अमित्र की पहचान, अध्यात्म ज्ञान, सैन्य-संचालन, आपत्तिकालीन राजधर्म, तप और सत्य की महिमा आदि बातों का उपदेश देते हैं । बस इतना ही संकेत महाभारत के शांतिपर्व में मिलता है । इसी पर दिनकर के कुरुक्षेत्र की कथावस्तु टिकी हुई है । महाभारत में यह कथानक स्त्री पर्व से लेकर अश्वमेधिक पर्व तक फैला हुआ है, किन्तु कुरुक्षेत्र सम्बन्धी सामग्री केवल शांतिपर्व और उद्योग पर्व में ही मिलती है । दिनकर ने इन्हीं दो पर्वो की सामग्री को कुरुक्षेत्र के लिए चुना है और उसे आधुनिक युग से जोड़कर एक विचारप्रधान काव्य का रूप दे दिया है ।

कुरुक्षेत्र में प्राचीन कथानक के सहारे वर्तमान युग की युद्धविषयक समस्या और उससे उत्पन्न स्थितियों पर गहराई से विचार किया गया है । अत: कुरुक्षेत्र के कथानक में

स्पष्ट रूप से आधुनिक युग की स्थितियाँ संकेतित हैं । ठीक भी है, ऐतिहासिक रचनाओं में कवि अपनी कल्पनाओं का सहारा लेता हुआ आधुनिक युगबोध को वाणी दिया करता है । युद्ध की समस्या किसी एक युग विशेष की

समस्या नहीं है । युद्ध प्रत्येक काल में हुए हैं और हमेशा होते रहेंगे, किन्तु उससे उत्पन्न स्थितियों पर विचार करना भी युगबोध का एक प्रभावी संदर्भ है । महाभारत काल में जो स्थिति थी, वही स्थिति आजकल भी है । अत: कवि के लिए आवश्यक हो गया है कि वह आधुनिक युग की स्थितियों को महाभारत की स्थितियों से जोड़कर कोई सन्तुलित निष्कर्ष प्रदान करे। कुरुक्षेत्र की कथा का विकास ऐतिहासिक भूमिका पर हुआ है । इसलिए कवि को प्रत्यक्ष रूप से आधुनिकता काव्य पर नहीं थोपनी चाहिए । कवि ने सही अर्थो में आधुनिकता को थोपा नहीं है, हां उसका समावेश किया है । भीष्म और युधिष्ठिर के वार्तालापों में कवि ने कल्पना का पुट देकर आधुनिकता से मिला दिया है । कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग स्वतन्त्र लगता है, किन्तु गहराई से देखने पर वह भी कवि की विचारधारा के क्रम में ही देखा जा सकता है । प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर दुखी हैं, छठे सर्ग में कवि दुखी है, अत: छठा सर्ग भी कवि की आधुनिकता और उससे सम्बन्धित विज्ञान आदि की स्थितियों को संकेतित करता है ।

कुरुक्षेत्र की कथा अथवा विचारधारा सात सर्गो में विभाजित है । प्रथम सर्ग में महाभारत के युद्ध का कारण वर्णित करने के साथ युद्ध की भयंकरता का वर्णन किया गया है । द्वितीय सर्ग में धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास जाते हैं और अपनी आन्तरिक वेदना प्रकट करते हैं । वे अपने आपको धिक्कारते हैं और वन जाने का प्रस्ताव रखते हैं । तृतीय सर्ग युद्ध की अनिवार्यता को स्पष्ट करता है और युद्ध को आपद्धर्म बतलाते हुए कवि यह संकेत देता है कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए और समाज के कल्याण के लिए कभी-कभी युद्ध अनिवार्य हो जाता है । कुरुक्षेत्र के चतुर्थ सर्ग में लगभग इसी बात को कुछ अन्य बातों से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है । पंचम सर्ग में युधिष्ठिर का आत्मविश्लेषण है, जिसमें वे अपने आपको भयानक नरसंहार के लिए उत्तरदायी मानते हैं । कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग एक स्वतन्त्र सर्ग है, जिसमें भीष्म और युधिष्ठिर दोनों ही मौन हैं, किन्तु कवि का विचारक और विश्लेषक सजग है । कुरुक्षेत्र का अन्तिम सातवाँ सर्ग महत्त्वपूर्ण है । इसमें कवि ने साम्यवाद, भाग्यवाद, कर्मठता, पलायनवाद और कर्त्तव्यपरायणता का बहुत ही सुन्दर और तर्कपूर्ण विश्लेषण किया है ।

कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत जो प्रतिपादित किया गया है, वह मानवतावादी दर्शन है और इस दर्शन के प्रस्तुतीकरण के लिए कवि ने प्राय: अनेक दर्शनों से अच्छे- अच्छे तत्व लेकर अपने मत को समन्वयवादी भूमिका पर मानवतावाद के रूप में प्रस्तुत किया है । कुरुक्षेत्र में बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की समानता को आवश्यक बतलाया गया है । इसके साथ ही व्यक्ति और समाज की महत्ता भी समान रूप से स्वीकार की गयी है । कवि ने लिखा है-

जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा ।

इसी क्रम में कवि ने बुद्धि और हृदय के बीच भी समन्वय स्थापित किया है । कवि का कहना है कि जब तक बुद्धि हृदय पर शासन करेगी, तब तक मनुष्य के प्राणों के देवता चीत्कार करते रहेंगे । इतना ही नहीं, जब जब मनुष्य का मस्तिष्क बढ़ता जाएगा और वह नित्यप्रति बुद्धि का पर्व मनाएगा, तब तक पृथ्वी पर शांति स्थापित नहीं होगी । सच्ची शांति की स्थापना हृदय और बुद्धि, विचार और भाव, धर्म और स्नेह के उचित सामंजस्य से ही सुलभ हो सकती है । यही मानवतावादी भूमिका है ।

यदि कवि मानवतावादी न होता और उसका प्रतिपाद्य मानवतावादी विचार न रहे होते, तो वह वैयक्तिक भोगवाद को समाज के लिए विष क्यों मानता? उसने स्पष्ट लिखा है-

इस वैयक्तिक भोगवाद से फूटी विष की धारा
तड़फ रहा जिसमें पड़कर मानव समाज यह सारा ।

वास्तव में कुरुक्षेत्र में आदि से अन्त तक मानवतावाद की गूँज सुनाई देती है । भीष्म के साथ कवि भी यही कहना चाहता है कि धरातल पर मानव-प्रेम की अविरल और निर्मल मंदाकिनी प्रवाहित होती रहे । उसने कहा है-

मैं भी सोचता हूँ जगत से कैसे उठे जिघांसा
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर करुणा, प्रेम, अहिंसा
जियें मनुज किस भांति परस्पर होकर भाई-भाई
कैसे रुके प्रवाह क्रोध का, कैसे रुके लड़ाई
पृथ्वी पर हो साम्राज्य स्नेह का, जीवन स्निग्ध, सरल हो,
मनुज प्रति से विदा सदा हो दाहक द्वेष गरल हो ।
बहे प्रेम की धार, मनुज को वह अनवरत भिगाये,
एक दूसरे के उर में नर-बीज प्रेम के बोये ।

कवि के हृदय से मानव मंगल की व्यग्रता फूटकर निकल पडी है-

धर्म का दीपक, दया का दीप,
कब जलेगा. कब जलेगा. विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त-
कब सरस होंगे जली सूखी रसा के प्राण?

सप्तम सर्ग के आरम्भ में कवि ने मानव का ही जय-जयकार किया है-

जय हो अध के गहन गर्त में गिरे हुए मानव की,
मुन के सरल. अबोध पुत्र की, पुरुष ज्योति सम्भव की ।
हार मान हो गई न जिसकी किरण तिमिर की दासी,
न्यौछावर उस एक पुरुष पर कोटि-कोटि सन्यासी ।

जन-कल्याण के लिए प्रति-मार्ग ही वांछनीय है, जिसका संदेश भीष्म के द्वारा कवि विश्व-मानव को देना चाहता है-

पोंछो अश्रु उठो दुत जाओ. बन में नहीं, भुवन में ।
होओ खड़े असंख्य जनों की, आशा बन जीवन में ।
सिंहासन का भाग छीनकर, दो मत निर्जन बन को ।
पहचानो निज कर्म युधिष्ठिर, कड़ा करो कुछ मन को ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य न तो युद्ध की अनिवार्यता को सिद्ध करना है, न साम्यवाद की स्थापना को प्रस्तुत करना है और न अराजकतावादी दर्शन को, क्रांति दर्शन महत्त्व ही देना है, अपितु उसका स्पष्ट प्रतिपाद्य मानवतावादी है।

11.5 कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग

दिनकर कृत कुरुक्षेत्र का छठा सर्ग काव्य का प्राण है । यद्यपि आलोचकों ने उसके सम्बन्ध में अनेक बातें कही हैं, किन्तु वे जिस संदर्भ में कही गयी हैं, उसमें भी वे विशेष मूल्य नहीं रखती हैं । कथानक में कुरुक्षेत्र के सर्ग का मेल कथा की दृष्टि से अनुपयुक्त जान पड़ता है । छठे सर्ग की अवतारणा क्यों हुई? जब यह प्रश्न हमारे सामने आता है, तो स्पष्ट होता है कि कवि ने कृति में इतिहास और कल्पना का समन्वय किया है और इसी समन्वय के दौरान इसमें कवि ने छठे सर्ग का नियोजन अथवा कहें कि विनियोजन किया है । कवि की स्वीकारोक्ति है कि "जहाँ कहीं कोई ऐसी उड़ान आई है, जिसका सम्बन्ध द्वापर से नहीं बैठता, उसका सारा दायित्व मैंने अपने ऊपर ले लिया है और ऐसे प्रसंग अपनी प्रक्षिप्तता के कारण, पाठकों की पहचान में आप ही आ जायेंगे । पूरा का पूरा सर्ग ऐसा ही क्षेपक है जो इस काव्य से टूटकर अलग भी जी सकता है ।" कवि के इस कथन से बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि छठा सर्ग काव्य के वर्ण्य-विषय से पृथक अस्तित्व रखता है । संक्षेप में छठे सर्ग के अन्तर्गत कवि ने जिन विषयों का विवेचन किया है, उनको हम निम्नांकित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं-

(1) संसार अभी पुरानी राह पर चल रहा है । उसने समय के नये संदर्भ में भी अपने आपको नहीं बदला है ।

(2) मानवों में जो महान मानव है, उसके द्वारा प्रवर्तित मार्ग ही कल्याणकारी पथ है । अत: उसे उसी कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए । मानव आज ऐसा नहीं कर रहा है, इसी कारण वह दुख भोगता है ।

(3) विज्ञान की पर्याप्त प्रगति हुई है । मानव ने विज्ञानवेत्ता बनकर नवीन अनुसंधान कार्य किए हैं, किन्तु फिर भी उसे अभीष्ट सुख-शांति उपलब्ध नहीं हो पा रही है । कारण, उसकी अन्धकार में लगने वाली दौड़ है ।

(4) विज्ञानान्ध होने के कारण मनुष्य लक्ष्यहीन हो गया है । उसका लक्ष्य अलक्षित और संसार को अपरिचित है । मनुष्य का इस प्रकार का कार्य ही विवेकहीन कहलाता है ।

(5) बुद्धि के अतिचार में पड़ने के कारण अनेक समस्याएँ समक्ष आ रही हैं । हृदय की आवाज वह नहीं सुन पा रहा है । उसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि मानव हृदय बुद्धि के कार्यक्षेत्र से परे हटकर कुछ नवीन, कोमल और आत्मिक प्रकाश भी चाहता है। कवि ने इसकी ओर संकेत भी किया है । उसने लिखा है-

मोम सी कोई मुलायम चीज.
ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज.
प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार,
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार,

चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुस्कान,
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान
रंग में धुलता हुआ खिलती कली का राज
पत्तियों पर गूँजती कुछ ओस की आवाज,
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तसवीर,
फूल की, रस में बसी भीगी हुई जंजीर ।

(6) प्रकृति के गर्भ में छिपे सभी रत्नों का उद्घाटनकर्ता मानव सभी कुछ मुष्टिबद्ध किए बैठा है । परिणामत: वह अपना धर्म भूलकर श्रृगालों और कुक्करों से भी गया बीता हो गया है । अत: निष्कर्षत: उसने साम्य की उज्ज्वल राशि के पृथ्वी पर अवतरित होने के लिए कामना की है । उसका विश्वास है कि यदि साम्यवाद की सुकोमल और दिव्य रश्मि पृथ्वी पर उतर आई, तो विज्ञान और बुद्धि के अतिरेक से सूखी धरती के प्राणों में हरियाली छा जायेगी । यही छठे सर्ग का प्रतिपाद्य है।

11.6 सारांश

दिनकर कृत कुरुक्षेत्र एक विचारप्राधन काव्य है । इनमें जो प्रबन्धत्व है, वह विचारों की एकता को लेकर है । दिनकर सामान्यत: ओज, पौरुष और क्रांतिधर्मी चेतना के कवि रहे हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें छायावादी संस्कार नहीं रहे हैं । उनकी अनेक कविताओं में प्रेमानुभूति, सौंदर्यानुभूति और छायावादी शिल्प जैसी कोमलता भी दिखाई देती है । उर्वशी में भी इस स्थिति को देखा जा सकता है । कुरुक्षेत्र विचारप्रधान काव्य होने के कारण अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक भिन्न प्रकार का काव्य है । इसमें प्रमुख समस्या युद्ध की है, किन्तु उससे जुड़ी हुई अनेक समस्याएँ भी इसमें स्वत: ही अन्तर्भुक्त हो गयी हैं । कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य कवि के चिन्तन से प्रसूत मानवीय भूमिका से जुड़ा हुआ है । उसमें आद्यन्त यह स्थिति है कि कवि विविध प्रकार के विकल्पों को छोडकर मानवतावाद को महत्त्व देता हुआ, हृदय और बुद्धि के सामंजस्य पर बल देता हुआ एक ऐसे संसार की कामना करता है जहाँ पर कर्म, प्रवृत्ति और श्रम का विशेष महत्त्व है । भाग्यवाद को वह महत्त्व न देकर सहज शब्दावली का प्रयोग करता हुआ महत्तम संदेश देता है ।

11.7 प्रसंग सहित व्याख्या

अवतरण - 1

धर्म का दीपक, दया का दीप,
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त-
कब सरस होंगे जली सूखी रसा के प्राण?
है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार ।
भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,

बह रही असहाय नर की भावना निष्काम ।

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत काव्यांश रामधारी सिंह दिनकर के काव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से लिया गया है । इस सर्ग में कवि ने कोई कथा नहीं दी है । यह तो उसके विचारों का उन्मुक्त प्रवाह है । इस सर्ग में कवि शांतिकामी बनकर ईश्वर से सुख-शांति की याचना करता है । यहाँ वह कह रहा है कि हे ईश्वर! संसार में दया, करुणा, क्षमा, सहानुभूति और समता की भावनाओं का प्रकाश फैलाने वाले धर्म का दीपक कब जलेगा, वह दिन कब आयेगा जब प्रत्येक व्यक्ति सही धर्माचरण करेगा? जब धर्म की कोमल, शीतल भावनाओं से प्रत्येक व्यक्ति का हृदय प्रकाशित, सुवासित एवं प्रेरित होगा और फिर से यह पृथ्वी और इस पर रहने वाले मानव के दुखी, निराश मन में फिर से रस का आनन्द का संचार होगा । आज तक इस धरती पर बहुत-सी अमृत की धारा प्रवाहित हो चुकी है । युगों से अनेक महापुरुष धर्म की सात्विक भावनाओं का प्रचार और प्रसार करते आये हैं । फिर भी, यह संसार सुख-शांति की शीतलता नहीं पा सका । आज भी उसके हृदय में सांसारिक सुखों को भोगने की इच्छा अपने पूर्ण वेग से प्रवाहित है और उसके आधीन मानव सर्वथा बेबस होकर बहता जा रहा है । उसकी निष्काम भावना भोग भावना के आधीन हो चुकी है ।

टिप्पणी-

(1) उपरोक्त पंक्तियों में कवि ने अत्यन्त संक्षेप में संसारव्यापी भोग-विलास की प्रवृत्ति और मनुष्य की विवशता का चित्रण करते हुए भविष्य के लिए अपनी भावना अथवा मानव-कल्याण की इच्छा को सहज अभिव्यक्ति दी है ।

(2) प्रस्तुत पंक्तियों में रूपक, छेकानुप्रास और विशेषोक्ति अलंकारों का सहज स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

अवतरण - 2

चाहिए उनको न केवल ज्ञान,
देवता हैं माँगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान,
मोम सी कोई मुलायम चीज,
ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज,
प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार,
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार,
चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुस्कान
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान
रंग में धुलता हुआ खिलती कली का राज
पत्तियों पर गूँजती कुछ ओस की आवाज,
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तसवीर,
फूल की, रस में बसी भीगी हुई जंजीर ।

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पद्यावतरण रामधारी सिंह दिनकर के काव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से लिया गया है । इसमें कवि कह रहा है कि मनुष्य के विकास के लिए केवल मस्तिष्क का ज्ञान ही नही हृदय की सुकोमल भावनाओं की आवश्यकता है । इसी तथ्य

का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि आज के मानव ने विज्ञान के द्वारा प्रगति तो बहुत की है, परन्तु उसका हृदय-पक्ष दुर्बल पड़ गया है । हृदय में बसी हुई देवता जैसी पवित्र भावनाओं को केवल ज्ञान की ही आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसे कुछ प्रेम-भावना और कुछ बलिदान की भावना भी चाहिए । उनको मोम के समान ऐसी सुकोमल भावुकता चाहिए, जो दूसरों के दुख को देखकर द्रवीभूत हो उठे । ज्ञान के तर्क-वितर्कों से झुलसे हुए हृदय रूपी वन के लिए कुछ कोमल फूल चाहिए जो उसे ताजगी और सुगन्धि दे सके । ज्ञान के शुष्क रेगिस्तान में हृदय की वह मंजुल भावधारा चाहिए जो उसकी शुष्कता और नीरसता को नष्ट करके उसे हरीतिमा प्रदान कर सके । चाँदनी में बजती हुई मधुर रागिनी के समान माधुर्य प्रातःकाल के उदय के समान ताजगी और नवीनता, नींद में अस्पष्ट स्वरों में सुने हुए नदी के कल गान, खिलती हुई कलिका का रंग-वैभव, पत्तियों पर गूँजती हुई ओस की आवाज के समान स्पन्दन, आँसुओ में दर्द का अथाह सागर और रस में बसी-भीगी हुई फूल की जंजीर मानव के विकास के लिए अनिवार्य है ।

भाव यह है कि केवल मस्तिष्क का विकास मानव का एकांगी विकास है । जब तक हृदय का विकास नहीं होता, तब तक उसका विकास सर्वांगीण नहीं कहा जा सकता है। अतः ज्ञान के विकास के साथ-साथ मनुष्य को अपने हृदय का भी विकास करना चाहिए। आज के व्यक्ति का ज्ञान तो बहुत अधिक बढ़ गया है, किन्तु उसका हृदय-पक्ष उतना ही दुर्बल पड़ गया है । वास्तविक विकास मस्तिष्क और हृदय दोनों के समन्वय में निहित है ।

टिप्पणी-

(1) छायावादी शैली में लिखा हुआ यह पद्यांश सारे कुरुक्षेत्र में अपनी कोटि का एक ही है । कवि ने स्नेह और बलिदान की अमूर्त भावनाओं को विभिन्न स्थितियों में मूर्त उपमानों से प्रकट करके मालारूपक का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया ।

(2) वैदर्भी रीति की कोमल शब्द-योजना इसके सौंदर्य को द्विगुणित कर रही है । दो-दो पंक्तियों में तुक मिलाने से नाद- सौंदर्य भी आ गया है ।

(3) अन्तिम पंक्तियों में 'अन्तर्दाह को आँसुओं से गलता दिखलाकर कवि ने एक वास्तविकता को इतने उत्तम ढंग से अभिव्यक्त किया है कि इस पद्धति पर पाठक मुग्ध हो जाता है । एक समीक्षक के अनुसार इन पंक्तियों में उर्दू कविता का चुबलबुलापन झनझनाता दिखलाई देता है ।

अवतरण - 3

हाय रे मानव, नियति के दास!
हाय रे मनुपुत्र, अपना आप ही उपहास!
प्रति की प्रच्छन्नता को जीत,
सिन्धु से आकाश तक सबको किये भयभीत,
सृष्टि को निज बुद्धि से करता हुआ परिमेय,
चीरता परमाणु की सत्ता असीम, अजेय,
बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय
जा रहा तू किस दिशा की ओर को निरुपाय?

लक्ष्य क्या? उद्देश्य क्या? क्या अर्थ?
यह नहीं यदि ज्ञात, तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ ।
सुन रहा आकाश चढ ग्रह तारकों का नाद,
एक छोटी बात ही पड़ती न तुझको याद ।

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पद्यावतरण रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से लिया गया है । आज मनुष्य भाग्य का दास बना हुआ है । वह लक्ष्यहीन बुद्धि से आँधी में उड़ता हुआ जा रहा है । कवि इस स्थिति पर खेद व्यक्त करता हुआ कहता है कि हाय! मनुष्य कैसा भाग्य का गुलाम बना हुआ है । हाय मनु के पुत्र, तू स्वयं ही अपनी हँसी उड़ा रहा है । तूने प्रकृति के समस्त रहस्यों को जीत लिया है । संसार से लेकर आकाश तक तूने सबको भयभीत बना दिया है । अपनी बुद्धि के बल पर तूने विश्व को सीमित कर डाला है । परमाणु की अजेय और असीम सत्ता को चीरकर तूने अनेक परमाणु बना डाले हैं, किन्तु बुद्धि की इस औंधी मे तू बेबस होकर उड़ता हुआ कहाँ जा रहा है? तेरा उद्देश्य क्या है? तू यह सब किसलिए कर रहा है? यदि तुझे नहीं मालूम कि तेरा लक्ष्य क्या है, तो तेरी विज्ञान की साधना का सारा परिश्रम व्यर्थ है । आज तू आकाश पर विजय प्राप्त करके अनेक ग्रहों और तारों की आवाज सुन रहा है, किन्तु तुझे अपने जीवन की एक छोटी-सी बात भी याद नहीं आ रही

टिप्पणी -

(1) प्रस्तुत अवतरण से यह स्पष्ट है कि कवि को आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से संतोष नहीं है । गांधी जी यांत्रिकता और बढ़ती हुई अंधी विज्ञान की दौड़ के विरोधी थे, यहीं कवि पर गांधी जी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है ।

(2) मनुष्य ने विज्ञान की सहायता से आकाश और अनेक ग्रहों पर विजय प्राप्त कर ली है लेकिन विश्व की कल्याण कामना की ओर उसका ध्यान नहीं है ।

अवतरण - 4

श्रेय उसका आँसुओं की धार
श्रेय उसका भग्न वीणा की अधीर पुकार ।
दिव्य भावों के जगत में जागरण का गान
मानवों का श्रेय आत्मा का किरण-अभियान ।
यजन, अर्पण, आत्मसुख का त्याग,
श्रेय मानव का तपस्या की दहकती आग ।
बुद्धि-मंथन से विनिगत श्रेय वह नवनीत,
जो करे नर के हृदय को स्निग्ध, सौम्य, पुनीत ।
श्रेय वह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान ।
श्रेय वह नर-बुद्धि का शिवरूप आविष्कार,
ढो सके जिससे प्रति सबके सुखों का भार ।
मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाय,
सुख-समृद्धि-विधान में नर के प्रति झुक जाय ।

प्रसंग सहित व्याख्या - प्रस्तुत पद्यावतरण रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से लिया गया है । प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कह रहा है कि मनुष्य का श्रेय इस बात में निहित नहीं है कि वह हृदयहीन बने और मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ावा देकर इन दोनों में असन्तुलन पैदा करे और इस प्रकार कल्याण कार्य से विरहित होकर अपना राग अलग आलापे, कवि तो उसका लक्ष्य यह समझता है कि व्यक्ति को स्वयं सुखी होकर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं समझनी चाहिए, अपितु दूसरों के दुखों को देखकर करुणापूर्ण नेत्रों से आँसू बहाना चाहिए । उसे निराश युवकों को आशा भाव से प्रेरित करना चाहिए । उसे गायक रूप धारण कर मानवों के हृदय में पवित्र भावों को जगाना चाहिए । उसे जन हृदय में उदात्त भावनाओं की उत्पत्ति करके एक नवीन जागृति उत्पन्न करनी चाहिए । मानव हृदय में आध्यात्मिक भावों को उत्पन्न करना भी उसी का काम है । उसे तप, त्याग और बलिदान का पाठ अपने व्यवहार द्वारा मनुष्यों को सिखाना चाहिए । उसे अपने सुखों का बलिदान दूसरों के सुख के निमित्त यज्ञ भावना से करना चाहिए । उसे अपने बुद्धि-मंथन के द्वारा ही ऐसा सात्विक नवनीत तैयार करना चाहिए जिससे सम्पूर्ण मानवों के हृदय पवित्र, सरल और स्निग्ध हो जायें । विज्ञान की वही देन श्रेयस्कर मानी जा सकती है, जिससे सब लोगों को सुख मिले, शांति मिले ।

नर की बुद्धि से आविष्त वही आविष्कार कल्याणप्रद है, जिसे पाकर समष्टि को सुख प्राप्त हो तथा सभी समान सुख-सुविधाओं को बिना किसी बाधा के प्राप्त करें । वैज्ञानिक को व्यर्थ का परिश्रम नहीं करना चाहिए । उसे अपने हृदय में मानव मात्र की सुख-समृद्धि की भावना को सर्वप्रथम स्थान देना चाहिए । अत: मानव को उन कार्यो को करने का श्रम उठाना चाहिए जिनके करने से समष्टि को सुख मिले तो मिले, साथ ही साथ प्रकृति स्वयं प्रसन्न भाव से मानव के कदमों में झुककर सब कुछ अर्पित कर दे ।

टिप्पणी-

(1) इन पंक्तियों में कवि ने मानव के सभी वैज्ञानिक आविष्कारों को व्यर्थ बतलाया है और कहा है कि ये आविष्कार यदि मनुष्य को समता, समृद्धि और कल्याण न प्रदान कर सकें तो मूल्यहीन हैं । अत: मनुष्य को कवि की दृष्टि से कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे नर को कुछ शिवत्व प्राप्त हो और प्रकृति स्वयं मानव के हित के लिए अपना सब कुछ खोलकर अर्पित कर दे ।

(2) इन पंक्तियों में रूपक, उपमा अलंकारों का प्रयोग हुआ है । भाषा का गठन और शब्दों का चयन काव्य में समता लाने के लिए उपयुक्त जान पड़ता है ।

अवतरण - 5

युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त,
जब कि होगी, सत्य ही, वसुधा सुधा से युक्त ।
श्रेय होगा सुष्ठु-विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल ।
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध ।

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,
कब खिलेगी कब खिलेगी विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त
हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण?

प्रसंग सहित व्याख्या - प्रस्तुत पद्यावतरण रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से लिया गया है । कवि की मान्यता है कि पृथ्वी रूपी ज्वर का डर जब मनुष्यों के हृदय से निकल जायेगा, तब सम्पूर्ण पृथ्वी अमृतमय हो जायेगी और तभी पृथ्वी अमृत और सत्यमयी वाणी से सिक्त होगी। कवि कहता है कि तब धरती मनुष्य के खून से लाल नहीं होगी, मनुष्य का वही सुन्दर और उन्नत रूप ही मानव का आदर्श होगा । यह सच है कि जब धरती पर से मार-काट, ध्वंस और रक्तपात समाप्त हो जायेगा, तब पृथ्वी पर एक पवित्र भावना का विकास होगा । इसके बाद जो स्थिति आयेगी, वह बड़ी सुखद और सुन्दर होगी । मानव, मानव में अबाध गति से धर्म का प्रकाश वितरित होगा । इतना ही नहीं, मनुष्य नवीन विकसित बुद्धि के आधार पर तब दूसरों से उचित मानवीय सम्बन्ध जोड़ेगा । अन्तिम पंक्तियों में तो कवि साम्यवाद की भावना के विकास के लिए इतना व्याकुल है कि वह ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे ईश्वर! इस तपती हुई बुद्धि पर साम्यवाद की वह उदार और कोमल रश्मि कब खिलेगी? ईर्ष्या, द्वेष और शोषण से युक्त इस भारतभूमि के प्राणों को अमृत की धारा कब शान्त और शीतल करेगी? कवि की धारणा है कि पृथ्वी पर जब साम्य की धारा प्रवाहित होगी, तभी उसकी कोमल ज्योति से युग-युग से पीड़ित शुष्क और जली हुई पृथ्वी के प्राण नवीन सरसता से अभिसिक्त होंगे ।

टिप्पणी -

(1) कवि ने कुरुक्षेत्र काव्य के छठे सर्ग के अन्तिम अंशों में अपने मन की वास्तविक भावना का उद्घाटन किया है तथा बता दिया है कि साम्यवाद ही एक ऐसा साधन है जो पृथ्वी का कल्याण कर सकता है, मनुष्य को मनुष्य के प्रति आस्थावान बना सकता है ।

(2) छठे सर्ग के इस अन्तिम छन्द में रूपक अलंकार का प्रयोग करके कवि ने काव्यात्मक परिचय दिया है ।

(3) जो लोग कुरुक्षेत्र काव्य के छठे सर्ग की अनुपयुक्तता सिद्ध करते हैं तथा बताते हैं कि इससे प्रबन्ध के बंधान में बिखराव आता है, वे इस बात को भूल जाते हैं कि प्रबन्ध के बिखराव का बहाना लेकर वे इसकी काव्यापयोगिता और काव्यात्मक सौंदर्य, साथ ही साथ आधुनिकता के मूल स्वर को टाल नहीं सकते । इससे सिद्ध है कि यह सर्ग काव्य के अन्तर्गत अत्यधिक उपादेय है ।

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "दिनकर पौरुष, ओज, क्रांति और राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं ।" इस कथन को उपयुक्त उदाहरणों सहित प्रमाणित कीजिए ।
2. दिनकर काव्य के अनुभूति पक्ष की विशेषताओं पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए ।

3. कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को स्पष्ट करते हुए बताइये कि कवि का दृष्टिकोण इस काव्य में क्या रहा है? क्या आप उससे सहमत हैं?
4. कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग की महत्ता, विशिष्टता और उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए इस सर्ग के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डालिए ।
5. निम्नांकित अवतरणों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
   (क) धर्म का दीपक..... भावना निष्काम ।
   (ख) चाहिए उनको.....जंजीर ।
   (ग) हाय रे मानव.....श्रम व्यर्थ ।

11.9 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. नगेन्द्र : आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस. नई दिल्ली
2. डॉ. सावित्री सिन्हा : युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
3. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना : हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. एस. के. पद्मावती : दिनकर : व्यक्तित्व एवं तित्व, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
5. रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका. उदियाचल पटना
6. डॉ. हरिचरण शर्मा. समीक्षा और मूल्यांकन, चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
7. विश्वम्भर मानव कविता : प्रमुख कवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. दिनकर : कुरुक्षेत्र, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली ।

इकाई-12 बच्चन का काव्य –"मिलन यमिनी"

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 कवि परिचय

12.2.1 जीवन परिचय

12.2.2 रचनाकार का व्यक्तित्व

12.2.3 कृतियाँ

12.3 'मिलन यामिनी' -काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या -

12.3.1 चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में ।

12.3.2 आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

12.3.3 आज कितनी वासनामय यामिनी हे!

12.3.4 है रूपहली रात, हैं सपने सुनहले ।

12.3.5 प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो ।

12.3.6 प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है ।

12.3.7 प्यार से, प्रिय जी नहीं भरता किसी का ।

12.3.8 सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें ।

12.4 सारांश

12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.6 संदर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में प्रेम एवं मस्ती की काव्यधारा एवं इलाहाबाद के सुविख्यात कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन को वैयक्तिक चेतना एवं भावधारा के परिपेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है । आप इस इकाई के माध्यम से यह जान सकेंगे कि जब व्यक्ति की भाव संवेदनाओं का हृदय-सागर वेगमयी तरंगों से आलोड़ित होता है, तो उसकी सहजात मानवीय संवेदनाएँ किस तरह से रूपाकार लेती हैं । आप बच्चन की प्रेमिल भावनाओं से, मादकता से, उनकी 'मिलन की यामिनी' से रूबरू हो सकेंगे । इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप-

- बच्चन के जीवन को जान सकेंगे
- बच्चन के व्यक्तित्व के विविध पक्षों को जान सकेंगे,
- बच्चन की कृतियों से परिचित हो सकेंगे,
- बच्चन की उद्दाम प्रेमिल 'मिलन यामिनी को अनुभूत कर सकेंगे,
- मिलन यामिनी के विशिष्ट गीतों की व्याख्या कर सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम प्रेम एवं मस्ती की स्वच्छन्दमार्गी काव्यधारा के शीर्षस्थ कवि बच्चन के व्यक्तित्व एवं उनकी विशिष्ट कृति 'मिलन यामिनी' की चर्चा करेंगे । बच्चन को 'इलाहाबाद' (काव्य प्रवृत्ति) का प्रवर्त्तक माना जाता है, जो कि छायावाद की परवर्ती एवं उसी परम्परा की काव्यधारा की समकक्ष कही जा सकती है । 'मधुशाला' के जनक-वाहक बच्चन ने न केवल हिन्दी काव्य-क्षितिज में अपितु समस्त भारतीय जनता के भाव-सागर पर राज किया । हम यह जान पायेंगे कि हरिवंशराय बच्चन और उनका काव्य उद्दाम प्रेम, ज्वलंत यौवन. प्रखर वासना एवं अगाध मस्ती का पर्याय बना । यह देखेंगे कि वर्षो की विषादमयी घड़ियों और निशाओं के बाद बच्चन ने जब नीड़ का निर्माण किया तब मिलन की यामिनी आयी । इन संयोगमयी रातों का श्रृंगारिक सौंदर्य ही प्रणय का उद्दाम और मस्त राग बनकर मिलन यामिनी' में प्रकट हुआ है । व्याख्याएँ इस उद्देश्य से भी दी गई हैं कि आप उनके माध्यम से न केवल व्याख्या करना जानें, अपितु बच्चन के गीतों में भावनात्मक गहनता एवं संवेदनात्मक व्यापकता से भी परिचित हो सकें ।

12.2 कवि परिचय

12.2.1 जीवन परिचय

इलाहाबाद के प्रवर्त्तक एवं 'मधुशाला' के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन का जन्म हरिवंश पुराण की कथा के श्रवण व जाप से 27 नवम्बर 1907 को इलाहाबाद में हुआ । पिता प्रतापनारायण एवं माता सुरसती (सरस्वती) के अगाध प्रयत्नों एवं टमने-टोटकों से बच्चन इस धरती पर जन्म ले सके । हरिवंश पुराण के सुप्रभाव से पुत्र प्राप्ति होने पर बच्चन को उनकी माँ सुरसती ने हरिवंशराय नाम दिया । प्यार से घर में बच्चन नाम से पुकारे जाने से उनका पूरा नाम हुआ हरिवंशराय बच्चन । बच्चन से पूर्व की सभी पाँच संतानों की अल्पायु में मृत्यु होने से उन्हें लछमनिया चमारिन को ओने-पोने दामों में बेचने का जतन भी टोटके स्वरूप चिरंजीवी बनाने के लिए किया गया और यह टोटका पूरी तरह सफल हुआ । इस तरह 96 वर्ष की भरी-पूरी आयु में 18 जनवरी 2003 को बच्चन की देह पंचतत्त्व में विलीन हुई ।

बच्चन की दो संताने हुई । पहली अमिताभ बच्चन के रूप में तो दूसरी अजिताभ बच्चन के रूप में । आज का बच्चन परिवार हिन्दी सिनेमा के चोटी के शाही परिवार के रूप में बच्चे-बच्चे द्वारा जाना जाता है । हरिवंशराय के पुत्र अमिताभ, पौत्र अभिषेक, पुत्रवधू जया बच्चन एवं पौत्रवधू ऐश्वर्या करोड़ों भारतीयों की धड़कन में रचे-बसे हैं । बच्चन की आरंभिक शिक्षा घर पर ही माँ द्वारा उर्दू वर्णमाला सिखाने से शुरू हुई । विधिवत् शुरआत पुरोहित जी एवं मौलवी साहब, दोनों के द्वारा हुई । जुलाई 1919 से 1922 तक बालक बच्चन कायस्थ पाठशाला हाई स्कूल में पढ़े । 1930 में अंग्रेजी से एमए. प्रथम वर्ष (प्रीवियस) किया; लेकिन पारिवारिक चिन्ता एवं सामाजिक-राजनैतिक स्थिति के कारण अध्ययन बीच में ही रुक गया ।

बच्चन के जीवन का आरंभिक समय मानसिक संताप, पारिवारिक कष्ट, व्यक्तिगत संकटों एवं कठिन संघर्ष के बीच बीता । उनका प्रथम विवाह मई 1926 में 14 वर्षीय 'श्यामा' के साथ हुआ। उस समय श्यामा बच्चन को विश्वविख्यात कवि शेली की 'स्काई लार्क' लगी और उन्होंने उसे अपनी खेल की सहेली बनाया । श्यामा जब से बच्चन के घर में आई, बीमार रहीं । आर्थिक संकट के कारण अधूरे इलाज की लम्बी यातना के बाद 17 नवम्बर 1936 को बच्चन की 'खेल की सहेली' और 'ज्वाय' श्यामा की अकाल मृत्यु हो गई ।

बच्चन का दूसरा विवाह 24 जनवरी 1942 को मीरपुर खास के सरदार की चौथी बेटी 'तेजी' के साथ 'लव मैरिज' के रुप में मजिस्ट्रेट के समक्ष हुआ। बच्चन की अधूरी शिक्षा श्यामा की मृत्यु के बाद हुई । 1938 में उन्होंने द्वितीय श्रेणी से एमए. किया, तदुपरान्त बी.टी. (टीचर्स ट्रेनिंग) । 1954 मैं बच्चन ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से 'ईट्स' पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की । बच्चन विदेश से पीएचडी. की डिग्री लेने वाले दूसरे भारतीय थे । बच्चन का आरंभिक जीवन वित्तीय संकट में गुजरा । इससे उबरने के लिए वे पढ़ाई के साथ-साथ साइकिल से चलकर ट्यूशन पढ़ाते थे । बी.ए. करने पर 'चाँद' पत्रिका से जुड़े । जल्द ही उन्हें इसे छोडकर सौ रुपये प्रतिमाह में 'पायनियर' प्रेस में एजेन्ट एवं संवाददाता बनना पड़ा । पायनियर की नौकरी के दौरान ही मधुशाला की रूबाइयाँ फूटीं । 'पायनियर' की तीन महीने की नौकरी के बाद पचास रुपये प्रतिमाह में अभ्युदय प्रेस से जुड़े । जुलाई, 1934 में अग्रवाल विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्य किया । अगस्त, 1939 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अस्थाई व्याख्याता बने । अगस्त, 1941 में स्थाई हुए। 1955 में इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिन्दी प्रोड्यूसर के रूप में नियुक्त हुए। तदुपरान्त 1955 में ही विदेश मंत्रालय के हिन्दी प्रोड्यूसर के रूप में कार्य किया । 1966 से 1972 तक राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए।

12.2.2 रचनाकार का व्यक्तित्व

सरलता, सहजता, सादगी, आत्मीयता एवं अनाडम्बर बच्चन के व्यक्तित्व की ऐसी खूबियाँ हैं, जो उन्हें महान बनाती हैं । अभिमान व बड़प्पन से ये कोसों दूर रहे । हनुमान जी के परम भक्त हरिवंशराय बच्चन को घर में विशिष्ट आकृतियों व प्रस्तर खण्डों को सजाने का बहुत शौक रहा है । जीवन-संघर्ष एवं कर्मठता के प्रतीक बच्चन अदम्य आशा, उत्साह, उमंग, प्रेम एवं स्नेह के साक्षात् पुंज थे । केम्ब्रिज प्रवास के दौरान लोगों ने उनके परिवार पर बहुत कीचड़ उछाला, तो भी बच्चन धैर्य, शांति एवं सहजता से मुकाबला करते रहे । सुमधुर कण्ठ से लाखों लोगों को अपनी कविताओं से मोहने की उनमें अद्भुत क्षमता थी । इसीलिए आरंभ में उन्हें मंचीय कवि के रूप में प्रतिष्ठा मिली । पत्र-व्यवहार में बच्चन सजग एवं सक्रिय रहे । चाहे बड़े हों या छोटे' प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध, बच्चन सभी के पत्रों के उत्तर शीघ्रता से देते थे ।

बच्चन की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व को प्रतिभासित होते हुए सहज ही देखा जा सकता है । आस्तिकता, भावुकता, कर्मठता, अपराजित और संघर्षशील बने रहने का भाव

इनकी कविताओं में यत्र-तत्र सर्वत्र देखा जा सकता है । यद्यपि वे भाग्य में विश्वास करते थे, तदपि उनका यह दृष्टिकोण कर्मप्रेरित था । यही वजह है कि उनकी बहुत्सी कविताएँ देशभर में विद्यालयी-महाविद्यालयी पाठ्यक्रमों में अनवरत पढ़ाई जाती रही हैं । 'भाग्य लेटे का सदा लेटा रहा है और तीर पर कैसे रुकूँ मैं, आज लहरों में निमन्त्रण बच्चन के दृष्टिकोण एवं जीवन को प्रतिबिम्बित करती हैं । निराशा एवं अवसाद के क्षण बच्चन के जीवन में भी कम नहीं आए. लेकिन इनसे शीघ्र ही मुक्ति पाकर उत्साह, धैर्य, साहस और हिम्मत के साथ वे पुन: नवनिर्माण में तत्पर रहे । जहाँ 'निशा निमंत्रण, 'एकान्त संगीत एवं 'आकुल अंतर नामक उनकी रचनाएँ उनके अवसादग्रस्त एवं निराश मन के दर्पण के रूप में प्रस्तुत हुई हैं' वहीं परवर्ती रचनाओं में उनका साहस, तेज एवं कर्मण्यता दृष्टव्य है । 'एकांत संगीत' की ही एक कविता 'अग्निपथ में वे गिरकर उठने और आगे बढ़ने को उद्यत हो गये हैं-

अग्नि-पथ! **अग्नि-पथ**! **अग्नि-पथ**!

वृक्ष हों भले खड़े

हों घने हों बड़े.

एक पत्र-छाँह भी माँग मत. **माँग मत**. **माँग मत**!

बच्चन छायावादी काव्यधारा के समानान्तर चलने वाली प्रेम एवं स्वच्छन्दमार्गी काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं । मधुकाव्य के सर्जक होने के कारण उन्हें 'हालावाद' का जनक-प्रवर्तक कहा जाता है । उनके समकालीन रचनाकारों में भगवतीचरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल व नरेन्द्र शर्मा आदि आते हैं, जो उन्हीं की भावधारान्तर्गत काव्य-सर्जना में प्रवृत्त रहे ।

बच्चन की काव्यधारा प्रेम एवं मस्ती की व व्यक्तिवादी कविताधारा के रूप में जानी जाती है । इस काव्यधारा के कवियों का प्रमुख स्वर लौकिक एवं इन्द्रियजन्य प्रेम है । सहज प्रेम के मिलन-बिछुडन का उल्लास-पीड़ा आह-कराह आदि का उद्दाम एवं सघन स्वर इन रचनाओं में मुखरित हुआ है । इस धारा के कवियों का प्रेम प्रेम पाकर भी अतृप्त रहता है । इन कवियों की सहजात प्रेमजन्य भावुकता सामाजिकता के तटबन्धों से टकराती है, तब फिर वही विरह की कराह एवं आकुलता बन जाती है । कवि के अपने निजी और सच्चे अनुभव संसार को स्वीकृत नहीं होते, लेकिन कवि उन्हें स्वानुभूति के सहज गान कहता है । बच्चन ने इस अनुभूति के गान को कहीं अधिक प्रखरता से 'मधुकलश में गाया है-

'कह रहा जग वासनामय

हो रहा उद्गार मेरा.

यौवन के असीम प्यार के सागर में पगने वाले कवि की क्षणिक जवानी जब इरा जग को अखरती है, तो कवि की पीड़ा के स्वाभाविक उद्गार इन शब्दों में फूट पड़ते हैं-

वृद्ध जग को क्यों अखरती

है क्षणिक मेरी जवानी?

मैं छिपाना जानता तो

जग मुझे साधू समझता

शत्रु मेरा बन गया है '

छल रहित व्यवहार मेरा । '

सहज अनुभूत भावों-विचारों की सरल, स्पष्ट, बेबाक एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति बच्चन के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है । यह वैशिष्ट्य उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों में समान रूप से देखा जा सकता है ।

आम जन में बच्चन की ख्याति 'मधुशाला' के कवि और गायककार के रूप में अधिक रही है । 'मधुशाला' ने हिन्दी कविता को हिन्दीतर क्षेत्रों तक विस्तृत किया । इसकी प्रसिद्धि का अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि अब तक इसके 60 से अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । साहित्य जगत् में बतौर कवि के रूप में ही नहीं अपितु एक सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाकार के रूप में भी बच्चन स्थापित हैं । साहित्य जगत् में बच्चन के उच्च स्थान का प्रमाण उन्हें समय-समय पर मिले पारितोषिक भी हैं । उन्हें सोवियत लैण्ड नेहरु पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार साहित्य वाचस्पति पुरस्कार, लोटस पुरस्कार ही नहीं, अपितु साहित्य जगत् का सर्वाधिक प्रतिष्ठित सम्मान बिड़ला फाउण्डेशन का सरस्वती पुरस्कार भी मिल चुका है । बच्चन को राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया जा चुका है ।

12.2.3 कृतियाँ

बच्चन के भीतर का साहित्यकार कहानीकार के रुप में जन्मा । उनकी कहानी हृदय की आँखें यूनिवर्सिटी कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुर२कार से पुरस्कृत हुई । आगे चलकर यह 'हंस' में छपी । चार वर्षो तक बच्चन के भीतरी साहित्यकार में कहानीकार एवं कवि के रुप में संघर्ष हुआ । संघर्ष के दौरान उन्होंने एक कहानी संग्रह 'हिन्दुस्तान अकादमी' को प्रकाशनार्थ भेजा, जिसे प्रभावी बनाने के लिए उन्होंने तद्युगीन प्रसिद्ध साहित्यकार धीरेन्द्र वर्मा से भूमिका लिखवाई । लेकिन जब यह संग्रह हिन्दुस्तान अकादमी से लौटा, तो बच्चन को घोर निराशा हुई । परिणामत: वे कहानी लेखन छोड़कर कविता-लेखन करने लगे और इस तरह बच्चन के कवि का पुनर्जन्म हुआ । बच्चन की पहली कविता जबलपुर की पत्रिका 'प्रेमा' में 'मध्याह्न' शीर्षक से 1931 में प्रकाशित हुई । उनका पहला कविता संग्रह 'तेरा हार' 1932 में प्रकाशित हुआ ।साहित्यकार बच्चन ने कुल 24 मौलिक काव्यकृतियाँ, व 10 अनूदित काव्य रचनाएँ एवं अनेक गद्य रचनाएँ भी लिखीं; जिनमें उनकी चार भागों में लिखित आत्मकथाएँ (प्रथम भाग-क्या भूलूँ क्या याद करूँ, द्वितीय भाग-नीड़ का निर्माण फिर, तृतीय भाग-बसेरे से दूर एवं चतुर्थ भाग- 'दशद्वार' से-'सोपान' तक) एक डायरी (प्रवास की डायरी). निबंध संकलन एवं बाल साहित्य शामिल हैं । उनकी मौलिक रचनाओं के नाम प्रथम प्रकाशन वर्ष के साथ यहाँ प्रस्तुत हैं-

1. तेरा हार (1932)
2. मधुशाला (1935)
3. मधुबाला (1936)
4. मधुकलश (1937)
5. निशा निमन्त्रण (1938)

6. एकान्त संगीत (1937)
7. आकुल अन्तर (1943)
8. प्रारंभिक रचनाएँ (प्रथम भाग-1943)
9. प्रारंभिक रचनाएँ (दूसरा भाग-1943)
10. खादी के फूल (1948)
11. सूत की माला (1948)
12. मिलन यामिनी (1950)
13. प्रणय पत्रिका (1955)
14. धार के इधर-उधर (1957)
15. आरती और अंगारे (1958)
16. बुद्ध और नाचघर (1958)
17. त्रिभंगिमा (1961)
18. चार खेमे चौंसठ खूँटे (1962)
19. दो चट्टानें (1965)
20. बहुत दिन बीते (1967)
21. कटती प्रतिमाओं की आवाज (1968)
22. उभरते प्रतिमानों के रूप (1969)
23. जाल समेटा (1973)
24. सतरंगिनी(1946)

बहुचर्चित काव्य-रचनाओं का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है, जो निम्नानुरूप है-

मधुशाला

यह एक ऐसी मादक काव्य रचना है, जिसके नशे से प्रेमी दिलों की चेतना सुप्त हो जाती है । मधुशाला उद्दाम प्रेम, यौवन, वासना और मस्ती की पर्याय है । इसमें बच्चन के यौवन और प्यार की मस्ती है, जिनकी वासना, भावना और आकांक्षा को तद्युगीन रूढ़िवादी वृद्ध समाज ने कुचल दिया था । इस रचना में व्यावहारिक जीवन में झेली गई कठोरता एवं मानसिक संघर्ष से उबरने के लिए प्रेमी हृदय बच्चन ने मधुर भावनाओं की सुस्वादु, सुमदिर एवं सुमधुर हाला का आश्रय लिया । इसकी अधिकांश रुबाइयाँ प्रतीकात्मक हैं । इसमें जागरण का उद्घोष भी है । मस्ती के आलम से सराबोर एक रुबाई के शब्दों में जरा आप भी डूबिये-

'**आज मिला अवसर. तब फिर क्यों**
मैं न छकूँ जी भर हाला.....
छेड़छाड़ अपने साकी से
आज न क्यों जी भर कर लूँ
एक बार ही तो मिलनी है
जीवन की यह मधुशाला ।.

मधुबाला

बच्चन के जीवन में 'खतरे के निशान' वाली एक 'खूबसूरत बला' (रानी-प्रकाशो) के साथ-साथ स्रष्टा-भोक्ता बनने की स्वानुभूत अभिव्यक्तियाँ 'मधुशाला' बनकर शब्दाकार ले गई । रोमांचक प्यारभरी अनुभूति को कवि ने 'बुलबुल' कविता में ईमानदारी से अभिव्यक्ति दी है-

'सुरा-सुषमा का पा यह योग.....
हमें लघु मानव को क्या लाज
गए मुनि-देवों के मन डोल
सरसता से संयम को जीत
रही बुलबुल डालों पर बोल'

क्षयरोग में बच्चन पर जब मौत की छाया मँडरा रही थी. तब बच्चन ने मधुशाला में अपने जीवन का विषाद, अपूर्ण सुख-भोग के प्रति छटपटाहट. सम्पूर्ण भोग की अदम्य प्यास, निर्मम काल, कठोर कर्म और कटु जगत के प्रति घोर चिन्ता व भय को अभिव्यक्ति दी है ।

मधुकलश

मधुबाला की तरह इसमें भी 12 कविताएँ हैं । बच्चन की पहली पत्नी 'श्यामा' के देहावसान के बाद कवि ने 'मधुकलश' को श्यामा की स्मृति में विश्व-वृक्ष की डाल पर बाँधा था, (जैसे मृतकों के लिए घट बाँधा जाता है) । कवि इसमें अपनी बेबाक (अतृप्त) वासना के संबंध में कहता है-

"प्यास वारिधि से बुझाकर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं
यामिनी के कुच कलश से
आज कैसा प्यार मेरा
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!"

'लहरों का निमन्त्रण' इस रचना की प्रसिद्ध कविता है, जिसमें कवि डूबकर संघर्ष करता हुआ बाहर आने को उद्यत है ।

निशा निमन्त्रण

बच्चन की 'ज्वाय' एवं 'खेल की सहेली' श्यामा के देहावसानोपरान्त भोगे गये गहन दुःख निराशा, हताशा, विधुर की मनःस्थिति एवं विषादमय गीतों की बहुलता से 'निशा निमन्त्रण' आप्लावित है ।

एकान्त संगीत

'एकान्त संगीत' अकेले और जवान विधुर व्यक्ति की तन्हाइयों का एकान्त में गाया गया रुदन सिक्त संगीत है । इस रचना में 'कवि का तन और मन भूखा है । 'शरीर के साथ-साथ हृदय की प्यास बुझाने वाला कोई नहीं है; यही पीड़ा इसमें रूपायित हुई है ।

आकुल अन्तर

विधुर जीवन के दौरान बच्चन अपना दिल आइरिश महिला 'तालिबुद्दीन' को दे बैठते हैं । आइरिश के ईसाई होने एवं स्वयं बच्चन द्वारा धर्म बदलने को राजी होने पर भी जब आइरिश के माता-पिता विवाह के लिए तैयार नहीं होते तो बच्चन का करुणाकलित 'अन्तर' आकुल हो उठता है । यहाँ तक कि बच्चन के माता-पिता भी भावों के इस झंझावात में मृत्यु को प्राप्त होते हैं । तब कवि 'आकुल अन्तर' से कहता है-

'एक भी उच्छवास मेरा

हो सका किस दिन तुम्हारा'।

संतरंगिनी

यह रचना 'आइरिश' से सम्बद्ध है । इसमें अंधकार के ऊपर प्रकाश, विध्वंस के ऊपर निर्माण, निराशा के ऊपर आशा और मरण के ऊपर जीवन की जीत का गान है । यह कृति आग से राग के संसार में पदार्पण का बोध कराती है ।

प्रणय पत्रिका

जब बच्चन पीएचडी. करने केम्ब्रिज गए थे, तो अपनी प्रेयसी से दूर रहकर कवि ने जिन विरहानुभूतियों को भोगा, वे ही अनुभूतियाँ विप्रलंभ श्रृंगार बनकर 'प्रणय पत्रिका' में व्यक्त हुई हैं ।

आरती और अंगारे

आरती कवि की निर्मल, पावन एवं निश्छल भावनाओं का प्रतीक है, जबकि अंगारे कवि के आक्रोश, विद्रोह और पुराने में नये परिवर्तन की कामना का प्रतीक है । इस संग्रह का 'गीत गर्म लोहा पीट, ठण्डा पीटने को वक्त बहुतेरा पड़ा है' महत्त्वपूर्ण है ।

बुद्ध और नाचघर

28 कविताओं के इस संकलन में व्यंग्य, कटु आलोचना और तीखे प्रहार किए गए हैं । यह वैचारिक रचना है । 'युग का जुआ' नामक कविता में बच्चन ने युवकों को परिश्रमरत रहने का संदेश दिया है ।

चार खेमे चौंसठ खूँटे

64 कविताओं के इस संकलन में भी कवि कर्मठता का पक्ष लेते हुए भाग्यवादिता और आलस्य व प्रमादी प्रवृत्तियों पर कड़ा प्रहार करता है । वे कहते हैं-

'भाग्य लेटे का सदा लेटा रहता है

जो खड़ा है भाग्य उसका उठ खड़ा है।'

दो चट्टानें

यह 53 कविताओं का संकलन है जो साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत है । इस संकलन में पूर्णत: सामयिक चिन्तन उभरा है । यहाँ कवि यथार्थवादी व बहिर्मुखी है । यहीं कवि की भावुकता बौद्धिकता में व वैयक्तिकता सामाजिकता में बदल गई है ।

बहुत दिन बीते

69 कविताओं की इस रचना में यही भाव मूर्त हुआ है कि अब राग के रंग और प्यार के उद्दाम आवेग को बीते हुए बहुत दिन हो गए हैं ।

कटती प्रतिभाओं की आवाज

इस संकलन में बदलते हुए जीवन मूल्यों और बदलती हुई परिस्थितियों व वैज्ञानिक प्रभाव के कारण मानवीय आस्था की तार्किकता व्यक्त हुई है ।

उभरते प्रतिमानों के रूप

यह काव्य संकलन 'कटती प्रतिमाओं की आवाज' का उत्तरार्द्ध एवं पूरक है । इसमें टूटते हुए मूल्यों को बचाकर कुछ नये प्रतिमान स्थापित करने की कामना प्रस्तुत हुई है ।

मिलन यामिनी : परिचय

मिलन यामिनी बच्चन की अत्यन्त प्रसिद्ध श्रृंगारिक रचना है । इसकी रचना 1945 से 1949 के मध्य हुई । इसमें पूर्व, मध्य और उत्तर भागों में 33-33 कविताएँ हैं । जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, वर्षो की विषादमयी घड़ियों और एकाकीपन की पीड़ा में भोगी हुई निशाओ के बाद कवि ने जब अपने नीड़ का निर्माण किया तब मिलन की मधुर यामिनी आई । कवि ने अपनी प्रेमिका या नायिका के संग मिलन की जो रातें बिताई, जो भोगा, उसी का अनुभूत सत्य इस रचना में प्रस्तुत हुआ है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इन संयोगमयी रातों का श्रृंगारिक सौंदर्य ही प्रणय का उद्दाम और मस्त राग बनकर 'मिलन यामिनी' में प्रकट हुआ है । इस कृति में मिलन की मादकता, युवा नायक-नायिका के उद्दाम यौवन की वासना एवं उत्तेजना के मस्ती भरे गीत हैं । 'मिलन यामिनी' राग और संयोग श्रृंगार की प्रधानता है । बच्चन के यौवन की सम्पूर्ण आशा राग भरी रातों का जश्न मनाने को आतुर विकल है । वह इस रात्रि में अपने मन की चिरवांछित इच्छाओं-अभिलाषाओं (भड़ाँस) को पूरा कर लेना चाहता है । वह अपनी प्रियतमा सखि से कहता है-

'सखि, यह रातों की रात नहीं सोने की
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की
+ + +
इस बेला में क्या-क्या करने
को हम सोच रहे थे.....'

'मिलन यामिनी' कवि की भावनाओं का, मिलन के उद्दाम और उत्तेजक क्षणों का आसव पिलाने में एक सफल कृति कही जा सकती है । इसके छंद-छंद में सुधा-संगीत तो है ही, शब्दों में भी एक मधुर-मधुर सौंदर्य के बिम्ब प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता है । यही कारण है कि कवि को मात्र यह कहने से ही संतोष नहीं मिलता है कि "'तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो/ उम्र इन उद्भ्रांत घड़ियों की बड़ी हो"' बल्कि वह तो अन्वेषणरत दिखलाई देता है । परिणामत: वह लिख देता है-

पा गया तन आज मैं मन खोज रहा हूँ
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ ।

12.3 'मिलन यामिनी' काव्य वाचन एवं ससंदर्भ व्याख्या

12.3.1 चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में

चाँदनी फैली गगन में. चाह मन में ।

दिवस में सबके लिए बस एक जग है
रात में हर एक की दुनिया अलग है
कल्पना करने लगी अब राह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में ।
भूमि का उर तृप्त करता चन्द्र शीतल,
व्योम की छाती जुड़ाती रश्मि कोमल,
किन्तु भरती भावनाएँ दाह मन मे;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में ।
कुछ अँधेरा, कुछ उजाला, क्या समा है
कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है,
किन्तु बैठा मैं सँजोए आह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में ।
चाँद निखरा, चन्द्रिका निखरी हुई है,
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है,
काश मैं भी यों बिखर सकता भुवन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में ।

शब्दार्थ-उर-हृदय, चन्द्रिका= चाँदनी, भुवन=संसार, व्योम=आकाश, समा= वातावरण ।

संदर्भ- प्रस्तुत गीत सुप्रसिद्ध गीतकार एवं हालावादी, प्रेम एवं मस्ती के कवि हरिवंशराय बच्चन द्वारा रचित 'मिलन यामिनी' नामक काव्य पुस्तक से उद्धृत है ।

प्रसंग- बच्चन वैयक्तिक चेतना के गीतकार हैं । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने हृदय की अन्तरंग अनुभूतियाँ को सहजता से वाणी दी है । उन्होंने अपने जीवन में भावनात्मक स्तर पर बहुत अधिक उतार-चढ़ाव अनुभव किए । लम्बे दुख, निराशा बिछुड़न एवं प्रेम के अभाव के बाद जब उन्हें दूसरी पत्नी 'तेजी' से सुखद प्रेम का मनोरम स्पर्श हुआ और मिलन की आलादित घडियाँ आई, तो उनके जीवन में पुन: बहार छाई । बच्चन की यह प्रेम-बहार मिलन की मधुर यामिनियाँ लेकर प्रस्तुत हुई । इसी मन्दिर-मधुर यामिनी में मिलन की असीम चाह लिए बच्चन का हृदय कुछ करने की आशा के साथ इन पंक्तियों में रूपायित हुआ है ।

व्याख्या- मस्त, मधुर एवं मदिर रात्रि का सुष्ठु अंकन करते हुए बच्चन कहते हैं कि जब आकाश में चहुँ ओर धवल चाँदनी फैली हुई हो, तो यह स्वाभाविक ही है कि मन में कुछ इच्छा होने लगती है । निशाकालीन राकेश का जब अपनी किरणों से प्रसार होता है, तो ऐसे वातावरण में सहृदयी एवं प्रेमी हृदयों में कुछ करने की चाह उठना स्वाभाविक ही है । ऐसी ही चाह उनके मन-तन में भी उठ रही है । बच्चन कहते हैं कि भले ही दिन में तो यह संसार सबके लिए एक हो, लेकिन रात में तो हरेक व्यक्ति का अपना अलग ही संसार होता है । हर व्यक्ति अपने में और अपनों से खोया रहता है । ऐसे धड़कती-सरसती रात्रि में बच्चन के मन में भी कोई राह कल्पना की ऊँची उड़ान भरने लगती है । आशय यही है कि कवि बच्चन भी सरसता के ऐसे परिवेश में, प्रेम के गहरे सागर में, अपने साथी संग डूबकर अपनी अलग दुनिया में खो जाना चाहता है ।

कवि आगे कहता है कि चाँदनी रात में जब शीतल चन्द्रमा दिन में तपने वाली भूमि का हृदय तृप्त करता है, शीतल करता है, उसकी जलन मिटाता है और आकाश की छाती चन्द्रमा की कोमल किरणों से आप्लावित होने लगती है, तो ऐसे में कोमल भावनाएँ मन में दाह पैदा करती हैं, जलन पैदा करती है । भाव यह है कि चारु चन्द्र की किरणें जब चहुँ ओर शीतलता का प्रसार करती है तो कवि के मन में भावनाएँ भड़कने लगती हैं । यही भावना फिर उसके अन्तस् को जलाने लगती है, तपाने लगती हैं ।

आगे की पंक्तियों में कविवर बच्चन अपने भावावेग को शब्द देते हुए कहते हैं कि हृदय में हलचल मचा देने वाली चन्द्र-रात्रि में कुछ ऐसा समां होता है, कुछ ऐसा वातावरण होता है कि कुछ-कुछ उजाला और कुछ-कुछ अंधेरा-सा होता है । धुँधलका-सा होता है । इस परिवेश का लाभ निश्चय ही उठाना चाहिए । कवि अपने भावों के ज्वार को तृप्त करने की कामना के साथ कहता है कि यदि ऐसे समां में 'कुछ' किया जाए, तो वह क्षम्य है । यहाँ कवि की कामना अपने अतृप्त तन-मन को तृप्त करने की ही है । कवि फिर कहता है कि लेकिन इतना सब होते हुए भी वह अपने मन में 'आह' को, पीड़ा को संजोए हुए है । उसकी यह पीड़ा प्रेम की दवा से ही तुष्ट होगी ।

प्रकृति की सुषमा से आह्लादित-प्रेरित होकर बच्चन का कवि हृदय कहता है कि पूर्ण चन्द्र के निखार से, उसके उजलेपन से चाँदनी भी उज्ज्वल है, धवल है । यह मदिर चाँदनी जमीन से लेकर आसमान तक व्याप्त है । कवि कामना करता है कि काश मैं भी इस चाँदनी के समान संसार भर में बिखर सकता ! इस प्रकार बच्चन के हृदय की प्यास, चाह चाँदनीयुक्त आकाश में प्रसरित हो रही है।

विशेष-

1. उद्दीपनकारी परिवेश में प्रेमी हृदय की मिलनाकुलता एवं कुछ करने की 'चाह' रूपायित हुई है ।
2. ज्योत्स्नापूर्ण यामिनी में स्वाभाविक एवं सहज मन की चाह सदियों से कुछ करना चाह रही है, कुछ पाना चाहती आ रही है; बच्चन का मन भी वही चाहता है ।
3. चाँदनीयुक्त गगन का सुष्ठु एवं प्रभविष्णु चित्रण हुआ है ।
4. श्रृँगार रस का भावपूर्ण एवं रसाप्लावित अंकन हुआ है ।
5. प्रकृति का उद्दीपक रूप में सहज एवं परम्परित रूपांकन सरस हृदयों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया है ।
6. भाषा सरल, सरस, सहज, सुबोध, मार्मिक, हृदयहारी एवं सुष्ठु है । तत्समनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है ।
7. शैली भावानुकूल, प्रवाहात्मक गीतिकाव्यानुकूल एवं प्रशंस्य है ।
8. चाक्षुष बिम्ब साकार हो गया है ।

12.3.2 आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ

आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।
है कहाँ वह आग जो मुझको जलाये,
है कहाँ वह ज्वाल मेरे पास आये,

रागिनी, तुम आज दीपक राग गाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।
तुम नयी आभा नहीं मुझमें भरोगी,
नव विभा में स्नान तुम भी तो करोगी,
आज तुम मुझको जगाकर जगमगाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।
मैं तमोमय, ज्योति की, पर, प्यास मुझको,
है प्रणय की शक्ति पर विश्वास मुझको,
स्नेह की दो बूँद भी तो तुम गिराओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।
कल तिमिर को भेद मैं आगे बढ़ूँगा,
कल प्रलय की आँधियों से मैं लड़ूँगा,
किन्तु मुझको आज आँचल से बचाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

शब्दार्थ- ज्वाला=अंगारा, आग का भाग, राग=संगीत की राग, आभा=चमक, उत्साह. विभा=प्रभा, कांति, सौंदर्य, तमोमय =तमयुक्त, अंधकार युक्त, ज्योति=प्रकाश, प्रणय= प्रेम. तिमिर=अंधकार, प्रलय= समग्र नष्ट करने वाली नियति ।

संदर्भ - उक्तांकित गीत हरिवंशराय द्वारा विरचित 'मिलन यामिनी' से अवतरित है ।

प्रसंग- चन्द्रमा की उज्ज्वल चाँदनी पूरी प्रकृति को, समूचे परिवेश को जैसे अपने आगोश में ले लेती है । जवां दिलों एवं युवा धड़कनों के लिए ऐसा मनोरम समां अत्यन्त प्रभावित करता है । उनमें नयी शक्ति और जोश का संचरण होने लगता है । बच्चन असीम प्रेमी एवं भावाकुल हृदयी है । लम्बे समय से उन्होंने जब प्रेम की तड़प एवं बिछोह का दर्द सहा तो उनका करुणाकलित हृदय प्रेम की रागिनी के लिए बेचैन हो उठा । उनके हृदय का मन का जो प्रेम-दीप लम्बे समय से बुझा हुआ था, अब वे उसे प्रेमाग्नि की ज्योति से जलाना चाहते हैं । इसीलिए वे अपने प्रेमी साथी से निवेदन करते हैं कि वह स्नेह की बूँदों से, प्रणय की शक्ति से उसे झंकृत कर नयी आभा भरे, बुझा हुआ दीपक जलाए ।

व्याख्या- बच्चन अपने जीवन साथी से, अपनी प्रेमिका से यह प्रार्थना करते हैं कि वह उसके बुझे हुए प्रेम-दीप को फिर से जलाए । प्रेमी हृदय बच्चन अपने प्रेमी साथी को प्रोत्साहित करते हुए, उसके भावों को उद्वेलित करने की चाह से कहते हैं कि क्या किसी के पास (उसकी प्रेमिका के पास) ऐसी आग है जो उसे जला सके? क्या कोई ऐसी ज्वाला है, ऐसा पतंगा है जो उसके पास आ सके? एक तरह से अपने प्रेमी पार्टनर को ललकारता हुआ बच्चन का हृदय कहता है कि ऐसा कोई नहीं है जो उसकी प्रेम की अग्नि को जलाये ।

आगे की पंक्ति में कविवर बच्चन अपने भावोद्गार अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि हे मेरी प्रेम की रागिनी! तुम ऐसी दीपक राग गाओ जिससे मेरा बुझा हुआ हृदय प्रेम दीप फिर से जल उठे । कवि यह भी आग्रह करता है कि क्या तुम मेरे तन-मन में, मेरे

प्रेमाकुल हृदय में नयी आभा नहीं भरोगी? अर्थात् तुम्हें मेरे तन-मन में नयी चमक भरनी है, नया जोश और प्रेम का उत्साह संजोना है । ऐसा करके तुम भी तो प्रेम की इस नयी चाँदनी मे नहाओगी । तुम्हें भी तो मेरे साथ-साथ प्रेम में स्नान करना है । बच्चन कहते हैं कि हे प्रेमिके! जब तुम मेरे प्रेम को जगाओगी तभी तुम स्वयं जगमगाओगी । जब तुम मुझे प्रेम में डुबोओगी तभी तुम स्वय उसमें आलोकित हो सकोगी । अत: पहले तुम मेरे हृदय के प्रेम-दीप को अपनी प्रेमाग्नि से जलाकर आलोकित तो करो ।

कवि कहता है कि यद्यपि मैं स्वयं तमोमय हूँ । मेरा जीवन अंधकारपूर्ण है, लेकिन फिर भी मुझे ज्योति की असीम प्यास है, प्रेम की चाह है । आशय यह है कि यद्यपि मेरे जीवन में प्रेम का नितान्त अभाव रहा है, प्रेमहीनता का घना अंधकार रहा है, तो भी मुझमें प्रेम-ज्योति की गहरी प्यास है और मुझे प्रेम की शक्ति पर भरोसा भी पूरा है । इसलिए हे प्रेम की देवी! तुम मुझ पर अपने स्नेह रूपी तेल की दो बूँदे गिराकर मेरे बुझे प्रेम-दीप को पुन: जलाओ । कवि अपनी प्रेमिका से प्रेम की चाह रखता है । वह चाहता है कि उसका साथी उसे इतना प्यार करे, उसे इतना प्यार दे कि उसका हृदय प्रेम की शक्ति से, उसकी ज्योति से जगमगा उठे ।

बच्चन आगे कहते हैं कि आने वाले कल के अंधकार को तो में खुद लड़कर दूर भगा दूँगा । कल तो प्रलय की आँधियों से लड़कर अपने प्रेम-दीप की लौ को बचाये रखूँगा; लेकिन पहले तुम आज मेरे प्रेम-दीप को अपने आँचल में छुपाकर बचाओ । आशय यही है कि कवि का हृदय अपनी प्रेमिका के आँचल में छुपकर उसके प्रेम को पाकर, अपनी प्यास बुझाकर तृप्त होना चाहता है । इसीलिए वह अपनी प्रेमिका से बार-बार असीम प्रेम की कामना करता है ।

विशेष-

1. प्रेमी हृदय की अतृप्त कामना प्रस्तुत गीत में अभिव्यक्त हुई है ।
2. कवि प्रेम में आकुल होकर, ज्वाल की चाह करता है जो उसके हृदय के प्रेम दीप को आलोकित कर सके ।
3. बच्चन अपनी प्रेमिका से निवेदन करते हुए कहते हैं कि यदि तुम मुझे प्यार करोगी, अपने स्नेह आँचल में छाँह दोगी तो तुममें भी प्रेम की नयी विभा आयेगी, अर्थात् इस प्रेम में मुझे ही नहीं तुम्हें भी समान रूप से आनन्द आयेगा ।
4. कवि कहता है कि यद्यपि मुझमें प्रेम-ज्योति का सर्वथा अभाव रहा है, तदपि उसकी मुझमें असीम प्यास है । इसीलिए कवि प्रेम-ज्योति की कामना करता है ।
5. काव्यावतरण की भाषा-शैली भावानुकूल, सरस, सुबोध एवं गत्यात्मक है । गीति शैली में रचित इस पद की शब्दावली शुद्ध, परिनिष्ठित एवं परिष्कृत खड़ी बोली है । तत्सम शब्दावली का प्राधान्य है ।
6. रूपक एवं अनुप्रासालंकार से काव्य सौन्दर्य अभिवर्धित हुआ है ।

12.3.3 आज कितनी वासनामय यामिनी है

आज कितनी वासनामय यामिनी है!

दिन गया तो ले गया बातें पुरानी,
याद मुझको अब नहीं रातें पुरानी,
आज ही पहली निशा मनभावनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है!
घूँट मधु का है, नहीं झोंका पवन का,
कुछ नहीं मन को पता है आज तन का,
रात मेरे स्वप्न की अनुगामिनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है!
यह कली का हास आता है किधर से,
यह कुसुम का श्वास जाता है किधर से,
हर लता-तरु में प्रणय की रागिनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है!
दूध-उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलँग पर आज उस पर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है!

संदर्भ-उक्तांकित गीतिकाव्य विख्यात प्रणवादी कवि हरिवंशराय बच्चन द्वारा विरचित 'मिलन यामिनी' से अवतरित है । 'मिलन यामिनी' में बच्चन ने संयोग श्रृंगार के भावमय, भावोत्तेजक एवं मादक प्रणय -चित्र विभिन्न भाव मुद्राओं में प्रस्तुत किए हैं।

प्रसंग- प्रेमियों के लिए हर रात सुहागरात होती है, यह मानने कहने वाले बच्चन एक उच्च स्तरीय प्रेमी गीतकार हैं । उनका अधिकांश काव्य प्रेम तत्व से सराबोर है । सरस एवं सहृदयी कवि बच्चन को अपनी प्रेमिका की उपस्थिति में प्रेमिका ही नहीं अपितु रात्रि भी वासनामयी (मंगल) लगती है । कवि अपने प्रेमी सहयात्री के साथ तन-मन की मस्ती में आकण्ठ डूब जाना चाहता है । क्यों कि उसे ऐसा करने के लिए नशीली निशा भी उत्पेरित करती है ।

व्याख्या- कवि हृदय हरिवंशराय बच्चन अपने अन्तस् के भाव अभिव्यक्त करते हुए, बाह्य परिवेश को महसूसते हुए कहते हैं कि आज की रात्रि मुझे बहुत अधिक वासनायुक्त प्रतीत हो रही है । दिन के डूबने पर व्यतीत हो जाने पर वह अपने साथ-साथ सारी पुरानी बातें भी ले गया है, अर्थात् कवि हृदय की समस्त पुरानी खट्टी-मीठी यादें दिन डूबने के साथ समाप्त हो गई, विस्मृति के गर्त में डूब गई । कवि यह भी कहते हैं कि मैंने अपने पूर्व जीवन की रातें किस तरह व्यतीत कीं, मेरी पुरानी रातों के अनुभव किस प्रकार के रहे; अब वह सब कुछ याद नहीं है । आशय यह है कि बच्चन अपने पूर्व जीवन की समस्त अच्छी-बुरी, संयोग-वियोग की, मिलन-तड़प की, भावों के अभाव आदि की बातें भूल जाना चाहता है । अब तक जो कुछ, जैसा कुछ हुआ, वह उसका अतीत था । अब वह अपने जीवन की नयी शुरुआत करना चाहता हैं

बच्चन कहते हैं कि आज की निशा मेरे साथी से मिलन की पहली निशा है । यह मिलन रात्रि में पूरी तरह डूब जाना चाहता है, प्रेम में खो जाना चाहता है । बच्चन का तन प्रेम

में इतना निमग्न हो गया है, डूब गया है कि उसे रात्रि का हर लम्हा मधु की घूँट लगता है । प्रेम का यह शहद उसके तन-मन मे पूरी तरह भरा हुआ है । कवि कहता है कि उसे तन-मन में, प्रेम किसी हवा के झोंके की तरह नहीं आया है, अपितु वह तो उसकी स्थाई निधि है । इसलिए आज उसे यह रात्रि अत्यधिक भावोत्तेजक, मादक एवं वासना से आप्लावित नजर आती है । कवि के मन में प्रेमावेग इतना अधिक है कि उसे अपने तन की भी सुध-बुध नहीं है । अर्थात् उसका शरीर उसके मन में रम गया है, डूब गया है । तन-मन एकमेक से हो गए हैं । कवि कहता है कि कि आज की रात मेरे चिर अभिसिंचित सपने को पूरा करने वाली है । आशय है कि कवि को रात्रि उसके अनुकूल लग रही है, जो उसके प्रेम के स्वप्न को पूरा करेगी ।

यह चिर प्रामाणिक सत्य है कि प्रेमी पात्र को संसार के हर जड़-चेतन पदार्थ में प्रेम-तत्व ही नजर आता है । उसके हृदय का प्रेम तत्व सृष्टि से तदाकार हो जाना चाहता है । यही कारण है कि प्रकृति के समस्त उपादान भी उसे प्रेम करते हुए नजर आते हैं । यहाँ भी बच्चन यही कहते हैं कि आज यह कली की हँसी कहाँ से आ रही हैं । यह पुष्प की गंध रूपी श्वास किधर जा रही है? भाव यह है कि कली और पुष्प की सुगन्ध भी उसे अपने मनोनुकूल लगती है । उसका हास और गंध भी उसे अपना लगता है । उपर्युक्त भावों के संदर्भ में, पृष्ठभूमि में कवि-हृदय कहता है कि आज हरेक वृक्ष और उससे लिपटी लता में भी प्रेम की मस्त रागिनी बज रही है । वे भी परस्पर के प्रेम में आकण्ठ डूबे हुए है; क्योंकि आज की रात्रि ही जो वासनापूर्ण है ।

गीत के अन्तिम भाग में कविवर बच्चन अपनी मौलिक एवं नवीन उपमा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि वासनामयी, सेक्सी रात्रि में दूध की तरह उज्ज्वल मोतियों के समान तारकगणों की चादर आकाश के पलंग पर बिछी हुई है । ऐसे सुन्दर आकाशीय पलंग पर शर्माती हुई नायिका रूपी चाँदनी अपने नायक रूपी चाँद से लिपटी हुई है । भाव यह है कि प्रकृति के बेहतरीन उपमान चाँद और चाँदनी जिस तरह एक दूसरे से गुँथे हुए रहते हैं, बँधे रहते हैं कवि भी अपनी प्रेमिका को लिपटा लेना चाहता है । उसकी प्रेम की अनन्त अभिलाषाएँ अपनी प्रेमिका पर आधृत है । उसका तन-मन अपने प्रेमी साथी से तदाकार हो जाना चाहता है; क्योंकि आखिर रात्रि भी तो सेक्सी है, वासनापूर्ण है, मादक है, उत्तेजक है ।

विशेष-

1. यामिनी को वासनामयी कहने से बच्चन के मनोभावों का सहज ही पता लगता है ।
2. यह परम्परित सत्य व्यक्त हुआ है कि मन के भावों के अनुकूल ही हम प्रकृति के बाह्य उपादानों को देखते हैं, देखना चाहते हैं। इन्द्रिय वासना मांसल प्रेम के उत्तेजक भावचित्र प्रस्तुत हुए हैं ।
3. प्रकृति का उद्दीपनकारी चित्रण हुआ है ।
4. प्रेम में उन्नत भावक अन्य समस्त चिर-भावी स्थितियों को भूल जाता है । यह मनोवैज्ञानिक सच्चाई यहाँ निरूपित हुई है ।
5. नभ को पलंग बताना एक नवीन एवं सर्वथा मौलिक उपमान है ।
6. भाषा-भावानुकूल, सरस, सुबोध एवं परिनिष्ठित शुद्ध खड़ी बोली है ।

7. शैली गीतात्मक है । संयोग श्रृंगार का भावपूर्ण, मादक, प्रेमिल व भावोत्कल वर्णन हुआ है।

12.3.4 है रूपहली रात, है सपने सुनहले

"है रूपहली रात, है सपने सुनहले ।
शीतमय यह चाँदनी उसके लिए है,
प्रीतिमय यह यामिनी उसके लिए है,
जो दिवस की धूप सह ले, धूलि सह ले;
है रूपहली रात, हैं सपने सुनहले ।
मैं जलन का भाग अपना भोग आया
तब मिलन का यह मधुर संयोग आया,
दे चुका हूँ इन पलों का मोल पहले;
है रूपहली रात, हैं सपने सुनहले ।
गोद में तुम हो, गगन में चाँदनी है,
काल को यह भी निशा तो नापनी है,
मधु-सुधा की धार में दो याम बह लें;
है रूपहली रात, हैं सपने सुनहले ।
कह रहा है यह कि मैं आदर्श भूला,
कह रहा वह विश्व का संघर्ष भूला,
आज चाहे जो मुझे संसार कह ले;
है रूपहली रात, हैं सपने सुनहले ।

कठिन शब्दार्थ-याम = प्रहर, दिन और रात में 44, कुल 8 प्रहर होते हैं ।

संदर्भ-प्रस्तुत पद्यावतरण वैयक्तिक भाव चेतना के ख्यातनाम कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन की रचना 'मिलन यामिनी' से लिया गया है । रात के बाद दिन, दुख के बाद सुख, काँटों के बाद फूल, बिछुड़न के बाद मिलन आने का सृष्टि-नियम है । बच्चन का भी यही कहना है कि मैं अब तक जलन, पीड़ा, कष्ट, दुख एवं वियोग का विषम समय भोग चुका हूँ अब बारी है सुखोपभोग की। वह सुख के उपभोग के सुनहरे स्वप्न रूपहरी रात्रि में देखता है ।

प्रसंग-बच्चन का कहना है कि प्रीतिपूर्ण रात्रि उसके लिए आती है जो दिन की कड़ी धूप सह चुका; और मैं दिन की कष्टप्रद धूप सह चुका हूँ अतः सुखमयी, सुनहरी, रूपहरी, शीतमयी चाँदनी अब उसके लिए ही है ।

व्याख्या-कवि कहता है कि यह रूपहरी रात है, इसमें मेरे सुनहरे स्वप्न बसे हुए हैं । इस मदभरी, सुनहरी, शीतभरी चाँदनी का हकदार वही व्यक्ति हो सकता है जो पहले अपने जीवन की कष्टप्रद धूप को, धूल के गुबार को सह चुका हो,. भोग चुका हो । यह प्रेमभरी मस्ती की मधुमय रात उसी व्यक्ति के लिए है जो इससे पूर्व कष्ट भरे दिन भोग चुका, व्यतीत कर चुका ।

बच्चन कहते हैं कि मेरे जीवन में जलन का, दाह का, पीड़ा का जितना भाग तय था, उसे मैं भोग आया हूँ सह आया हूँ तब जाकर अब यह मिलन का मीठा-मधुर संयोग समय आया है । अभिप्राय यह है कि बच्चन ने अब से पहले का समय (जीवन) अत्यन्त कष्टमय, पीड़ामय एवं संतापमय व्यतीत किया । उसके पूर्व जीवन में अपेक्षाकृत प्रेम का बहुत अभाव रहा, इसलिए अब यदि उसके जीवन में कुछ प्रेम के लम्हे आये हैं, मधुर समय आया है तो वह उसका हकदार है । अपनी प्रेमिका के संग मधुर मिलन का संयोग यों ही नहीं आया है। यह उसका अधिकार है ।

अग्रिम भाग में कविवर बच्चन का कहना है कि यदि अब मेरे जीवन में रूपहरी रातों में सुनहरे स्वप्न देखने का वक्त आया है तो इसके लिए मैं पहले कीमत दे चुका हूँ । यह कीमत तड़प की कसक एवं पीड़ा के रूप में अत्यन्त कष्टकारी एवं महँगी थी । आगे की पंक्तियों में बच्चन कहते है कि इस मधुमय, सुनहरी रात्रि में मेरी गोद में हे प्रिये, तुम हो और गगन में चाँदनी बिखरी हुई है । समय को इस रात्रि को भी नापना है, बिताना है । अर्थात् एक समय वह था जब मैं एकाकीपन की विषम पीड़ा से त्रस्त था; समय ने उसे भी नापा है, तो अब इस मिलन-घड़ी को भी नापना है । कालरूपी नियति को यह सुखद संयोग की घड़ियाँ भी देनी ही है ।

कवि कहता है कि अब हम अमृत की मधुर धार में दो प्रहर (याम) बिता लें । अर्थात् प्रेम करते हुए कुछ मधुर घड़ियाँ (कुछ घण्टे) गुजार लें । संसार आज मुझसे कह रहा है कि मैं अपने जीवन का आदर्श भूल गया हूँ । संसार आज यह भी कह रहा है कि मैंने जो कष्टप्रद, संघर्षमय समय गुजारा, उसे मैं बिसरा रहा हूँ । लेकिन संसार भले ही मुझे कुछ भी कहे, मेरे बारे में कुछ भी धारणा बनाये, मुझे तो इस रूपहरी, मनभावनी रात में अपने स्वर्णिम स्वप्नों को अंजाम देना है । अर्थात् मुझे किसी की कोई परवाह नहीं; मुझे तो बस अपने साथी संग प्रेम सागर में डूबकर अपने सुनहरे सपनों को सजाना है ।

विशेष-

1. प्रेमी भावक सदैव सुनहरे स्वप्नों में विचरण करता है । उसे रात्रि अधिक मादक, उत्तेजक, मनोहारी एवं रूपहरी लगती है । बच्चन को भी ऐसी ही अनुभूति हो रही है । बच्चन ने अपनी आत्मकथा में लिखा भी है कि- ' 'प्रेमियों के लिए हर रात सुहागरात होती है । '
2. सृष्टि के अनवरत क्रम के दर्शन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत में हुई है । बच्चन के जीवन में अब मिलन के मधुर पल भोगने का सुअवसर आया है ।
3. बच्चन कहते हैं कि वे जो प्रेम के सुनहरे, मनहर, मधुर संयोग के पल भोगने जा रहे हैं इसकी बड़ी भारी कीमत वे पहले (वियोग, कष्ट एवं कसक के रूप में) अदा कर चुके हैं ।
4. अपनी प्रेमिका को गोद में लिटाने की कल्पना मात्र प्रेमी हृदयों की धड़कन को स्पन्दित कर भाव विगलित कर देती है; बच्चन ऐसे ही भावुक प्रेमी हैं, इसके भोक्ता हैं ।
5. भाषा-शैली सरस, भावमय, गत्यात्मक, सुबोध, गीतात्मक एवं प्रभावोत्पादक है । सहृदयों का मन ऐसे मनोरम भावों में सहज ही रमने लगता है ।

12.3.5 प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो

"प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो ।
मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब,
मैं समय के शाप से डरता नहीं अब,
आज कुन्तल छाँह मुझ पर तुम किये हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो ।
रात मेरी, रात का श्रृंगार मेरा,
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा,
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिये हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो ।
वह सुरा के रूप से मोहे भला क्या,
वह सुधा के स्वाद से जाये छला क्या,
जो तुम्हारे होठ का मधु-विष पिये हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो ।
मृत-सजीवन था तुम्हारा तो परस ही,
पा गया मैं बाहु का बन्धन सरस भी,
मैं अमर अब, मत कहो केवल जिये हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिये हो ।

कठिन शब्दार्थ-कुन्तल= बाल, केशराशि, अभिसार =मिलन, परस = स्पर्श, बाहु =हाथों का भुजाओं का ।

संदर्भ-प्रस्तुत गीत बच्चन द्वारा रचित 'मिलन यामिनी' से उद्धृत है । 'मिलन यामिनी' संयोग श्रृंगार की विशिष्ट रचना है । इसमें कवि ने लौकिक एवं वैयक्तिक प्रेम की स्वानुभूत भावभिव्यक्ति की है ।

प्रसंग-प्रेम में निमग्न, प्रणय को आतुर व्यक्ति निस्सीम, अगाध, विपुल एवं अपार प्रेम चाहता है । प्रेम समर्पण चाहता है, एकनिष्ठता की चाह रखता है, ईमानदारी चाहता है । प्रेम में डूबा हुआ भावक प्रेम के लिए हरेक सामाजिक-सांसारिक बंधन को तोड़ देता है । किसी भी प्रकार का दायरा उसे बर्दाश्त नहीं होता । बर्दाश्त होता है सिर्फ प्रेमिका की बाहु का सरस-परस बंधन । कविवर बच्चन चाहते हैं कि उनकी प्रेमिका, प्राणाधार उससे कह दे कि वह सिर्फ उसके लिए है । बच्चन अपनी प्रिया से समर्पण चाहते हैं । उपर्युक्त मनोभावों की श्रृंखला में वे कहते हैं-

व्याख्या-हे प्राणप्रिय! तुम मुझसे इतना कह दो कि तुम सिर्फ मेरे लिए हो । तुम्हारा समर्पण मेरे लिए है । बच्चन बेधड़क एवं निःशंक होकर कहते हैं कि मुझे अब दुनिया से किसी भी प्रकार का भय नहीं है, मैं किसी से भी नहीं डरता हूँ । न ही मुझे अब समय से डर लगता है, अर्थात् न तो दुनिया वाले और न ही काल; मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते । इनकी मुझे परवाह नहीं है । जब तक मेरा प्यार मेरे साथ है, मेरी प्रेमिका के बालों की प्रेममय छाँह मेरे संग है, तब तक मैं सब तरफ से बेपरवाह हूँ । आशय यह है

कि प्रेमी सिर्फ और सिर्फ प्रेम का शीतल, मधुर, सरस स्पर्श चाहता है । प्रेम से ही उसे वह शक्ति मिलती है, जिसके बूते वह समस्त झंझावातों को सहर्ष झेल लेता है ।

कवि कहता है कि आज की रात मेरी रात है, प्रणय की रात है और इस रात्रि में मैं पूरी तरह श्रृंगार का भोग करूँगा । मैं जब अपनी प्रिया से अंक-भेंट करूँगा, तो जैसे मेरा आधे संसार से अभिसार हो जाएगा, मिलन हो सकेगा । बच्चन अपनी प्रेमिका के प्रति तल्लीन होकर कहते हैं कि तुमने मुझे अपने अधरों पर अधर रखने का अधिकार दिया है । अधरों का मधुर, सरस परस दिया है; तो तुम्हें यह भी कह देना चाहिए कि आज तुम पूरी तरह मेरे लिए हो । तुमने मेरे लिए अपना समग्र समर्पण कर दिया है । यदि तुम मुझे अपने होठों का मादक स्पर्श दे रही हो तो तुम्हें अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए, मुझे अर्पित कर देना चाहिए ।

आगे की पंक्तियों में प्रेमी हृदय बच्चन अपनी प्रेमिका के आकर्षण में निबद्ध होकर कहते हैं कि जिसने एक बार तुम्हारे होठों का मधुमय, अमृततुल्य स्वाद चख लिया उसे न तो श्रेष्ठतम मदिरा ही मोहित कर सकती है और न ही वह अमृत के स्वाद से आकृष्ट हो सकता है । अभिप्राय यही है कि प्रिया के होठों में जो जादुई स्पर्श की मादक शक्ति है, उसके आगे अन्य समस्त मादकता के नशे बेकार हैं । कवि को अपनी प्रिया के अधरों में अनुपम नशा प्रतीत होता है । यह मादकता इतनी अधिक है कि कवि को (अपनी प्रेमिका के अधरों से अधरों का मिलन-सुख, बंधन) लिप लॉक के आगे बाकी सब कुछ व्यर्थ लगता है । इसीलिए वह अपनी प्रेमिका से कहलवाना चाहता है कि वह उससे आज कह दे कि वह सिर्फ मेरे लिये है ।

गीत के अन्तिम पदबंध में कवि कहता है कि तुम्हारे शरीर के स्पर्श में मादकता है । तुम्हारे आलिंगन में वह चमत्कारिक शक्ति है जिससे मैं मृतप्राय होकर भी जीवित हो उठा । अर्थात् तुम्हारे आलिंगन में, तुम्हारे शरीर के स्पर्श मात्र में ही वह जादू है जो मरे हुए में प्राण फूँक दे । कवि आगे कहता है कि मुझे तुम्हारी भुजाओं का सरस बंधन भी प्राप्त हुआ है । तुम्हारे प्यार से, होठों के मादक स्पर्श से, प्राणदायक आलिंगन से अब मैं अमर हो गया हूँ । मुझे तुम अब केवल यह मत कहो कि मैं जीवित हूँ या तुम जीवित रहो; क्योंकि अब मैं तो हमेशा-हमेशा के लिए अमर हो गया हूँ ।

विशेष-

1. उक्तावतरण में प्रेमी की प्रेमिका से समर्पण की कामना अभिव्यक्त हुई है ।
2. यह प्रेम दर्शन प्रस्तुत हुआ है कि प्रेम में प्रेमी प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी से नहीं डरता । यह भाव इस कहावत को चरितार्थ कर रहा है- ' 'जब प्यार किया तो डरना क्या!''
3. प्रेमी को अपनी प्रेमिका की हर चीज प्यारी लगती है । यह भाव पूरे गीत में विद्यमान है ।
4. कवि ने अपनी प्रेमिका के होठों में वह अद्भुत शक्ति बताई है जिसके आगे मादक सुरा और अमृततुल्य स्वाद भी हीन है ।
5. बच्चन को अपनी प्रेमिका का मादक आलिंगन उसमें (मृतप्राय खुद) जान डालने वाला प्रतीत होता है । ऐसा लगता है जैसे कवि ने गीत में अपना दिल निकालकर रख दिया है ।

6. भाव सरस, भावोत्तेजक, परम्परित एवं उत्तेजक हैं । भाषा-शैली भावानुकूल, सुबोध, गत्यात्मक एवं गीति काव्यानुकूल है । शब्दावली परिष्कृत एवं तत्सम शब्द युक्त है ।
7. बाहु बंधन के सरस लगने में विरोधाभास अलंकार है ।

12.3.6 प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है

प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है ।
जानता हूँ दूर है नगरी प्रिया की,
पर परीक्षा एक दिन होनी हिया की,
प्यार के पथ की थकन भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है ।
आग ने मानी न बाधा शैल-वन की,
गल रही भुज पाश में दीवार तन की.
प्यार के दर पर दहन भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है ।
साँस में उत्तप्त आँधी चल रही है,
किन्तु मुझको आज मलयानिल यही है,
प्यार के शर की शरण भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है ।
तृप्ति क्या होगी अधर के रस कणों से,
खींच लो तुम प्राण ही इन चुम्बनों से,
प्यार के क्षण में मरण भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है ।

कठिन शब्दार्थ-शैल = पर्वत, भुजपाश= भुजाओं का बंधन, दहन = दाहक, जलन, उत्तप्त = तेज, मलयानिल = मलयगिरि से आने वाली शीतल एवं सुगंधित वायु, शर =तीर, बाण।

संदर्भ-उपर्युक्त काव्यावतरण व्यक्तिवादी चेतना के कवि हरिवंशराय बच्चन की विख्यात श्रृंगारिक काव्यकृति 'मिलन यामिनी' से अवतरित है । मिलन यामिनी में बच्चन ने अपने जीवन में बिताये नितान्त निजी प्रणय के क्षणों की भावानुभूति को रसपगे भाव-शब्दों में सरलता एवं प्रभावोत्पादकता से प्रस्तुत किया है ।

प्रसंग-प्यार एक सुन्दर एहसास का नाम है । एक ऐसी गुदगुदी एवं स्पन्दन है जो हृदय की धड़कनों को गतिशीलता से धड़काती रहती है । बच्चन एक सच्चे एवं समर्पित प्रेमी हैं । उन्होंने अपने जीवन के एकाकी क्षणों में इस सुन्दर अनुभूति को जिया और भोगा है । इसी का जीवन्त स्पन्दन उन्होंने प्रस्तुत गीत में दर्शाया है ।

व्याख्या-बच्चन अपने निजी भावों-विचारों व अनुभवों को सहृदयी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए बताते हैं कि प्यार के दौरान, इसकी अनुभूति में जो जलन होती है, वह भी प्रेमी को मधुर एवं सुखद प्रतीत होती है । प्रेमी इस बात से अच्छी तरह वाकिफ होता है

कि उसकी प्रेमिका उससे बहुत दूर है । अर्थात प्रेमिका को पाना इतना आसान नहीं है, लेकिन प्रेमी को अपने प्रेम (प्रेमिका) को पाने के लिए, हर दिन परीक्षा देनी होती है । प्रेम में प्रेमी को किसी न किसी रूप में अपने हृदय की, धैर्य की, प्रतीक्षा की परीक्षा के दौर से गुजरना पड़ता है ।

कविवर बच्चन अपने भोगे गए क्षणों के आधार पर कहते हैं कि प्यार की मंजिल पर पहुँचने के रास्ते पर चलते हुए प्रेम के राही को थकान भी महसूस होती है, लेकिन यह थकान भी उसे मधुर प्रतीत होती है । प्यार के जिन क्षणों में, पलों में प्यार का राही अपने तन-मन में जलन महसूस करता है, वे क्षण भी, वह जलन भी उसे अत्यन्त प्रीतिकर, रुचिकर एवं मधुर लगती हैं ।

बच्चन अपने हृदयोद्गारों को अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं कि प्यार की आग जब उठती है तो वह किसी भी प्रकार की बाधा को स्वीकार नहीं करती । प्यार करने वाले प्यार की राह में आने वाले भीषण पर्वतों और बीहड़ जंगलों की बाधाओं को भी आसानी से पार कर लेते हैं । कवि कहता है कि प्रेमी-प्रेमिका जब परस्पर आलिंगनबद्ध हो जाते हैं; अपनी भुजाओं में जकड़ जाते हैं तो उस समय प्यार की ठण्डक से शरीर की दीवार भी गलने लगती है । अर्थात् भाव यह है कि आलिंगन की जकड़ इतनी प्रभावी एवं शक्तिशाली होती है कि लगता है जैसे शरीर-शरीर न रहकर गलती हुई बर्फ की दीवार हो । दोनों दो जान एक शरीर हो जाते हैं । कवि कहता है कि प्यार के दरवाजे पर जो दहन होती है वह भी मीठी होती है और प्यार के क्षणों को जीते हुए जो जलन (कसक-टीस) होती है वह भी मिठास भरी होती है ।

आगे की पंक्तियों में कवि अपनी प्रेमानुभूति के भावपूर्ण क्षणों को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्यार के आवेश और आवेग मे शरीर में साँसें गर्म आँधी की तरह चलने लगती हैं; लेकिन प्रेमी हृदय बच्चन को ये गर्म साँसें भी मलयगिरी से आने वाली शीतल एवं सुगुधित वायु के मस्त झाँकों के समान लगती है । कवि कहता है कि प्यार में बाणों की शरण भी मधुर लगती है तो उसमें जलन भी मधुर लगती है । भावार्थ यही है कि जब प्रेमी-प्रेमिका परस्पर प्रेमावेश में आकर मिलनाबद्ध होते हैं, तो सब कुछ अच्छा लगता है । सेक्स के दौरान गर्म साँसें भी चरम उत्तेजना के उत्कर्ष के बाद अत्यन्त शीतलता का मदिर एहसास करवाती है । उन अद्भुत क्षणों में, प्यार करने या मिलने के समय के सभी पल अत्यन्त मिठास भरे, मनोरम एवं अत्यन्त सुखदायी लगते हैं ।

प्रेमी बच्चन कहते हैं कि जब मैं अपनी प्रिया से अधरों का रसपान करता हूँ तो मुझे तृप्ति नहीं मिलती । बच्चन अपनी प्रिया से आग्रह करते हैं कि हे प्रिये! तुम तो अधरों के चुम्बन के माध्यम से मेरे प्राण ही खींच लो अर्थात् चुम्बन ऐसा लो जिससे मेरे प्यार के समस्त रसकण खिंचकर तुम्हारे पास चले जाएँ और मेरे प्राण, मेरा हिया तुम्हारे प्राणों से मिलकर एकमेक हो जाए । प्यार / प्रणय के समय जो मरण होता है, जो समर्पण होता है वह भी स्वर्गिक माधुर्य के सदृश्य होता है, विशिष्ट होता है ।

विशेष- 1. प्रस्तुत पद्यावतरण में प्यार के अद्भुत, अकल्पनीय, विशिष्ट, अनुपम एवं मधुरतम क्षणों की सुन्दर एवं सुखद भावानुभूति हुई है ।

2. प्यार में दो जान एक शरीर हो जाने की बात तो सभी सुनते आये हैं; लेकिन बच्चन का यह विशिष्ट अनुभव अपने में अनूठा है जिसमें यह शरीर भी गलता हुआ, अनवरत क्षरित होता हुआ अनुभूति होता है । कवि का यह मौलिक अनुभव है ।
3. प्यार के मंदिर, मादक, आवेश और आगेवमयी उद्दाम क्षणों में सब कुछ अच्छा लगने का अनुभव यहाँ प्रस्तुत हुआ है । चरम उत्तेजना के मधुर एवं स्वर्गिक सुखद अनुभव का वर्णन हुआ है ।
4. यह एक ऐसा गीत है जिसके भावपूर्ण एवं रसाप्लावित वातावरण के प्रस्तुतिकरण से सरस, रसपगे प्रेमनिमग्न एवं सहृदयी प्रेमियों का तन-मन पूर्णत: प्रेम सागर में गोते लगाने को उतावला होने लगता है । पाठक अपनी कल्पनाओं के नशीले सागर में खो जाता है ।
5. 'तृप्ति क्या होगी' पदबंध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इससे यह धारणा व्यक्त हुई है कि व्यक्ति प्यार में कभी तृप्त नहीं हो सकता । कवि की ऐसी ही अवधारणा उनकी आत्मकथा के भाग-८ में प्रस्तुत हुई है, जहाँ उन्होंने कहा है कि- 'प्रेमियों की हर रात सुहागरात होती है ।... कोई अपनी सुहागरात से सम्पूर्ण संतुष्ट जागा हो तो उसका नाम मैं जानना चाहूँगा । "
6. भावशिल्प विषयानुकूल, सरस एवं सहृदयों के चित्त मे रमने-पैठने वाला है। भाषा भावों की अनुसारिणी एवं आकर्षक है । छोटे-छोटे सरस, सुबोध भावपूर्ण एवं मार्मिक परिष्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है । गीतिपद शैली है।
7. गीत का हरेक शब्द जैसे चाशनी में डूबकर प्रस्तुत हुआ है ।

12.3.7 प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का

प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का ।
प्यास होती तो सलिल में डूब जाती,
वासना मिटती न तो मुझको मिटाती,
पर नहीं अनुराग है मरता किसी का;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का ।
तुम मिलीं तो प्यार की कुछ पीर जानी,
और ही मशहूर दुनिया में कहानी,
दर्द कोई भी नहीं हरता किसी का;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का ।
पाँव बढ़ते, लक्ष्य उनके साथ बढ़ता,
और पल को भी नहीं यह क्रम ठहरता,
पाँव मंजिल पर नहीं पड़ता किसी का;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का ।

स्वप्न से उलझा हुआ रहता सदा मन,
एक ही इसका मुझे मालूम कारण,
विश्व सपना सच नहीं करता किसी का;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का ।

कठिन शब्दार्थ-सलिल = जल, वासना = यौनेच्छा, पीर = पीड़ा, कसक, अनुराग = स्नेह, प्रीति, हरता = हरण करना, लेना ।

संदर्भ-उक्तांकित काव्यावतरण सुविख्यात गीतकार एवं कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन द्वारा रचित है, जो कि उनकी कृति 'मिलन यामिनी' से उद्धृत है । बच्चन छायावादोत्तर काव्यधारा 'प्रेम एवं मस्ती' के शीर्ष कवि हैं । 'मिलन यामिनी' में कवि ने प्रमोच्छ्वास के विविध मनोभाव अनुभूति के गहन स्तर से अनुभव कर प्रेमी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए हैं ।

प्रसंग-कविवर बच्चन ने प्रस्तुत गीत में उस सत्य को प्रस्तुत किया है, जो व्यापक सत्य पर आधारित है । कवि कहता है कि प्यार से कभी किसी का मन नहीं भरता है । यह एक ऐसा मनोभाव है, जो शाश्वत है । दुनिया में अन्य इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और कामनाएँ किसी न किसी रूप में पूरी हो जाती हैं; लेकिन इंसान का मन प्यार की अनुभूति को सदैव पाना चाहता है ।

व्याख्या-बच्चन कहते हैं कि प्यार से कभी किसी का मन नहीं भरता है । इंसान को यदि प्यास लगती है तो वह जल से बुझाई जा सकती है; लेकिन प्रेम से जी नहीं भरता । प्रेम की प्यास सतत् है । वासना या यौन इच्छा (स्त्री सुख) यदि मुझे नहीं मिलता तो शायद इससे मैं मिट गया होता । भाव यह है कि यदि वासना की पूर्ति नहीं हो तो वह इंसान को मिटा देती है । बच्चन कहते हैं कि यदि मेरी भी वासना नहीं मिटती तो यह मुझे मिटा देती । अब मेरी वासना भले ही तुष्ट हो गई है, लेकिन अनुराग नहीं । अनुराग कभी भी मर नहीं सकता । यदि यह मर नहीं सकता तो अमर है । इसीलिए प्यार से कभी किसी का जी नहीं भरता ।

कवि अग्रिम पंक्तियों में कहता है कि हे प्रिये! यदि तुम मुझे मिल गई हो तो मैंने प्यार की पीड़ा को, उसकी कसक एवं संवेदना को जान लिया है । तुम्हारा प्यार मिलने से अपनी प्रेम कहानी पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हो गई है । बच्चन कहते हैं कि इस दुनिया में कोई भी व्यक्ति किसी अन्य के दर्द को, उसके संकट को दूर नहीं कर सकता ।

आगे कर्मपथ पर चलते रहने एवं संघर्ष कर आगे बढ़ने की भावना से कवि कहता है कि जो लोग जीवन में सदैव कर्म करते हुए, परिश्रम करते हुए अपना जीवन जीते हैं, ऐसे लोगों के साथ लक्ष्य भी साथ चलता है । अर्थात् वे लोग ही लक्ष्य की प्राप्ति करते हैं जो अनवरत मेहनत करते रहते हैं और कर्मपथ पर ठहरते नहीं हैं । यह एक ऐसा क्रम है जो कभी नहीं ठहरता । सदैव चलता रहता है । कभी किसी व्यक्ति के कदम सीधे मंजिल पर, लक्ष्य पर नहीं पड़ते । उसे कर्म के पथ पर कदम ताल मिलाकर चलना पड़ता है, तभी उसे लक्ष्य प्राप्ति होती है ।

बच्चन अपना एक अनुभव सत्य प्रस्तुत करते हुए यह बताते हैं कि व्यक्ति का मन हमेशा सपनों में डूबा/ खोया रहता है । इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि एक ही

वजह से लोगों के स्वप्न पूर्ण नहीं होते, वह यह है कि विश्व कभी किसी का सपना सच ही नहीं करता है । शायद इसी वजह से उसका प्यार से भी जी नहीं भरता है ।

विशेष- 1. उपर्युक्त पद्यावतरण में कविवर बच्चन ने अपने जीवन के दीर्घानुभव के आधार पर निम्नलिखित सत्य को (निष्कर्ष रूप में) प्रतिपादित किया है -

क. प्यार से कभी किसी का जी नहीं भरता है ।

ख. किसी का दर्द, कोई दूसरा नहीं हरता है ।

ग. लक्ष्य प्राप्ति उन्हीं को होती है जो सदैव कर्मपथ पर कदम रखते जाते हैं ।

घ. इंसान अपने सपनों में खोया रहता है और कभी किसी के सपने पूरे नहीं हुए ।

ङ. सपनों में इंसान इसलिए खोया रहता है क्योंकि यह दुनियाँ उसके सपनों को पूरा नहीं करती ।

2. बच्चन ने जीवन-दर्शन की प्रस्तुति की है ।

3. भाषा-शैली भावानुकूल, विचारानुसारिणी सरस, गत्यात्मक, सुबोध एवं प्रभावी है।

12.3.8 सखि, अखिल प्रकृति की प्यास हम तुम भीगें

सखि, अखिल प्रकृति की प्यास हम-तुम भीगें ।
अकस्मात यह बात हुई क्यों जब हम-तुम मिल पाये,
तभी उठी आँधी अम्बर में सजल जलद घिर आये,
यह रिमझिम संकेत गगन का समझो या मत समझो,
सखि, भीग रहा आकाश कि हमतुम भीगें;
सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हमतुम भीगें ।
इन ठण्डे झोंकों से मैं काँपा, तुम काँपी,
एक भावना बिजली बनकर दो हृदयों में व्यापी,
आज उपेक्षित हो न सकेगा रसमय पवनसँदेसा,
सखि, भीग रही वातास कि हमतुम भीगें;
सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम तुम भीगें ।

संदर्भ -उपर्युक्त काव्यावतरण डॉ. हरिवंशराय बच्चन द्वारा रचित काव्यपुस्तक 'मिलन यामिनी' से अवतरित है । 'मिलन यामिनी' के तीन भागों में से यह मध्यभाग से उद्धृत है ।

प्रसंग- हरेक काम करने का, काम के अनुकूल वातावरण होता है, और होना चाहिए । अनुकूल परिवेश में ही वह कार्य सम्यक् प्रकार से होता है । प्यार का भी एक वातावरण होता है । प्यार करने के लिए प्रकृति का अनुकूल होना आवश्यक है । प्रस्तुत पद में कवि अपनी प्रेमिका से यही निवेदन करता है कि अखिल प्रकृति यह कह रही है कि हम-तुम मिलकर प्रेमरस में निमग्न हों । तुम प्रकृति के संकेत को समझो ।

व्याख्या-कवि अपनी प्रेयसी से कहता है कि समूची प्रकृति की प्यास यह इशारा कर रही है कि हम तुम मिलकर प्रेम में भीगें । जब हमारा और तुम्हारा मिलन हुआ है तो अचानक प्रकृति ने भी अपना व्यवहार हमारे अनुकूल कर लिया है, अर्थात् प्रकृति भी यही चाहती है कि हम तुम मिलकर प्रेम का आनन्द लें. उसमें डूबकर खो जायें । यही वजह है कि जब हम तुम मिले हैं, एक साथ हुए हैं, तभी आकाश में आँधी आई है और पानी वाले बादल घिर आये हैं । क्या तुम प्रकृति का, इस रिमझिम वातावरण का संकेत नहीं समझोगी? अर्थात् तुम्हें गगन के इशारे को समझना चाहिए । तुम भले ही गगन के संकेत को समझो या मत समझो, लेकिन उसका इशारा स्पष्ट है, और उसे मैं समझ रहा हूँ । इसलिए यदि पूरा आकाश मस्ती के आलम में भीग रहा है तो हम तुम भी मिलकर प्रेमरस में भीग लें, प्रेम का आनन्द लें ।

अग्रिम अवतरण में कविवर बच्चन अपने मनोभावों को वाणी देते हुए कहते हैं कि रिमझिम वर्षा के इस मौसम में ठण्डी-ठण्डी हवा के जो झोंके आ रहे हैं उनसे मैं काँप रहा हूँ । हे प्रिये! क्या तुम नहीं काँप रही? स्पष्ट है कि तुम्हें भी इन झोंकों ने कँपा दिया है । एक प्रेम की भावना ऐसी है जो तुम्हारे और मेरे हृदय में बिजली बनकर व्याप्त हो गई है । निश्चित ही यह भावना प्रेम की है, मस्ती की है, प्रेम के चरमोत्कर्ष की है, सहवास की है । कवि अपनी प्रेयसी से कहता है कि रिमझिम बरसात के संग चलने वाली पवन जो रसमय, प्रेममय, मस्ती का संदेसा दे रही है, उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता । भाव यही है कि हमें इस समय ऋतु को पहचानकर प्रेम करना ही चाहिए । हे मेरे जीवन की सखि! हे प्रियतमा! पूरा वातावरण प्रेम करने का मधुर एवं प्रिय संदेश दे रहा है, अत: हमें तुम्हें-मिलकर इस वातावरण का भरपूर आनन्द उठाते हुए प्रेम प्यार के वातावरण में डूब जाना चाहिए । समूची प्रकृति की प्यास हमारे तुम्हारे बीच में उतरनी चाहिए । हम तुम मिलकर शरीर सुख का, ऐन्द्रिय सुख का भरपूर आनन्द लें, उसके रस में डूब जायें ।

विशेष-
1. अनुकूल वातावरण न जागृत करता अपितु उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाकर आनन्द भी दिलवाता है । प्रस्तुत गीत का प्राकृतिक वातावरण भी सेक्स के अनुकूल व्यक्त हुआ है ।
2. कवि अपने मनोभावों को प्रकृति के माध्यम से, उसके बहाने से व्यक्त कर रहा है ।
3. जब प्रकृति अपनी राग की, प्रणय की मस्ती में मस्त हैं तो युवा नायक-नायिका को क्यों नहीं सहगामी होना चाहिए ।
4. मनुष्य की प्रकृति बाहरी प्रकृति के अनुकूल आचरण करने को प्रेरित हुई है।
5. भाषा-भाव प्रसंगानुकूल, सरस एवं मार्मिक है ।

12.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने व्यक्तिवादी एवं स्वच्छन्दतावादी प्रेम एवं मस्ती की काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि एवं हालावाद के प्रवर्त्तक, सुविख्यात गीतकार डॉ. हरिवंशराय बच्चन के

जीवन परिचय एवं उनके व्यक्तित्व को जाना । आपने यह भी जाना कि उनकी रचनाओं में मूल रूप से वैयक्तिक चेतना का प्राधान्य रहा है । बच्चन की श्रृंगारिक रचना 'मिलन यामिनी' के गीतों की व्याख्याओं के माध्यम से आपने उनमें निहित गहन प्रेमिल भावधारा का रसपान तो किया ही साथ ही बच्चन की निश्छल, बेबाक एवं उद्दाम वासना के स्वाभाविक रंग के विविध चित्रों को भी देखा । बच्चन एक ऐसे रचनाकार हैं जिनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों घुले -मिले से हैं । मधुशाला- बच्चन की पर्याय रचना बनी । काव्य जगत में कविवर बच्चन की पहचान एक उद्दाम प्रेम एवं वासना, ज्वलंत यौवन, अगाध मस्ती तथा संघर्षशील भावुक व्यक्तित्व के रूप में रही है । 'मिलन यामिनी' के गीतों की व्याख्याओं के माध्यम से आपने जन-मन के कवि के गीतों में निहित भावानात्मक गहनता एवं संवेदनात्मक व्यापकता से भी परिचय पाया । बच्चन का काव्य सहृदयी पाठकों के लिए आरम्भ से ही मस्ती के गोते लगाने का सुष्ठु भावसागर है ।

12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है' पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए ।
2. बच्चन के गीतों की निम्नलिखित पंक्तियों में निहित भाव की व्याख्या कीजिए-
   अ. 'फाँस में उत्तप्त आँधी चल रही है'
   ब. 'प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का
   स. 'तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिये हो
   प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो'
3. प्रकृति प्रेम को किस तरह प्रभावित करती है? 'मिलन यामिनी' के गीतों के आधार पर स्पष्ट कीजिए ।
4. बच्चन अपनी प्रेमिका से क्या चाहते हैं? विस्तार से उत्तर दीजिए ।
5. 'बच्चन उद्दाम यौवन, प्रेम एवं मस्ती के कवि हैं' ।'मिलन यामिनी' के आधार पर इस कथन पर प्रकाश डालिए।
6. बच्चन के 'कवि रूप' को समझाइए ।
7. 'मिलन यामिनी' कृति की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए ।
8. निम्नांकित अवतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए और आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी दीजिए-
   (क) " चाँदनी फैली गगन में.....भुवन में । "
   (ख) " है रूपहली.....संसार कह लो ।"
   (ग) " सखि, अखिल प्रकृति.....हम-तुम भीगें ।"

12.6 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. मनोज गुप्ता : बच्चन का काव्य-शिल्प, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, 2007
2. सीमा जैन : बच्चन कविता और जीवन की अन्त:सूत्र, ईशा ज्ञान दीप, दिल्ली, 2000
3. डॉ. प्रवीण शर्मा: बच्चन और उनका काव्य, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, 1999

4. डॉ. सुधाबहन कनुभाई पटेल: बच्चन जीवन और साहित्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1980
5. डॉ. जीवन प्रकाश जोशी : बच्चन व्यक्ति और कृतित्व, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली,1968
6. डॉ. हरिवंशराय बच्चन': (मिलन यामिनी), बच्चन रचनावली भाग-S राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983

इकाई-13 हरिवंशराय बच्चन के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 युग-परिवेश

13.3 जीवन-परिचय

13.4 बच्चन का अनुभूति पक्ष

13.4.1 हालावाद

13.4.2 स्वच्छन्दतावाद

13.4.3 आत्माभिव्यक्ति

13.4.4 निराशावाद

13.4.5 आशावाद

13.4.6 जीवन-संघर्ष

13.4.7 मानवतावाद

13.4.8 राष्ट्रीयता

13.4.9 सामयिक बोध

13.5 बच्चन का अभिव्यंजना पक्ष

13.5.1 काव्य भाषा

13.5.2 उपमान योजना

13.5.3 प्रतीक विधान

13.5.4 बिम्ब विधान

13.5.5 काव्यरूप एवं छंद प्रयोग

13.6 सारांश

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.8 संदर्भ गन्थ

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत डॉ. हरिवंशराय बच्चन के काव्य के समग्र मूल्यांकन की पृष्ठभूमि में उनके काव्य के भाव पक्ष/ अनुभूतिपक्ष एवं कलापक्ष/अभिव्यंजनां/ अभिव्यक्ति पक्ष को प्रस्तुत किया जा रहा है । इस इकाई के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि आप डॉ. बच्चन के काव्य का वैशिष्ट्य समझकर उसका प्रभविष्णु रसास्वादन कर सकें । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- बच्चन युगीन परिवेश को जान सकेंगे ।
- बच्चन का संक्षिप्त जीवन जान पायेंगे ।
- बच्चन की काव्यानुभूति का आस्वादन करते हए उनके काव्यान्तर्गत प्रस्तुत उनके व्यक्तित्व के विविध सन्दर्भ, यथा- स्वच्छन्दतावाद, आत्माभिव्यक्ति, निराशावाद, जीवट, आशावाद, मानवीय दृष्टिकोण, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चिंतन आदि को समझ सकेंगे ।
- बच्चन के काव्य-शिल्प के ढाँचे को अभिव्यंजना पक्ष के अन्तर्गत भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान, काव्यरूप एवं छंद प्रयोग आदि के उपादानों से विश्लेषित कर पायेंगे और इन आधारों पर उनके काव्य वैशिष्ट्य से रूबरू हो सकेंगे ।
- प्रेम एवं मस्ती की काव्यधारा में बच्चन का स्थान तय कर सकेंगे और इस काव्यधारा से बच्चन का अन्त: संबंध अन्वेषित कर पायेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई संख्या 13 मे आपने हालावादी कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय जाना । आपने उनकी महत्त्वपूर्ण रचना 'मिलन यामिनी' में स्पन्दित श्रृंगार रस का रसास्वादन भी किया । प्रस्तुत इकाई में हम बच्चन के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण करेंगे । बच्चन का काव्य भावपक्ष के लिए अधिक जाना जाता है। उनका काव्य वैयक्तिक भावसंचेतना का काव्य है । उनकी भावाभिव्यक्ति स्वानुभूत एवं हृदय की सच्ची आवाज है । अपने जीवन में उन्होंने आरंभ से ही संघर्ष किया । यह संघर्ष उनके मनोजगत एवं सामाजिक / बाह्य जगत, दोनों से ही सम्बद्ध है । उनका व्यक्तित्व उनके कृतित्व में स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है । कहीं कहीं व्यक्तित्व एवं कवित्व एकमेक हो गए हैं । कवि का संघर्ष युगीन संघर्ष भी रहा है । कवि की भावुकता व चिन्तना युगीन भावुकता व चिन्तना के रूप में मूर्तित हुई है । बच्चन अपने भीतरी सत्य, अपनी अनुभूति, अपनी घुटन के कवि हैं, वे युगीन धरातल के रचनाकार हैं । उनकी कविता युगीन आदमी की कविता है । उनकी कविता / सर्जना उनके गहनतर मन से निःसृत होकर व्यक्त हुई है ।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरान्त आप बच्चन के काव्य की अनुभूतिगत एवं अभिव्यक्तिगत विशेषताओं से परिचित होकर उनके काव्यरूप का समग्र विश्लेषण कर सकने में सक्षम होंगे । सुचर्चित हालावाद, स्वच्छन्दतावाद के साथ-साथ उनकी वैयक्तिकता व जीवन संघर्ष की भावना को जान सकेंगे । उनकी सरल, सुबोध, अनलंकृत एवं भावानुकूल भाषा-शैली से परिचित होकर उनकी भावाभिव्यक्ति की बेबाकी एवं ईमानदारी के कायल हो सकेंगे ।

13.2 युगीन परिवेश

बच्चन के कवि ने जिस परिवेश में जन्म लिया, वह कई मायनों में भिन्न व विशिष्ट था। उनका सृजनकर्म 1935 ई. के आसपास शुरू हुआ । इस समय का राजनैतिक एवं

सामाजिक परिदृश्य विशिष्ट एवं जनमानस को हिला देने वाला था । राजनीति में जहाँ भारत अंग्रेजों से आजादी के लिए संघर्ष कर रहा था, वही विश्व पटल पर द्वितीय विश्व युद्ध समाप्ति की ओर अग्रसर था । सामाजिक दृष्टि से मार्क्सवाद व उसका वर्ग संघर्ष उभर रहा था । सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह दौर संक्रमण और संघर्ष का ही रहा । भारतीय पाश्चात्य देशों और उनकी सभ्यता से परिचित हो रहे थे । प्रकृति भी इस समय शांत नहीं थी । बंगाल का अकाल पड़ने का बीजवपन एक तरह से हो चुका था । भारतीय जन-मन प्रसन्न नहीं था ।

साहित्यिक पटल पर एक ओर उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की विश्व प्रसिद्ध अमर रचना 'गोदान' का प्रणयन हुआ, वहीं कालजयी महाकाव्यात्मक औदात्य से परिपूर्ण काव्य रचना के रचनाकार महाप्राण निराला ने महान् रचना 'राम की शक्ति पूजा' का प्रणयन किया। साहित्य में युग या प्रवृत्ति की दृष्टि से यह दौर छायावाद के अवसान का और प्रगतिवाद के आरंभ का था ।

उपर्युक्त युग-परिवेश में छायावादोत्तर काव्यधारा में या छायावाद के समान्तर चलने वाली काव्यधारा में 'बच्चन' का नाम विशिष्ट एवं उल्लेखनीय है । बच्चन जिस काव्यधारा का नेतृत्व कर रहे थे, उसे 'प्रेम एवं मस्ती की काव्यधारा' के नाम से अभिहित किया जाता है । इस काव्यधारा को 'हालावाद' के नाम से भी संबोधित किया गया । बच्चन का साथ निभाने वाले साहित्यकार थे-भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा व रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' । भगवती चरण वर्मा ने भी बच्चन की तरह छायावादी रहस्यात्मकता का त्याग करते हुए प्रेम, मस्ती एवं उल्लास भरे यौवन के राग के गीत गाए । इनके गीतों में किसी प्रकार नैतिक बंधन एवं आडम्बर नहीं है-

हम दीवानों की क्या हस्ती आज यहीं कल वहाँ चले ।
मस्ती का आलम साथ चला हम धूल उड़ाते जहाँ चले ।।

अंचल जी भी प्रेम को किसी आध्यात्मिक आवरण के झीने पर्दे में न देखकर सीधे सच्चे मांसल, शारीरिक एवं स्वाभाविक वासनात्मक रूप में देखते थे । इन्होंने जीवन की तृष्णा को सत्य माना । इनके अनुसार नारी का महत्त्व उसके उपभोग्या रूप में निहित है । वह रति सुख का प्रमुख उपकरण है-

एक पल के ही दरस में जग उठी तृष्णा अधर में,
जल रहा परितृप्त अंगों में पिपासाकुल पुजारी ।

13.3 जीवन-परिचय

कविवर बच्चन एक ऐसी सख्शियत हैं, जिनका नाम ही सहृदयी लोगों की चित्त में अद्भुत माधुर्य, सिहरन, मादकता एवं प्रणयावेग भर देता है । 'मधुशाला' बच्चन की पर्याय है । 'मधुशाला' और हालावाद के कवि बच्चन का जन्म 27 नवम्बर 1907 को इलाहाबाद में हुआ । संघर्षशील व्यक्तित्व के धनी बच्चन ने व्यक्तिगत, सामाजिक एवं साहित्यिक, तीनों स्तरों पर कठोर संघर्ष किया । बाधाओं के कारण उच्च शिक्षा में रुकावट आई । केम्ब्रिज से अंग्रेजी में (कीट्स) पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की । अर्थोपार्जन हेतु एक पत्रकार के रूप में एवं संपादन से जुड़कर अध्यापक बने । समय के साथ इलाहाबाद

विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अस्थाई से स्थाई व्याख्याता बने । रेडियो प्रोड्युसर और विदेश मंत्रालय को अपनी सेवाएँ दी । 'मधुशाला' के 1935 में प्रकाशन के साथ ही काव्य-जगत में अपना परचम लहराया । अपनी विशिष्ट काव्य प्रतिभा के कारण अनेकानेक उच्च पुरस्कारों से सम्मानित हुए । कुल मिलाकर 5० से अधिक साहित्य रचनाएँ की । जन-मन के कवि बच्चन की मृत्यु 18 जनवरी 2003 को हुई । (इनके जीवन की अधिक जानकारी पिछली इकाई में दी जा चुकी है ।)

13.4 बच्चन का अनुभूति पक्ष

बच्चन का काव्य उनके भीतरी मन में पैठे हुए का हृदयोद्गार है । बच्चन का काव्य उनके हृदय का सहज एवं भावोत्कल गान है । हृदयोदगार सहज गान के रूप में उनके मधुर कण्ठ से गीतों के रूप में निःसृत हुए हैं । बच्चन-काव्य की अधिकांश भावानुभूति उनके गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा सकी है । बच्चन के काव्य का पूर्वार्द्ध उनकी आत्मानुभूतियों का आलोड़न-विलोड़न है । वे अपने भीतरी सत्य, अपनी अनुभूति, अपनी घुटन एवं पीड़ा के कवि हैं । परवर्ती काव्य में वैयक्तिकता, सामयिक चिन्तन एवं युगीन भावुकता चिन्तना के रूप में काव्य में मूर्तित हुई है, लेकिन इसके बावजूद वे समकालीन किसी वाद या काव्यधारा से जुड़े-बँधे नहीं, अपितु उनके काव्य से 'वाद' बँध गया है । वे सदैव स्वतन्त्र भावधारा की चेतना के रचनाकार रहे । किसी सिद्धान्त या धारा से बँधना उनकी इयत्ता को मंजूर नहीं था । बच्चन के दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण ही उनके यहाँ किसी प्रकार की नीरसता या एकरसता भी नहीं है ।

वास्तव में बच्चन का काव्य बहुरसी मिष्ठान्न और 'दावत' का रसास्वादन करवाने वाला है । उनके आरंभिक काव्य में जहाँ युवा मन का भावुक, चटकीला, भड़कीला व उत्तेजक रंग है, वही 'निशा-निमन्त्रण' व इसके बाद की रचनाओं में पीड़ित, विधुर व चोट खाए, ठुकराए प्रेमी मन की हकीकत और उसकी पीड़ा का रंगोच्छल रूप है । यह रंग निशा निमन्त्रण से शुरू होकर एकांत संगीत, आकुल अन्तर व सतरंगिनी तक दमकता है । तदुपरान्त उनकी कविता वैयक्तिकता से उबरकर सामाजिक-सामयिक चेतना पर जा ठहरती है जिसमें 'बंगाल का काल', 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' की रचना होती है। इसके बाद समय चक्र की गतिशीलता के कारण उनकी कविता में पुन: बदलाव होता है, उनकी संवेदना और अनुभूति परिवर्तित होती है, इसका सीधा कारण उनका दूसरा विवाह ही है । विवाहोपरान्त प्रेमाप्लावित मिलन की यामिनियों के गीत गाये जाते हैं । इसी शृंखला में बच्चन रागयथी प्रणय की पत्रिका लिख जाता है ।

'बुद्ध और नाचघर' से उनकी काव्यधारा में एक नया रंग जुड़ता है । यह रंग उनके भाव ही नहीं शिल्प को भी परिवर्तित करता है । यह रंग यथार्थ के प्रति प्रतिक्रिया का है । 'कटती प्रतिमाओं की आवाज' एवं 'उभरते प्रतिमानों के रूप' में यह भाव अधिक सघनता के साथ प्रतिबिम्बित होता है । कवि के जीवन रस की 'घनीभूत संवेदनाएँ ही बच्चन की कविता का सत्य है । इन्हीं संवेदनाओं को उनकी अनुभूतियों को हम प्रवृत्तियों के रूप में देखते हैं। ये निम्नलिखित शीर्षकान्तर्गत विश्लेषित की जा रही हैं ।

13.4.1 हालावाद

हालावाद फारसी सूफी दर्शन है । उमर खैयाम इसके प्रमुख दार्शनिक हैं, जिन्होंने 'रुबाइयाँ' लिखीं । इन रुबाइयों में उदास, निराश और खिन्न मन की अभिव्यक्तियाँ हैं । पलायनवाद इसका प्रमुख स्वर है । बच्चन ने खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद किया । 'हालावाद' प्रत्येक क्षण में अधिकतम उपभोग का जीवन दर्शन है । बच्चन के अनुसार 1930 का समय व सामाजिक स्थिति ही ऐसी थी जिसने सारे देश का ध्यान खैयाम की ओर खींचा । हिन्दी साहित्य में बच्चन ही इसके प्रथम प्रयोक्ता हैं । इस क्षणवादी व भोगवादी संस्कृति को हाला, वाला, मधुशाला, प्याला, साकीबाला, सुराही आदि माध्यमों से अभिव्यक्त किया गया । उपभोगवादी व क्षणवादी कल्पित लोक में युवकों को वर्तमान के दुख से मुक्ति मिली । इसीलिए यह वाद मनुष्य की जीवन के प्रति आसक्ति और जीवन की मनुष्य के प्रति उपेक्षा का गीत है ।

बच्चन की हालावादी रचनाओं में मधुशाला, सर्व प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त 'मधुबाला' व 'मधुकलश' अन्य रचनाएँ हैं । कवि ने मधुशाला, हाला, मधुबाला, प्याला, सुराही आदि को प्रतीकार्थ रूप में स्वीकारा, जिनके 10 - 10 तक अर्थ किए गए ।

'हाला' की खूबी बताते हुए बच्चन कहते हैं कि इसकी मादकता के कारण ही मनुष्य अपने सुख-दुख को झेल पाता है-

'मेरी मादकता से ही तो
मानव सब सुख-दुख सका झेल'

'मधुशाला' में वह गजब की शक्ति है जो एकता व समन्वय का कार्य करती है क्योंकि जहाँ मानव जाति विभाजन की दीवारें खींचती है, वहीं मधुशाला मुक्त भाव से सबके लिए, चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो. द्वार खुला रखती है-

"घृणा का देते हैं उपदेश
यहाँ धर्मों के ठेकेदार
खुला है सबके हित सब काल
हमारी मधुशाला का द्वार"

इस प्रकार 'हालावाद' बच्चन की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति है, जिसकी वजह से बच्चन हालावाद के प्रवर्त्तक कहलाये और 'मधुशाला रचना के माध्यम से देशभर के काव्य प्रेमियों के समकक्ष गजब की धूम मचाई । यह धूम 2008 तक कायम है और आगे भी रहेगी ।

13.4.2 स्वच्छन्दतावाद - 'मिटटी का तन, मस्ती का मन'

बच्चन का व्यक्तिगत जीवन भी काव्य जीवन के साथ स्वच्छन्दतावाद का अनुकर्त्ता रहा है । बच्चन की स्वच्छन्दता उनके वैयक्तिक प्रेम, सौन्दर्य एवं यौवन (sex) की उन्मुक्तता के रूप में देखी जा सकती है । बंधन बच्चन ने कभी नहीं स्वीकारे । उन्होंने किसी भी पारिवारिक, सामाजिक जातिगत, धर्मगत नियम-परम्परा को नहीं माना । वे उन्मुक्त गगन के स्वच्छन्द विहग हैं । मुक्ति और स्वच्छन्दता की वाणी के गीत उनकी अपनी पहचान है, उनकी अपनी अलग राह है-

'विश्व तो चलता रहा है थाम राह बनी-बनाई
किन्तु इन पर किस तरह मैं कवि-चरण अपने बढाऊँ'

दुनिया की नजर में भले ही बच्चन कुपथगामी हों, मगर मधुशाला का कवि मधुसिंचित डगर में स्वतन्त्रता से पाँव रखता चलता है, क्योंकि उसे लगता है कि मंदिर-मस्जिदों की राह तो खून से सींची गई है-

'रक्त से सींची गई है
राह मंदिर-मस्जिदों की
किन्तु रखना चाहता मैं
पाँव मधुसिंचित डगर में ' (मधुकलश)

बच्चन कहते है- 'मैं नहीं हूँ देह-धर्मो से बँधा, जग, जान ले तू'

बच्चन की स्वच्छन्दता 'आइरिश' से हुए प्रेम में देखी जा सकती है, जिसके विवाह के लिए वे स्वयं धर्मान्तरण कर इसाई बनने को तैयार थे । उन्हें न तो समाज-भय था और न ही लोक-भय । वे तो अपनी सच्ची अनुभूति को, अपने हृदय की, शरीर की भूख-प्यास को, अपनी अतृप्ति के गान को सहजता व स्वच्छन्दता से गाने वाले गायक हैं-

'वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मैं.
है रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा'

13.4.3 आत्माभिव्यक्ति 'मै छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता

बच्चन-काव्य आत्माभिव्यंजन का काव्य है । आत्ममुक्त सुख-दुख की अभिव्यक्ति का काव्य है । पूर्ववर्ती काव्य में उनका यह आत्मतत्व यौवन के अनुराग-विराग व सुख-दुख और संघर्ष के रूप में व्यक्त हुआ है तो परवर्ती काव्य में यह आत्म तत्व या बच्चन की वैयक्तिकता समष्टि के साथ तदाकार होकर प्रस्तुत हुई है । बच्चन की सर्जना को उनकी आत्माभिव्यंजना का पर्याय कहा जा सकता है । उन्हें न लोक लाज की चिन्ता है और न ही किसी प्रकार का भय । इसीलिए वे कहते हैं-

"मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा".. (मधुकलश)

बच्चन के काव्य में यौवन की वाणी, जीवन का उल्लास, विषाद, यौवन की मस्ती, अल्हड़ता, उमंग, जीवन की निराशा और जीवट, बेफिकरी व मस्ती सब एकमेक होकर उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से एकमेक हो गई है ।

'मधुशाला' से लेकर 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर', 'सतरंगिनी', 'हलाहल', 'मिलनयामिनी', 'प्रणयपत्रिका' व 'आरती और अंगारें' काव्य संकलनों की सभी रचनाएँ कवि के तिक्त और मधुर, विकट और सरल, मिलन और बिछुड़न राग और विराग, उल्लास और विषादयुक्त संवेदना की अन्त: स्फुरित आत्मवाणी है । कवि अपनी अतृप्त काम-वासना के बारे में भी खुलकर कहता है-

"**प्यास वारिधि से बुझाकर**, **भी रहा अतृप्त हूँ मैं**
कामिनी के कुच-कलश से आज कैसा प्यार मेरा" (मधुकलश)

एकाकीपन से घने साक्षात् के बाद जब बच्चन उबरने लगता है तो उसे मिलन की रात्रि वासनामयी लगती है । ऐसी वासनामयी यामिनी (रात) में वह अपने साथी को सोने नहीं देता और उस मधुर बेला में बहुत कुछ कर गुजरने की तमन्ना रखता है । इसी हसरत से वह अपनी जीवन सखि से कहता है-

"सखि! यह रातों की रात नहीं सोने की
सखि! यह रागों की रात नहीं सोने की"
और फिर- "आग चुम्बन से निकलती है हमारे
और बिजली दौड़ती आलिंगनों में" (मिलन यामिनी)

कवि यह भी कहता है-

'कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ

13.4.4 निराशावाद 'क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी'

जीवन में जहाँ उल्लास, मस्ती, प्रेम, आसक्ति, सुखानुभूति होती है, वहीं विषाद, कष्ट, विराग, अनासक्ति, दुख एवं घोर निराशा भी । बच्चन के जीवन में भी यह सब अनवरत गतिशील रहा । बच्चन के काव्य की निराशा और विषाद चेतना कोई उधार ली गई नहीं अपितु कड़े संघर्षो में भोगी गई है । बच्चन काव्य की सबसे बड़ी खूबी ही यही है कि यहाँ कोई मिलावट, आडम्बर या बनावट नहीं है। सब कुछ सहज, स्वाभाविक एवं अनुभूत कटु सत्य है ।

युवा बच्चन की खुमारी, मस्ती एवं मादकता का नशा जब कम होता है तो कवि मन व्याकुल होकर पुकार उठता है-

'अब वे मेरे गान कहाँ है. टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली.
मेरा व्याकुल मन बहलाने वाले अब सामान कहाँ हैं?'

कवि की निराशा और व्याकुलता 'निशानिमन्त्रण' एकान्त संगीत, 'हलाहल' आदि रचनाओं में प्रतिध्वनित होता है । यह निराशा, टूटन और ऊब उनकी प्रथम पत्नी 'श्यामा' के असामयिक निधन से उत्पन्न थी । 'निशा निमन्त्रण' तो 'सरोज स्मृति' (निराला कृत) के बाद का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत है । हृदय की ऐसी सच्ची मर्मभरी पुकार, चरम वेदना की ऐसी खरी टीस, मृत्यु के साक्षात्कार का ऐसा ईमानदार परिचय, पाठक की आँखें भिगो देने की अपूर्व क्षमता, कवि की कोमल अनुभूतियों की ऐसी कसक अन्यत्र नहीं दीखती ।

कवि जानता है कि सुख-दुख व्यक्ति को अकेले ही सहने पड़ते हैं । इसलिए वह किसी अन्य की दिखावटी संवेदनाएँ भी नहीं लेना चाहता है-

'कौन है जो दूसरे को
दुख अपना दे सकेगा?
कौन है जो दूसरे से
दुख उसका ले सकेगा? क्यों हमारे बीच धोखे का रहे व्यापार जारी

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूँ ?' (निशा निमन्त्रण)
एकाकीपन की निराशा में बच्चन कहते हैं-
'मुझसे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल'

13.4.5 आशावाद 'जो बीत गई सो बात गई'

घनघोर निराशा के क्षणों में भी बच्चन हिम्मत नहीं हारे और परिस्थितियों से जूझते रहे, संघर्ष करते रहे । कवि ने 'सतरंगिनी' में आशा भरे गीत गाकर निराशा के गहन अंधकार पर विजय प्राप्त की । कवि स्वयं कहता है- "सतरंगिनी" अंधकार के उपर प्रकाश, विध्वंस के उपर निर्माण, निराशा के ऊपर आशा और मरण के ऊपर जीवन की जीत का गीत है । यह कोई सस्ता आशावाद नहीं है । यह अश्रु, स्वेद, रक्त का मूल्य चुकाकर उपलब्ध किया गया है । बच्चन प्रकृति के माध्यम से स्वयं को समझाते हैं-
'**जो बीत गई सो बात गई**'
जीवन में एक सितारा था
माना, वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया
अंबर के आनन को देखो
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
+ + +'
कब अम्बर शोक मनाता है
निर्माण कविता में कवि कहता है
'नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख
+ + +
नीड़ का निर्माण फिर-फिर
नेह का आहान फिर-फिर ।'
'मधुशाला' संकलन की 'जीवन-तरुवर शीर्षक कविता व मधुकलश की 'लहरों का निमंत्रण' व 'री हरियाली' कविताएँ संघर्ष व कर्मरत रहने की प्रेरणा देने वाली प्रसिद्ध कविताएँ हैं ।

13.4.6 जीवन-संघर्ष 'संघर्ष जीवन में धँसा'

बच्चन के जीवन और काव्य दोनों में संघर्ष की प्रवृत्ति दिखाई देती है । संघर्षो में जन्में बच्चन को आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में अनेक झंझावत आये । लोगों ने उनके परिवार पर उन पर लांछन लगाये, लेकिन वे टूटे नहीं, हारे नहीं । उनका भीतरी लौह पुरुष टूटना और झुकना नहीं जानता था, इसीलिए वे सदैव विषम परिस्थितियों में भी अडिग रहे । वे कहते हैं-
"जो अपने कंधों से पर्वत से बढ़ टक्कर लेते है

पथ की बाधाओं को जिनके पाँव चुनौती देते हैं ।
जिनको बाँध नहीं सकती है लोहे की बेडी-जंजीर
मैं हूँ उनके साथ खड़ी जो सीधी रखते अपनी रीढ़"
(धार के इधर उधर)
जय-पराजय की चिन्ता किए बिना बच्चन आगे बढ़ते रहे । संघर्षो में हार कर रास्ते में रुकना उन्हें पसन्द नहीं-
'है हार एक तरफ पड़ी, है जीत एक तरफ खड़ी,
संघर्ष जीवन में धँसा यह भी नहीं मैं जानता" (एकान्त संगीत)
आत्माभिमानी एवं संघर्षशील बच्चन कहते हैं-
क्षतशीश मगर नतशीश नहीं (एकान्त संगीत)

13.4.7 मानवतावाद 'मानवता है दान, दया, दम'

बच्चन काव्य में व्यापक मानव हित, आम आदमी के जीवन, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति के स्वर सुनने को मिलते हैं । मानवतावाद ही प्रगतिवाद है, और यह बच्चन काव्य में उभरा है । बंगाल का काल मानवतावादी भाव से प्रेरित रचना है । कवि के अनुसार "मानवता की उपेक्षा करके कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सकता ।" बच्चन कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति इंसान से अपरिचित रहकर भगवान को पहचानने का दावा करता है तो यह झूठ को सिवा और कुछ नहीं है-
"**जो नहीं इंसान को पहचानता**
भगवान को पहचानता?
मानवों का दुख, सुख बल भीति जाने
प्रीति जो न, मुँह न खोले " (आरती और अंगारे)
'बुद्ध और नाचघर' में भी कवि ने भगवान के माध्यम से आज के मान की विकृतियों को उजागर करके व्यापक मानव हित की बात की है । वे कहते हैं-
"**मानवता है दान, दया, दम**
यहाँ कोई नहीं देता है,
दिया कहीं पाने का अब विश्वास मर गया ।
जो देता है, यहीं कहीं उससे ज्यादा,
पा लेने को ।" (उभरते प्रतिमानों के रूप)

13.4.8 राष्ट्रीयता देश हित कारागार. . . स्वतन्त्रता का द्वार'

बचपन से ही कवि में राष्ट्र के प्रति सम्मान एवं प्रेम की भावना रही है । यही वजह है कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संबंधी विविध आन्दोलनों में कवि ने हिस्सा भी लिया । स्कूली जीवन में उनका लिखा राष्ट्र गीत प्रसिद्ध हुआ" सर जाये तो जाये पर हिन्द आजादी पाये।' राष्ट्रीयता का भाव प्रखर तो नहीं रहा लेकिन सूक्ष्म भाव यत्र तत्र सर्वत्र देखा जा सकता है । 'मधुशाला', 'बंगाल का काल', 'धार के इधर उधर', 'चार खेमे चौंसठ खूँटे', 'दो चट्टानें', 'बुद्ध और नाचघर', 'उभरते प्रतिमानों के रूप' आदि रचनाओं में इस भाव की

कविताएँ खूब हैं । चीन द्वारा भारत पर हुए आक्रमण एवं विनाश की तज्जन्य परिस्थितियों की एक कविता है- '26-1-66' । इसमें चीन से पराजय की मानसिकता और कवि का आहत स्वाभिमान इन शब्दों में मुखरित हुआ है-

"ये सेना के नौजवान है '
जो दुश्मन के मुकाबले
नहीं टिक सके ।"

13.4.9 सामयिक बोध 'भूमि आज खजूरधर्मी हो गई है'

बच्चन के परवर्ती काव्य में हमें समसामयिक परिवेश की अभिव्यक्ति भी मिलती है । 'बंगाल का अकाल', 'खादी के फूल', 'सूत की माला' व 'बुद्ध और नाचघर जैसी रचनाओं में सामयिक परिवेश से जुड़ाव की अभिव्यक्ति मिलती है । 'दो चट्टाने' व 'बहुत दिन बीतें में सामयिक बोध का चिन्तन अधिक प्रखर रूप में मिलता है ।

'त्रिभंगिमा' की एक कविता में मनुष्य की स्वार्थी वृत्ति व विकृत स्वभाव की अभिव्यक्ति प्रभावशाली ढंग से हुई है-

'भूमि आज खजूरधर्मी हो गई है
कहीं कुछ बीजो लगाओ
समय पाकर वह
प्रलम्ब खजूर में ही बदल जाता
भूमि भूला गगन से नाता बनाता '

समाज का दारुण यथार्थ, विसंगति एवं विवशता 'सत्य की हत्या' नामक कविता में मूर्तित हुई है-

'आज सत्य
असत्य इतना हो गया है
कान में सीसा गला
ढलवा सकेंगे
सत्य सुनने को नहीं तैयार होंगे '

13.5 बच्चन काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

बच्चन बहुश्रुत एवं लोकप्रिय कवि हैं । उनकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण उनके संप्रेषण में मार्मिकता एवं शक्तिशाली शब्द-चयन का होना है, बच्चन ने छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि के बावजूद शैली-शिल्प का जो ढाँचा हिन्दी पाठकों के समक्ष अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया, वह अपने आप में ऐतिहासिक हैं । लाखों पाठकों तक बच्चन की कविताओं का जो जादू बरसा, जो स्वर लहरियों बच्चन के गीतों की उनके मधुर कण्ठ से प्रसवित हुई, वे आज भी मन-मस्तिष्क में 'हिप्नोटिज्म' की तरह सिर चढ़कर बोल रही है । सहज एवं विशिष्ट अभिव्यंजना के ढाँचे से बच्चन ने कविता का सामाजिकीकरण किया ।

बच्चन की काव्यभाषा की सहज संप्रेषणीय क्षमता के कारण ही उनकी वैयक्तिक भावनाओं की कविताओं से भी पाठकगण अभिभूत हुए और हो रहे हैं । उनकी भाषा सहज, अनलंकृत, अनाडम्बरयुक्त, परिष्कृत, अभिधायुक्त, मधुर एवं सर्वत्र सरल सुबोध है । इसी ढाँचे ने छायावादी भाषा-शैली के ढाँचे से टक्कर ली । भाषा की अद्भुत प्रभाव सामर्थ्य के कारण बच्चन जनमानस के कवि हुए और कविता को जन-मन से सम्पृक्त किया । सहज संवेद्यता, सरलता, संप्रेषणीयता एवं मार्मिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से बच्चन की भाषा ने लोकप्रियता के समस्त पायदानों पर शिखर की छलाँग लगाई है । अप्रस्तुत विधान, बिम्ब, प्रतीक, शब्द प्रयोग एवं काव्यरूप आदि के विविध शैल्पिक तत्वों के आधार पर हिन्दी कविता का नवजागरण किया । बच्चन का शैल्पिक प्रदेय इसी में है कि उनकी कविता सर्वाधिक पाठकों द्वारा पढ़ी गई है । इसका कारण सहज, सरल, प्रभावी एवं मार्मिक अभिव्यक्ति ही है । अभिव्यंजना में अनावश्यक भार या विलष्टता उन्होंने कहीं भी नहीं आने दी है । शिल्प के प्रति वे सदैव जागरूक रहे । भावों व विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कभी नव-प्रयोग नहीं किया । बच्चन का कथन इस सम्बन्ध में उल्लेख्य है-

"त्वचा के ऊपर रंग-रोगन लगाने, क्रीम पाउडर पोतने की न मुझमें क्षमता है न वह मेरी रुचि के अनुकूल है । त्वचा में, मांस में दौड़ते रक्त की जितनी आभा है, कविता में उतनी ही मुझे सहा है ।"

बच्चन के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष का सम्यक् रूप से जानने-समझने के लिए उसका विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकान्तर्गत किया जा रहा है-

13.5.1 काव्य भाषा

भाषा अभिव्यक्ति की प्राणद चेतना है । बच्चन के अनुसार- "'भाषा वह बैल है, जिस पर जितना अधिक बोझा लादा जाए वह उतना ही मजबूत होता है ।" लेकिन फिर भी बच्चन उतना और वैसा ही बोझ 'भाषा' के बैल पर लादने के पक्षधर रहे जो जनता की समझ में आए । बच्चन ने समाज के अनुरूप भाषा प्रयुक्त की । यही वजह रही कि वे आमजन के कवि हुए, जनप्रिय हुए । बच्चन रचना करते समय भाव-विचारों की अभिव्यक्ति को ही ध्येय में रखते थे । इस बात में कोई दो राय नहीं है कि बच्चन की सफलता और लोकप्रियता का श्रेय उनकी सहज, सरल भाषा ही है ।

बच्चन के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काव्य की भाषा और शिल्प प्रसंगानुसार व भावानुकूल बिल्कुल भिन्न है । एक और मधुकाव्य (मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, मिलन यामिनी) की प्रेमिल मधुर, सरस, रागपगी और हृदय के तारों को झंकृत करने वाली मिठास भरी 'मालपुओं' की भाषा है, वहीं दूसरी ओर परवर्ती काव्य में समसामयिक परिवेश, यथार्थ और व्यंग्य को व्यंजित करने वाली 'करारे पापड़' की भाषा है । शब्द-प्रयोग की दृष्टि से बच्चन काव्य में उदारवादी रवैया अख्तियार करने वालों में से हैं । डॉ. जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार- "'बच्चन की काव्य -भाषा का सर्वाधिक महत्त्व उसकी शब्द-समाहार-शक्ति में निहित है ।"

बच्चन काव्य की शब्द-सम्पदा व्यापक होते हुए भी पाण्डित्य की विलष्टता से मुक्त थी । उनके काव्य में तत्सम शब्द सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं । देशज व उर्दू शब्दों की भी बहुलता है । संप्रेषणीयता, मसृणता, व्यंजनात्मकता, ध्वन्यात्मकता. शब्दानुशासन, चित्रात्मकता, वक्रता एवं मौलिकता आदि बच्चन काव्य की अनुपम विशेषताएँ हैं । कवि ने यथावश्यक विषयानुरूप जनभाषा लोक शब्दावली का भी प्रयोग किया है । जो विशेषत: त्रिभंगिमा व 'दो चट्टानों' में दृष्टव्य है ।

बच्चन की पहचान गीतकार के रूप में है । अत: गीतिकाव्य की सभी शैलीगत विशेषताएँ भी सहज ही मिल जाती हैं । बच्चन का पूर्ववर्ती या हालावादी काव्य इसी शैली में है । बच्चन काव्य की भाषा जीवन्त एवं व्यावहारिक है । वह इसलिए कि बच्चन जड़ता के नहीं 'प्रयोग' के पक्षधर हैं । इसी प्रयोग और परिवर्तन का यह सुपिरणाम रहा कि उनकी भाषा छायावादी कटघरे से बाहर निकलकर आम आदमी के दरवाजे पर खड़ी मिली ।

बच्चन की उपर्युक्त भाषिक विशेषताओं से सम्पृक्त 'निशा निमन्त्रण' के गीत की कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत है, जिसमें उनके मन के अवसाद की सघन छाया भावात्मकता के साथ चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है-

"मुझसे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल-
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्लता है
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है ।"

13.5.2 उपमान योजना

अलंकार के लिए उपमान एवं अप्रस्तुत शब्द बहुप्रयुक्त हैं,क्योंकि प्राय: सभी अलंकारों के मूल में उपमान रहता है । बच्चन कला प्रेमी कवि नहीं हैं । वे कहते हैं- "त्वचा के ऊपर रंग-रोगन लगाने, क्रीम पाउडर पोतने की न मुझमें क्षमता है और न वह मेरी रुचि के अनुकूल है । त्वचा में, मांस में दौड़ते स्वस्थ रक्त की जितनी आभा है, कविता में उतनी ही कला मुझे सह्य है ।" और यही स्वस्थ रक्त की आवश्यकता- 'कला' बच्चन काव्य में प्रयुक्त है । काव्य में उपमानों का प्रयोग अनिवार्य-सा है । उपमान-योजना को काव्य का प्राण तत्व कहा जाता है । इससे काव्य में रसार्द्रता प्रभविष्णुता, प्रेषणीयता एवं मर्मस्पर्शिता का संचार होता है । बच्चन काव्य में यही हुआ भी है ।

बच्चन के सर्जक कवि ने अपने मन-मस्तिष्क में से केवल उन्हीं उपमानों का प्रयोग और चयन किया है जो न केवल संगत, सटीक, उपयुक्त, सहज - संवेद्य, भावप्रवण, संश्लिष्ट एवं प्रभावोत्पादक हैं, अपितु कवि की उमड़ती-घुमड़ती भावनाओं के भी वाहक हैं । बच्चन ने आवश्यकतानुसार ही उपमानों का प्रयोग किया है । परम्परित उपमानों के साथ सर्वथा नवीन एवं मौलिक उपमान भी बच्चन काव्य में प्रयुक्त हुए है, जो 'आरती और अंगारे, दो चट्टानें', मिलन यामिनी आदि में देखे जा सकते हैं ।

बच्चन काव्य में प्रयुक्त नवीन प्रकृतिपरक उपमान उल्लेख्य है' जहाँ वे तारिका को पुष्पकली बताकर अपनी गहन कल्पनाशीलता का परिचय देते हैं । नभ को 'पलंग' बताना भी उनकी मौलिक प्रतिभा का द्योतक है-

'दुग्ध-उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलँग पर, आज उस पर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है
आज कितनी वासनामय यामिनी है ।'

'आरती और अंगारे' की एक कविता में कवि ने 'चाँदनी की सफेदी के लिए धूप को ठंडा' बताया है । यह उनकी उच्च प्रतिभा का ही उन्मेष है-

"इस रूपहरी चाँदनी में सो नहीं सकते पखेरू और हम भी
पूर्णिमा का चाँद अम्बर पर बढ़ा है
तारकावलि खो गई है
चाँदनी में वह सफेदी कि जैसे
धूप ठण्डी हो गई है ।.."

यहाँ चाँदनी को ठण्डी धूप बताने से दो अर्थ एक साथ ध्वनित हो रहे हैं-एक तो यह कि चाँदनी में धूप की तरह का अच्छा उजास है, दूसरा उसमें शीतलता व अनुकूलता भी है । बच्चन की आरंभिक रचनाएँ जहाँ प्रेम, मस्ती, रोमांस एवं भावानुभूतियों का सघन आलेख है, वहाँ उनकी उपमान योजना भी विषयानुरूप प्रकृतिपरक, अमूर्त एवं मसृण है । 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'निशा-निमन्त्रण', मिलन यामिनी', 'प्रणय पत्रिका' आदि प्रमुख आरंम्भिक रचनाओं में प्राकृतिक व सांस्कृतिक उपमानों का बहुलता से प्रयोग हुआ है । परवर्ती काव्य में प्रसंगानुकूल दैनिक जीवन के उपमान भी प्रयुक्त किए है । जैसे 'नमक डली-सा गल अपनापन', 'बच्चे लॉलीपॉप जिस तरह रख लेते है', 'गृद्ध-सा बैठा निरीक्षक, आदि ।

बच्चन काव्य के अलंकारों में शब्दालंकार के स्थान पर अर्थालंकारों का प्राधान्य है । इनमें उपमा, रूपक, मानवीकरण, विरोधाभास आदि प्रमुख हैं । प्रेमी दिलों के मन की राग को झंकृत कर देने की रागमयी रूपाराधना बच्चन ने अपनी 'प्रणय पत्रिका में निम्नलिखित रूपकालंकार में की है-

'वह अगस्ती रात मस्ती की, गगन में
चाँद निकला था अघूरा
किंतु मेरी गोद काले बादलों के
बीच में था चाँद पूरा ।'

कुल मिलाकर बच्चन भावप्रवण एवं वैयक्तिक अनुभूतियों के कवि हैं । अत: उनका काव्य अलंकारों के बोझ से कहीं भी बोझिल या क्लिष्ट नहीं हुआ है । जहाँ भी उनके अप्रस्तुत या अलंकार प्रयुक्त हुए है वे सहज, स्वाभाविक तो हैं ही, साथ ही कविता कामिनी के रूप-गुण का अभिवर्द्धन भी करते है ।

13.5.3 प्रतीक विधान

प्रतीकों का उद्‌गम स्थल मानव-मन है । प्रतीक अधिकाशतः संकेतों में काम करते हैं । प्रतीक को अंग्रेजी में सिम्बल (symbol) कहा जाता है । प्रतीक को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि- "प्रतीक वे भावाभिव्यंजक तत्व है जो किसी वस्तु, व्यक्ति, गुण

या भाव के विशेष वाहक होते हैं । ' साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग आरम्भ से ही होता आया है । आलोचकों ने प्रतीकों के अनेक भेद किये ।

बच्चन के काव्य में भी प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है ।इनके काव्य में प्रयुक्त प्रतीक सरल एवं सुबोध हैं । प्रतीकों के सम्बन्ध में बच्चन का कहना है कि 'काव्य में किसी भाव विशेष को कम शब्दों में प्रतीकों के प्रयोग से अभिव्यक्त किया जा सकता है, ये विचारों को मूर्त रूप प्रदान करते हैं । 'जाल समेटा' में वे लिखते हैं-जीवन के सबसे गहरे सत्य प्रतीकों में बोला करते हैं ।

बच्चन का काव्य प्रतीकों से शोभित है । उनके काव्य में प्रतीकों के प्रयोग से कहीं भी जटिलता, दुरूहता और क्लिष्टता नहीं आ पाई है । अपितु हुआ यह है कि इनके सुष्ठु प्रयोग से अर्थ-विस्तार, अभिव्यक्ति में सशक्तता, व्यंग्य में तीखी कचोट एवं काव्य सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया है । बच्चन के काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों एवं जीवन व्यापार या परिवेश से सम्बन्धित प्रतीकों की अधिकता देखने को मिलती है । बच्चन ने प्राकृतिक प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग किया है । ये प्रतीक उनके आरम्भिक काव्य में अधिक मिलते है । सांस्कृतिक-पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग परवर्ती काव्य विशेषत: 'दो चट्टानें', 'चार खेमें चौंसठ खूँटे', 'त्रिभगिमां' व 'जाल समेटा' जैसी रचनाओं में अधिक देखे गये हैं।

बच्चन के मधुकाव्य विशेषकर 'मधुशाला' में परिवेश सम्बन्धी प्रतीक पर्याप्त मिलते हैं । 'मधुशाला', 'हाला', 'प्याला', 'मधुबाला' / 'साकीबाला' आदि प्रतीक अभिधात्मक अर्थ के साथ-साथ प्रतीकात्मक अर्थ भी स्पष्ट करते है । मधुकाव्य में एक- एक प्रतीक आठ-आठ, दस-दस अर्थो को व्यक्त करता है । 'मधुशाला' को मानसरोवर, सुधारक, शिव-मंदिर, उपवन, प्रचारक, बलिवेदी आदि के अर्थो में प्रयुक्त किया गया है । हाला को ईश्वर, गंगाजल, प्रेमिका, हिमजल एवं उद्दाम सुख भोग की लालसा आदि के अर्थों में इस्तेमाल किया गया है । 'मधुबाला' या 'साकीबाला' को पुजारी, पौधे, मुरली, चित्रकार, रागिनी के अर्थ में. प्याला को कवि, भूमि. फूल, मंजरिका के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है ।

'निशा निमन्त्रण' में दीवाली शब्द खुशी के अर्थ में इस्तेमाल हुआ है । बच्चन ने स्वयं कहा है कि 'प्रतीकों के माध्यम से रुबाइयों में मैंने युग की समस्याओं को व्यक्त किया है । कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि बच्चन ने अपने काव्य में प्रतीकों के माध्यम से सामयिक परिवेश को तीखी अभिव्यक्ति प्रदान की ।

13.5.4 बिम्ब विधान

कल्पना ही बिम्ब के रूप में व्यक्त होती है, अर्थात् बिम्बों के माध्यम से ही कल्पना का प्रस्तुतिकरण होता है । बिम्ब को भाव-गुम्फित शब्दचित्र कहा जाता है ।इनके मूल में, रागतत्त्व निहित होता है जो अधिकांशत: सर्जनात्मक कल्पना से निर्मित होते है । बच्चन का जीवन ही काव्य है । उनका यही जीवन-संगीत कविता में प्रतिबिम्बित हुआ है । उनका जीवन बिम्बों में मूर्त हो गया है । उनके बिम्बों में जहाँ एक ओर ताजगी और नवीनता है, वहीं प्रस्तुतिकरण में परिचितता भी । बच्चन के काव्य में प्रयुक्त बिम्ब सहज, सरल एवं स्वाभाविक है । भावपरक बिम्बों के प्रस्तुतीकरण में बच्चन को बहुत

अधिक सफलता मिली है जो कि उनके मधुकाव्य व प्रेमकाव्य (आरम्भिक रचनाओं) में देखे जा सकते हैं । वैसे उनके काव्य में भावपरक बिम्बों के साथ-साथ चाक्षुष बिम्ब, घ्राण बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, मानस बिम्ब, चिंतन बिम्ब, इन्द्रिय बिम्ब, ध्वनि बिम्ब आदि भी बहुलता से देखे जा सकते हैं । कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

अलंकृत बिम्ब-

दुग्ध-उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलँग पर आज उस पर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है!

भावपरक बिम्ब-

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी?
क्या करूँ?
एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा?

चिंतन बिम्ब-

भाग्य लेटे का सदा लेटे रहा है,
जो खड़ा है भाग्य उसका उठ खड़ा है,
चल पड़ा जो भाग्य उसका चल पड़ा है

स्पर्श संवेद्य बिम्ब-

आग चुम्बन से निकलती है हमारे
और बिजली दौड़ती आलिंगनों में,

चाक्षुष एवं इन्द्रिय बिम्ब-

वह अगस्ती रात मस्ती की. गगन में
चाँद निकला था अधूरा,
किन्तु मेरी गोद काले बादलों के
बीच में था चाँद पूरा ।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि बच्चन काव्य में प्रयुक्त बिम्बों का रंग बड़ा ही चटकीला और गहरा है । उनके बिम्बों में ताजगी परिचितता औचित्य, संशलिष्टता, भावुकता, वैचारिकता, आदि के गुण देखे जा सकते हैं ।

13.5.5 काव्यरूप एवं छंद प्रयोग

बच्चन का काव्य गीतिप्रधान है । बच्चन गीतकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं । काव्यरूप की दृष्टि से उनकी रचनाएँ मुक्तक की श्रेणी में रखी जा सकती है । मुक्तक में भी उनका अधिकांश काव्य सुमधुर सरस रागमयी स्वरों के कारण गीतात्मक है । आरम्भिक रचनाओं में मधुकाव्य से लेकर विषाद और दुखभरी 'निशानिमंत्रण', 'आकुल अन्तर', 'एकान्त संगीत', 'हलाहल व सतरंगिनी', 'मिलनयामिनी', 'प्रणयपत्रिका' में गीतात्मक मुक्तक हैं ।परवर्ती रचनाएँ विचारमुक्तक की श्रेणी में रखी जा सकती है ।

बच्चन ने दो लम्बी कविताओं की भी रचना की है । ये है- 'बंगाल का काल' और 'दो चट्टानें' । इनमें से 'दो चट्टानें' को ही लम्बी कविता के दृष्टिकोण से पूरी तरह सफल व प्रसिद्ध रचना कहा जा सकता है ।

छंदों की बात करें तो यह कहा जा सकता है कि बच्चन का आरम्भिक काव्य गेय छंदों में रचित है । बच्चन का काव्य गीतिप्रधान है । उनकी सर्व प्रसिद्ध रचना 'मधुशाला' उर्दू के रुबाई छंद में रचित है । 'मिलन यामिनी' और 'आरती और अंगारे' में उन्होंने रोला छंद का प्रयोग किया है । 'आरती और अंगारे' में हरिगीतिका छंद भी प्रयुक्त हुआ है । 'त्रिभंगिमा' में सरसी छंद व 'मिलन यामिनी' में अठारह मात्राओं वाला चामरी छंद इस्तेमाल में आया है । मुक्त छंद का प्रयोग 'बंगाल का काल' में हुआ है । बच्चन के काव्य में ध्वनि की लय पर आधारित मुक्त छंदों का प्रयोग अधिक हुआ है । विदेशी छंद 'सॉनेट' का प्रयोग 'निशा निमन्त्रण' में हुआ है, जिसमें उन्हें विशेष सफलता मिली है । परवर्ती रचनाओं में लोकधुनों पर आधारित छंदों की रचनाएँ 'त्रिभंगिमा' व 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' है । कहा जा सकता है कि जितनी सफलता उन्हें रुबाई, सॉनेट, रोला, हरिगीतिका व सरसी छंदों वाली रचनाओं में मिली है उतनी सफलता मुक्त छंदाधारित रचनाओं में नहीं प्राप्त हो सकी है ।

13.6 सारांश

बच्चन बहुपठित एवं बहुश्रुत कवि हैं । कवि सम्मेलनों में जितनी अधिक माँग बच्चन की रही, अपने काल में उतनी किसी अन्य कवि की नहीं । इसका सीधा-सच्चा कारण एक ही है कि वे एक ऐसे कवि-गीतकार हैं जिनके भाव-शिल्प का ढाँचा आम आदमी को सीधा जोड़ता है । उनकी भावानुभूतियाँ सीधी, सरल, सहज एवं जीवन के विविध उतार-चढ़ावों के आलोड़न-विलोड़न पर आधारित हैं । आडम्बर, कृत्रिमता, अलंकरण उन्हें न तो वैयक्तिक जीवन में पसन्द थे और न ही काव्य जीवन में । उन्होंने तो स्वानुभुतियों को स्वान्तः सुखाय के लिए सहज-स्वाभाविक, सच्ची, ईमानदार व पारदर्शी भाषा-शैली में व्यक्त किया ।

बच्चन की कविता उनके जीवन का संगीत है. जिसमें सभी तरह के सुर एवं राग हैं. नये एवं पुराने का संगम है । इसे हम 'रीमिक्स' संगीत कहें, तो भी अनुचित नहीं होगा । उन्होंने कहीं मिलन के गीतों को लय दी है तो कहीं विरह के गीतों को । उनके संगीत में हृदय की मधुर रागिनी है तो विषादमयी तान भी । उन्होंने कविता के माध्यम से अपने आप को ही नहीं, अपितु व्यक्तित्व को भी परोस दिया है ।उनकी कविता की लय का 'सा रे गा मा' के सप्तम स्वरों की तरह उतार-चढ़ाव की कविता है । यह उतार-चढ़ाव उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है । उनका यही जीवन संगीत कविता में प्रतिबिम्बित हुआ है ।

बच्चन की लोकप्रियता का प्रमुख कारण उनके सम्प्रेषण में मार्मिकता एवं शक्तिशाली शब्द-चयन का होना है । उनका काव्य उनके भीतरी मन में पैठे हुए का हृदयोद्गार है । बच्चन का काव्य उनके हृदय का सहज गान है । हृदय के भाव सहज गान के रूप में उनके मधुर कंठ से गीतों के रूप में निसृत हुये हैं । बच्चन की अधिकांश भावानुभूति

उनके गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा सकी है । बच्चन के काव्य का श्रेष्ठतम अंश उनके गीतों में ही है ।

काव्य भाषा की दृष्टि से बच्चन की भाषा अपने अन्य समकालीन कवियों से तो ऊपर है ही, साथ ही सहज संवेद्यता ,सरलता, सम्प्रेषणीयता एवं मार्मिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से भी बच्चन की भाषा ने कविता को न केवल आम आदमी से जोड़ा अपितु लोकप्रियता की दृष्टि से भी वे शीर्षस्थ स्थान पर विराजमान हुए।

बच्चन की आरम्भिक रचनाओं की जो भाषा थी, उस भाषा ने ही चमत्कारिक ढंग से कविता को जन-मन तक पहुँचाया। बच्चन के काव्य का सबसे सशक्त स्वर प्रणयानुभूति का है । इसके अतिरिक्त मस्ती एवं अल्हड़ता, दुखवाद, निराशावादी भावना, एकाकीपन की पीड़ा, क्षणवाद, आशावाद, संघर्षशीलता, देशप्रेम एवं सामयिक चेतना उनके काव्य का प्रमुख स्वर है ।

बच्चन के काव्य का अभिव्यंजना पक्ष भी बहुत सशक्त है । उनकी काव्यभाषा की सहज संप्रेषणीय क्षमता के कारण ही उनकी वैयक्तिक भावनाओं की कविताओं से भी पाठकगण अभिभूत हुए और हो रहे हैं । उनकी भाषा सहज, अनलंकृत, अनाडम्बरयुक्त परिष्कृत, अभिधायुक्त, मधुर एवं सर्वत्र सरल है । उन्होंने आवश्यकता एवं प्रसंगानुसार तत्सम, तद्भव, उर्दू अंग्रेजी व प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है । फिर भी तत्सम शब्दावली सर्वाधिक प्रयुक्त हुई है । अभिधात्मकता के बावजूद परवर्ती काव्य में व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग अपना प्रभाव छोड़ता है । प्रेम एवं मस्ती के मादक मधुकाव्य में माधुर्यगुण की धारा सतत् प्रवहमान है । जरूरत के हिसाब से मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सहज एवं प्रभावी प्रयोग भी हुआ है । अलंकारों में बच्चन ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व मानवीकरण को अधिक स्थान दिया है । उपमानों में परम्परित के साथ नवीन एवं मौलिक उपमानों का भी प्रयोग हुआ है ।

बच्चन काव्य में प्राकृतिक, ऐतिहासिक व परिवेशजन्य प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, मगर बहुलता प्राकृतिक प्रतीकों की है । मधु-प्रतीकों की प्रेरणा खैयाम काव्य से मिली है । बिम्ब प्रयोग में सद्यता, ताजगी व सुपरिचितता से इनका काव्य सुष्ठु हो गया है । बच्चन काव्य की उपादेयता एवं लोकप्रियता के विषय में डी. विजयेन्द्र स्नातक का कथन उल्लेख्य है- ' 'बच्चन ने लोकप्रियता के स्तर पर जो सफलता प्राप्त की है वह उनके अनेक समकालीन कवियों के लिए ईर्ष्या का विषय बनी रही । " बच्चन का शैल्पिक प्रदेय इसी में है कि इनकी कविता सर्वाधिक पाठकों द्वारा पढ़ी गई है । इसका कारण सहज, सरल, प्रभावी और मार्मिक अभिव्यक्ति ही है । अभिव्यंजना में कहीं भी अनावश्यक भार उन्होंने भाषा पर नहीं डाला । बच्चन के कवि की भावना भी सदैव ईमानदार, पारदर्शी एवं आम मानव की सहज संवेद्य अनुभूति की ही थी । इस सम्बन्ध में स्वयं बच्चन का कथन महत्त्वपूर्ण है- ' 'रचना करते समय भाव-विचारों की अभिव्यक्ति ही मेरा ध्येय होता है । शब्दों अथवा अभिव्यंजना के नये प्रयोगों के लिए कुछ लिखना मुझे अस्वाभाविक लगता है । "

समग्रत: निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि बच्चन हमेशा न केवल चर्चित रहेंगे. अपितु पठनीय भी रहेगें ।

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता पंक्ति में बच्चन के काव्य की कौनसी प्रवृत्ति व्यक्त है?
2. 'मुझसे मिलने को कौन विकल
   मैं होऊँ किसके हित चंचल' में निहित भाव को बच्चन की काव्य प्रवृति के आधार पर स्पष्ट कीजिए ।
3. बच्चन का जीवन संघर्षमय रहा । इसे कथन को उनके काव्य के - आधार पर प्रमाणित कीजिए ।
4. बच्चन के काव्य की किन्हीं तीन प्रवृत्तियों का मूल्यांकन कीजिए ।
5. 'क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी' गीत के मूल भाव के आधार पर बच्चन के काव्य में इस भाव-धारा के आने का कारण स्पष्ट कीजिए ।
6. बच्चन के काव्य की लोकप्रियता के कारणों की पड़ताल कीजिए ।
7. 'बच्चन का काव्य प्रभावित करता है' पक्ष या विपक्ष में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।
8. 'बच्चन का काव्य उनके भीतरी मन में पैठे हुए का हृदयोद्गार है' इस कथन की सम्यक् विवेचना कीजिए ।
9. 'मैं काव्य को स्वयं कथन में अवतरित होने के लिए छोड़ देता हूँ । बच्चन के इस कथन की उनके काव्य के आधार पर व्याख्या कीजिए ।

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ मनोज गुप्ता : बच्चन का काव्य-शिल्प, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, 2007
2. सीमा जैन : बच्चन कविता और जीवन की अन्तःसूत्र, ईशा ज्ञान दीप, दिल्ली, 2000
3. डॉ. श्याम सुन्दर घोष : बच्चन का परवर्ती काव्य, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1967
4. डॉ. नवल किशोर भाभड़ा : बच्चन : जीवन और काव्य, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1978
5. डॉ. जय प्रकाश भाटी : बच्चन का साहित्य: तथ्य और शिल्प, संघी प्रकाशन, जयपुर,1980

इकाई-14 नरेन्द्र शर्मा का काव्य

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 काव्य वाचन

14.2.1 पाषाण नहीं था

14.2.2 आज के बिछुड़े

14.2.3 पापी

14.2.4 युग बदला

14.2.5 प्यासा निर्झर

14.2.6 कर्णोत्थान ('सुंवर्णा' काव्य से)

14.3 प्रसंग सहित व्याख्या

14.3.1 कविता परिचय (पाषाण नहीं था)

14.3.2 कविता परिचय (आज के बिछुड़े)

14.3.3 कविता परिचय (पापी)

14.3.4 कविता परिचय (युग बदला)

14.3.5 कविता परिचय (प्यासा निर्झर)

14.3.6 कविता परिचय (कर्णोत्थान)

14.4 सारांश

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.6 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 उद्देश्य

नरेन्द्र शर्मा द्वारा रचित और पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं की व्याख्या विवेचना के माध्यम से आप-

- कविताओं में व्यक्त विषय-वस्तु का विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- महत्वपूर्ण पद्यावतरणों के शैल्पिक सौंदर्य से परिचित होते हुए यह भी जान सकेंगे कि नरेन्द्र शर्मा सहज भाषा-शिल्पी के रूप में हमारे सामने आये हैं ।
- पद्यावतरणों की व्याख्या के माध्यम से कवि की भावुकता, सहज सम्प्रेषणीयता के साथ-साथ उसकी वैचारिक मनोभूमि से परिचित हो सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

काव्य-क्षेत्र में नरेन्द्र शर्मा का प्रवेश छायावादी कवि के रूप में हुआ था । फलस्वरूप उनकी आरम्भिक कविताओं में कल्पना, प्रेमानुभूति, जीवनव्यापी करुण संवेदना, प्रकृति-

सौंदर्य आदि का गहन भावात्मक चित्रण मिलता है । वैसे, उनकी कविता का मुख्य स्वर वैयक्तिक अनुभुतियों की अभिव्यक्ति है । ये अनुभूतियाँ कहीं प्रणय-गीतों के रूप में व्यक्त हुई हैं, कहीं कवि के व्यक्तिगत हर्ष-विषाद को प्रकट करती हैं और कहीं प्रकृति के प्रति उनके गहरे लगाव की प्रतीक हैं । अपने ही सुख-दुख से जीवन की पहचान करने की प्रवृत्ति और कवि-मानस की रागात्मकता इन कविताओं की स्थायी निधियाँ हैं । नरेन्द्र शर्मा के कविता-संग्रहों में 'प्रवासी के गीत', 'हंसमाला', 'पलाशवन', 'मिट्टी का फूल', 'प्रभातफेरी', 'कदली-वन', 'प्यासा निर्झर', 'अग्निशस्य' और 'बहुत रात गए' उल्लेखनीय हैं । इनमें गीतकार के रूप में उनकी प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है । 'द्रौपदी', सुवर्णा', उत्तरजय, 'सुवीरा' और 'मनोकामिनी' उनकी आख्यानक रचनाएँ हैं । मुक्तक और प्रबन्ध दोनों ही काव्य-रूपों को उन्होंने आन्तरिक प्रेरणा से अपनाया है, किन्तु भाव-तरलता, जीवन्तता और प्रवाहमयता की जो प्रवृत्तियाँ उनकी मुक्तक कविताओं और गीतों में लक्षित होती हैं, वे अपनी प्रभविष्णुता में प्रबन्ध-रचनाओं को बहुत पीछे छोड़ जाती हैं ।

14.2 काव्य वाचन

14.2.1 पाषाण नहीं था

मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
किसी शापवश हो निर्वासित
लीन हुई चेतनता मेरी ।
मन-मन्दिर का दीप बुझ गया,
मेरी दुनियाँ हुई अँधेरी!
पर यह उजड़ा उपवन सब दिन बियाबान सुनसान नहीं था!
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
मेरे सूने नभ में शशि था
थी ज्योत्सना जिसकी छवि-छाया,
जीवित रहती थी जिसको छू
मेरी चन्द्रकान्तमणि-काया,
ठोकर खाते मलिन ठीकरे-सा तब मैं निष्प्राण नहीं था!
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
था मेरा भी कोई, मैं भी
कभी किसी का था जीवन में,
बिछुड़ा भी, पर भाग्य न बिगड़ा
रही मधुर सुधि जब तक मन में,
पर क्या से क्या बन जाऊँगा, इसका कभी गुमान नहीं था!
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!

14.2.2 आज के बिछुड़े

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आज से दो प्रेम योगी अब वियोगी ही रहेंगे ।
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
सत्य हो यदि, कल्प की भी कल्पना कर धीर बाँधूँ
किन्तु कैसे व्यर्थ की आशा लिए यह योग साधूँ?
जानता हूँ अब न हम तुम मिल सकेंगे ।
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आयेगा मधुमास फिर भी, आयेगी श्यामल घटा घिर,
आँख भर कर देख लो अब, मैं न आऊँगा कभी फिर ।
प्राण तन से बिछुड़ कर कैसे मिलेंगे?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
अब न रोना, व्यर्थ होगा हर घड़ी आँसू बहाना,
आज से अपने वियोगी हृदय को हँसना सिखाना,
अब न हँसने के लिए हम तुम मिलेंगे ।
आज के बिछुडे न जाने कब मिलेंगे?
आज से हम तुम गिनेगे एक ही नभ के सितारे,
दूर होंगे पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे,
सिंधु-तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे ।
आज के बिछुडे न जाने कब मिलेंगे?
तट नदी के, भग्न उर के दो विभागों के सदृश हैं,
चीर जिनको विश्व की गति वह रही है, वे विवश हैं,
एक अथ-इति पर न पथ में मिल सकेंगे ।
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
यदि मुझे उस -पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ न मैं असहाय या निरुपाय होता,
किन्तु क्या अब स्वप्न में भी मिल सकेंगे?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आज तक किसका हुआ सच स्वप्न,
जिसने स्वप्न देखा? कल्पना के मृदुल कर से मिटी, किसकी भाग्य-रेखा?
अब कहाँ सम्भव कि हम फिर मिल सकेंगे?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आह, अन्तिम रात वह, बैठी रहीं तुम पास मेरे,
शीश कंधे पर धरे, घन-कुन्तलों से गात घेरे,
क्षीणस्वर में कहा था, 'अब कब मिलेगे?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

कब मिलेंगे?' पूछता मैं विश्व से जब विरह-कातर,
कब मिलेंगे?' 'गूँजते प्रतिध्वनि-निनादित व्योम-सागर,
'कब मिलेंगे?' प्रश्न, उत्तर 'कब मिलेंगे?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

14.2.3 पापी

यहाँ कौन है जग में पापी?
वह मेरा भोला भाई है,
यह मेरा भूला भाई है,
यहाँ कौन इस जग में पापी?
बालक हैं थक ही जाते हैं,
पल भर कहीं ठहर जाते हैं,
क्या डर है, यदि कठिन मार्ग में
संग न ये शिशु चल पाते है?
कंटकमय जग-जीवन-वन है,
मार्ग निरन्तर अगम गहन है,
हे गम्भीर ज्ञान के ज्ञाता
बालक हैं थक ही जाते हैं!
महाव्रती, हे गगन तपस्वी,
ये लघु शिशु हैं, चंचल मन हैं,
ज्ञान-शून्य, निर्बोध, सरलचित्
शिशु ससीम हैं, कोमल-तन हैं,
देखे फूल कली किसलय-दल,
क्रीड़ातुर हो उठे चपल-जल!
ये क्या जानें जग मिथ्या है,
यह असार जग की माया है?
भ्रमित हुए भूले भृंगों से ।
लगे खेलने नव-रंगों से!
प्यास लगी, देखी मरीचिका,
भूल गये अपनापन मरु में,
भूख लगी, देखे सुवर्ण-फल,
भूले शिशु सोने के तरु में,
कौन नहीं हो उठता चंचल?
कौन नहीं भूला जीवन में?
केवल शिशु ही थे, यदि भूले
जीवन- मरु में तृष्णा- तरु में!
हे इन्द्रियजित, अहे अचंल,

ये शिशु हैं कुन्दन-से निर्मल!
विकसित कुसुमों सुस्मिति-मिस
डाली डाली आमंत्रित कर,
शूल चुभाती थी - हा निर्दय-
शिशुओं को यों सम्मोहित कर,
मरु की मिथ्या मृग- मरीचिका,
इन्हें भ्रमित थी जीवन में,
तृष्णा नित फैला सुवर्ण-फल
इन्हें लुभाती थी निज वन में,
वंचित भ्रमित दुखित नत दुर्बल,
ये ही हैं वे पापी निर्बल!
कंटकमय जग-जीवन-वन है,
मार्ग निरन्तर अगम गहन है,
लो, अब तो निशि भी घिर आई,
निर्जन में छाई अँधियारी,
ज्ञानवान् हे महापुरुष! क्या
छोड़ चलोगे इनको वन में?
हे प्रदीप! क्या इन्हें भटकते
ही छोड़ोगे इस जीवन में?
भूले- भटके हैं शिशु निर्बल!
ये पापी कुन्दन-से निर्मल!
यहाँ कौन है जग में पापी?
यहाँ कौन इस जग में पापी?

14.2.4 युग बदला

युग बदला, देता तुझे चुनौती युग-जीवन!
सुन खँडहर- गुहा-विजन- वन-वासी, मेरे मन!
खलिहान खेत में खड़ा हुआ वह नया कृषक,
बिजली का खंभा गाड़ रहा जो बिना हिचक!
अभिमंत्रित मंत्रशक्ति से अब तू भी न झिझक,
विद्युत के अश्वारोही का कर अभिनन्दन!
शत गजबल-संयुत यंत्रशिल्प नव विश्वकर्म.
शतरूपा सृष्टि शिवालय, समुदय विश्वधर्म!
प्रत्येक व्यक्ति में व्यक्त आज अव्यक्त मर्म,
है कर्म अकुण्ठित ही विकुण्ठ का आवाहन!
भौतिक भव का मानव के प्रति अब नया भाव,
त्यागा मानव के प्रति निसर्ग ने उर-दुराव!

श्रम रंक नहीं रह गया, न अब विज्ञान राव,
पाया मिट्टी ने अंतरिक्ष का आमंत्रण!
नारी न काम-दासी, न पुरुष अब पुष्प-यष्टि,
अब नहीं चलेगी बहुत दिनों मैथुनी सृष्टि!
हो रही चतुर्दिक चिदाकाश से सूक्ष्म वृष्टि,
चिन्मय रस की सब ओर रास, जग वृन्दावन!
वह काल-कन्यका, प्रकृति-सुता, वासना-देह,
रम्या है, गम्या नहीं, हृदय में मातृ-स्नेह!
भव का सतखंडा महल बन गया भाव-गेह
है प्राणों का पुष्पक विमान उनचास पवन!
दिक्काल न अब अज्ञान और भय का कारण,
क्षण-कण करते निर्भय अशेष मंत्रोच्चारण!
अंतिम रण को कटिबद्ध पुन: नर-नारायण,
रणक्षेत्र बनेगा कारण-क्षेत्र परम पावन!

14.2.5 प्यासा निर्झर

अपने सिवा और भी कुछ है, जिस पर मैं निर्भर हूँ ।
मेरी प्यास हो न हो जग को, मैं प्यासा निर्झर हूँ ।
हटा शैल पर शैलखंड शत, अपने वक्षस्थल से,
व्यक्त करता रहा व्यथा की कथा तरंगित जल से ।
धरती पर पथ खोज रहा जो, मैं वह नीलाम्बर हूँ ।
चरणचिह्न जिस प्रभापुरुष के अगम गगन के तारे,
पहुँच नहीं पाता मन जिस तक, नयन ज्ञान के हारे,
मैं उस प्रभु की द्रवित दया का मृग-जल-बिन्दु अमर हूँ ।
किस अनजानी करुणा से प्रभु के लोचन भर आए?
अश्रुबिन्दु आकुल है, किसका दुख. कैसे हर पाए'
जग की रुदन-बीन पर मुखरित मौन मीड़ का स्वर हूँ ।
लहरों के युग भुज फैलाए, युग-युग का संवेदन!
भुजा-पाश में आन समाए. उत्पीड़ित हतचेतन !
नव करुणायन महाकाव्य का मैं पहला अक्षर हूँ ।
अन्त न होगा जीवन की परदुखहारी तृष्णा का,
पलक पोंछने को लालायित आँचल हूँ कृष्णा का ।
नश्वरता के दुख-सा जग में, मैं भी अविनश्वर हूँ ।

14.2.6 कर्णोत्थान

उत्तरायण होंगे जब सूर्य, पितामह जायेंगे जग से,
योगनिद्रा में तब तक लीन भीष्म कांचनजंघा नग से ।

तत्व प्रतिकूल और अनुकूल बँधे हैं, सूक्ष्म संतुलन में,
केन्द्र कुरुकुल के केवल भीष्म, कर्ण ने समझ लिया मन में ।
देख कर अनदेखा जो किया, कर्ण को दिखा तत्व उनमें,
कर्ण चल दिया दृष्टि सा बँधा गुरुत्वाकर्षण के गुन में ।
डूबता जब भारी जलयान, पोत लघु खिंच आते स्वयं,
भीष्म का देह-निपात हुआ, रूठने मैं न कर्ण सक्षम ।

+ + +

हो रहा होगा गृह-युद्ध! वृत्र, मैं अर्जुन यदि वासव ।
कर्ण अन्नाद-अन्न का कोश, मनोमय कोश पाँच पाण्डव ।
नहीं है जीने का उत्साह, युद्ध में यश पाने की लगन ।
कसौटी का पत्थर है कर्ण, धनंजय यदि विशुद्ध कंचन ।
युद्ध होगा कर्णार्जुन का, रहेंगे माँ के पाँच सुअन ।
जन्मदात्री को देकर देह, मिलेगा क्या न पिता का भुवन?

+ + +

कर्ण ने मन का मर्म कहा, ग्रंथियाँ खुलीं, स्निग्ध बंधन ।
पितामह मन के मुकुर बने, कर्ण ने किया आत्मदर्शन ।
शांतनव ने खोली आँखें, बहुत धीरे-धीरे यह कहा-
कर्ण तुम कौतूहल के फूल, बहावों में जो बहता रहा ।
प्रभावों से तुम प्रेरित रहे, अभावों को न पचा पाये,
हृदय में गहरी आत्मघृणा, तुम्हें आत्मीय नहीं भाये ।
अहम् ही पोषित होता रहा, रहे शोषित सब भाँति स्वजन,
अहम् की हृष्टि-पुष्टि के लिए, सहा. तुमने नित हृदय-दहन ।

+ + +

देखकर अपने प्रति अन्याय, किया अन्याय न्याय के प्रति,
अहं ने ऐसी कीली दृष्टि, न स्वीकृत मन से हुई नियति ।
विकल्पों को माना संकल्प, विपथ को माना अपना पथ ।
सूर्य-शिशु डरा डूबने से, बन गया तृणाधार अधिरथ ।
कर्ण, तुम भावहीन तो नहीं, हीन 'का भाव रहा मन में ।
महत्वाकांक्षा थी बलवती, रिक्तता थी अपनेपन में ।
रिक्तता-दीनहीनता बीज, अहम् का विश्वव्याप्त बरगद ।
अंतरा, संचारी. आभोग, विश्वसंगीत अहम् ध्रुवपद ।

+ + +

अहम् का दर्पण विश्व विशाल, अहम् ध्वनि और प्रतिध्वनि स्वयं,
अहं है अंधा और अकर्ण, अहम् के लिए अहम् ही अहम् ।
अहम् है वंश, व्यक्ति, घर-द्वार, अहम् है दुर्गे सैन्य, परिकर,
अहम् है ' राष्ट्र, देश, साम्राज्य, अहम् है धनुष, अहम् है शर ।
अहंता में ममता का मूल, शूल से फूलमाल का ग्रंथन ।

अहम् ही दानमान का हेतु अहम् दुष्करजय, वैकर्तन ।
अहम् का टेढ़ा मेढ़ा मार्ग, अहम् भूषण विषपायी का,
विष्णु का तल्प कुंडली चक्र, वचन का गुन शरशायी का ।
+ + +
अहम् से मुक्त हो सकूँ वत्स, प्रीति-शर से छिदवाया तन ।
प्रतिज्ञाबद्ध युद्ध था यजन, जयन है यह शरशैयाशयन ।
अहम् का एकमात्र उपचार प्यार, पर केन्द्र न व्यक्ति स्वयं,
अहं है शत्रु, मित्र है प्रेम, समर्पित कर दो उसे अहम् ।
अहं का स्वर्णनाग ही वृत्र, चित्रवत् आच्छादित दश दिशा,
इन्द्र का वज्र प्रेम का तेज, ध्वस्त होती जिससे भव-निशा ।
वचन जब बना नाग का पाश, बना मैं सेनानायक स्वयं,
अहम् मैं, केवल कृष्ण विवेक, समर्पित जिसको मेरा अहम् ।
अहम् अहि कर्ण-स्वर्ण-ध्वजचिह्न, कर्ण का मनोकाम भी अहम्,
अहम् की औषधि केवल प्रेम, कर्ण इतना ही आज अलम् ।
स्वस्ति, वर पौत्र, लौट जाओ, नये दिन की आहट आई?
एक गुरु के हम दोनों शिष्य, विदा, वैकर्तन गुरुभाई ।
+ + +
कर्ण का हृदय तरंगित था, विचारों का विचरण मन में,
स्वार्थपरता कातरता न थी भीष्म के जीवन-दर्शन में ।
प्रतिज्ञा प्रज्ञा पावन चरण, सत्यव्रत नाम सदा चरितार्थ,
क्षत्रियों के शाश्वत आदर्श, जिया जीवन निष्काम यथार्थ।
जाहन्वी माता शांतनु पिता, किन्तु दोनों न मिले एकत्र,
सदा संरक्षक जिसके रहे, पिता के कारण त्यागा छत्र ।
सिंधु-सा मर्यादित गम्भीर, हिमालय-सा जिनका जीवन,
दिशाओं का कर अनुशासन, काल का करते अनुशीलन।
मातृ-सुख वंचित भीष्म रहे, जन्म का, शाप बना कारण,
प्रतिज्ञाबद्ध ब्रह्मचारी किये थे गुरुकुल को धारण।
एक मैं, उनके अग्रज सात बहाये गये सरिता जल में-
कर्ण ने कहा- 'शैतनव मुझे शांति दें भव-कोलाहल में। '
+ + +
देवि, मैंने यह जान लिया - न थीं तुम, मैं था बंधन में।
मुक्ति अविभाज्य, इसलिए, देवि, मुक्त हूँ मैं भी अब मन में।
रहो या जाओ और कहीं, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर,
द्रवित है मेरी हृदय-शिला, मुक्ति तुम मुक्ता स्वर्ण-निर्झर।
देवि! तुम शिविर बंदिनी नहीं, स्वेच्छया करो आत्मनिर्णय,
शिविर में रहो मुक्त सानन्द, न मेरा बाधक बधिक प्रणय।
दिखेगा या न दिखेगा कभी, स्वर्ण मुख सुमन मनोहर का?

शिविर में स्वर्ण हंस स्वच्छन्द कर्ण-मन-मानसरोवर का।

+ + +

निवेदन किया, कर्ण चल दिया मोड़ मुख, फिर जो नहीं मुड़ा।
कर्ण ने उत्तरीय कस लिया, पीठ पर अंशुक नहीं उड़ा।
कर्ण ने मन ही मन यह कहा- ' 'कर्ण का ले लो अभिवादन,
जन्मजन्मान्तर का है, देवि, कर्ण द्वारा प्रेमाराधन।
खड्ग से जोते-बोये खेत, खड्ग से काटे जायेंगे।
खड्ग से खुदे रक्त के कूप, खड्ग से पाटे जायेंगे।
अटेगा नहीं प्रेम का कूप, रहेगा प्यासे का प्यासा,
एक के होंगे बीज अनेक, प्रेम की शस्यवती आशा।

14.3 प्रसंग सहित व्याख्या

14.3.1 कविता परिचय (पाषाण नहीं था)

नरेन्द्र शर्मा उत्तर छायावादी काव्य के प्रमुख कवियों में हैं । 'पाषाण नहीं था' उनकी एक प्रसिद्ध कविता है । यह एक प्रतीकात्मक कविता है । कवि ने प्रतिपादित किया है कि पाषाण चेतनाशून्य होता है । सभी उसे ठोकर मारते हैं और वह किसी से भी सहानुभूति प्राप्त नहीं करता है । जीवन में कुछ व्यक्ति ठोकर खाकर पाषाण के समान चेतनाशून्य हो जाते हैं । कवि इस भाव का स्वयं अपने ऊपर आरोप करके यह कहना चाहता है कि आज मेरी स्थिति संज्ञाहीन है । अत: यदि मैं दुर्दशाग्रस्त हूँ तो यह समझने की मूल मत करो कि मैं सदैव से ऐसा ही था और ऐसे ही रहता आया हूँ । वास्तव में मनुष्य सभी दिन पाषाण की तरह नहीं रहता है, उसकी चेतना लौटती है और कभी जाग्रत चेतना विषम परिस्थितियों की ठोकर खाकर चेतनाहीन भी हो जाती है । इस कविता का यही मूल संदर्भ और प्रतिपाद्य है ।

अवतरण

मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
किसी शापवश हो निर्वासित
लीन हुई चेतनता मेरी ।
मन-मन्दिर का दीप बुझ गया,
मेरी दुनियाँ हुई अँधेरी!
पर यह उजड़ा उपवन सब दिन बियाबान सुनसान नहीं था!
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
मेरे सूने नभ में शशि था
थी ज्योत्स्ना जिसकी छवि-छाया,
जीवित रहती थी जिसको छू
मेरी चन्द्रकान्तमणि-काया
ठोकर खाते मलिन ठीकरे-सा तब मैं निष्प्राण नहीं था!

मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
था मेरा भी कोई, मैं भी
कभी किसी का था जीवन में
बिछुड़ा भी, पर भाग्य न बिगड़ा
रही मधुर सुधि जब तक मन में,
पर क्या से क्या बन जाऊँगा, इसका कभी गुमान नहीं था!
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!

शब्दार्थ-शापवश हो निर्वासित = मेरी चेतना को किसी के शाप ने दूर कर दिया, निर्वासित कर दिया । मुझे यह पाषाण रूप मिला । शापग्रस्त अहल्या के वृत्तान्त का संकेत स्पष्ट है । लीन हुई = नष्ट हो गयी । मन-मंदिर का दीप = मन की ज्योति, चैतन्यप्रकाश । बियाबान सुनसान = शून्य मरुस्थल । भाव यह है कि कभी यहाँ भी हरियाली थी, ऐसा विनाश तो शाप का ही परिणाम है । सूने नभ में = शून्य आकाश में । प्रतीकार्थ यह है कि मेरे जीवन में भी प्रेम का प्रकाश था, आशा की ज्योत्स्ना थी । चन्द्रकान्तमणि काया = चन्द्रकान्त-शिला के समान शरीर । यह शिला चन्द्रकिरणों के स्पर्श से द्रवित हो जाती है - यह बात कवि-समय में प्रसिद्ध है । ठीकरा = पत्थर का टुकड़ा । मधुर सुधि = मीठी स्मृति । गुमान = आशंका ।

प्रसंग-प्रस्तुत कविता नरेन्द्र शर्मा की प्रसिद्ध, बहुचर्चित एक प्रतीकात्मक कविता है । इस कविता के अन्तर्गत कवि ने यह संवेदना व्यक्त की है कि व्यक्ति सब दिन एक जैसी स्थिति में नहीं रहता है । जीवन की विषमताएँ और क्रूरताएँ उसकी स्थिति और परिस्थिति में परिवर्तन ला देती हैं । कभी वह सुख के मधुर क्षणों को जीता है, तो कभी पाषाणवत् बनकर विश्रृंखलित व्यक्तित्व बनकर सामने आता है । जब ऐसा होता है, तब वह चेतनाहीन होता है और यह उसकी समझ के बाहर होता है कि वह क्या करे । इसी भाव को सम्पूर्ण कविता में बड़ी सहजता के साथ अभिव्यक्ति दी गयी है ।

व्याख्या-कवि नरेन्द्र शर्मा कह रहे हैं कि मैंने जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव देखे हैं । आज जीवन की विषमताओं और संघर्षजनित स्थितियों की ठोकर खाकर यदि मैं पाषाणवत् अर्थात चेतनाशून्य हो गया हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं सदैव से ऐसा ही था । आज मैं जिस चेतनाहीनता की स्थिति में हूँ यह एक ऐसी स्थिति है जो मेरे किसी कर्म के अभिशाप का परिणाम है । जिस प्रकार अहल्या शापवश प्रस्तर-प्रतिमा बन गयी थी, उसी प्रकार जीवन के जटिल और संघर्षजनित संदर्भो की ठोकर खाकर मैं भी पाषाणवत् हो गया हूँ । मेरी चेतना समाप्त हो गयी है । इतना ही नहीं, मेरे मन रूपी मन्दिर में जो सुख और प्रेम का दीपक जलता था, वह बुझ गया है । परिणामस्वरूप मेरी दुनिया अंधकारमय हो गयी है, किन्तु यह सत्य है कि मेरा सम्पूर्ण जीवन जो मधुरिम और रंगीन था, वह उजड़े हुए उपवन के समान हो गया है और लगता है कि जैसे मैं बियाबान जंगल में भटक रहा हूँ । अभिप्राय यह है कि आज जो मेरी स्थिति है, वह पहले नहीं थी या सदैव से नहीं थी ।

कवि कह रहा है कि जब मेरे जीवन में सुखद क्षण थे, तब मेरे शून्य हृदयाकाश में चन्द्रमा का प्रकाश छाया रहता था । चन्द्रमा की चाँदनी की मधुर छाया में मैं जीवन

यापन करता था और उसी चन्द्र-ज्योत्स्ना का स्पर्श करती हुई मेरी शरीर-यष्टि या मेरा शरीर चन्द्रकान्त मणि के समान दीपित रहता था । अब परिस्थिति बदल गयी है. इसलिए जिस प्रकार पत्थर को हर कोई ठोकर मार देता है और उसके प्रति कोई सहानुभूतिपरक संवेदना नहीं रखता है, वैसे ही मैं भी किसी मलिन ठीकरे की तरह निष्प्राण हो गया हूँ । जीवन के सुखद क्षणों में मेरा भी कोई अपना प्रिय और आत्मीय था । मैं भी कभी किसी का प्रिय और आत्मीय था । मेरे जीवन में मधुरता व्याप्त थी, किन्तु अब वह स्थिति नहीं है । लगता है, मेरा प्रिय और उसके साथ बिताये गये मधुर क्षण अब बिगड़ गये हैं किन्तु मेरा भाग्य अभी भी पूरी तरह बिगड़ा हुआ नहीं है । कारण यह है कि जब तक मेरे मन में मधुर स्मृतियाँ जीवित हैं, तब तक मैं भाग्य का मारा हुआ नहीं माना जा सकता हूँ । कारण यह है कि समय परिवर्तनशील है, वह सदैव एक सा नहीं रहता है । भविष्य में न मालूम मैं क्या बनूँगा और पहले क्या था और अब क्या बन गया हूँ इसका मुझे तनिक भी अनुमान नहीं था । यह सब परिस्थितिसापेक्ष है और समय के चक्र के घूमते जाने का परिणाम है ।

टिप्पणी- (1) 'पाषाण नहीं था' कविता में पाषाण चेतनाशून्यता का प्रतीकार्थ लिए हुए है। यह प्रतीकार्थ सार्थक है और कवि की मनोभावना को भली-भाँति व्यक्त करने में सक्षम है ।

(2) कविता में प्रयुक्त भाषा परिष्कृत तो है, किन्तु अर्थग्रहण करने में कहीं बाधक नहीं है । भाषा की ऐसी रवानगी और शब्दों का उपयुक्त चयन सम्पूर्ण कविता को सौंदर्य प्रदान कर रहा है ।

(3) मन-मन्दिर जैसे प्रयोग रूपक अलंकार के सौंदर्य को स्पष्ट कर रहे हैं । इतना ही नहीं, यह अलंकृति भी सहज है' आरोपित नहीं है ।

(4) कवि ने यह संकेत किया है कि जीवन में हर क्षण एक जैसी स्थिति नहीं रहती है । परिवर्तनशील संसार में जीवन-स्थितियाँ भी बदलती रहती हैं । अहल्या का संदर्भ भी यहीं साभिप्राय व्यक्त हुआ है ।

14.3.2 कविता परिचय (आज के बिछुड़े)

'आज के बिछुडे न जाने कब मिलेंगे' गीत नरेन्द्र शर्मा का बहुत प्रसिद्ध और भावोपम गीत है । यह उनकी कृति 'प्रवासी के गीत' में प्रथम स्थान पर संकलित है । यह एक ऐसा गीत है, जिसके अन्तर्गत प्रेम में वियोगजनित व्यथा से उत्पन्न अनुभूतियों को शब्दबद्ध किया गया है । गीत में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे शब्द कवि के अभिप्रेत भाव को भली-भाँति स्पष्ट कर देते हैं । कवि ने यह संकेत दिया है कि व्यथा का भार तब अधिक बढ़ जाता है, जब प्रिय से पुनर्मिलन की सम्भावना ही नहीं रहती है । पुनर्मिलन की सम्भावना के निःशेष हो जाने पर जिस अपार व्यथानुभूति को प्रणयी झेलता है, उसी का बड़ा मनोरम, व्यंजनात्मक और प्रेम-प्लावित चित्र इस गीत में अभिव्यक्त हुआ है । सम्पूर्ण गीत बड़ा प्रभावी और कवि की संवेदनाओं का निदर्शक बनकर आया है ।

अवतरण

आज तक किसका हुआ सच स्वप्न, जिसने स्वप्न देखा?
कल्पना के मृदुल कर से मिटी, किसकी भाग्य-रेखा?
अब कहीं सम्भव कि हम फिर मिल सकेंगे?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आह, अन्तिम रात वह, बैठी रहीं तुम पास मेरे,
शीश कंधे पर धरे, घन-कुन्तलों से गात घेरे,
क्षीणस्वर में कहा था, 'अब कब मिलेंगे?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
'कब मिलेंगे?' पूछता मैं विश्व से जब विरह-कातर,
'कब मिलेंगे?' गूँजते प्रतिध्वनि-निनादित व्योम-सागर,
'कब मिलेंगे?' प्रश्न, उत्तर 'कब मिलेंगे?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?

शब्दार्थ-कल्पना के मृदुल कर से = केवल कल्पना, कोरी आशा के दुर्बल हाथों से किसका भाग्य बदल सकता है? अर्थात् किसी का नहीं । घन-कुन्तलों से गात घेरे = केशपाश । व्योम = आकाश । प्रश्न है कब मिलेंगे = उसकी प्रतिध्वनि ही मानो उसका उत्तर है । क्षीण स्वर = कमजोर, किन्तु कोमल स्वर । विरह-कातर = विरह से दुखी होकर ।

प्रसंग-प्रस्तुत काव्यांश 'आज के बिछुड़े हुए न जाने कब मिलेंगे' कविता का अन्तिम अंश है । कवि इस अंश में यह प्रतिपादित कर रहा है कि व्यक्ति कोई भी हो, वह स्वप्न अवश्य देखता है, किन्तु सबके स्वप्न सत्य में परिणत हो जायें या साकार हो जायें, यह सम्भव नहीं है । वास्तव में कवि यह कहना चाहता है कि दो प्रणयी अपना जीवन-यापन करने के लिए तरह-तरह के स्वप्नों का संसार सँजोते हैं, किन्तु संसार सजने से पूर्व ही परिस्थितिवश वियोग की विषम बेला सामने आ खड़ी होती है । ऐसी स्थिति में जब ये प्रणयी अन्तिम बार मिलते है,तब एक-दूसरे से यही प्रश्न करते हैं कि अब कब मिलन होगा? यही प्रश्न अपने आप में उत्तर भी लिए होता है कि सम्भवत: कभी नहीं मिल पायेंगे। यही प्रश्न आसपास के परिवेश में भी प्रतिध्वनित होता रहता है।

व्याख्या-कवि नरेन्द्र शर्मा कह रहे हैं कि जीवन में मिलना और बिछुड़ना सतत् चलता रहता है । यह स्थिति उदय और अस्त के समान होती है, किन्तु जो उदित होता है, वह अस्त होकर पुन: उदित हो जाता है । प्रेमियों के जीवन में यह स्थिति बहुत कम होती है । वे तो स्वप्न देखते हैं और जब स्वप्न साकार नहीं हो पाते, तब उनके मन में यही भाव जन्म लेता है कि आज तक, इस संसार में जिस किसी ने भी मधुर स्वप्न देखा है या अपने सपनों की दुनिया सँजोयी है, वह सच कब हुई है? संकेत यह है कि स्वप्नों का सच हो जाना सदैव सम्भव नहीं होता है । मनुष्य तरह-तरह की कल्पना करता है, किन्तु कल्पना के आधार पर भाग्य की रेखाएँ परिवर्तित नहीं होती है । भाग्य की रेखा क्रियाशीलता से परिवर्तित हो सकती है न कि कल्पना के सहारे । प्रिय कह रहा है कि ऐसी स्थिति बन गयी है कि आज के बिछुड़े हुए हम शायद नहीं मिल पायेंगे, अब पुनर्मिलन सम्भव नहीं होगा । कवि एक निःश्वास लेकर अपने और प्रिया के मिलन की

स्मृति में खो जाता है और कहता है कि 'आज मुझे वह मिलन को अन्तिम रात्रि याद आ रही है, जब तुम मेरे पास बैठी थीं । तुमने अपना शीश मेरे कन्धे पर टिका रखा था और तुम्हारे घने और श्यामल केशों ने मेरे शरीर को घेर रखा था । ऐसी प्रणयमूलक और मधुर स्थिति में बैठे हुए तुमने मुझसे क्षीण स्वर में यह प्रश्न किया था कि अब हम कब मिलेंगे? तुम्हारे इस प्रश्न पर मैं विरहकातर हो गया था और मैं मानो समूचे विश्व से यह प्रश्न करने लगा था कि अब हमारा पुनर्मिलन कब होगा? हम कब मिलेंगे के प्रश्न को लेकर व्यथित भी थे और विस्मित भी थे । हमारी प्रतिध्वनि आकाश में या कहें कि आकाशरूपी सागर में गूँज रही थी । कब मिलेंगे का प्रश्न ही मानो अब क्या मिलना होगा, जैसा उत्तर बन गया था ।

टिप्पणी- (1) पद्यांश के अन्तर्गत यह तथ्य संकेतित है कि हमारे द्वारा देखे हुए सभी स्वप्न साकार नहीं होते हैं ।

(2) यदि कोई व्यक्ति अपनी भाग्यरेखा को परिवर्तित करना चाहता है या जीवन में क्रियाशीलता अपनाकर कुछ करना चाहता है, तभी वह सफल हो सकता है । कोरी कल्पना के घेरे में घिरकर कोई व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता है ।

(3) 'आह अन्तिम रात वह..... ....गात घेरे' में एक भावप्रेरित चाक्षुष बिम्ब की सृष्टि हुई है । यह बिम्ब प्रेमी और प्रिया के मिलन की स्थिति को प्रत्यक्ष कर देता है । इस बिम्ब में दृश्यात्मकता के साथ-साथ भावोपमता भी विद्यमान है ।

(4) इस पद्यांश में परिष्कृत शब्दावली का प्रयोग हुआ है और लाक्षणिक और व्यंजनात्मक शब्दावली के प्रयोग से यह पद्यांश न केवल आकर्षक बन पड़ा है, अपितु सम्पूर्ण गीत की अप्रतिम पंक्तियों के रूप में भी जाना जा सकता है ।

14.3.3 कविता परिचय (पापी)

नरेन्द्र शर्मा द्वारा रचित 'पापी' शीर्षक कविता कवि के उदारतावादी दृष्टिकोण की सूचक है । प्राय: देखने में आता है कि संसार में बहुत से लोग अकरणीय कृत्य करते हैं और उनके इस प्रकार के कृत्यों को देखकर हम उन्हें दोषी और पापी की अभिधा प्रदान कर देते है । कवि ऐसी स्थिति में ऐसे व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपरक और उदारवादी दृष्टिकोण रखता है । कवि का मन्तव्य यह है कि संसार में जिसे हम पापी मानते हैं या पापपूर्ण व्यक्तित्व का धनी मानते हैं, वास्तव में वह पापी नहीं होता है । कारण यह है कि ऐसे दुष्कर्म करने वाले पापी को हमें एक अबोध शिशु के रूप में देखना चाहिए । जिस प्रकार अबोध शिशु अज्ञानवश गलतियाँ करता है, उसी प्रकार पापी भी ज्ञानशून्य होने के कारण गलतियाँ करता रहता है । अत: इस प्रकार का पापी व्यक्ति भी ठीक अबोध शिशु की भाँति ही उपेक्षा और दण्ड का अधिकारी नहीं है । वास्तव में वह तो सहानुभूति और क्षमा का अधिकारी होता है । इस प्रकार के विचार व्यक्त करके कवि ने सम्पूर्ण कविता में पापी को अज्ञानी और अबोध शिशु से उपमित करके यह संकेत दिया

है कि अज्ञानी को दण्ड की अपेक्षा क्षमा और सहानुभूति प्रदान करनी चाहिए । कविता का यही प्रतिपाद्य है ।

अवतरण

महाव्रती, हे गगन तपस्वी,
ये लघु शिशु हैं, चंचल मन हैं,
ज्ञान-शून्य, निबोध, सरलचित्
शिशु ससीम हैं, कोमल-तन हैं
देखे फूल कली किसलय-दल,
क्रीड़ातुर हो उठे चपल-जल!
ये क्या जानें जग मिथ्या है,
यह असार जग की माया है?
भ्रमित हुए भूले मृगों से ।
लगे खेलने नव-रंगों से!
प्यास लगी, देखी मरीचिका,
भूल गये अपनापन मरु में,
भूख लगी, देखे सुवर्ण-फल,
भूले शिशु सोने के तरु में,
कौन नहीं हो उठता चंचल?
कौन नहीं भूला जीवन में?
केवल शिशु ही थे, यदि भूले
जीवन-मरु में तृष्णा-तरु में!

शब्दार्थ-महाव्रती = कठिन नियमों का पालन करने वाले । सरलचित् = कोमल स्वभाव वाले, निष्कपट हृदय के । ससीम = सीमित शक्ति वाले । जग मिथ्या है = अद्वैत वेदान्त का दार्शनिक ज्ञान अबोध शिशु क्या जाने । मरीचिका = मृगतृष्णिका या भ्रमात्मक प्रलोभन । भूले शिशु सोने के तरु में = वर्जित फल खाने की बाइबिल की कथा की ओर संकेत है । जीवन-मरु = मरुभूमि के समान दुर्गम या शुष्क जीवन मार्ग । तृष्णा-तरु = आशा-लता ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नरेन्द्र शर्मा की 'पापी' शीर्षक कविता से अवतरित है । कवि यह प्रतिपादित कर रहा है कि संसार में जिसे हम पापी समझकर दण्डित करना चाहते हैं, वास्तव में वह दण्ड का नहीं, सहानुभूति का अधिकारी है । कारण यह है कि पापी ज्ञानशून्य है, अबोध शिशु जैसा है, अत: वह नहीं जानता कि क्या करणीय है और क्या अकरणीय है । जब वह जानता ही नहीं कि क्या करणीय है और क्या नहीं, तो उसे अबोध शिशु मानकर दण्ड की अपेक्षा सहानुभूति प्रदान करनी चाहिए । अबोध शिशु जीवन-यात्रा करते समय प्राय: थक जाता है । संसार भी कण्टकाकीर्ण है, अत: ज्ञानी व्यक्तियों को ऐसे अबोध व्यक्तियों को पापी न मानकर सहानुभूति प्रदान करनी चाहिए ।

व्याख्या-कवि कठिन नियमों का पालन करने वाले ज्ञानी व्यक्तियों को सम्बोधित करके कह रहा है कि हे ज्ञानेश्वर! जिन व्यक्तियों को तुम पापी मानते हो, वे छोटे शिशु हैं,

उनकी ज्ञान-चेतना विकसित नहीं हुई है । इतना ही नहीं, अबोध शिशु जैसे चंचल वृत्ति वाला होता है, ऐसे ही ये पापी भी चंचलमना है । ये ज्ञानशून्य तो हैं ही, अबोध भी हैं, सरलचित् भी हैं और सीमित शक्ति वाले हैं । इनका शरीर भी कोमल है । ये तो कहीं यदि पुष्प विकसित होते हुए देखते हैं, तो क्रीड़ातुर होकर उसे तोड़ने या उससे खेलने के लिए चंचल हो उठते हैं । ये नहीं जानते हैं कि यह संसार मिथ्या है और यहाँ जो विकसित होता है या जन्म लेता है, वह मुरझाता भी है, मृत्यु को भी प्राप्त होता है । अभिप्राय यह है कि अबोध शिशु के समान होने के कारण पाप-कर्म में लिप्त व्यक्ति दार्शनिक ज्ञान को नहीं समझते हैं- ये तो भ्रमित बने रहते हैं । जिस प्रकार भौंरा भ्रमित होकर पुष्पों के नये-नये रंगों से क्रीड़ा करता है, उनका रसपान करता है, वैसे ही ये भी चंचलमना होने के कारण अपनी अबोधता से कुछ भी करते रहते हैं । जब इन्हें प्यास लगती है, तो मृगतृष्णा से घिर जाते हैं । इन्हें नहीं पता कि मृगतृष्णा भ्रमात्मक ज्ञान है । ऐसी स्थिति में ये अपनापन भूल जाते हैं, क्योंकि जीवन के मरुस्थल में ये. भटके हुए व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हैं । जब इन्हें भूख लगती है, तब ये स्वर्णिम फलों की आकांक्षा करते हैं, अर्थात् तरह-तरह की आशाएँ मन में सँजोते हैं । कहीं कोई सोने का वृक्ष थोड़े ही होता है. जब ऐसा वृक्ष होता ही नहीं है. तब ऐसा फल कहाँ से आयेगा? वैसे प्रत्येक व्यक्ति सोने के वृक्ष अर्थात् आशा-लता में झूमता हुआ तरह-तरह की कल्पनाएँ कर ही लेता है । जीवन में सभी लोग आशाओं के स्वप्निल संसार में भ्रमित हो ही जाते हैं, फिर ये तो अबोध शिशु हैं । फिर यदि ये भूल गये कि क्या करणीय है और क्या नहीं, तो इनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करनी चाहिए न कि इन्हें दण्ड का भागी मानकर इनके साथ कठोर व्यवहार करना चाहिए । वास्तव में जीवन एक मरुस्थल है, इसमें तृष्णा रूपी वृक्ष किसे भ्रमित नहीं कर देता है? अर्थात् सभी इसके भ्रमजाल में पड़ ही जाते हैं । जब सभी के साथ ऐसा होता है, तब अबोध और ज्ञान- चेतनाशून्य व्यक्तियों के साथ तो और भी अधिक सम्भावना बनी रहती है । अत: जिन्हें हम पापी कहते हैं, उनके प्रति हमें सहानुभूति रखनी चाहिए और उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ।

टिप्पणी- (1) कवि नरेन्द्र शर्मा ने इस पद्यांश में यह प्रतिपादित किया है कि तथाकथित पापी लोग अज्ञानी होते हैं, अबोध शिशु जैसे होते हैं, ज्ञानशून्य होते हैं । ये सत्य और स्वर्ण में अन्तर नहीं कर पाते हैं । इसलिए अकरणीय कृत्य करने लगते हैं । अत: इन्हें दण्डित करने की अपेक्षा क्षमा का वरदान मिलना चाहिए ।

(2) पद्यांश में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिन्हें हम संधिज शब्द कह सकते हैं । उदाहरणार्थ क्रीड़ातुर, सुवर्णफल, महावती आदि । इन शब्दों के प्रयोग से कवि की अनुभूतियाँ बड़ी सरलता से पाठक तक सम्प्रेषित हो जाती हैं । शब्दावली की परिष्कृति भी अर्थ-ग्रहण में बाधक नहीं है ।

(3) इस पद्यावतरण में उपमा, रूपक और अनुप्रास जैसे अलंकारों का प्रयोग हुआ है । इन अलंकारों के प्रयोग से यह पद्यांश अत्यधिक आकर्षक बन पड़ा है । ये अलंकार कथ्य के शोभाधायक धर्म बनकर आये हैं ।

14.3.4 कविता परिचय (युग बदला)

नरेन्द्र शर्मा द्वारा लिखित 'युग बदला' शीर्षक कविता छायावादोत्तर काल की रचना है । यह ऐसी कविता है, जिसमें क्रमिक रूप से परिवेश और समाज में होते जा रहे परिवर्तन की प्रक्रिया को अभिव्यक्ति दी गयी है । स्वतन्त्र भारत के औद्योगिक विकास की यथार्थ चित्रावली इस कविता में प्रस्तुत हुई है । कवि ने प्रतिपादित किया है कि विज्ञान ने मानव को प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के साधन जुटा दिये हैं । विज्ञान से प्राप्त नवीन ज्ञान के आधार पर आज सम्पूर्ण समाज और परिवेश में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण देश में एक नवीन मानव-संस्कृति निर्मित हो रही है । कहने का अभिप्राय यह है कि कवि स्वातंत्रयोत्तर भारत में विकसित नवचेतना के उदित होते जाने और उसके प्रभाव और प्रसार को संकेतित करता हुआ परिवेश-सम्बद्ध होकर सामयिक स्थितियों की ओर संकेत करने में सफल हुआ है । सम्पूर्ण कविता में कवि ने यह भी बतला दिया है कि यह नया युग हमारे लिए चुनौती बनकर आया है । संसार में जब परिवर्तन होता है, तो हमें प्रगति की दौड़ में उससे जुड़ने का प्रयत्न करते हुए नवनिर्माण और नवीन मानव-संस्कृति के प्रति सजग होकर क्रियाशील होना चाहिए ।

अवतरण

भौतिक भव का मानव के प्रति अब नया भाव,
त्यागा मानव के प्रति निसर्ग ने उर-दुराव!
श्रम रंक नहीं रह गया, न अब विज्ञान राव,
पाया मिट्टी ने अंतरिक्ष का आमंत्रण!
नारी न काम-दासी, न पुरुष अब पुष्प-यष्टि,
अब नहीं चलेगी बहुत दिनों मैथुनी सृष्टि!
हो रही चतुर्दिक चिदाकाश से सूक्ष्म वृष्टि,
चिन्मय रस की सब ओर रास, जग वृन्दावन!
वह काल-कन्यका, प्रकृति-सुता, वासना-देह,
रम्या है, गम्या नहीं, हृदय में मातृ-स्नेह!
भव का सतखंडा महल बन गया भाव-गेह
है प्राणों का पुष्पक विमान उनचास पवन!

शब्दार्थ-भव = संसार । नया भाव = नवीन संवेदनाओं से युक्त भाव । नि:सर्ग = प्रकृति। उर-दुराव = हृदय में छिपाने का भाव, अभिप्राय यह है कि अब प्रकृति ने एक-एक करके अपने रहस्य खोलना प्रारम्भ कर दिया है । श्रम = मेहनत, यहाँ श्रम शब्द मजदूर वर्ग का प्रतीक है । विज्ञान = बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक है । राव = मालिक, भाव है कि पहले तो बुद्धिजीवी अपने को ऊँचा मानते थे और श्रमिकों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे, पर इस नवीन संस्कृति में सभी समान हैं । नारी न काम-दासी = स्त्री जाति के सम्बन्ध में भी विचार बदल गये हैं और अब वह काम की पुतली नहीं रही है । मैथुनी सृष्टि = काम-वासनाजनित भोग-सृष्टि । चिदाकाश से सूक्ष्म वृष्टि = भावों का उदात्तीकरण हो रहा है, ज्ञानस्वरूप नभमण्डल से ज्ञान-रस की वर्षा होने लगी है । सब ओर रास = सर्वत्र

आनन्द ही आनन्द है, कवि यह कहना चाहता है कि कृष्ण और गोपियों की रास-क्रीड़ा मैथुनी सृष्टि नहीं थी, वह तो निर्मल प्रेम की क्रीड़ा थी । जग वृन्दावन = सारे जगत् में ऐसे पवित्र भावों का संचार सम्भव है तो संसार ही वृन्दावन बन जायेगा । वास्तव में यह कवि-कल्पना है । काल-कन्यका = आधुनिक काल की कन्या । रम्या है गम्या नहीं = सुन्दर तो है, किन्तु केवल कामोपभोग की वस्तु नहीं है । भाव-गेह = नारी भावों का अक्षय भण्डार है । सतखण्डी महल = विशाल भवन, तात्पर्य यह है कि नारी के उत्कर्ष पर आज के संसार का विशाल भवन खड़ा है । प्राणों का पुष्पक = नारी के प्राण पुष्पक विमान के समान ऊर्ध्वगामी हैं । उनचास पवन = नारी की प्राणशक्ति में उनचास पवनों की अपरिमित शक्ति समाहित है ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण नरेन्द्र शर्मा की 'युग बदला' शीर्षक कविता से अवतरित है । यह अंश स्वातंत्र्योत्तर भारत में होती जा रही उन्नति और उससे निर्मित होने वाली नवसंस्कृति की ओर संकेत कर रहा है । कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि आज मनुष्य का भाव नये विकसित संसार के प्रति बदल गया है । जो मनुष्य अब तक संस्कृति-पुरुष बना हुआ था, वह अब प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने वाला बन गया है । परिणामस्वरूप विज्ञान के प्रभाववश भावनाओं के साथ-साथ बौद्धिकता भी विकसित होती जा रही है । नर-नारी और मैथुनी सृष्टि के विषय में भी विचारों में परिवर्तन हो रहा है । कवि ने आशा व्यक्त की है कि मैथुनी सृष्टि बहुत समय तक नहीं चलने वाली है, निश्चय ही एक दिन शाश्वत आनन्द सारी सृष्टि में फैल जायेगा और यह संसार वृन्दावन बन जायेगा । इसी प्रकार के भावों को यहाँ अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है ।

व्याख्या-कवि कह रहा है कि आज युग-परिवर्तन के कारण इस भौतिक संसार में साँस लेने वाला मनुष्य नये भावों से युक्त होकर सामने आ रहा है । अब तक जो मनुष्य त्यागवृति को अपनाता था और अपने उपलब्ध साधनों में ही संतुष्ट रहता था, वह अब प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए चल पड़ा है । प्रकृति ने भी अपने गर्भ में छिपे हुए अनेकानेक रहस्यों को उसके सामने खोलकर रख दिया है । एक समय तो वह था, जब मजदूर को उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था, किन्तु अब विज्ञान के प्रभाववश न तो कोई मालिक है और न कोई नौकर है, सभी समान हैं, कोई भेदभाव नहीं रह गया है । धरती ने एक नयी मिट्टी के प्रभाववश नये युग को आमंत्रित कर लिया है । नारी और पुरुष के विषय में भी विचार बदल गये हैं । अब नारी काम की पुतली नहीं रही है, वह भोग्या नहीं रही है और पुरुष भी अब वह पुरुष नहीं रहा है, जो अपने अहंकार के बल पर नारी को भोग्या या दासी समझता था । अब वह समय आ गया है, जब भोगविलास से युक्त जीवन बहुत समय तक नहीं चल पायेगा । अब तो नयी मानव-संस्कृति के विकास के परिणामस्वरूप चारों ओर से आनन्द की सूक्ष्म वर्षा हो रही है । चारों ओर शाश्वत आनन्द की रसधारा प्रवाहित होने की स्थिति में है । यदि यह हो सका, तो सारा संसार ही वृन्दावन बन जायेगा, अर्थात आनन्दलोक में परिवर्तित हो जायेगा । अन्त में कवि कहता है कि आधुनिक काल की कन्या प्रकृति की पुत्री है, वह वासना की पुतली मात्र नहीं है। वह आकर्षक तो है, किन्तु मात्र उपभोग करने के लिए नहीं बनी है । उसके हृदय में मातृस्नेह के भाव भी विद्यमान हैं । संसार में नये-नये

और विशाल भवनों का निर्माण हो रहा है । नारी के उत्कर्ष पर आज के संसार का विशाल भवन खड़ा हो रहा है । प्राणों का पुष्पक अर्थात् नारी के प्राण पुष्पक विमान के समान उधर्वगामी होते जा रहे हैं और उसकी प्राणशक्ति पूर्वापेक्षा कई गुना बढ़ गयी है । उनचास पवनों में जितनी शक्ति होती है, उतनी शक्ति नारी के भीतर भरती जा रही है । तात्पर्य यह है कि युग-परिवर्तन के साथ-साथ एक नया समाज, एक नयी संस्कृति और एक नयी स्थिति उत्पन्न होती जा रही है ।

टिप्पणी- (1) इस पद्यांश में स्वातंत्र्योत्तर भारत में होते जा रहे औद्योगिक विकास, बौद्धिक विकास और नये- नये अनुसंधानों के परिणामस्वरूप आये वैचारिक परिवर्तनों की ओर संकेत किया गया है ।

(2) इस पद्यांश में संधिज और सामासिक शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है । उर-दुराव, काम-दासी, पुष्प-यष्टि, चिदाकाश, काल-कन्यका, प्रकृति-सुता, वासना- गेह आदि इसी प्रकार के शब्द हैं ।

(3) इस पद्यांश में श्रम मजदूर का प्रतीकार्थ लिए हुए है, विज्ञान बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक है और मिट्टी समाज के निम्न स्तर का प्रतीक है, तो अन्तरिक्ष समाज के उच्च स्तर का प्रतीक है ।

14.3.5 कविता परिचय (प्यासा निर्झर)

'प्यासा निर्झर' आत्मकथा शैली में लिखी गयी एक महत्त्वपूर्ण कविता है । इसमें निर्झर अपनी आत्मकथा प्रस्तुत कर रहा है । इस प्रस्तुति में यह संकेतित किया गया है कि निर्झर दूसरों की प्यास बुझाता है, दूसरों को संतुष्टि और शीतलता प्रदान करता है । जो दूसरों को शान्ति, आनन्द और सरसता प्रदान करता है, वह स्वयं किस प्रकार प्यासा रह सकता है? निर्झर अपने को अतृप्त और प्यासा बतलाकर अपनी स्थिति को स्पष्ट करता है । कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि इसमें प्यासा अतृप्ति का प्रतीक है । कवि की कल्पना है कि निर्झर में कोई अज्ञात अतृप्ति विद्यमान है । उसी अज्ञात और अपरिचित अतृप्ति के कारण वह दूसरों की प्यास बुझाता हुआ भी अपने को प्यासा अनुभव करता है। वास्तव में निर्झर सदैव ही प्रवहमान और गतिशील बना रहता है । कवि का संकेत यह है कि प्यासा निर्झर किसी सत्य को प्राप्त करने के लिए अथवा लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रवाहित होता रहता है । उसे लक्ष्य नहीं मिल पाता, इसलिए वह अपने को अतृप्त और पासा अनुभव करता है । यही इस कविता का प्रतिपाद्य है ।

अवतरण

अपने सिवा और भी कुछ है, जिस पर मैं निर्भर हूँ ।
मेरी प्यास हो न हो जग को, मैं प्यासा निर्झर हूँ ।
हटा शैल पर शैलखंड शत, अपने वक्षस्थल से,
व्यक्त कराता रहा व्यथा की कथा तरंगित जल से ।
धरती पर पथ खोज रहा जो, मैं वह नीलाम्बर हूँ ।
चरणचिन्ह जिस प्रभापुरुष के अगम गगन के तारे,
पहुँच नहीं पाता मन जिस तक, नयन ज्ञान के हारे,

मैं उस प्रभु की द्रवित दया का मृग-जल-बिन्दु अमर हूँ ।
किस अनजानी करुणा से प्रभु के लोचन भर आए?
अश्रुबिन्दु आकुल है, किसका दुख, कैसे हर पाए?
जग की रुदन-बीन पर मुखरित मौन मीड़ का स्वर हूँ ।

शब्दार्थ-शैल = प्रर्वत । शैल-खण्ड शत = सैंकड़ों चट्टानों को रास्ते से हटाकर । व्यथा की कथा = जल की तरंगों से हृदय की अतृप्ति की व्यथा प्रकट करता हुआ । पथ खोज रहा = लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण कर रहा । प्रभापुरुष = परम पुरुष । नयन ज्ञान के हारे = ज्ञान की आँखें उस ज्योति को नहीं देख सकीं । प्रभु की द्रवित दया = परम पुरुष की विश्वव्यापी करुणा । रुदन बीन = अश्रुवीणा ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नरेन्द्र शर्मा की आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी 'प्यासा निर्झर' शीर्षक कविता का प्रारम्भिक अंश है । इसके अन्तर्गत कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि निर्झर भले ही दूसरों की तृषा शांत करता हो, उन्हें शीतलता और सरसता प्रदान करता हो, किन्तु स्वयं भी दूसरों पर आश्रित रहता है । संकेत यह है कि वह भी इसलिए निरन्तर गतिशील रहता है कि उसे अपना परम लक्ष्य प्राप्त करना है । इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर गतिमान बना हुआ निर्झर प्यासा निर्झर बनकर अर्थात् अतृप्ति का प्रतीक बनकर इस कविता में व्यक्त हुआ है ।

व्याख्या-कवि कह रहा है कि अतृप्ति निर्झर अपनी व्यथा-कथा प्रस्तुत करता हुआ संकेत देता है कि अपने अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है, जिस पर वह आश्रित है या निर्भर है। मेरी प्यास से अर्थात् अतृप्ति से संसार भले ही परिचित न हो, किन्तु मैं निश्चित रूप से प्यासा निर्झर हूँ । भाव यह है कि मेरी अतृप्ति ही अर्थात् लक्ष्य प्राप्त करने की भावना ही मुझे प्यासा निर्झर बनाये हुए है । आगे की पंक्तियों में निर्झर अपना परिचय देता हुआ कहता है कि मैं पर्वत-श्रृंग से प्रवाहित होता हूँ और मार्ग के बड़े-बड़े अवरोधों और प्रस्तर-खण्डों को हटाकर अपने हृदय से अमृतमयी धार प्रवाहित करता हुआ गतिमान बना रहता हूँ । अपने तरंगित जल से मैं अपनी ही व्यथा को व्यक्त करता रहता हूँ । संकेत यह है कि मैं दूसरों को तो सजल और सरस बनाता हूँ किन्तु स्वयं अतृप्त और प्यासा ही बना रहता हूँ । वास्तव में मैं एक ऐसा नीलाम्बर हूँ जो धरती पर प्रवाहित होता हुआ अपना लक्ष्य खोजता रहता है, किन्तु वह मुझे मिल नहीं पाता है । कवि नरेन्द्र शर्मा कह रहे हैं कि निर्झर प्रभापुरुष के अर्थात् परम पुरुष के सौंदर्य को नहीं देख पाता है । साधक भी साधना के द्वारा ही परम पुरुष की ज्योति का दर्शन कर पाता है । वास्तव में उस परम पुरुष की आभा के चरण-चिह्न अदृश्य ही बने रहते हैं । वहाँ तक पहुँचने में हमारे नेत्र भी सक्षम नहीं हैं और हमारी ज्ञान-चेतना भी उस परम पुरुष के प्रकाश को प्राप्त करते-करते पराजित हो जाती है । ऐसा ही सत्य मुझे भी वांछित है, किन्तु वह मुझे मिल नहीं रहा है । वास्तव में मैं तो उसी परम पुरुष की करुणाशीलता का चिह्न मात्र हूँ । तात्पर्य यह है कि प्रभु करुणामय हैं और उनकी करुणा के जल की एक बूँद भी यदि प्राप्त हो जाये, तो जीवन-सत्य अथवा लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है । अन्त में कवि कहता है कि न मालूम कौन-सी अपरिचित करुणा से प्रभु के नेत्र भर आये हैं । अभिप्राय यह है कि प्रभु की करुणाशीलता समूची सृष्टि पर बरस रही है । नेत्रों में

जो आँसुओं की बूँदें भरी रहती हैं और हमें आकुल-व्याकुल बनाती रहती हैं, उन्हें प्रभु की करुणाशीलता ही प्रेम-प्लावित कर सकती है, अर्थात् वही हमारे दुख का हरण कर सकती है । निर्झर कहता है कि समूचा संसार अश्रुकणों से भरा हुआ है और मैं उन्हीं अश्रुकणों का एक मौन स्वर हूँ जो सतत् प्रवाहित एवं गतिशील बना रहता हूँ । मेरे इस गतिशील व्यक्तित्व से संसार को तो सरसता प्राप्त होती है, किन्तु मैं ज्यों का त्यों अतृप्त ही बना रहता हूँ ।

टिप्पणी- (1)पद्यावतरण में प्यासा निर्झर अतृप्ति का प्रतीकार्थ लिए हुए है । यह प्रतीकार्थ सम्पूर्ण कविता पर घटित होता है और कवि की संवेदना को बसूबी सहज ढंग से अभिव्यक्ति देने में सक्षम है ।

(2) इस पद्यांश में तरंगित जल, नीलाम्बर, प्रभापुरुष दृग-जल-बिन्दु और मुखरित मौन मीड़ जैसे शब्द बड़ी सार्थकता लिए हुए हैं । इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में लाक्षणिकता और व्यंजकता दोनों का समावेश हो गया है। यह कवि-प्रतिभा का ही कमाल है कि ऐसे सार्थक शब्दों के प्रयोग से कवि ने अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति के द्वार तक पहुँचा दिया है ।

14.3.6 कविता परिचय (कर्णोत्थान)

नरेन्द्र शर्मा द्वारा लिखित सुवर्णा' एक प्रबन्धात्मक कृति है । इसे खण्डकाव्य की अभिधा भी दी जा सकती है । 'सुवर्णा' काव्य 11 शीर्षकों में विभाजित है इन 11 शीर्षकों के नाम इस प्रकार हैं- आमुख, कर्णावली, जामदग्नि का शिष्य द्वितीय, कर्ण का संताप, कर्णोत्थान, पाणिप्रस्थ, श्रीकृष्ण शिविर, कर्णाभियान उन्मन कर्ण, वैकर्तन पतन और सुवर्णा का संताप । इस काव्य के इन 11 शीर्षकों में से यहाँ केवल 'कर्णोत्थान' को स्थान दिया गया है । इस खण्ड में कवि नरेन्द्र शर्मा ने भीष्म पितामह की हार और शरशैया-शयन का वर्णन तो किया ही है, कर्ण का भीष्म के पास जाना, प्रबोधित होना और अन्ततः सुवर्णा को मुक्त करना जैसे प्रसंग भी वर्णित किए हैं । ये प्रसंग कर्ण की चरित्रोज्ज्वलता को भी प्रकट करते हैं और उसके भावी उत्थान को भी । इस प्रकार यह अंश अपने नामकरण के अनुरूप ही कर्णोत्थान को यथार्थतः स्पष्ट कर देता है । कर्ण अपने नियमानुसार संध्या-वंदन से उठा ही था कि दूत ने आकर समाचार दिया कि भीष्म पितामह युद्ध में सितवाहन से हार गये हैं और तीरों की सेज पर शयन कर रहे हैं । भीष्म की पराजय के इस समाचार से कर्ण के मन को गहरा धक्का लगा । वह भीष्म के प्रति श्रद्धालु हो उठा और उसी भावना से प्रेरित होकर पितामह के पास गया । कर्ण ने उनके पास जाकर उनके चरणों का स्पर्श किया । भीष्म ने कर्ण को उसके सूर्यपुत्र होने की बात बताई जिसे वह पहले से ही जानता था । कर्ण इस रहस्य को खोलना नहीं चाहता था । इसका प्रमुख कारण यह था कि वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि यदि युधिष्ठिर को इस बात का पता चल गया तो वे निश्चय ही युद्ध छोड़ देंगे । कर्ण युद्ध चाहता था और अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना चाहता था । कर्ण ने पितामह से यह भी कह दिया कि युद्ध में कोई भी मारा जाये-चाहे कर्ण, चाहे अर्जुन, कुन्ती के तो पाँच पुत्र शेष रहेंगे ही ।

भीष्म पितामह ने कर्ण को प्रबोधित किया और कहा कि अहंकार ही सारे झगड़ों की जड़ है । यही संसार में अनेक रूप धारण करके खेल खेलता रहता है । अहं के इस विवेचनोपरान्त पितामह ने कर्ण से स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा कि अहम् पर प्रेम से विजय पाई जा सकती है । इसी स्थल पर कर्ण भीष्म के जन्म और जीवन पर भी विचार करता है कि उन्हें शापवश माता के सुख से वंचित रहना पड़ा है । वे सदैव दृढ़ प्रतिज्ञ रहे और पिता के कारण ही उन्होंने राज्य का त्याग कर दिया । उनकी मर्यादा सागर जैसी गम्भीर है और सत्यव्रती होकर उन्होंने छात्र जीवन व्यतीत किया । भीष्म मुझे भी शांति प्रदान करें, ऐसी बातें सोचता हुआ कर्ण वहाँ से चला आया । कर्ण का ध्यान अपने शिविर में बंदिनी सुवर्णा की ओर गया । पितामह के पास से लौटकर कर्ण सुवर्णा को मुक्त कर देता है और अर्जुन से युद्ध करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ बन जाता है । यही इस 'कर्णोत्थान' शीर्षक का प्रतिपाद्य है ।

अवतरण 1

कर्ण ने मन का मर्म कहा, ग्रंथियाँ खुलीं, स्निग्ध बंधन ।
पितामह मन के मुकुर बने, कर्ण ने किया आत्मदर्शन ।
शांतनव ने खोली आँखें, बहुत धीरे-धीरे यह कहा-
कर्ण तुम कौतूहल के फूल, बहावों में जो बहता रहा ।
प्रभावों से तुम प्रेरित रहे, अभावों को न पचा पाये,
हृदय में गहरी आत्मघृणा, तुम्हें आत्मीय नहीं भाये ।
अहम् ही पोषित होता रहा, रहे शोषित सब भाँति स्वजन,
अहम् की हृष्टि-पुष्टि के लिए, सहा तुमने नित हृदय-दहन ।

शब्दार्थ- ग्रंथियाँ खुली = मन में छिपी हुई ग्रंथियाँ स्पष्ट हो गयी । स्निग्ध बंधन = प्रेमजनित कोमल बन्धन । अहम् ही पोषित होता रहा = तुम अहंकार का ही पोषण करते रहे । स्वजन = आत्मीय जन । हृदय-दहन = हृदय की अग्नि ।

प्रसंग- 'सुवर्णा' खण्डकाव्य के 'कर्णोत्थान' शीर्षक से अवतरित इस अंश में कर्ण के मनोभावों की व्यंजना के साथ-साथ भीष्म का वह कथन व्यंजित है जिसमें कर्ण के व्यक्तित्व का अन्तरतम उद्घाटित हुआ है ।

व्याख्या- कवि नरेन्द्र शर्मा कह रहे हैं कि कर्ण ने भीष्म के पास जाकर अपने मन का मर्म स्पष्ट कर दिया । फलत: उसके मन में वर्षो से पड़ी हुई ग्रंथियाँ खुल गयीं और उसके हृदय के स्निग्ध-कोमल भाव स्पष्ट होने लगे । कर्ण ने अपने मन की सारी रहस्यमयी बातें स्पष्ट करके आत्मदर्शन किया और पितामह के मन-दर्पण में असली चेहरा देख लिया । भीष्म पितामह ने अपनी आँखें खोलीं और धीमे स्वर में कहा कि हे कर्ण! तुम सदैव एक कौतूहल रहे हो जो निरन्तर बहावों में बहता रहा है । आगे की पंक्तियों में भीष्म पितामह ने कहा कि हे कर्ण! तुम सदैव प्रभावों से प्रेरित होकर कार्य करते रहे हो । भाव यह है कि जब जैसी स्थिति और प्रभाव आये, तुमने उन्हें सहज ही स्वीकार कर लिया है और तदनुसार आवेश में आकर कार्य करते रहे हो । तुम अपने अभावों को पचा नहीं सके हो, उनसे निरन्तर पीड़ित रहे हो । माता-पिता का अभाव, अनेक व्यक्तियों द्वारा किया गया अपमान और ऐसी ही अनेक बातें तुम्हें कष्ट देती रही

हैं । परिणामस्वरूप तुम कोई भी कार्य सहज रीति से नहीं कर सके हो । इसी असहज स्थिति के कारण तुम्हारे हृदय में गहरी आत्मघृणा उत्पन्न हो गयी है और इसी आत्मघृणा के अतिरेक के कारण तुम किसी के साथ आत्मीय व्यवहार भी नहीं कर पाये हो । आत्मीयों के प्रति तुम्हारे मन में कोई सदाशयता न होने का प्रमुख कारण भी यही है । भीष्म पितामह ने कर्ण से कहा कि तुम सदैव अहंनिष्ठ रहे हो और निरन्तर कुछ न कुछ ऐसे कार्य करते रहे हो कि तुम्हारा अहंकार नित्यप्रति पुष्ट होता ही रहा है । परिणामस्वरूप तुम्हारे स्वजनों का स्नेह तुम्हारे द्वारा शोषित होता रहा है । अन्त में पितामह ने कहा कि तुम अपने अहंकार के पोषण के लिए सदैव अपने हृदय को जलाते रहे हो । संकेत यह है कि कर्ण अपने अहंकार के पोषण के लिए हृदय में यदा-कदा उठे भावों - सात्विक भावों तक को दग्ध करता रहा है ।

टिप्पणी- (1) कर्ण की मनोग्रंथियों की ओर संकेत करके उसके व्यक्तित्व में निहित आत्मनिष्ठा और अहंकारमूलकता को स्पष्ट किया गया है ।

(2) अवतरण की भाषा में प्रवाह है, सहजता है और शब्द-चयन में एक लय विधान स्पष्ट है । प्रभावों के साथ अभावों, पोषित के साथ शोषित का प्रयोग इसी प्रकार का है ।

अवतरण 2

अहम् का दर्पण विश्व विशाल, अहम् ध्वनि और प्रतिध्वनि स्वयं,
अहं है अंधा और अकर्ण, अहम् के लिए अहम् ही अहम् ।
अहम् है वंश, व्यक्ति, घर-द्वार, अहम् है दुर्गे, सैन्य, परिकर,
अहम् है राष्ट्र, देश, साम्राज्य, अहम् है धनुष, अहम् है शर ।
अहंता में ममता का मूल, शूल से फूलमाल का ग्रंथन ।
अहम् ही दानमान का हेतु, अहम दुष्करजय, वैकर्तन ।
अहम् का टेढ़ा मेढ़ा मार्ग, अहम् भूषण विषपायी का,
विष्णु का तल्प कुंडली चक्र, वचन का गुन शरशायी का ।

शब्दार्थ- अकर्ण = कर्णरहित अर्थात् सोच-समझ से परे या विवेकशून्य । परिकर = अपना समाज । शर = बाण । अहंता = अहंकार या गर्वयुक्त स्थिति । शूल = काँटे । वैकर्तन = कर्ण । विषपायी = विष का पान करने वाले, अर्थात् शिव । कुण्डली चक्र = सुर्शन चक्र। शरशायी = बाणों की शैया पर सोने वाला ।

प्रसंग- 'सुवर्णा' खण्डकाव्य के 'कर्णोत्थान' शीर्षक से अवतरित इस अंश में भीष्म पितामह कर्ण को प्रबोधित भी कर रहे हैं और यह भी बतला रहे हैं कि यह सम्पूर्ण संसार अहंकार का दर्पण है ।

व्याख्या- कवि नरेन्द्र शर्मा कह रहे हैं कि यह समस्त विशाल विश्व अहंकार का दर्पण है। इस समस्त विशाल जगत् में अहं ही सर्वत्र प्रमुख है । वही ध्वनित और प्रतिध्वनित होकर समस्त विश्व में व्याप्त है । अहंकार अंधा भी होता है और बहरा भी । कहने का तात्पर्य यह है कि अहंकार में लीन व्यक्ति न तो कुछ भी देख पाता है और न कुछ भी सही सुन ही पाता है । वह अहंकारग्रस्त होकर सर्वत्र अहम् ही अहम् देखता है । इस स्थिति में अहंकारी व्यक्ति के लिए अहं ही उसका घर-द्वार और वंश-परिवार हो जाता है

और वही समृद्धि और शक्ति को भी प्रेरित करता रहता है । ऐसा अहंग्रस्त व्यक्ति ही राष्ट्र, देश, साम्राज्य और धनुष-बाण बनकर सारी धरती पर छा जाता है, यही स्थिति कर्ण तुम्हारी भी रही है । भीष्म ने कहा कि अहंकारपूर्ण हृदय में ममत्व का मूल तत्व उसी तरह अवस्थित रहता है जिस प्रकार शूल में फूलमाला का ग्रंथन । संकेत यह है कि शूल से ही फूलमाला का ग्रंथन होता है । यही अहंकार दान और मान भी कराता है जो कर्ण ने भी किया है । हे कर्ण! अहंकार को विजित करना दुष्कर कार्य है । इसका सीधा सा कारण यह है कि इस अहंकार का मार्ग वक्र होता है और यही अहंकार विषपायी शंकर का आभूषण है और यही अहंकार विष्णु का कुण्डली-चक्र है और इसी अहंकार से प्रेरित होकर शरशैया पर सोने वाला मैं भी अपने वचन का निर्वाह कर रहा हूँ ।

टिप्पणी- (1) प्रस्तुत पद्यावतरण के अन्तर्गत अहंकार की व्याप्ति, महत्ता और शक्ति को उद्घाटित किया गया है ।

(2) इस अंश में कवि की भाषा-शैली सरल तो है, पर प्रभावी नहीं हो सकी है । 'अहम्' शब्द की आवृत्ति का प्रभाव नहीं पड़ पाया है ।

अवतरण 3

अहम् से मुक्त हो सकूँ, वत्स, प्रीति-शर से छिदवाया तन ।
प्रतिज्ञाबद्ध युद्ध था यजन, यजन है यह शरशैयाशयन ।
अहम् का एकमात्र उपचार प्यार, पर केन्द्र न व्यक्ति स्वयं,
अहं है शत्रु, मित्र है प्रेम, समर्पित कर दो उसे अहम् ।
अहं का स्वर्णनाग ही वृत्र, चित्रवत् आच्छादित दश दिशा,
इन्द्र का वज्र प्रेम का तेज, ध्वस्त होती जिससे भव-निशा ।
वचन जब बना नाग का पाश, बना मैं सेनानायक स्वयं,
अहम् मैं, केवल कृष्ण विवेक, समर्पित जिसको मेरा अहम् ।
अहम् अहि कर्ण-स्वर्ण-ध्वजचिन्ह कर्ण का मनोकाम भी अहम्,
अहम् की औषधि केवल प्रेम, कर्ण इतना ही आज अलम् ।
स्वस्ति, वर पौत्र, लौट जाओ, नये दिन की आहट आई?
एक गुरु के हम दोनों शिष्य, विदा, वैकर्तन गुरुभाई ।

शब्दार्थ- प्रीति-शर = स्नेह के बन्धन रूपी बाण से । प्रतिज्ञाबद्ध = अपनी प्रतिज्ञा से बँधा हुआ । यजन = यज्ञ । शरशैयाशयन = बाणों की शैया पर सोना । स्वर्ण नाग = सुनहरा नाग । ध्वस्त = नष्ट । अहि = सर्प । अलम = पर्याप्त । स्वस्ति = कल्याण । नये दिन की आहट = नये युग का प्रारम्भ ।

प्रसंग- नरेन्द्र शर्मा द्वारा रचित 'सुवर्णा' खण्डकाव्य के 'कर्णोत्थान' शीर्षक से अवतरित इस अंश में भी भीष्म पितामह कर्ण को अहम् की व्याख्या, महत्ता और व्याप्ति को स्पष्ट करते हुए समझा रहे हैं ।

व्याख्या- पूर्व प्रसंगानुसार ही भीष्म कर्ण से कहने लगे कि हे वत्स! अहंकार को केवल प्रेम से ही विजित किया जा सकता है । इसी कारण मैंने स्वयं अहंकार से मुक्ति पाने की लालसा में ही अर्थात् मैंने प्रीतिवश ही अर्जुन के प्रेम-बाणों के आगे शरीर को छिदवाया है । अर्जुन के ममत्व व स्नेह के ही कारण मैं शरबिद्ध हुआ हूँ । भीष्म ने कहा

कि मैंने जीवन भर अपनी प्रतिज्ञा को निभाया और उसी प्रतिज्ञा से बँधकर युद्ध को यज्ञ के रूप में स्वीकार किया और इस शरशैया का शयन भी यजन अर्थात यज्ञ ही है । भीष्म ने इसके पश्चात् अपना अनुभूत निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कर्ण से कहा कि अहम् का एकमात्र शमनोपचार अर्थात् शांतिपूर्ण इलाज प्रेम का शीतल अवलेप ही है । अफसोस यही है कि आज कोई भी व्यक्ति इस उपचार पर केन्द्रित नहीं है । वास्तविकता यह है कि मनुष्य का अहंकार ही जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है और प्रेम ही सर्वोपरि मित्र है । अत: हे कर्ण! तुम अपने अहंकार को प्रेम के लिए समर्पित कर दो । संकेत यह है कि अहंकार विनाश को जन्म देता है और प्रेम निर्माण को । आज निर्माण की आवश्यकता है । अत: उसके लिए प्रेम को स्वीकार करो । भीष्म अपना उदाहरण देकर कर्ण के समक्ष यह प्रतिपादित कर ही चुके हैं कि 'अहम् से मुक्त हो सकूँ वत्स! प्रीति-शर से छिदवाया तन।' आगे की पंक्तियों में भीष्म पितामह ने और स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि विवेक और प्रेम का ही विशेष महत्व होता है । अहंकार का सुनहरा नाग ही वृत्र का राक्षस होता है जिससे दशों दिशाएँ चित्र की तरह आच्छादित रहती हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि वृत्रासुर राक्षस भी अहंकार से ग्रसित था जिसका वध हुआ । अत: अहंकार का वध अनिवार्य है । इन्द्र का वज्र प्रेम के तेज से ओतप्रोत था और है जिससे संसार की अज्ञानपूरित रात्रि का नाश हो सकता है । इन्द्र ने वृत्रासुर को मार कर इसी अहंकार जनित अज्ञान का नाश किया था । भीष्म ने कहा कि मेरा वचन स्वयं मेरे लिए नागपाश बन गया था और उसी के परिणामस्वरूप मैं स्वयं सेनानायक बन गया । इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि अहम् मनुष्य को उसी के पाश में - अपने द्वारा निर्मित पाश में बाँधकर नष्ट कर देता है । भीष्म स्वयं अहंकार के प्रतीक बने रहे, विवेक तो केवल कृष्ण के पास बना रहा । भीष्म ने कहा कि आज उसी विवेक के समक्ष मैंने अपने अहंकार को समर्पित कर दिया है ।

अन्तिम पंक्तियों में भीष्म पितामह कह रहे हैं कि अहम् ही कर्ण की ध्वजा का चिह्न है। फिर कर्ण ने जो-जो मनोकामनाएँ की हैं, वे भी उसके अहम् की ही प्रतीक हैं अर्थात् उनसे भी कर्ण तुम्हारा अहंकार ही व्यक्त होता है । अत: हे कर्ण! आज मैं तुमसे केवल यही कहना उचित समझता हूँ कि अहम् को समाप्त करने और उससे फैले विभिन्न रोगों - कल्मषों की एकमात्र औषधि प्रेम ही है । स्पष्ट शब्दों में केवल प्रेम से ही अहंकार पर विजय पाई जा सकती है । इतना कहकर भीष्म पितामह ने कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे पौत्र! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपने शिविर में जाओ । देखो नये दिन की नयी आहट मुझे सुनाई दे रही है अर्थात् नया युग बोध नये प्रभात के साथ उदित हो रहा है । हम दोनों - भीष्म पितामह और कर्ण, एक ही गुरु के दो शिष्य हैं । अत: हे वैकर्तन! (कर्ण) मैं तुम्हें अपना गुरुभाई समझकर विदा देता हूँ ।

टिप्पणी- (1) इस अंश में अहंकार से मुक्ति का एकमात्र उपाय प्रेम को बतलाया गया है। उसे ही अहंरूपी रोग का एकमात्र उपचारक तत्व बतलाया गया है ।

(2) मनुष्य मात्र को अहं का पुतला और मात्र कृष्ण को विवेकी बतलाकर ईश्वर और जीव की भिन्नता बतलाकर भी विवेक के प्रति समर्पित होने का संदेश नियामक के प्रति श्रद्धा और मानवीयता को ही स्पष्ट करता है ।

(3) अवतरण की भाषा सरल और शैली प्रसाद गुण से वलयित होने के कारण भीष्म का कथन सरलता से पाठकीय चेतना का अंग बन जाता है ।

अवतरण 4

देवि, मैंने यह जान लिया - न थीं तुम, मैं था बंधन में ।
मुक्ति अविभाज्य, इसलिए, देवि, मुक्त हूँ मैं भी अब मन में ।
रहो या जाओ और कहीं, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर,
द्रवित है मेरी हृदय-शिला, मुक्ति तुम मुक्त स्वर्ण-निर्झर ।
देवि! तुम शिविर बंदिनी नहीं, स्वेच्छया करो आत्मनिर्णय,
शिविर में रहो मुक्त सानन्द, न मेरा बाधक बधिक प्रणय ।
दिखेगा या न दिखेगा कभी, स्वर्ण मुख सुमन मनोहर का?
शिविर में स्वर्ण हंस स्वच्छन्द कर्ण-मन-मानसरोवर का ।

शब्दार्थ-अविभाज्य = विभाजन रहित । द्रवित= कोमल । हृदय-शिला = हृदय की कठोरता। निर्झर = झरना । आत्मनिर्णय = आत्मविश्लेषण करते हुए निर्णय करना ।

प्रसंग- नरेन्द्र शर्मा द्वारा रचित 'सुवर्णा' खण्डकाव्य के 'कर्णोत्थान' शीर्षक से अवतरित इस अंश में कर्ण के चरित्र का उत्थान दिखलाया गया है । वह सुवर्णा के पास जाकर उसे मुक्त कर देता है । यही स्थिति काव्य के कर्णोत्थान शीर्षक को सार्थकता प्रदान करती है।

व्याख्या- कर्ण सुवर्णा के पास जाकर कहता है कि हे देवी! मैं यह भलीभाँति जान गया हूँ कि अब तक तुम मेरे शिविर में बंदिनी होकर भी बंदिनी नहीं थी । मैं स्वयं ही तुम्हारे बंधन में था । संकेत यह है कि प्रत्यक्षतः तो सुवर्णा बन्दिनी थी, पर वह बन्धन कर्ण के मन पर था, उसके हृदय का था जिसे वह अनुभव कर रहा था । कर्ण ने सुवर्णा से कहा कि मुक्ति अविभाज्य है । अत: हे देवी! मैं अब स्वयं भी बन्धनहीन अनुभव कर रहा हूँ अर्थात मेरा मानस स्वतन्त्रता का अनुभव कर रहा है । अब यह तुम्हारी इच्छा है कि तुम यहाँ रहो या यहाँ से जाओ । मेरी ओर से अर्थात कर्ण की ओर से अब कोई बंधन नहीं है । मेरे हृदय में स्थित शिला-कठोर भावना अब समाप्त हो गयी है और इसी कारण से तुम अब स्वर्ण निर्झर की भाँति मुक्त हो, बन्धनहीन हो । जिस प्रकार झरने पर कोई बन्धन नहीं होता है, उसी प्रकार तुम भी निर्बन्ध होकर कहीं भी आ जा सकती हो ।

आगे की पंक्तियों में कर्ण ने सुवर्णा से कहा कि तुम अब शिविर बन्दिनी नहीं हो । अब तुम स्वयं ही, अपनी इच्छा से यह निर्णय करो कि तुम्हें क्या करना है और क्या नहीं । यह तुम्हारी अपनी निर्णायिका बुद्धि पर निर्भर करता है कि तुम कहीं आनन्द से रहोगी । मेरा प्रेम-भाव तुम्हारे निर्णय में बाधक नहीं होगा और न ही वह बधिक बनकर तुम्हारे प्राण ही लेगा । अन्त में कर्ण ने कहा कि मैं नहीं जानता कि अब कर्ण के मन रूपी मानसरोवर के स्वर्णिम हंस अर्थात् सुवर्णों का सुनहरा मुख अब कभी दिखेगा या नहीं । अब तक तुम शिविर में थीं, अब तुम मुक्त हंसिनी हो, चाहो तो कर्ण के मन-मानसरोवर को छोडकर कहीं भी जा सकती हो ।

टिप्पणी- (1) इस अंश में कर्ण के उदात्त चरित्र की स्पष्ट व्यंजना की गयी है ।

(2) कर्ण के इस परिवर्तित रूप में भव्यता है । वह अन्नमय कोष से ऊपर उठता हुआ दिखलाया गया है । उसकी मनीषा मुक्त हो गयी है ।

(3) 'हृदय-शिला', 'मन-मानसरोवर' में रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है । 'सुमन मनोहर' लाक्षणिक प्रयोग है और इसका अर्थ सुवर्णा की आकर्षक और कोमल मुखाकृति से है ।

(4) अवतरण की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी होने के कारण कथ्य-सम्प्रेषण में सहायक है ।

14.4 सारांश

नरेन्द्र शर्मा ने अपने गीतों और प्रबन्ध काव्यों के माध्यम से हिन्दी काव्यधारा में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है । प्रेम और प्रकृति के गहरे सौन्दर्य से आप्लावित नरेन्द्र शर्मा का काव्य पाठकों को सहज ही आकृष्ट कर लेता है । प्रस्तुत इकाई में कई महत्वपूर्ण कविताओं को स्थान दिया गया है । 'पाषाण नहीं था', 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे', 'पापी', 'युग बदला', 'प्यासा निर्झर', 'करणोत्थान' आदि कविताओं एवं उनके अंशों को स्थान दिया गया है । नरेन्द्र शर्मा के काव्य में विषय वस्तु की विविधता विद्यमान है । शोषण के प्रति विद्रोह है, राष्ट्रीय चेतना व मानवतावादी भावों की अभिव्यक्ति इनके काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है ।

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्नांकित अवतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए और यथावश्यक टिप्पणी भी लिखिए-
    1. ' मैं सब दिन पाषाण..... गुमान नहीं था ।"
    2. "आज तक किसका..... उत्तर 'कब मिलेंगे?"
    3. "'अहं का दर्पण..... शरशायी का ।"
    4. "'अहं से मुक्त..... वैकर्तन गुरुभाई ।"
    5. "'भौतिक भव का..... उनचास पवन ।"

14.6 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. नगेन्द्र : आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

2. सम्पादक : रामवीरसिंह : आधुनिक काव्य-संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।

3. डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री : आधुनिक कवि, आर्य बुक डिपो, करौलबाग नई दिल्ली ।

4. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि, भारतीय साहित्य मन्दिर, फब्बारा, दिल्ली।

5. डॉ. लक्ष्मीनारायण : नरेन्द्र शर्मा का काव्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

इकाई-15 नरेन्द्र शर्मा के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 कवि और कृतित्व-परिचय
  15.2.1 कवि-परिचय
  15.2.2 कृतित्व परिचय
15.3 काव्य का अनुभूति पक्ष
  15.3.1 प्रकृति सौंदर्य
  15.3.2 प्रणयानुभूति
  15.3.3 सौंदर्यानुभुति
  15.3.4 सांस्कृतिक चेतना
  15.3.5 राष्ट्रीयता
  15.3.6 मानवतावादी चिन्तन
  15.3.7 वैचारिक मनोभूमि
  15.3.8 सामयिक संदर्भ
15.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष
  15.4.1 काव्य-भाषा
  15.4.2 अलंकृति
  15.4.3 प्रतीक और बिम्ब
15.5 सारांश
15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.7 संदर्भ ग्रन्थ

15.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

- नरेन्द्र शर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- छायावादोत्तर वैयक्तिक काव्यधारा में नरेन्द्र शर्मा की स्थिति और उनके प्रदेय से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे ।
- नरेन्द्र शर्मा के कृतित्व से पूर्णत: परिचित होकर उनके काव्य के अनुभूति पक्ष का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे ।
- नरेन्द्र शर्मा के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से परिचित हो सकेंगे ।

- उत्तर छायावादी कविता में विकसित राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और वैयक्तिक कविताधारा में नरेन्द्र शर्मा के महत्व से अवगत हो सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

छायावादी चेतना के समानान्तर या उससे ही एक दिशा विशेष में विकसित काव्य-चेतना का एक पक्ष यदि राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से वलयित था, तो दूसरा पक्ष प्रणय, मस्ती और मादकता की जमीन पर विकसित व्यक्तिवादी चेतना से । वैयक्तिक चेतनाप्रवण इस काव्यधारा को प्रणय और मस्ती की काव्यधारा भी कहा जा सकता है । यह काव्यधारा आदर्शवादी और भौतिकवादी मूल्यों और मान्यताओं की मध्यवर्ती काव्यधारा है । इसमें आदर्शवादी विचारधारा की व्यक्तिवादी और भौतिकवादी वामपक्षीय धारणा का स्थूल और मूर्त रूप है तथा परम्परा और अध्यात्म के सूक्ष्म आदर्शों के प्रति अनास्था है । यह वह काव्यधारा है, जिसने छायावाद की कोख से जन्म लिया और किंचित् भिन्न मार्ग पर प्रवाहित होकर आगामी प्रगतिशील कविता के लिए भूमिका तैयार की । ऐसी स्थिति में इसे 'छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा' कहा जा सकता है । इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों में हरिवंशराय बच्चन, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवतीचरण वर्मा और नरेन्द्र शर्मा आदि के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं ।

वैयक्तिक कविता के प्रादुर्भाव के अनेक कारण हैं । इनमें कुछ तो ऐतिहासिक और सामाजिक हैं और कुछ मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक कारण हैं । इन कारणों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि "'ऐतिहासिक सामाजिक कारणों में सबसे प्रमुख तो था तत्कालीन जीवन में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा । वह दर्शन, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था सभी में व्यक्तिवाद का युग था- जब अनेक स्वदेशी-विदेशी प्रभावों के कारण मानव-चेतना मध्ययुगीन सामन्तवादी रूढ़ियों से प्राय: मुक्त हो चुकी थी और अपनी सत्ता के प्रति जागरूक हो गयी थी । दर्शन के क्षेत्र में बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद अथवा अद्वैतवाद की पुन: प्रतिष्ठा, राजनीति में व्यक्ति का बढ़ता हुआ प्रभाव, अर्थव्यवस्था में पैतृक सम्पत्ति के स्थान पर व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ द्वारा अर्जित पूँजी का विकास और समाज के क्षेत्र में व्यक्ति के प्रयत्नों की वर्धमान सफलता आदि ऐसे सार्वभौम कारण उपस्थित हो गये हैं जिनसे व्यक्तिवाद को अत्यन्त प्रोत्साहन मिला ।" समाज में मध्यवर्ग का महत्त्व बढ़ गया और वही तत्कालीन समाज का व्याख्याता भी बना । उसने शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और राजनीति सभी का नेतृत्व किया । धीरे-धीरे व्यक्तिवादी चेतना विकसित होती गयी और मनुष्य का जीवन त्रासद और सुखद स्थितियों की अधूरी कहानी बनता गया । ऐसे ही विसंगत और सुख-दुख के धूपछाँही रंगों से छायावाद की अनुजा वैयक्तिक कविता लिखी गयी है । वैयक्तिकता छायावाद में भी थी और खूब साफ थी, किन्तु वहाँ इसकी अभिव्यंजना बेलाग न होकर प्रच्छन्न थी, प्रतीकों व लाक्षणिक प्रयोगों की कायल थी । यहाँ आकर सारे अवरोध मिट गये हैं, अभिव्यक्ति बेलाग हो गयी है और भावों की स्थूल व्यंजना बिना किसी प्रच्छन्न माध्यम के हुई है । इसी कारण इस कविता की वैयक्तिकता छायावादी कवियों की

वैयक्तिकता से पर्याप्त भिन्न प्रतीत होती है । ये कवि तो आत्माभिव्यक्ति में ही परम सुख पाते हैं ।

15.2 कवि और कृतित्व परिचय

15.2.1 कवि परिचय

कविवर नरेन्द्र शर्मा का जन्म 22 फरवरी, 1913 को उत्तरप्रदेश के जिला बुलन्दशहर के जहाँगीरपुर नामक स्थान पर हुआ था । इस जिले की तहसील खुर्जा है, जो शिक्षा-केन्द्र के लिए प्रसिद्ध रही है । शर्माजी की प्रारम्भिक शिक्षा इसी नगर में हुई । प्रयाग विश्वविद्यालय शिक्षा-क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है, अत: वहीं से नरेन्द्र शर्मा ने सन् 1936 में एम. ए. हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण की । जिन दिनों इन्होंने परीक्षा दी, उन दिनों सुमित्रानंदन पन्त, महादेवी वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा एवं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रयाग में रहकर ही साहित्य-साधना कर रहे थे । सन् 1931 में नरेन्द्र शर्मा कोमल कल्पनाओं एवं प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत के सम्पर्क में आये । परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ता में परिवर्तित हुआ । शर्माजी के सहपाठी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल और शमशेर बहादुर सिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । यही कारण है कि इन्होंने अपना काव्य-संग्रह 'पलाशवन' अपने इन्हीं सहपाठियों को समर्पित किया है । कुछ समय तक नरेन्द्र शर्मा ने लीडर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'भारत' दैनिक समाचार-पत्र में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य किया । सन् 1940 से 42 तक इनकी कई कविताएँ प्रकाशित हो चुकी थीं और इन्हीं वर्षो में इन्होंने सत्याग्रह करने के कारण जेल में भी अंग्रेजी प्रशासन का दमन-चक्र सहा था । सन् 1943 में ये बम्बई चले गये और चलचित्रों में कथानक, संवाद एवं गीत लिखकर जीवन-यापन करने लगे । धीरे-धीरे इनकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी और सन् 1954 से आकाशवाणी केन्द्र की सेवा में आ गये । बम्बई, दिल्ली आदि केन्द्रों में भी शर्मा जी ने अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया । बाद में ये स्वतंत्र लेखन में प्रवृत्त हो गये । नरेन्द्र शर्मा का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था । ये आवाज के धनी थे, उच्चारण में ऊर्जा और ताजगी थी और साथ ही मृदुभाषी भी थे । इनके व्यक्तित्व में संस्कारशीलता, विनम्रता, मृदुता और दूसरों का सहयोग करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी । ये कवि होने के साथ-साथ ज्योतिष का ज्ञान भी रखते थे । नरेन्द्र जी की व्यवहार बुद्धि बड़ी प्रखर थी, किन्तु वे उसका उपयोग अत्यन्त सावधानी से किया करते थे ।

15.2.2 कृतित्व परिचय

छायावाद के पश्चात् चार कवि प्रमुख रूप से उभरकर सामने आये - बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा और अंचल । बच्चन की काव्य-संवेदना छायावाद के प्रभाव से प्राय: अछूती रही, तो दिनकर के कण्ठ में क्रांति का आक्रोश और मन में प्रेमिल भावों की मधुरता थी । ये दोनों तत्व बारी-बारी से दिनकर की रचनाओं में मुखरित होते रहे । नरेन्द्र शर्मा में इन दोनों से भिन्न एक विशेष प्रकार की सहज कोमलता थी जो श्रोता के मन को उद्वेलित न कर भीतर तक पुलकित करने में समर्थ थी । इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ ये

हैं - 'शूलफूल', 'कर्णफूल', 'प्रभातफेरी', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल', 'कामिनी', 'हंसमाला', 'रक्तचंदन', 'अग्निशस्य, 'कदलीवन', 'द्रौपदी', 'प्यासा निर्झर' और 'सुवर्णा' आदि । बाद में इनके कथा-काव्य 'उत्तरजय' और 'मनोकामिनी' भी प्रकाशित हुए । इनमें से प्रमुख काव्य-कृतियों का संक्षिप्त परिचय अग्रलिखित है:-

'**शूलफूल**' और '**कर्णफूल**' नरेन्द्र शर्मा की प्रारम्भिक कविताओं से सज्जित संग्रह है । इनमें कवि की चेतना अँगड़ाई लेती हुई बाहर आने को मचलती दिखाई देती है । '**प्रभातफेरी**' इनका चर्चित प्रथम काव्य-संकलन है । इसमें कवि की काव्य-चेतना के प्राय: सभी सूत्र उपलब्ध होते हैं । इस संग्रह की कविताओं के प्रमुख विषय समाज-सुधार, असंतोष और विद्रोह तो हैं ही, साथ ही साथ आध्यात्मिकता, प्रकृति-सौंदर्य और प्रेम भी है । इसके अन्तर्गत कवि ने सत्यान्वेषण करने वाले भौतिकता के बन्दी मनुष्यों को जागृति का संदेश दिया है । इस संग्रह की कविताओं में प्रेम विषयक कविताएँ भी हैं जो दो प्रकार की हैं - एक तो वे हैं जो प्रेमी द्वारा व्यक्त मनोभावों की सूचक हैं और दूसरी वे हैं जो प्रेयसी की भावनाओं को व्यक्त करती हैं । **'प्रवासी के गीत'** इनका चर्चित गीत-संग्रह है । इसमें भावुकता, यौवनजनित भावनाएँ और प्रवासी की विरह-भावना को अभिव्यक्ति दी गयी है । मिलन की मधुरिमा इस कृति के गीतों में विरह की पीड़ा और स्मृतिजनित अवसाद में बदल गयी है । इसमें जो विरह-गीत हैं, उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो पूरी तरह लौकिक हैं और क्रमश: स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर उन्मुख होते गये हैं, दूसरे वे हैं जो सामान्य प्रेमी के विरह को प्रकट करते हैं और कल्पनाप्रधान हैं । निराशा और विषाद के गीत भी व्यावहारिक और यथार्थ चेतना से युक्त हैं ।

'**रक्तचंदन**' महात्मा गांधी की मृत्यु से प्रभावित होकर लिखी गयी कविताओं का विशिष्ट संग्रह है । इन कविताओं का मूल विषय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का व्यक्तित्व-निरूपण तथा उनके सत्य-अहिंसा आदि के सिद्धान्तों का आख्यान है । कवि ने इस बात पर गहरा दुख व्यक्त किया है कि गांधी की मृत्यु के साथ ही उनके सत्य और अहिंसावादी सिद्धान्तों की भी हत्या कर दी गयी । '**अग्निशस्य**, 'रक्तचंदन' के पश्चात् प्रकाश में आया है । इसकी कविताओं में आध्यात्मिकता, पौराणिकता, नियति, प्रेम, प्रकृति, नारी, राष्ट्रीयता और लोकमंगल की भावना की अभिव्यक्ति हुई है । 'अग्निशस्य' में कवि की काव्य-चेतना व्यक्ति से समाज की ओर स्पष्ट रूप से अग्रसर हुई है । यही कारण है कि कवि भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिकता और उससे ही जुड़े हुए जीवन-मूल्यों को विशेष महत्त्व देता है । अग्निशस्य में प्रकृतिपरक कविताएँ भी पर्याप्त मात्रा में हैं । इन प्रकृतिपरक कविताओं में कवि की सौंदर्यानुभूति, रहस्यानुभूति तो व्यक्त हुई ही है, साथ ही साथ प्रणयजनित भावनाएँ भी व्यक्त हुई हैं ।

'**कदलीवन**' नरेन्द्र शर्मा का ऐसा काव्य-संग्रह है जिसमें प्रकृति की कविताओं को सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुआ है । वास्तव में इस संग्रह की कविताओं का मूल विषय प्रकृति ही है, किन्तु विशुद्ध प्रकृति विषयक कविताओं की संख्या यहाँ बहुत कम है ।

प्रकृति का वर्णन करता हुआ कवि किसी न किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक भावभूमि पर पहुँच गया है । संग्रह की पहली कविता के आरम्भ में अम्बर के नील बिम्ब, धरती पर योजनभर फैले शीतल कदलीवन का वर्णन तो किया गया है, किन्तु कविता के अन्त में

कवि ब्रह्मज्ञान और माया की दार्शनिक शब्दावली में उलझ गया है । चाँदनी, कच्चा धागा, निर्वासित कनकरेख, मत्त तुरंग, विचार तथा चाँद सितारे जैसी कविताएँ संग्रह की प्रभावी कविताएँ हैं । 'प्यासा निर्झर नरेन्द्र शर्मा का प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है । इस संग्रह में कवि का चिन्तन, उसकी अनुभूति और उसका सूक्ष्म निरीक्षण सभी कुछ अभिव्यक्ति पा गया है । उनकी काव्य-चेतना के वे सूत्र जो प्रारम्भिक कविताओं में बीजरूप में वर्तमान थे, यही आकर विकसित फूल बन गये हैं । कवि ने स्वयं लिखा है- "'मनोभूमि के कृषक के नाते कवि-कार्य को मैं अपना लोकोपयोगी कर्त्तव्य-कार्य समझता हूँ और मानता हूँ कि मैं इस प्रकार समाज के मनोमय वैश्वानर की पूजा में नैवेद्य समर्पित करता हूँ ।" वास्तव में यह काव्य-संग्रह नरेन्द्र शर्मा के काव्य-सृजन के विकास का सहज, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करता है । इस संग्रह में कवि का चिन्तन खुलकर व्यक्त हुआ है । कतिपय कविताओं में रहस्य भावना के साथ-साथ भक्तिपरकता भी दिखाई देती है ।

नरेन्द्र शर्मा ने एक ओर तो प्रेमपरक, भावनापरक और समष्टिपरक गीत लिखे हैं तो दूसरी ओर कथा-काव्यों की सृष्टि भी की है । इनके द्वारा सृजित प्रमुख कथा-काव्यों में '**कामिनी**', '**द्रौपदी**', **उत्तरजय**', **सुवर्णा,** और '**मनोकामिनी**' को लिया जा सकता है । ये कथा-काव्य नरेन्द्र शर्मा की प्रबन्ध-चेतना को स्पष्ट करते हैं और साथ ही उनकी आधुनिक जीवन-दृष्टि और परम्परा के प्रति आस्था-भावना को भी प्रमाणित करते हैं । '**कामिनी**' गीतों में लिखी गयी एक प्रेम-कहानी है जिसे कवि ने कथागीत की संज्ञा दी है। इसका वातावरण विश्वव्यापी युद्ध के प्रकोप से थर-थर काँपती हुई दुनिया से सम्बन्धित है । कामिनी की कथा नायक और नायिका की मिलनावस्था से प्रारम्भ होती है । इसमें नायक को अतिथि कहा गया है । कारण यह है कि प्रकृति के सुन्दर वातावरण में स्थित कामिनी की कुटिया में वह एक अतिथि के समान अल्प समय के लिए आकर रुकता है । बाद में तो वह शान्ति की कामना में स्थान-स्थान पर भटकता हुआ दिखलाया गया है । लगता है, नियति से उसे अस्थिरता और चंचलता का श्राप मिला है । काव्य के प्रारम्भ में नायक-नायिका का प्रेम वासनात्मक है, किन्तु बाद में वह ऐसा नहीं रहा है । सवेरा होने पर कामिनी सूर्य की वन्दना करती है और उससे कलावती होने का वरदान भी प्राप्त करती है । यह स्वप्न में होता है, किन्तु स्वप्न टूटने पर सब-कुछ खाली-खाली दिखाई देता है ।

'**द्रौपदी**' पाँच सर्गो में लिखा गया एक खण्ड काव्य है । इसमें महाभारत की कथा के एक अंश को आधार बनाया गया है तथा पात्रों और घटनाओं को इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है कि वे निश्चित रूप से प्रतीकार्थ रखते हैं । प्रतीकों का प्रयोग करके कवि ने मानव-जीवन के मूलभूत प्रश्नों और शाश्वत जीवन-मूल्यों को उठाने का प्रयत्न किया है । कथा के गठन, सूक्ष्म सांकेतिकता तथा प्रतीकात्मकता के आधार पर इसे एक प्रभावशाली काव्य कहा जा सकता है **। 'उत्तरजय'** नरेन्द्र शर्मा का एक गाथा काव्य है । इसमें द्रौपदी से आगे की कथा कही गयी है । यह काव्य द्रौपदी की तुलना में अधिक प्रभावशाली और आधुनिक चेतना को व्यक्त करने वाला है । 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' दोनों की कथा महाभारत से सम्बन्धित है । हमारी दृष्टि में 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' का कथ्य न केवल

महत्वपूर्ण है, अपितु कवि की चिन्तन-शक्ति का परिचायक भी है । इन दोनों कथा-काव्यों में कथ्य के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि 'द्रौपदी' में मानव जीवनीशक्ति की सहायता से अपने लुप्त सत्यों को प्राप्त करता है । वहाँ जीवनीशक्ति द्वारा पाँच तत्वों को एक दिव्य कलेवर में संश्लिष्ट करने के बाद अपने अधिकारों की प्राप्ति द्वारा उसे महत् रूप प्रदान किया गया है । सामान्य दृष्टि से 'द्रौपदी में युधिष्ठिर की विजय बाहरी और भौतिक तत्वों की विजय है, पर 'उत्तरजय' में आत्मजय है । इस आत्मजय के पश्चात तत्वों का पुन: विश्लेषण हो जाता है । डॉ. रामदरश मिश्र का यह कथन उचित है कि 'उत्तरजय' ऐसा काव्य है जिसमें नरेन्द्र शर्मा ने केन्द्रीभूत अर्थ का प्रस्तुतीकरण इस रूप में किया है कि कहीं भी बिखराव नहीं है । जो भी थोड़ा-सा बिखराव आ गया है, वह भी अपनी सत्ता बनाये हुए है । इसके भी पात्र प्रतीकात्मक हैं।"

'मनोकामिनी' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, एक प्रेमोत्पन्न भावना का मनोवैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण है । सातवें दशक में प्रकाशित यह काव्य नरेन्द्र शर्मा की प्रौढ़ चेतना और कलादृष्टि को प्रस्तुत करता है । यह एक ऐसा काव्य है जिसमें कवि ने मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का सहारा लेते हुए अपने कथ्य को सम्प्रेषित किया है । यही कारण है कि इसका कथ्य सूक्ष्म एवं व्यंजनागर्मी संकेतों के प्रयोग से भरा पड़ा है । स्पष्ट आभासित होता है कि मनोकामिनी कवि के मानस में उत्पन्न मनोभावों का मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक रूप है । इस कृति में आकर कवि का शिल्प भी पूर्ववर्ती कथा-काव्यों की तुलना में अधिक प्रभावी और अधिक प्रौढ़ दिखलाई देता है ।

'**सुवर्णा**' नरेन्द्र शर्मा की अभिनव प्रबन्ध-कृति है । यह ग्यारह शीर्षकों में विभक्त है जिन्हें सर्ग भी कहा जा सकता है । इनके नाम हैं - आमुख, कर्णावली, जामदग्नि का शिष्य, द्वितीय, कर्ण का संताप, कर्णोत्थान, पाणिप्रस्थ, श्रीकृष्ण शिविर, कर्णाभियान, उन्मन कर्ण, वैकर्तन पतन और सुवर्णा का संताप । इस काव्य में कवि ने महाभारत का आख्यान लेकर और सुवर्णा की कल्पना करके कर्णार्जुन-युद्ध, उससे उत्पन्न स्थिति और परिस्थिति का चित्रण किया है । कवि का उद्देश्य यह बताना है कि आज युद्ध की विध्वंसक स्थिति ठीक उसी प्रकार है, जैसे महाभारत काल में थी । वस्तुत: कवि महाभारत के युद्ध के संदर्भ के सहारे वर्तमान में व्याप्त और प्रसारित अहंकारजनित शक्तियों को प्रस्तुत करके भारतीय मनीषा को अध्यात्म की ओर मोड़ना चाहता है । उसकी धारणा है कि स्वतन्त्र भारत का सही विकास संस्कृति और सभ्यता, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों के समुचित समन्वय से ही हो सकता है । अकेली भौतिक शक्तियाँ - बुद्धिवादी स्थितियाँ मानवीय विकास के लिए अपर्याप्त हैं । इसी तथ्य के उद्घाटन के लिए कवि ने 'सुवर्णा' का प्रणयन किया है ।

15.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

छायावादी युग जब अपने वैभव पर था तब छायावाद के अवसान के दिनों में ही नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि काव्य- क्षितिज पर अवतरित हुए। नरेन्द्र शर्मा उत्तर छायावाद के शीर्ष कवियों में स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं । जब हम इनके अनुभूति पक्ष की चर्चा करते हैं, तब हमारा अभिप्राय इनके भावलोक से होता है । इनके काव्य-विषय और

उनका स्वरूप ही अनुभूति पक्ष के अन्तर्गत आता है । नरेन्द्र जी के काव्य के प्रमुख विषय हैं- प्रकृति-सौंदर्य, प्रणयानुभूति, सौंदर्यानुभूति, सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना, मानववादी चिन्तन, वैचारिक मनोभूमि, अध्यात्म चेतना और सामयिक संदर्भ आदि । इन्हीं सब विषयों का विवेचन क्रमिक रूप से अनुभूति पक्ष के अन्तर्गत किया जा रहा है।

15.3.1 प्रकृति सौंदर्य

प्रकृति और मानव का अटूट सम्बन्ध रहा है । मनुष्य ने प्रकृति के प्रांगण में ही अपनी आँखें खोली हैं और उसी को निरख-परखकर उसने अपने व्यक्तित्व का विकास किया है । छायावादी काव्य यदि प्रकृति काव्य था, तो उत्तर छायावादी काव्य के कवि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में भी प्राकृतिक सौंदर्य के चित्र स्थान-स्थान पर देखने को मिलते है । उनकी काव्य-कृतियों में कोई भी कृति ऐसी नहीं है जिसमें प्रकृति के आकर्षक और रमणीय चित्र देखने को न मिलते हों । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में प्रकृति के जो चित्र उभरे है वे कल्पनाविलास मात्र नहीं हैं' वरन् उनमें यथार्थ अनुभूति की ताजगी विद्यमान है । प्रकृति के कण-कण के प्रति कवि का अनुराग लक्षित होता है । इतना ही नहीं, प्रकृति के सौंदर्य से अभिभूत होकर कवि का मानस उसकी गन्ध से भी परिपूर्ण होता गया है । परिणामस्वरूप कहीं प्रकृति आलम्बन रूप में चित्रित हुई है तो कहीं उद्दीपन रूप में । उद्दीपन रूप में तो प्रकृति के चित्र प्राय: सभी कवियों के यहाँ सहजता से मिल जाते हैं, किन्तु शुद्ध प्रकृति के चित्र नरेन्द्र शर्मा के पलाशवन से लेकर लगभग सभी संग्रहों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए । ये वे पंक्तियाँ हैं जिनमें कल्पनाविलास न होकर यथार्थ अनुभूति से निःसृत भाव-भंगिमाएँ देखी जा सकती हैं-

कटहल, बेल, नीम महके हैं
खिली कामिनी फूलों वाली
रंगी खड़ी सेमल, पलाश और
अमलतास की डाली-डाली,
सोने की गुलमौर लोचनों में छा जाती होगी ।
गंध-रूप-रंग की यह दुनिया
जो अग-जग फल-फूल रही है,
झूल झकोरों में माधव के
सब पिछले दुख भूल गयी है,
आज लगे बैसाख नयी अंबिया गहराती होगी ।

'भरे जंगल के बीचोंबीच' कविता प्रकृति और प्रणय भावना की मिली-जुली चित्रावली प्रस्तुत करती है । प्रणयीजन प्रकृति के उन्मुक्त किन्तु एकान्त और शांत वातावरण में जाकर जो अनुभूति प्राप्त करते हैं, उसके मनोरम चित्र भी नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में देखने को मिलते हैं । 'भरे जंगल के बीचोंबीच' एक ऐसी ही कविता है जहाँ पर प्रेमी अपनी प्रणयिनी के साथ वहाँ जाना चाहता है जहाँ-

जहाँ दिन भर महुआ पर कल

रात को चू पड़ते है फूल
बाँस के झुरमुट में चुपचाप
जहाँ सोये नदियों के कूल
हरे जंगल के बीचोंबीच
न कोई आया - -गया जहाँ
चलो, हम दोनों चलें वहाँ ।

नरेन्द्र शर्मा के प्रकृति निरूपण में बारहमासा का चित्रण भले ही न हुआ हो, किन्तु वर्ष के महीनों में ज्येष्ठ, आषाढ़ और फाल्गुन मास का वर्णन पूरी तन्मयता के साथ किया गया है । प्राचीन कवियों की भाँति इस प्रकार के वर्णनों में विरहगान नहीं किया गया है, किन्तु अनुभूति की तीव्रता और कवि-मन में उठे हुए भावों के बिम्ब बडी सहजता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं । गाँव की धरती के प्रति भी नरेन्द्र शर्मा का प्रकृति प्रेम बराबर उमड़ता रहा है । अपनी कुछ कविताओं में धरती के प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए कवि ने प्रकृति चित्रण का सहारा लिया है । जहाँ कहीं ऐसे ग्रामीण प्रकृति के चित्र देखने को मिलते हैं, वहाँ पर लगता है जैसे कवि ग्रामीण प्रकृति के उन्मुक्त परिवेश में अपने को डुबा गया है । कहने का अभिप्राय यह है कि प्रकृति के अद्भुत, आकर्षक और रमणीय चित्र नरेन्द्र शर्मा की काव्य-कृतियों में विद्यमान हैं । जहाँ कहीं प्रकृति ने उद्दीपन का कार्य किया है, वहाँ हम प्रवासी के गीत संग्रह को याद किए बिना नहीं रह सकते हैं । कवि जब यह लिखता है कि साँझ आते ही न जाने छा गयी कैसी उदासी, तब उसकी मनोभूमि में प्रकृति का योगदान स्पष्ट व्यंजित होने लगता है ।

15.3.2 प्रणयानुभूति

प्रकृति के साथ-साथ प्रणय भावना का गहरा सम्बन्ध है । प्रकृति और प्रणय के भाव एक दूसरे को उद्दीप्त भी करते हैं और प्रेमी की मनोभावनाओं को भी तरलित कर देते हैं । प्रणय और उसके उभयरूप - संयोग-वियोग के चित्र भी नरेन्द्र शर्मा की कविता के केन्द्रीय विषय हैं । तरल-सघन अनुभूतियों से स्पंदित संयोग-वियोग के उद्गीथ उनकी संवेदना के मूल आधार हैं । शूल-फूल, पलाशवन और हंसमाला जैसे सभी कृतियाँ प्रणय की उष्ण गंध से सुवासित हैं । 'प्रवासी के गीत' तो प्रणय-गीतों का ही संकलन है । कामिनी शीर्षक खण्डकाव्य में प्रणयजनित ऊष्मा सघन से सघनतम होती चली गयी है । प्रेम के सभी प्रसंगों में जीवन की विरहाकुल मर्मस्पर्शिता को इनके काव्य में सहज ही अनुभव किया जा सकता है । सुखद अतीत के जीवन-प्रसंग बार-बार प्रवासी को अन्तःकरण की विरह-पीड़ा से प्रभावित कर देते हैं । भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार वियोग - श्रृंगार के चार भेद माने गये हैं- पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण । इनमें पूर्वराग के चित्र-दर्शन एवं गुण-श्रवण आदि भेद माने जाते हैं । नरेन्द्र शर्मा ने प्रवासी के गीत में नाम से तो इन भेदों को परिगणित नहीं किया है, किन्तु गीतों में ये सभी वियोग श्रृंगार के भेद स्वतः ही समाहित प्रतीत होते हैं । प्रेम की पावनता की भावना इनमें उसी प्रकार मिली हुई दिखाई देती है, जिस प्रकार जल में नमक मिल जाता है या नीर और क्षीर मिलकर एकमेक हो जाते हैं । यही कारण है कि जहाँ कही प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति

हुई है, वहाँ मांसलता नहीं है । वहाँ मादकता की अपेक्षा मर्मस्पर्शिनी -मानसिक कोमलता और प्रणयजनित उदात्तता ही देखने को मिलती है । वियोग की पीड़ा के अद्भुत प्रसंग और वे भी पूरी सहजता के साथ नरेन्द्र शर्मा के गीतों में देखने को मिलते हैं । स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण पर्याप्त है-

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ।
आज से दो प्रेम योगी अब वियोगी ही रहेंगे ।
आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नम के सितारे,
दूर होंगे पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे,
सिन्धु तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे ।
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ।

इतना ही नहीं, नरेन्द्र शर्मा के गीतों में जो प्रणयानुभूति व्यक्त हुई है, वह एक भीनी गंध लिए हुए है । प्रेमी और प्रिया के मिलन के क्षण और बिछुड़ने के पश्चात् मिलन के क्षणों की स्मृति पात्र विशेष के व्यक्तित्व में जो कभी न मिटने वाली गंध छोड़ जाती है, उसकी अनुभूति निम्नांकित पंक्तियों में देखी जा सकती है । यह वह अनुभूति है जिसमें सहजता है और प्रणयानुभूति की निश्छलता और पावनता भी है-

तुम्हें याद है क्या उस दिन की
नये कोट के बटन-होल में
हँसकर, प्रिये, लगा दी थी जब
वह गुलाब की लाल कली ।
फिर कुछ शरमा कर, साहस कर,
बोली थीं तुम, 'इसको यों ही
खेल समझ कर फेंक न देना
है यह प्रेम-भेट पहली' ।
कुसुम-कली वह कब की सूखी,
फटा ट्वीड का नया कोट भी ।
किन्तु बसी है सुरभि हृदय में
जो उस कलिका से निकली ।

15.3.3 सौंदर्यानुभूति

प्रेम और सौंदर्य के कवि नरेन्द्र शर्मा की सौंदर्य चेतना भी सामान्य न होकर विशिष्ट है । जब हम उनके गीतों और प्रबन्धकाव्यों पर दृष्टि डालते हैं, तो उनकी सौंदर्यानुभूति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । सौंदर्य अपने आप में आक्रामक होता है । यदि सौंदर्य सचमुच सौंदर्य है, तो वह वासना से दूर, एक अद्भुत गंध के साथ सामने वाले को अपने आकर्षणपाश में बाँध लेता है । इस प्रकार का दिव्य सौंदर्य वासना रहित होकर उदात्त भावों को जन्म देता है । कहने की आवश्यकता नहीं है कि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में जहाँ कहीं सौंदर्य के चित्र प्रस्तुत हुए हैं, वहाँ पर उनकी सौंदर्य भावना न तो संकीर्ण है, न छिछली है और न रीतिकालीन कवियों की भाँति वासना की गंध से गंधित है, उसमें तो

एक निश्छलता है, उदात्तता है, पावनता है और साथ ही मन-प्राण को बाँधने की अद्भुत क्षमता भी विद्यमान है । इस प्रकार की पावन और उदात्त सौंदर्यानुभूति हम उनके प्रकृति चित्रों नारी-सौंदर्य के चित्रों और प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति में देख सकते हैं । उनकी सौंदर्य चेतना के ऐसे अकलुष और पवित्र चित्र उनके गीतों में भरे पड़े हैं । उनके प्रबन्ध काव्य भी उनकी ऐसी सौंदर्य-चेतना से शून्य नहीं हैं । 'सुवर्णा' काव्य को ही लें, तो उसमें प्रेम तो उदात्तीकृत होकर आया ही है, सौंदर्य-वर्णन भी उदात्त रूप लिए हुए है । सुवर्णा के सौंदर्य-निरूपण में कवि व्यावहारिक भूमिका से क्रमशः उदात्त भूमिका की ओर बढ़ता गया है । यही कारण है कि काव्य के प्रारम्भ में यदि सुवर्णा का सौंदर्य इस प्रकार चित्रित किया गया है-

वह वीर वेष में दुर्ग द्वार पर पहले पहल दिखी,
ज्यों नभ में उड़ने को सतृष्ण ओजस्वी स्वर्णशिखी ।
स्वर्णाशुक का उष्णीश, छरहरा छर्रा मणियों का,
ज्यों चढ़े किरण सोपान पुंज प्रातः हिमकनियों का ।
मुख पर प्रवाल का शंख, नाद में मधुर वेणु गंजी,
छुट खुली सुनहली लटें, सुन की ज्यों रक्षित पूंजी ।

और -

तिमिर वंदिनी स्वर्ण उषा सी बंधन में अभिराम,
शून्य देवता के चरणों में अर्पित नयन अकाम ।

तो काव्य के अन्त में वह कर्ण के आकर्षण में बँधकर जब चिता पर बैठना चाहती है तब उसका सौंदर्य उदात्त, शुभ्र और पावनता का प्रतीक बन जाता है-

केशव की गोद गई दुहिता, कंचन की अक्षत प्रतिमा-
आजन्म शुद्ध तन मन कन्या, आत्मा की अविदित महिमा ।
थी गले सुवर्णा शुभ्रव्रता के जपाकुसुम की माला-
चंदन कर्पूर सहज शीतल बन गये चिता की ज्वाला ।

15.3.4 सांस्कृतिक चेतना

कवि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य के साथ-साथ संस्कृति-प्रेम भी स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है । अपनी प्रारम्भिक कविताओं में कवि ने प्रेम और प्रकृति के दो तटों के बीच अपने को बाँध लिया था, किन्तु धीरे- धीरे अपनी परवर्ती रचनाओं में वह संस्कृति और अध्यात्म की ओर उन्मुख हुआ है । यही कारण है कि उनके गीतों में राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक चेतना, शोषण के प्रति विद्रोह, मानव-सेवा और मानव मात्र के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना के पक्ष भी उद्घाटित हुए हैं । ठीक भी है, जो कवि प्रेम और प्रकृति को ही नहीं, नारी-सौंदर्य को भी उदात्त दृष्टि से देखने का पक्षधर रहा है, वह सांस्कृतिक चेतना से विरहित कैसे हो सकता है' नरेन्द्र शर्मा ने भारतीय संस्कृति में वर्णित जीवन-मूल्यों के प्रति अपनी आस्था दिखाई है । उनके प्रबन्ध काव्यों में भी ऐसी सांस्कृतिक निष्ठा को भली-भाँति देखा जा सकता है । 'द्रौपदी' और 'सुवर्णा' जैसे काव्य उनकी सांस्कृतिक चेतना के स्पष्ट प्रमाण हैं । मानव-जीवन के विकास में

हमारी संस्कृति कितना योगदान देती है, यह तभी समझा जा सकता है, जबकि हम खुले मन से अपने देश, अपनी संस्कृति से जुड़े रहें । नरेन्द्र शर्मा ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने अपने परिवेश में फैली हुई विकृत स्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अपना रुझान अधिक दिखलाया है । 'हंसमाला' काव्य- संग्रह में कवि ने हंस के समान विवेकशीलता को महत्त्व दिया है । नीर-क्षीर का विवेक रखना हंस का स्वभाव है । इसी भाँति मनुष्य को भी सौम्य और असौम्य ग्राह्य और अग्राह्य, सही और गलत जैसे जीवन-तत्त्वों को विवेकसंगत रूप से ग्रहण करना चाहिए । नरेन्द्र शर्मा ने हंसमाला में इसी चेतना को अभिव्यक्ति दी है । यह वह चेतना है जो हमें मूल्यवादी दृष्टि प्रदान करती है और साथ ही साथ सांस्कृतिक चेतना से जोड़ती है

15.3.5 राष्ट्रीयता

नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति भी बड़ी खूबी के साथ हुई है। इनका 'अग्निशस्य' काव्य-संग्रह राष्ट्रीय चेतना का बोध देता है । पन्द्रह अगस्त सन् 1947 से सम्बन्धित रचना में राष्ट्र पर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले वीरों का स्मरण किया गया है । इस काव्य-कृति में राष्ट्रीयता, प्रकृति-प्रेम और मानव-मात्र के प्रति अनुराग व्यक्त करने वाले कई गीत संगृहीत हैं । एक प्रकार से यह कृति कवि के जीवन के अनेक पक्षों को प्रदर्शित करती है । 'प्यासा निर्झर' के अन्तर्गत भी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है । राष्ट्रीय चेतना की ओर कवि का मन परवर्ती रचनाओं में बार-बार आकृष्ट होता गया है । गांधीजी के पश्चात् भारत के नवनिर्माण में जिस व्यक्ति का प्रमुख योगदान रहा, वह व्यक्ति जवाहरलाल थे । नेहरू जी से कवि नरेन्द्र शर्मा का निकटतम सम्पर्क रहा, इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में नेहरू जी को याद करके देशहित और राष्ट्रहित से सम्बन्धित अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है । राष्ट्रीय चेतना के भावों से युक्त नरेन्द्र शर्मा ने अनेक कविताएँ लिखी हैं । विभिन्न राष्ट्रीय पर्वो पर लिखी गयी उनकी कविताएँ अपने भावों के कारण काव्य की स्थायी निधि बनी हुई हैं। एक उदाहरण देखिए-

धूलि में जिसकी लोटे नहीं,
गोद में लेकर तुम्हें समोद,
तुम्हारी बाल-बुद्धि की मुष्टि,
सह रहा था, कह इसे विनोद!
दीर्घजीवी यह देश पुनीत,
हुआ जो बापू में बपुमान,
तुम्हें देता था आशीर्वाद! -
आज भी हो पाया कुछ भान?
पढ़े भी, गुने किन्तु दिन-रात -
विज्ञ तुम पश्चिम के विद्वान
प्राण भी बन जाए पाषाण,
न हो यदि आगे का वरदान ।

अमर पुरुषाओं का यह देश,
त्याग का तीर्थ, पुण्य का धाम!
पुजारी बनकर यह द्युति पुरुष
कौन जन्मा है प्राण-प्रकाम?-
जवाहर इसका नाम
युवा युग-नेता तुम्हें प्रणाम!

इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के भावों की अनेक कविताएँ नरेन्द्र शर्मा ने लिखी हैं । विभिन्न राष्ट्रीय पर्वो पर लिखी गयी कविताएँ अपने भावों के कारण काव्य की स्थायी सम्पत्ति बनी हुई हैं ।

15.3.6 मानवतावादी चिन्तन

सांस्कृतिक चेतना से युक्त नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में और विशेषकर बाद की कविताओं में मानवतावादी चिन्तन को अभिव्यक्ति मिली है । इनका 'अग्निशस्य' एक ऐसा कविता-संग्रह है जिसमें जितने भी गीत संकलित हैं, वे विचारप्रधान आध्यात्मिक चेतना से युक्त कवि की मानवतावादी भावना को व्यक्त करते हैं । कवि क्रमिक रूप से प्रेम और प्रकृति से राष्ट्रीयता, संस्कृति बोध की ओर बढ़ता हुआ मानवतावादी बनता गया है । अनन्त सृष्टि के रचयिता के प्रति उसका जो आस्थावादी स्वर उभरा है, वह उसकी मानवतावादी चिन्तना से ही युक्त है । किसी अदृश्य शक्ति के नियंत्रण को कवि ने स्वीकार कर लिया है, किन्तु विशेषता यह रही है कि कवि ने उस अलौकिक शक्ति को अदृश्य तत्त्वों से सम्पन्न होते हुए भी मिट्टी के तत्त्वों से संग्रथित माना है । यदि ऐसा भाव कवि अस्वीकार करता, तो मानवीय शक्ति के प्रति कवि का विश्वास टूट जाता । यही कारण है कि अलौकिकता में अपरिमेय शक्तिमान अनन्त पुरुष की ओर लौकिकता में उसी शक्ति से अनुप्राणित सीमित शक्ति-पुंज मानव-समूह को कवि ने चिन्तन के आधार पर स्वीकार किया है । मानव-जीवन के विकास में धरती आधारभूत महत् तत्त्व है । धरती की समस्याओं से मानव-जीवन आंदोलित होता रहता है । इसलिए अलौकिक शक्ति का विश्वासी होते हुए भी कवि नरेन्द्र शर्मा धरती के जीवन से असम्पृक्त नहीं हो पाया । यही कारण है कि वह आध्यात्मिक लोक से उतरकर धरतीलोक की समस्याओं को भी अपने आसपास के परिवेश में बिखरा हुआ देखता है । वह अनुभव करता है कि चारों ओर विप्लवों, युद्धों एवं मुनाफाखोरी से उत्पन्न विभीषिका मुँहबाये खड़ी है । वह भूख और निर्धनता को भी पहचानता है । परिणामस्वरूप वह मानवतावादी भूमिका पर खड़ा होकर यह कहता है-

जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने,
फिर लोभी के मनोगगन में गृद्ध लगे मँडराने ।
फिर सोने का रंग मिलाएगा धनिया केसर में,
खूनी माणिक टँकवाएगा पूँजी के जेवर में,
फिर विष बुझी कटार छिपाएगा अपने तेवर में,
दुश्मन! दुश्मन! चिल्लाएगा बैठ अपने घर में,

दुनियादार गँवार लगे फिर राग उसी का गाने ।
जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने ।

कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण वस्तुतः लोककल्याण की भावना से परिपूर्ण है । लोकहितवादी चेतना उनके परवर्ती गीतों में देखने को मिलती है । प्रबन्धकाव्यों में उनके द्वारा रचित 'सुवर्णा' भी एक ऐसा ही प्रबन्धकाव्य है जिसमें भौतिक शक्तियों, अहंकारी वृत्तियों, दुष्टधर्मी आकांक्षाओं और विविध तृष्णाओं का शमन करके सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चिन्तना को वाणी दी गयी है । यह इस बात का सूचक है कि कवि लोकमंगल, समष्टि और विकास का आकांक्षी है । उसने अपनी इस लोकमंगलवादी समष्टि की हितसाधिका चिन्तना को सुवर्णा काव्य में कृष्ण के माध्यम से व्यक्त किया है । यही उसकी मानवतावादी चिन्तना है और यह चिन्तना गांधीदर्शन से भी मेल खाती है । 'सुवर्णा' काव्य के कृष्ण स्पष्ट कहते हैं-

मैं हो न सका जग से विरक्त, अनुरक्त रहा अपनों पर,
विश्वास आज भी है मेरा सर्वोदय के सपनों पर!

\+ + +

मैं कोटि-कोटि में मरा, अमर हूँ क्योंकि न मरता कोई,
मैं करने आया नाश, क्योंकि निर्माण न करता कोई ।

इसी लोकमंगलवादी दृष्टिदर्शना का प्रसार गांधी ने किया था और सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के बल पर देश में नये युग का निर्माण किया था । वे सभी का कल्याण चाहने वाले लोकनेता थे । कवि भी इसी बात को मानता है । अतः उसके कृष्ण भी 'सुवर्णा' काव्य में सर्वभूतहित का संदेश लेकर धरती पर आये हैं । वे भी अहिंसावादी, सत्याग्रही, त्यागी और लोकमंगल की भावना से युक्त हैं । तभी तो कवि ने लिखा है-

निःशस्त्र निहत्थे कृष्ण अहिंसक सत्याग्रह के नेता-
भारत माता को मुक्त करेंगे नैतिक विश्व विजेता!

और अन्त में सुवर्णा को सम्बोधित करते हुए कही गयी ये पंक्तियाँ भी देखिए-

धीरज धरकर सेवा व्रत से करनी है तुझे प्रतीक्षा,
है प्रथम किन्तु अन्तिम न अभी तेरी यह अग्निपरीक्षा!
तू पूर्वजन्म की है विराज, भावी विराट की जननी,
जा बेटी! अपने देश, जगद्धात्री है भारत-अवनी !

15.3.7 वैचारिक मनोभूमि

प्रमुखतः नरेन्द्र शर्मा प्रणय, सौंदर्य और सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं, किन्तु उनकी भावाकुलता धीरे-धीरे वैचारिकता की ओर अग्रसर होती गयी है । 'प्यासा निर्झर' शीर्षक काव्य-कृति में भावाकुलता की अपेक्षा वैचारिकता पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है । दार्शनिकता एवं लौकिक नैतिकता के पुट ने भी इस संग्रह की कविताओं को चिन्तनप्रधान बना दिया है । कहने का अभिप्राय यह है कि धीरे-धीरे नरेन्द्र शर्मा प्रश्निल मनोभूमि पर आते गये हैं । जब वे इस मनोभूमि पर उतरे हैं, तब वे अध्यात्म, दर्शन और यथार्थ जगत् से जुड़ते हुए वैचारिकता के प्रवाह में खोए भले ही न हों, किन्तु वैचारिक अवश्य

हो गये हैं । इसके अतिरिक्त उनके अन्य संग्रहों में भी वैचारिकता देखने को मिलती है । जहाँ कहीं लौकिक तृषा की अभिव्यक्ति अलौकिक आधार पर हुई है, वही इनका चिन्तन अथवा कहें कि वैचारिकता निरन्तर बनी रही है । प्रबन्ध काव्यों में तो यह वैचारिकता अत्यन्त स्पष्ट है । यदि उनके प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'सुवर्णा' पर ही दृष्टिपात करें, तो यह एक ऐसी काव्यकृति है जिसमें कवि का चिन्तन सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही रूपों में देखा जा सकता है । कवि ने प्रकृति, नियति, काल और ईश्वरीय शक्ति व परम्पराओं के प्रति आस्था व्यक्त की है । यही कारण है कि इस सृष्टि को कवि ने नियति का खेल माना है और कृष्ण को अवतारी पुरुष, सर्वशक्तिमान, सृष्टि के नियामक, प्रतिपालक और विध्वंसक बतलाते हुए सर्वत्र उनकी व्याप्ति को चित्रित किया है । 'सुवर्णा' काव्य में द्वैपायन द्वारा किया गया कृष्ण का वर्णन इसी प्रकार का है । उदाहरणार्थ -

सद्धर्म प्रजा का धारक है, हैं आप धर्म के संस्थापक?
उच्छेदक दुष्टों के, हरि की हरिसिद्धि-शक्ति अग-जग-व्यापक!
श्रीकृष्ण काल के कारण हैं, नव सर्जक वैरीहन्ता हैं,
आधार-धर्म के ध्रुव रक्षक, नैयायिक नियन्ता हैं!

इस प्रकार के कृष्ण को कवि ने स्वयं उन्हीं के मुख से नारायण में नर और नर में नारायण बतलाकर कहलाया है-

मैं नारायण में नर, नर में नारायण हूँ संवेद्य-साध्य,
मेरे कारण प्रेमी-बैरी सम-बिन्दु प्राप्ति के हेतु बाध्य!
मैं आत्मसात् सबमें, सबको करता रहता हूँ आत्मसात-
चाहे सदेह, चाहे विदेह, मेरे प्रति सबका प्रणतिपात,
मैं परम्परा, मैं पुराष पुरातन, प्रकृति तंत्रधर पुरुषोत्तम!
+ + +
मैं धर्मक्षेत्र, मैं कर्मक्षेत्र, धारणा शक्ति मैं शक्तिमान,
मैं ही समवेत युद्ध कामी, योद्धाओं का सामरिक ज्ञान!

कवि के चिन्तन में व्यावहारिकता है । कहीं-कहीं वह उदारतावादी भी हो गया है । इसीलिए 'पापी' शीर्षक कविता में उसने यह भाव व्यक्त किया है कि संसार में जिसे पापी कहकर लांछित किया जाता है, वास्तव में वह पापी नहीं है । वह तो अबोध शिशु है, जो अज्ञानवश गलती करता है । उसको तिरस्कार या दण्ड की नहीं, किन्तु क्षमा और सहानुभूति की आवश्यकता है । इस कविता में यही प्रतिपाद्य व्यक्त हुआ है, जो कवि के व्यावहारिक और युगानुरूप चिन्तन को व्यक्त करता है । ठीक भी है, आज जिस परिवेश में हम रह रहे हैं, उसमें ऐसे ही चिन्तन की आवश्यकता है । भौतिकवादी शक्तियाँ और यांत्रिक जीवन जिस प्रकार हमें जड़ता और रिक्तता की ओर ले जा रहा है, उससे बचने का यही एकमात्र साधन है और यही साधन नरेन्द्र शर्मा ने अपने चिन्तन में व्यक्त किया है । 'प्यासा निर्झर' कविता के अन्तर्गत भी लगभग इसी प्रकार की बातें कही गयी हैं । इस कविता में भी तृष्णा का खण्डन करके जीवन को कर्ममय और गतिशील बनाये रखने की प्रेरणा दी गयी है । कहने का अभिप्राय यह है कि नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में चिन्तनपक्ष भी पूरी तरह अभिव्यक्त हुआ है ।

15.3.8 सामयिक संदर्भ

छायावादोत्तर काव्य के कवि नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में सामयिक संदर्भो को भी वाणी दी गयी है । जिस समय नरेन्द्र शर्मा काव्य-क्षितिज पर विकास पा रहे थे या कहें कि उनकी प्रतिभा का सूर्य उदित होकर फैलता जा रहा था, तभी गांधी-दर्शन ने उन्हें प्रभावित किया । गांधी-दर्शन के प्रभाव में आकर उन्होंने मानवीय विकारों का मूल कारण व्यक्ति-चेतना के विकृत अहंकार को माना । 'सुवर्णा' काव्य में इस तथ्य को कर्ण के माध्यम से अभिव्यक्ति दी गयी है । पितामह भीष्म अपनी मृत्यु-शैया से कर्ण को सचेत करते हुए उसे अहंकार के दुष्परिणामों के विषय में कहते हैं कि "'अहंकार का दर्पण बड़ा विशाल है। अहंकार ही ध्वनि और प्रतिध्वनि होता है । वह अन्धा भी होता है और अहंकार ही व्यक्ति को भटकन की ओर ले जाता है । अहंकार के प्रभाव में आकर व्यक्ति राष्ट्र, देश, साम्राज्य सभी को उसी पैमाने से नापता है । कहने का अभिप्राय यह है कि अहंकार सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है । जो इससे बच सकता है, वही सार्थकता भी प्राप्त कर सकता है और जीवन का सही मर्म भी समझ सकता है । आज भी हम इसी अहंकार से ग्रसित होकर अपने जीवन को विकृतियों की ओर ले जा रहे हैं । वासना, स्वार्थ, अवसरवादिता और विकृत जीवन-मूल्यों के कारण हमारा जीवन सम्पूर्णता नहीं पा रहा है। वास्तव में इस प्रकार के कलुष से मुक्ति के लिए हमें प्रेम की आवश्यकता है । यही कारण है कि कवि ने यह घोषित किया है कि 'अहं की औषधि केवल प्रेम, कर्ण इतना ही आज अलम' । व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं की चेतना को प्रेम के प्रति समर्पित करे ताकि वह अहं के विकारों से मुक्त हो सके । 'सुवर्णा' काव्य में इसी अहंकार को दूर करने की बात कही गयी है । हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कवि ने समाज की विसंगतियों एवं युद्धों को समाप्त करने के लिए कोई मौलिक उपाय नहीं सुझाया है । वह भी अन्य अनेक कवियों की भाँति इन समस्याओं के गांधीवादी समाधान की बात करता है । सम्भवत: इसीलिए तो उसने लिखा है-

अध्यात्म एक जग का रक्षक
और गांधीजी की तरह कवि यह सुझाव देता है कि
ब्राह्मण कन्याएँ संग लिए रण में जाएँ क्षत्रिय बाला
लेकर गंगाजल तुलसीदल, धर शुभ्र वेब तुलसीमाला ।

तात्पर्य यह है कि सामयिक संदर्भो में कवि ने एक ओर तो सत्य, प्रेम और अहिंसा की बात करते हुए सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाने का परामर्श दिया है और दूसरी ओर लोककल्याण की भावनाओं को भी अभिव्यक्ति दी है । कवि की दृष्टि में लोकहित क्या है और कैसा होना चाहिए, इसका विवेचन सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत किया जा चुका है ।

15.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

कवि एक संवेदनशील प्राणी होता है । सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा उसकी संवेदना अधिक सूक्ष्म और अधिक गहरी होती है । वह खुली आँखों से अपने परिवेश को देखता है, अपनी अनुभूतियों की धूप-छाँह में जीता हुआ तरह-तरह की भावनाओं में डूबता-उतरता है । जब

ये भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं, तब वे स्वयं ही अभिव्यक्ति का द्वार खोजने लगती हैं । संवेदना को सम्प्रेषण की आवश्यकता होती है । जब तक संवेदनाओं का सम्प्रेषण नहीं होता, तब तक कवि को न तो शान्ति प्राप्त होती है और न वह संतोष का ही अनुभव कर पाता है । संवेदनाओं की अभिव्यंजना का प्रमुख माध्यम भाषा है । यह भाषा ही कभी सीधा-सरल रूप लेकर सामने आती है, तो कभी अलंकृत होकर । कभी-कभी प्रतीकों के सहारे भी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्राप्त होती है । भाषा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण उसका प्रसंग, भाव के अनुकूल होना तो है ही, साथ ही वर्ण्य-विषय को बिम्बित करना भी है । अत: जहाँ भाषा में बिम्बात्मकता और प्रतीकात्मकता होती है, वहीं उसमें अलंकृति भी स्वत: ही आती चली जाती है । नरेन्द्र शर्मा की कविता का अभिव्यंजना पक्ष इन्हीं सब उपकरणों से निर्मित हुआ है । एक प्रकार से ये सभी उपकरण अभिव्यंजना के महत्त्वपूर्ण उपादान हैं और प्रत्येक कवि किसी न किसी रूप में इनका सहारा लेता है ।

15.4.1 काव्य-भाषा

नरेन्द्र शर्मा की काव्य-भाषा किसी एक प्रकार की नहीं है । हाँ, यदि एक शब्द में उनकी भाषा को कोई नाम दिया जाये, तो कहा जा सकता है कि वह परिष्कृत होते हुए भी सहज, सरल और व्यावहारिक है । भाषा की सहजता उनके गीतों में अधिक देखने को मिलती है । 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे' और 'साँझ होते ही न जाने छा गयी कैसी उदासी' जैसे गीतों में भाषा की इस प्रकृति को देखा जा सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीतों में उनकी भाषा परिष्कृति लिए हुए तो है, किन्तु वह परिष्कृति ऐसी नहीं है जो अर्थ ग्रहण करने में बाधक बनी हो । जहाँ भाषा परिष्कृति होकर भी सरल रूप लेकर सामने आयी है, वहाँ पर भावनाओं का प्रबल वेग पाठक की चेतना को आच्छादित कर लेता है । गीतों में भाषा का यह सहज रूप देखने को मिलता है । हाँ, उनके प्रबन्धकाव्यों में भाषा परिष्कृत होने के साथ-साथ कहीं-कहीं चिन्तन के भार से लदी हुई भी दिखाई देती है । 'सुवर्णा' 'उत्तरजय', 'कामिनी' और 'मनोकामिनी' जैसे प्रबन्धकाव्यों में भाषा के इस चिन्तनपृथुल रूप को देखा जा सकता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रबन्धकाव्यों में भाषा गरिष्ठ हो गयी है, वह है तो सहज और सरल ही, किन्तु वैचारिकता के कारण गम्भीर और भारी-भरकम सी लगती है । सहज और सरल भाषा की दृष्टि से इनकी कविता की ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं

यहाँ कौन है जग में पापी?
वह मेरा भोला भाई है ।
यह मेरा भूला भाई है ।
यहाँ कौन इस जग में पापी?
बालक हैं थक ही जाते हैं,
पल भर कहीं ठहर जाते हैं,
क्या डर है, यदि कठिन मार्ग में,
संग न ये शिशु चल पाते हैं?

'सुवर्णा' जैसे काव्य में भाषा तत्समप्रधान होने के साथ-साथ आडम्बरयुक्त भी हो गयी है। जहाँ भाषा इस प्रकार की हुई है, वहाँ भाषा ओजस्विता लिए हुए भी है और ऐसा वहीं हुआ है, जहाँ युद्ध का प्रसंग आया है या फिर कोई ऐसा प्रसंग, जहाँ भाषा का ऐसा स्वरूप बन जाना आवश्यक था । उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए-

मार्तण्ड कर्ण घनघटा भीम, आच्छादित जिससे दिग्मण्डल
दुर्योधन के अतिरिक्त रहे जो, धार्तराष्ट्र हत हुए सकल ।

\+ + +

संग्राम-सिन्धु में भीम तिमिंगिल-सा करता शोणित-विहार-
विक्रान्त वकोदर ने दुःशासन को पछाड़कर दिया मार

भाषा-प्रयोग में नरेन्द्र शर्मा ने लाक्षणिकता और व्यंजनात्मकता का प्रयोग भी किया है । भाषा की लाक्षणिकता और व्यंजनात्मकता उनके गीतों में भी उप्लब्ध है और प्रबन्धकाव्यों की शैली में भी इस विशेषता को देखा जा सकता है । चित्रोपमता तो सर्वत्र विद्यमान है । प्रसंग चाहे प्रकृति का हो, या प्रणयानुभूति का, भाषा जीवन्त रूप लेकर पाठक के सामने आती रही है ।

15.4.2 अलंकृति

अलंकार काव्य के शोभाधायक धर्म हैं । उनकी उपस्थिति काव्य में सहज रूप में होनी चाहिए । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में सहज अलंकृति देखने को मिलती है । उनके प्रिय अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त को प्रमुख स्थान प्राप्त है । जहाँ कहीं उनकी अनुभूतियाँ प्रेम, सौंदर्य और संयोग-वियोग के चित्रों को प्रस्तुत करने की ओर रही हैं, वहाँ पर उपमा और रूपक जैसे अलंकारों का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ हुआ है । 'आज के बिछुड़े हुए न जाने कब मिलेंगे' और 'साँझ होते ही न जाने छा गयी कैसी उदासी' तथा 'पापी' जैसी कविताओं में इन अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है । 'कंटकमय जग-जीवन-वन है, मार्ग निरन्तर अगम गहन है, जैसी पंक्तियों में सहज अलंकृति को देखा जा सकता है । इसी प्रकार कवि जब लिखता है कि

मेरा आँचल वात्सल्य-मेघा, वात्सल्य-मेघ का सावन
जो कीर्ति-सूर्य कौन्तेय कर्ण का कर न सका आच्छादन

\+ + +

मन क्रोधानल का फूल, काँपती तन की स्वर्णलता

तो रूपक अलंकार का सौंदर्य स्पष्ट हो जाता है । सादृश्यमूलक अलंकारों में कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग भी बड़ी विलक्षणता से किया है । उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए-

तिमिर-वन्दिनी स्वर्ण-उषा सी, बंधन में अविराम ।
शून्य देवता के चरणों में अर्पित नयन अकाम ।
दिग्विजयी योद्धा की आकृति ग्रस्त भानु-सी
देवपुत्र के लिए पहेली बनी मानुसी ।

इस उदाहरण में सुवर्णा को अंधकार की कैद में बन्द स्वर्णिम उषा के समान बताया गया है, जो एक नवीन एवं प्रसंगानुकूल कल्पना है । कर्ण के मुख को ग्रहण-ग्रस्त सूर्य के समान बताकर कवि ने यह स्मरण दिलाया है कि कर्ण सूर्य के वीर्य से उत्पन्न दिव्य पुरुष है । ये दोनों ही अलंकार-प्रयोग अपने प्रसंगों के सौंदर्य को द्विगुणित करने में सक्षम हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है । अलंकारों के अतिरिक्त प्रयोग से उनकी कविता कहीं भी बोझिल नहीं हुई है ।

15.4.3 प्रतीक और बिम्ब

नरेन्द्र शर्मा की काव्य-भाषा में प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग भी आकर्षक बन पड़ा है । 'द्रौपदी' काव्यकृति में धृतराष्ट्र अंध मानस और उसके पुत्र इच्छाओं के प्रतीक हैं । 'सुवर्णा' काव्य में भी प्रतीकों का प्रयोग सहजता लिए हुए है । वास्तव में नरेन्द्र शर्मा ने प्रतीकों का प्रयोग वहीं किया है, जहाँ वे किसी गूढ़ अर्थ के सम्प्रेषण की ओर प्रेरित हुए हैं अथवा वहाँ किया है जहाँ सीधे-सीधे कथ्य को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है । इतने पर भी उनका काव्य प्रतीक-शून्य नहीं है । उनके काव्य में खड्ग युद्ध का: प्रतीक है, जबकि खेत सृष्टि एवं समृद्धि का प्रतीकार्थ लिए हुए है । कवि ने इस प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं कि हिंसा के माध्यम से जो समृद्धि प्राप्त की जायेगी, वह फिर हिंसा के माध्यम से नष्ट भी हो जायेगी । बिम्ब-प्रयोग की दृष्टि से देखें तो उनके काव्य में बिम्बों का प्रयोग बड़ी सहजता से हुआ है । बिम्ब संवेदनात्मक चित्र होता है । बिम्ब प्रस्तुत करने में सादृश्यमूलक अलंकारों का सहयोग अधिक रहता है । नरेन्द्र शर्मा ने उपमा, रूपक जैसे अलंकारों की सहायता से बड़े प्रभावी बिम्ब प्रस्तुत किए हैं । उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए-

आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नम के सितारे
दूर होंगे पर सदा को, ज्यों नदी के दो किनारे
सिन्धु-तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ।

इन पंक्तियों में आया बिम्ब भावपरक अधिक है । इसमें अनुभूति की तीव्रता इस प्रकार व्यक्त हुई है कि कवि की मनोभूमि प्रत्यक्ष हो उठी है । इसी प्रकार 'पापी' कविता में भी लघु शिशु का बिम्ब बड़ा मनहरण बन पड़ा है, तो 'युग बदला' कविता में स्वतंत्र भारत के औद्योगिक विकास की झाँकी प्रभावी बिम्ब द्वारा प्रस्तुत की गयी है । विज्ञान ने हमें जो दिया है, उससे हम प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं । इस प्रकार के भावों को बड़ी सहजता के साथ 'युग बदला' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया गया है । 'मोती मसजिद से ताजमहल' कविता के अन्तर्गत वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने अनुभूतिपरक बिम्बों को प्रस्तुत किया है । इनके बिम्ब-प्रयोगों में संवेदनात्मकता अधिक है । दृश्यात्मकता और वस्तुपरकता वहाँ मिलती है, जहाँ कवि वर्णन करता हुआ कहानी सी कहता गया है ।

15.5 सारांश

समग्र विवेचनोपरान्त कहा जा सकता है कि छायावाद के उत्कर्षकाल में जन्म लेने वाले नरेन्द्र शर्मा ने अपने गीतों और प्रबन्धकाव्यों के माध्यम से हिन्दी काव्यधारा में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है । एक ओर तो उन्होंने 'द्रौपदी', 'सुवर्णा' जैसे प्रबन्धकाव्य लिखे हैं, तो दूसरी ओर 'उत्तरजय' जैसे गाथाकाव्य का सृजन भी किया है । इनकी कृतियों में गीतात्मकता आद्यन्त विद्यमान है । ऐसी स्थिति में यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि उन्होंने गीतिकाव्य लिखकर अपने भावों को सबल और सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है । इनके काव्य में नित्य और नवविकसित कुसुमों का सौंदर्य और गंध है । प्रेम और प्रकृति के गहरे सौंदर्य से आप्लावित नरेन्द्र शर्मा का काव्य पाठकों को सहज ही आकृष्ट कर लेता है । प्राकृतिक सौंदर्य, प्रणय के संयोग और वियोग के सहज चित्र तथा क्रमिक रूप से विकसित हुई सांस्कृतिक चेतना और वैचारिकता इनके काव्य के प्रमुख वर्ण्य-विषय रहे हैं । प्रबन्धकाव्यों में किसी न किसी आख्यान को लेकर युग- संदर्भ में काव्यों की प्रस्तुति की गयी है । 'सुवर्णा' और 'द्रौपदी' ऐसे ही काव्य हैं । इसके अतिरिक्त शोषण के प्रति विद्रोह, राष्ट्रीय चेतना और मानवतावादी भावों की अभिव्यक्ति इनके काव्य की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं । चिन्तन में व्यावहारिकता है तो शैली और शिल्प में भी आद्यन्त सहजता व्याप्त है । आरोपण और आडम्बर से दूर नरेन्द्र शर्मा का काव्य हमारी चेतना को गहरे तक प्रभावित करने में सक्षम है ।

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नरेन्द्र शर्मा का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व के प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए ।

2. नरेन्द्र शर्मा द्वारा सृजित काव्य-कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए बताइये कि उनका काव्य-विकास किस प्रकार हुआ है?

3. नरेन्द्र शर्मा के काव्य के अनुभूति पक्ष को उपयुक्त उदाहरण देते हुए प्रस्तुत कीजिए।

4. "नरेन्द्र शर्मा का काव्य अनुभूति की दृष्टि से जितना प्रभावी बन पड़ा है, उतना ही प्रभावी शैल्पिक सहजता के कारण भी है ।"' इस कथन को सप्रमाण और सतर्क विवेचित कीजिए ।

15.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. नगेन्द्र आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

2. सम्पादक : रामवीरसिंह : आधुनिक काव्य-संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3. डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री : आधुनिक कवि आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली ।

4. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर : हिन्दी के आधुनिक कवि, भारतीय साहित्य मन्दिर, फब्बारा, दिल्ली ।

5. डॉ. लक्ष्मीनारायण : नरेन्द्र शर्मा का काव्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

इकाई-16 नागार्जुन का काव्य

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 काव्य वाचन
16.2.1 कालिदास सच-सच बतलाना
16.2.2 बादल को घिरते देखा है
16.2.3 हरिजन-गाथा
16.3 प्रसंग सहित व्याख्या
16.3.1 कविता परिचय (कालिदास सच-सच बतलाना)
16.3.2 कविता परिचय (बादल को घिरते देखा है)
16.3.3 कविता परिचय (हरिजन-गाथा)
16.4 सारांश
16.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.6 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- नागार्जुन की काव्यगत विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे ।
- नागार्जुन के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष को हृदयंगम कर सकेंगे ।
- प्रसंग सहित व्याख्या करने की पद्धति से अवगत हो सकेंगे ।
- नागार्जुन के काव्य के क्रमबद्ध विकास से परिचित हो सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

छायावाद के अवसान के समय ही हिन्दी काव्यधारा में कुछ नये आयाम एवं नवीन मान-मूल्य विकसित होने लगे थे । इन सभी मूल्यों के मूल में वह प्रगतिवादी दृष्टि थी, जिसमें दलितों और शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव था । फलत: स्वस्थ सामाजिक दृष्टि विकसित हुई, जिसके कर्णधारों में नागार्जुन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उन्होंने जीवनास्था-प्रेरित प्रगतिशील साहित्य की रचना की । उनकी कविताओं में उनका भोक्ता एवं रचनाकार व्यक्तित्व एक साथ उभरकर सामने आया है ।

16.2 काव्य वाचन

16.2.1 कालिदास सच-सच बतलाना

कालिदास, सच-सच बतलाना!
इंदुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोए थे?

कालिदास, सच-सच बतलाना!
शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृतमिश्रित सूखी समिधा-सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना
रति रोई या तुम रोए थे?
वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन-घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर
चित्रकूट के सुभग शिखर पर
उस बेचारे ने भेजा था
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़ने वाले
कालिदास, सच-सच बतलाना
परपीड़ा से पूर-पूर हो
थक-थक कर औ ' चूर-चूर हो
अमल-धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कब तक सोए थे?
रोया यक्ष कि तुम रोए थे?
कालिदास. सच-सच बतलाना!

16.2.2 बादल को घिरते देखा है

अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है ।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है ।
तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी-बड़ी कई झीलें हैं.
उनके श्यामल-नील सलिल में

पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिस-तंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।
ऋतु बसंत का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक-दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशाकाल के चिर-अभिशापित
बेबस उन चकवा-चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।
दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत-सहस्त्र ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल-
के पीछे, धावित हो-होकर
तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।
कहीं गया धनपति कुबेर वह
कहीं गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत परन्तु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर

महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है ।
शत-शत निर्झर-निर्झरिणी-कल
मुखरित देवदारू-कानन में,
शोणित-धवल-भोजपत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगन्धित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लाल कमल वेणी से,
रजत-रचित-मणि-खचित कलामय
पानपात्र द्राक्षासव-पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपदी पर
नरम निदाग बाल-कस्तूरी-
मृगछालों पर पल्थी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है
अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है ।

16.2.3 हरिजन-गाथा

<u>एक</u>

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था!
महसूस करने लगीं वे
एक अनोखी बेचैनी
एक अपूर्व आकुलता
उनकी गर्भकुक्षियों के अन्दर
बार-बार उठने लगी टीसें
लगाने लगे दौड़ उनके भ्रूण
अन्दर ही अन्दर
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था

ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि
हरिजन-माताएँ अपने भ्रूणों के ऐनकों को
खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था.....
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं-
तेरह के तेरह अभागे-
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिये गये हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन-सम्पन्न ऊँची जातियों वाले
सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा!
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था.....
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
महज दस मील दूर पड़ता हो थाना
और दारोगा जी तक बार-बार
खबरें पहुँचा दी गयी हों संभावित दुर्घटनाओं की
और, निरन्तर कई दिनों तक
चलती रही हों तैयारियाँ सरेआम
(किरासिन के कनस्तर, मोटे-मोटे लक्कड़,
घपलों के ढेर. सूखी घास-फूस के पूले
जुटाए गए हों उल्लासपूर्वक)
और एक विराट चिताकुण्ड के लिए
खोदा गया हो गड्ढा हँस-हँसकर
और ऊँची जातियों वाली वो समूची आबादी
आ गयी हो होली वाले 'सुपर मौज' के मूड में
और, इस तरह जिंदा झोंक दिये गये हों
तेरह के तेरह अभागे मनुपुत्र
सौ-सौ भाग्यवान मनुपुत्रों द्वारा
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था.....
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था.....

दो

चकित हुए दोनों वयस्क बुजुर्ग
ऐसा नवजातक
न तो देखा था, न सुना ही था आज तक!
पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी में
क्या करेगा भला आगे चलकर?

रामजी के आसरे जी गया अगर
कौन-सी माटी फोड़ेगा?
मग्गह का यह बदनाम इलाका
जाने कैसा सलूक करेगा इस बालक से
पैदा हुआ है बेचारा-
भूमिहीन बंधुआ मजदूरों के घर में
जीवन गुजारेगा हैवान की तरह
भटकेगा जहाँ-तहाँ बनमानुस-जैसा
अधपेटा रहेगा अधनंगा डोलेगा
तोतला होगा कि साफ-साफ बोलेगा
जाने क्या करेगा
बहादुर होगा कि बेमौत मरेगा. .....
फिक्र की तलैया में खाने लगे गोते
वयस्क बुजुर्ग दोनों, एक ही बिरादरी के हरिजन
सोचने लगे बार-बार.....
कैसे तो अनोखे हैं अभागे के हाथ-पैर
राम जी ही करेंगे इसकी खैर
हम कैसे जानेंगे, हम ठहरे हैवान
देखो तो कैसा मुलुर-मुलुर देख रहा शैतान!
सोचते रहे दोनों बार-बार.... ....
हाल ही में घटित हुआ वो विराट दुष्कांड.....
झोंक दिये गये थे तेरह निरपराध हरिजन
सुसज्जित चिता में...
यह पैशाचिक नरमेध
पैदा कर गया है दहशत जन-जन के मन में
इन बूढ़ों की तो नींद ही उड़ गयी है तब से!
बाकी नहीं बचे हैं पलकों के निशान
दिखते हैं दृगों के कोर ही कोर
देती है जब-तब पहरा पपोटों पर
सील-मुहर सूखी कीचड़ की
उनमें से एक बोला दूसरे से
बच्चे की हथेलियों के निशान
दिखलाएँगे गुरुजी से
वो जरूर कुछ न कुछ बतलाएँगे
इसकी किस्मत के बारे में
देखो तो ससुरे के कान हैं कैसे लम्बे
आँखें हैं छोटी पर कितनी तेज हैं

कैसी तेज रोशनी छूट रही है इनसे!
सिर हिलाकर और स्वर खींचकर
बुद्धू ने कहा-
हाँ जी खदेरन, गुरु जी ही देखेंगे इसको
बताएँगे वही इस कलुए की किस्मत के बारे में
चलो, चलें, बुला लावें गुरु महाराज को.....
पास खड़ी थी दस साला छोकरी
दद्दू के हाथों से ले लिया शिशु को
सँभलकर चली गयी झोंपड़ी के अन्दर
अगले नहीं, उससे अगले रोज
पधारे गुरु महाराज
रैदासी कुटिया के अधेड़ संत गरीबदास
बकरी वाली गंगा-जमनी दाढ़ी थी
लटक रहा था गले से
अँगूठीनुमा जरा-सा टुकड़ा तुलसी काठ का
कद था नाटा, सूरत थी साँवली
कपार पर, बाईं तरफ घोड़े के खुर का
निशान था
चेहरा था गोल-मटोल, आँखें थीं घुच्ची
बदन कठमस्त था. .....
ऐसे आप अधेड़ संत गरीबदास पधारे
चमर टोली में.....
'अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलुम मिटाएँगे धरती से
इसके साथी और संघाती'
यह उन सबका लीडर होगा
नाम छपेगा अखबारों में
बड़े-बड़े मिलने आएँगे
लद-लदकर मोटर-कारों में
खान खोदने वाले सौ-सौ
मजदूरों के बीच पलेगा
युग की आँचों में फौलादी
साँचे-सा यह वहीं ढलेगा
इसे भेज दो झरिया-फरिया
माँ भी शिशु के साथ रहेगी
बतला देना, अपना असली

नाम-पता कुछ नहीं कहेगी
आज भगाओ, अभी भगाओ
तुम लोगों को मोह न घेरे
होशियार इस शिशु के पीछे
लगा रहे हैं गीदड़ फेरे
बड़े-बड़े इन भूमिधरों को
यदि इसका कुछ पता चल गया
दीन-हीन छोटे लोगों का
समझो फिर दुर्भाग्य छल गया
जनबल धनबल सभी जुटेगा
हथियारों की कमी न होगी
लेकिन अपने लेखे इसको
हर्ष न होगा, गमी न होगी
सब के दुख में दुखी रहेगा
सब के सुख में सुख मानेगा
समझ-बूझकर ही समता का
असली मुद्दा पहचानेगा
अरे देखना इसके डर से
थर-थर काँपेंगे हत्यारे
चोर-उचक्के गुंडे डाकू
सभी फिरेंगे मारे-मारे
इसकी अपनी पार्टी होगी
इसका अपना ही दल होगा
अजी देखना, इसके लेखे
जंगल में ही मंगल होगा
श्याम सलोना यह अछूत शिशु
हम सब का उद्धार करेगा
आज यही सम्पूर्ण क्रांति का
बेड़ा सचमुच पार करेगा
हिंसा और अहिंसा दोनों
बहनें इसको प्यार करेंगी '
इसके आगे आपस में वे
कभी नहीं तकरार करेंगी.....
इतना कहकर उस बाबा ने
दस-दस के छः नोट निकाले
बस, फिर, उसके होंठों पर थे
अपनी उँगलियों के ताले

फिर तो उस बाबा की आँखें
बार-बार गीली हो आई
साफ सिलेटी हृदय-गगन में
जाने कैसी सुधियाँ छाई
नव शिशु का सिर सूँघ रहा था
विह्वल होकर बार-यार वो
साँस खींचता था रह-रहकर
गुमसुम-सा था लगातार वो
पाँच महीने होने आए
हत्याकांड मचा था कैसा!
प्रबल वर्ग ने निम्न वर्ग पर
पहले नहीं किया था ऐसा!
देख रहा था नवजातक के
दाएँ कर की नरम हथेली
सोच रहा था इस गरीब ने
सूक्ष्म रूप में विपदा झेली
आड़ी-तिरछी रेखाओं में
हथियारों के ही निशान हैं
खुखरी है, बम है, असि भी है
गंडासा-भाला प्रधान हैं
दिल ने कहा- दलित माँओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्निपुत्र होंगे वे, अंतिम
विप्लव में सहभागी होंगे
दिल ने कहा- अरे यह बच्चा
सचमुच अवतारी वराह है
इसकी भावी लीलाओं का
सारी धरती चरागाह है
दिल ने कहा- अरे हम तो बस
पिटते आए. रोते आए!
बकरी के खुर जितना पानी
उसमें सौ-सौ गोते खाए!
दिल ने कहा- अरे यह बालक
निम्न वर्ग का नायक होगा
नई ऋचाओं का निर्माता
नए वेद का गायक होगा
होंगे इसके सौ सहयोद्धा

लाख-लाख जन अनुचर होंगे
होगा कर्म-वचन का पक्का
फोटो इसके घर-घर होंगे
दिल ने कहा- अरे इस शिशु को
दुनिया-भर में कीर्ति मिलेगी
इस कलुए की तदबीरों से
शोषण की बुनियाद हिलेगी
दिल ने कहा - अभी जो भी शिशु
इस बस्ती में पैदा होंगे
सब के सब सूरमा बनेंगे
सब के सब ही शैदा होंगे
दस दिनवाले श्याम-सलोने
शिशु मुख की यह छटा निराली
दिल ने कहा - भला क्या देखें
नजरें गीली पलकी वाली
थाम लिए विह्वल बाबा ने
अभिनव लघु मानव के मृदु पग
पाकर इनके परस जादुई
भूमि अकंटक होगी लगभग
बिजली की फुर्ती से बाबा
उठा वहाँ से, बाहर आया
वह था मानो पीछे-पीछे
आगे थी भास्वर शिशु-छाया
लौटा नहीं कुटी में बाबा
नदी किनारे निकल गया था
लेकिन इन दोनों को तो अब
लगता सब कुछ नया-नया था

तीन

'सुनते हो' बोला खदेरन
बुद्धू भाई देर नहीं करनी है इसमें
चलो, कहीं, बच्चे को रख आवें.....
बतला गए हैं, अभी-अभी गुरु महाराज.
बच्चे को माँ सहित हटा देना है कहीं
फौरन बुद्धू भाई!. ...
बुद्धू ने अपना माथा हिलाया.. ....
खदेरन की बात पर
एक नहीं, तीन बार!

बोला मगर एक शब्द नहीं
व्याप रही थी गम्भीरता चेहरे पर
था भी तो वही उम्र में बड़ा
(सत्तर से कम का तो भला क्या रहा होगा!)
'तो चलो! उठो, फौरन उठो!
शाम की गाड़ी से निकल चलेंगे
मालूम नहीं होगा किसी को.. ... ...
लौटने में तीन-चार रोज तो लग ही जाएँगे.... बुद्धू भाई तुम तो अपने घर जाओ
खाओ, पियो, आराम कर लो
रात में गाड़ी के अन्दर जागना ही तो पड़ेगा.....
रास्ते के लिए थोड़ा चना-चबेना जुटा लेना
मैं इत्ते में करता हूँ तैयार
समझा-बुझाकर
सुखिया और उसकी सास को... .....
बुद्धू ने पूछा, धरती टेककर
उठते-उठते-
झरिया, गिरिडीह, बोकारो
कहीं रखोगे छोकरे को?
वहीं न? जहाँ, अपनी बिरादरी के
कुली-मजूर होंगे सौ-पचास?
चार-छै महीने बाद ही
कोई काम पकड़ लेगी सुखिया भी.....
और, फिर अपने आप से
धीमी आवाज में कहने लगा बुद्धू
छोकरे की बदनसीबी तो देखो
माँ के पेट में था तभी इसका बाप भी
झोंक दिया गया उसी आग में.....
बेचारी सुखिया जैसे-तैसे पाल ही लेगी इसको
मैं तो इसे साल-साल देख आया करूँगा
जब तक है चलने-फिरने की ताकत चोले में.. ...
तो क्या आगे भी इस कलुए के लिए
भेजते रहेंगे खर्ची गुरु महाराज?.....
बढ़ आया बुद्धू अपने छपर की तरफ
नाचते रहे लेकिन माथे के अन्दर
गुरु महाराज के मुँह से निकले हुए
हथियारों के नाम और आकार-प्रकार
खुखरी, भाला, गंडासा, बम, तलवार.....

तलवार, बम, गंडासा, भाला, खुखरी....

16.3 प्रसंग सहित व्याख्या

16.3.1 कविता परिचय (कालिदास सच-सच बतलाना)

समय से प्रतिबद्ध रहे नागार्जुन द्वारा सृजित 'कालिदास सच-सच बतलाना' शीर्षक कविता उनकी बहुचर्चित और भावनाप्रधान कविता है । यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'सतरंगे पंखों वाली' में संकलित है । इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1938 में हुआ था । कालिदास नागार्जुन के सर्वाधिक प्रिय कवि थे और मेघदूत उनकी सबसे अधिक प्रिय रचना थी । यही कारण है कि 'मेघदूत' का उन्होंने मुक्त छंद में अनुवाद भी किया था । कालिदास के प्रति लिखी गयी यह कविता एक ओर तो कवि की भावुकता को शब्दांकित करती हुई उसकी आन्तरिक भावना को उद्घाटित करती है और दूसरी ओर नागार्जुन के सूक्ष्म चिन्तन और उससे निःसृत उस भावावेग की अभिव्यक्ति भी है, जिसे वे कालिदास के संदर्भ से निरन्तर अनुभव करते रहे हैं । नागार्जुन इस कविता के माध्यम से यह संदेश प्रेषित करते है कि कालिदास की रचनाओं में जहाँ-जहाँ भावनात्मक संदर्भ हैं और वे अधिकांश स्थलों पर हैं, वहाँ-वहाँ स्वयं कालिदास का भावुक मन उनके पात्रों के साथ एकाकार करता हुआ पाठकों के समक्ष आता रहा है । यह कविता इसका स्पष्ट प्रमाण है।

अवतरण 1

कालिदास, सच-सच बतलाना!
इंदुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!
शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृतमिश्रित सूखी समिधा-सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना
रति रोई या तुम रोए थे?
वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन-घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर
चित्रकूट के सुभग शिखर पर
उस बेचारे ने भेजा था

उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़ने वाले
कालिदास, सच-सच बतलाना
परपीड़ा से पूर-पूर हो
थक-थक कर औ चूर-चूर हो
अमल-धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कब तक सोए थे?
रोया यक्ष कि तुम रोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!

शब्दार्थ-महाज्वाला = विनाशकारी भयंकर ज्वाला । घृतमिश्रित = घी से युक्त । क्रंदन = रुदन । दृग = नेत्र । रति = कामदेव की प्रिया या पत्नी । स्निग्ध = कोमल । घन-घटा बादलों की घटाएँ । विधुर = जिसकी पत्नी मर चुकी हो । सुभग शिखर = सुन्दर शिखर । परपीड़ा = दूसरे की पीड़ा या दुख । पूर-पूर हो = भरकर । अमल- धवल = निर्मल और श्वेत ।

प्रसंग- 'कालिदास के प्रति' इस कविता में नागार्जुन ने कालिदास की भावुक संवेदना और पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है । कवि ने यह अभिव्यक्त किया है कि जहाँ-जहाँ कालिदास के पात्र दुखी हुए हैं और उन्होंने उनका चित्र प्रस्तुत किया है, वहाँ-वहाँ वस्तुतः कालिदास ने ही अपनी वेदना को व्यक्त किया है ।

व्याख्या-नागार्जुन कह रहे हैं कि हे कवि कालिदास! तुम सच-सच बतलाओ कि तुम्हारे पात्र जब वेदना-विगलित हुए हैं, तब उनके माध्यम से क्या तुम नहीं रोए हो? संकेत यह है कि वस्तुतः कालिदास भावना की गहराई में डूबकर अपने पात्रों से वैसा ही आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुए हैं जैसाकि कोई भी प्रतिभा-पुत्र कवि करता है । नागार्जुन यहीं सर्वप्रथम इन्दुमती के मृत्युशोक से रोने वाले अज के संदर्भ से कालिदास की वेदना के आगे प्रश्न खड़ा करते हैं । इसके पश्चात् वे यह कहते हैं कि जब कामदेव ने शिव को अपने आकर्षण-जाल में बाँधना चाहा और शिव जब क्रोधित हुए, तब उनकी तीसरी आँख से निकली हुई महाज्वाला में मृत में डूबी हुई समिधा के समान कामदेव भस्म हो गया, तब रति ने विलाप किया था । रति के क्रन्दन को सुनकर तुम स्वयं करुणा विगलित हुए थे, व्यथित हुए थे और रति की ही पीड़ा से द्रवित होकर स्वयं तुमने ही अपनी आंखों से आँसू बहाकर अपने नेत्रों को धोया था । अतः हे कवि कालिदास! तुम सच बतला दो कि उस समय रति ने रुदन किया था या स्वयं तुमने ही रुदन किया था?

वर्षाऋतु की स्निग्ध भूमिका पर आषाढ़ मास के प्रथम दिवस में जब आकाश में काली घटाएँ उमड़ने-घुमड़ने लगी, तब विधुर यक्ष का मन अपनी प्रिया के लिए तड़फ उठा था । एक बार तो यक्ष को इतनी गहरी वेदना की अनुभूति हुई कि वे अस्त-व्यस्त से हो गये, उनका मन उचट गया । उस समय चित्रकूट के सुन्दर शिखरों पर खड़े होकर यक्ष ने करबद्ध भाव से अपनी प्रिया के पास जो अपनी वेदना का संदेश भेजा था, उस संदेश में पुष्करावर्त मेघों का साथी बनकर उड़ने वाले स्वयं कालिदास ही थे । तात्पर्य यह है कि कालिदास का यक्ष जब अपनी प्रिया के पास संदेश भेजता है, तो उसके संदेश-प्रेषण की

प्रत्येक पंक्ति में कालिदास की भावनाएँ पिरोई हुई प्रतीत होती है । वास्तव में नागार्जुन ने भावना की गहराई में डूबकर कालिदास से अत्यन्त आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है । कालिदास ने यक्ष से भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित कर बेचारे विरही यक्ष की दयनीय दशा का मार्मिक चित्र भी प्रस्तुत किया है । इसी स्थिति में नागार्जुन कालिदास से प्रश्न करते हैं कि हे कवि! तुम बिना किसी दुराव-छिपाव के यह बतलाओ कि तुमने अपनी कविता में विरही यक्ष के रुदन, उसकी पीड़ा का वर्णन किया है अथवा उसकी दशा को अपने ऊपर ढालकर तुमने अपनी ही व्यथा, अपनी ही पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है? यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कालिदास द्वारा प्रस्तुत यक्ष का रुदन इतना यथार्थ लगता है कि वह कवि का अपना रुदन प्रतीत होता है। इसी भाव को कवि नागार्जुन ने उपर्युक्त पंक्तियों में लिखकर अभिव्यक्ति प्रदान की है । कवि नागार्जुन ने पुन: प्रश्न किया है कि उस स्वच्छ श्वेत रंग के दिखाई देने वाले पर्वत की चोटियों पर विरह में मारा-मारा फिरने वाला. थकान से चूर-चूर यक्ष सोया था या तुम स्वयं ही वहाँ जाकर सो गये थे? बतलाओ तो सही कि तुम वहाँ कब तक सोये रहे? कवि यहाँ आकर इतना भावाभिभूत हो गया है कि कालिदास से इसी सम्बन्ध में फिर प्रश्न करता है कि कालिदास मेरी इसी जिज्ञासा को विनोद या मजाक न मानकर सत्य बतला दो कि यक्ष के रूप में तुम स्वयं रोये थे या यक्ष रोया था? नागार्जुन के इस वर्णन से यह व्यंजित होता है कि यक्ष की वेदना कालिदास की ही वेदना है ।

टिप्पणी- (1) सम्पूर्ण कविता में कथ्य विस्तृत नहीं है, किन्तु सामान्य-से कथ्य जिस कथन-शैली और पद्धति के द्वारा अभिव्यक्ति दी गयी है, वह बड़ी सूक्ष्म, भावोपम और गहराई लिए हुए है ।

(2) कालिदास के वर्णन नागार्जुन को इतने प्रभावित करते हैं कि उन्हें यक्ष के रूप में स्वयं कालिदास ही अपनी पीड़ा का अभिव्यंजन करते प्रतीत होते हैं।

(3) 'कालिदास सच-सच बतलाना' पंक्ति की पुनरावृत्ति से कविता पर्याप्त प्रभावी बन पड़ी है । पूरी कविता में इस पंक्ति की आवृति से नागार्जुन की भावुकता और कवि कालिदास के प्रति उनकी भावात्मक संवेदना व्यक्त होती चली गयी है ।

(4) सम्पूर्ण कविता में जहाँ सच-सच बतलाना, पूर-पूर होना, थककर चूर-चूर हो जाना जैसे सामान्य शब्दों का प्रयोग हुआ है, वही पर मृत्यु-शोक, महाज्वाला, घृतमिश्रित, क्रन्दन, विधुर, सुभग शिखर, पुष्करावर्त और अमल-धवल-गिरि जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा नागार्जुन ने एक प्रकार से अपने आपको कालिदास से जोड़ लिया है । भाषा-शैली का इतना सुन्दर प्रयोग और वह भी एक प्रगतिशील चेतना के वाहक कवि के द्वारा सचमुच प्रशंसनीय है ।

16.3.2 कविता परिचय (बादल को घिरते देखा है)

'बादल को घिरते देखा है' शीर्षक कविता नागार्जुन की अतिप्रसिद्ध और उनके वैचारिक ऊहापोह को व्यक्त करने वाली महत्वपूर्ण कविता है । यह कविता 'युगधारा' में संकलित

है और यही कविता अक्टूबर, सन् 1940 में 'सरस्वती' पत्रिका में भी प्रकाशित हुई थी । नागार्जुन का कवि-स्वभाव एक संश्लिष्ट बनावट लिए हुए है । यही कारण है कि एक ओर तो उनमें प्रगतिवादी काव्य-संवेदना का यथार्थ रंग है और दूसरी ओर सौंदर्य बोध की छटा भी है । इसी संदर्भ में 'बादल को घिरते देखा है' कविता को देखा जा सकता है । इस सम्बन्ध में ब्रजेशकुमार श्रीवास्तव का यह कथन औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है कि "इस कविता का पाठ इकहरा नहीं हो सकता, उनकी इस रचना में भी विविध वैचारिक विमर्शों का संश्लेष दृष्टिगोचर होता है । यह रचना प्रगतिवादी काव्य- संवेदना के निकट विकसित हो रहे वस्तुगत सौंदर्य की झलक देती है जो नागार्जुन की रचना का खास वैशिष्ट्य है । एक ओर तो यह स्थिति है और दूसरी ओर नागार्जुन की मार्क्सवादी दृष्टि का भी प्रक्षेपण इस रचना के माध्यम से सम्भव हुआ है ।" कविता में कवि का प्रकृति के प्रति सघन बोध भी दृष्टिगोचर होता है और साथ ही साथ अतीत के सौंदर्य को याद करते हुए नागार्जुन भारत के उस संदर्भ को भी उद्घाटित करते हैं जहाँ पर हमारा देश संकट के बादलों से घिरा हुआ दिखाई देता है । वे राष्ट्रवादी बातें तो करते हैं, किन्तु वास्तव में वे उसके प्रति अन्तस की गहराइयों से व्याकुल नहीं हैं ।

अवतरण 1

अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है ।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है ।
तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी-बड़ी कई झीलें हैं
उनके श्यामल-नील सलिल में
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिस-तंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।
ऋतु बसंत का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक-दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशाकाल के चिर-अभिशापित

बेबस उन चकवा-चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है
बादल की घिरते देखा है ।

शब्दार्थ-तुहिन कणों = बर्फ के कणों । तुंग = ऊँचा । श्यामल नील सलिल = साँवले नीले जल में । पावस की उमस = वर्षा की उमस । बालारुण = बालसूर्य । स्वर्णाभ शिखर = सुनहरे रंग से दीपित चोटियाँ ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नागार्जुन की 'बादल को घिरते देखा हैं' कविता का प्रारम्भिक अंश है । इस अंश में नागार्जुन का प्रकृति-प्रेम और उससे जुड़ा हुआ सौंदर्य बोध अभिव्यक्त हुआ है । एक प्रकार से कविता का प्रारम्भ जिस प्राकृतिक सौंदर्य से हुआ है, वह कविता में अन्त तक तो रहता है, किन्तु वह अतीत का वैभव और सौंदर्य बनकर वर्तमान की स्थिति की ओर भी संकेत करता है ।

व्याख्या-नागार्जुन कह रहे हैं कि मैंने निर्मल श्वेत पर्वत के शिखरों पर बादल को उमड़ते-घुमड़ते देखा है । जब बादल पर्वत-मूंगों पर उमड़ते हैं, तब वहाँ पर छोटे- छोटे मोती के समान चमकते हुए शीतल बर्फ के कण भी दिखाई देते हैं । ये तुहिन-कण अर्थात् बर्फ के कण मानसरोवर के उन सुनहरे कमलों पर जब पड़ते हैं या गिरते हैं तब बहुत ही मोहक और प्रतीत होते है । भाव यह है कि हिमाच्छादित गिरि-मूंगों से मोती के समान चमकते हुए शीतल कणों पर सूर्य की आभा पड़कर न केवल समूचे परिवेश को, अपितु मानसरोवर में विकसित होने वाले कमलों को भी अद्भुत सौंदर्य प्रदान कर देती है। कवि कह रहा है कि ऊँचे हिमालय पर्वत के शिखर रूपी कंधों पर अनेक छोटी-बड़ी और आकर्षक झीलें हैं जिनके साँवले नीले जल में कितने ही देशों से आ-आकर, वर्षा की ऊमस से आकुल-व्याकुल होकर हंस तिक्त और मधुर विसतन्तु खोजते और उन झीलों में तैरते दिखाई देते हैं । आगे की पंक्तियों में कवि नागार्जुन ने बसन्त ऋतु के सुप्रभात का वर्णन करते हुए अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है । कवि कह रहा है कि बसन्त ऋतु के सुप्रभात में मन्द-मन्द गति से वायु प्रवाहित हो रही थी । नवोदित सूर्य की कोमल किरणें आसपास खड़े हुए सुनहरे शिखरों पर पड़ रही थी । रात्रि वेला में चकवा और चकवी विवशता को पोसते हुए अभिशापित की भाँति अब तक जो अलग-अलग थे, वे अब मिलन की तैयारी कर रहे थे । रात्रि में एक दूसरे से विलग रहने के कारण उनका पीडामय क्रन्दन बन्द हो गया था और वे अब इस प्रात:वेला में सरोवर के किनारे हरी घास की दरी पर प्रणय-कलह करते दिखाई दे रहे थे । तात्पर्य यह है कि रात्रि समाप्त हो गयी थी और रात के बिछुड़े हुए प्रात:वेला में मधुर मिलन का आनन्द ले रहे थे ।

टिप्पणी- (1) पद्यावतरण में परिष्कृत शब्दावली का प्रयोग हुआ है । इस शब्दावली के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रगतिशील चेतना के वाहक नागार्जुन के मन में कालिदास का गहरा प्रभाव है । कालिदास का सौंदर्य बोध उनकी

अनुभूतियाँ और प्रकृति के प्रति उनका अनुराग तत्सम शब्दावली के सहारे नागार्जुन का अनुराग बनकर आया है।

(2) प्रारम्भिक चार पंक्तियों में चाक्षुष गतिशील बिम्ब है जो आगे की और चार पंक्तियों तक बिना किसी बाधा के बढ़ता चला गया है । इस बिम्ब से अवतरण का सौंदर्य बढ़ गया है ।

(3) अवतरण के अन्तिम अंश में बसन्त ऋतु के प्रातःकाल का बिम्ब, शीतल मन्द पवन का प्रवाह और नवोदित सूर्य की कोमल सुनहरी किरणों की आभा को संवेद्य बिम्ब के माध्यम से अभिव्यक्ति दी गयी है । इस बिम्ब में कहीं स्पर्श बिम्ब है, कहीं रंग विश्व है और कहीं ध्वनि बिम्ब भी है । अन्तिम पंक्तियों में नागार्जुन का भाव अभिव्यक्त हुआ है जिसे उन्होंने चकवा-चकवी के संदर्भ से अभिव्यक्ति दी है ।

अवतरण 2

दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत-सहस्त्र ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल-
के पीछे, धावित हो-होकर
तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।
कहीं गया धनपति कुबेर वह
कहीं गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत परन्तु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है ।

शब्दार्थ-बर्फानी घाटी = बर्फ से भरी हुई घाटी । अलख = अलक्षित । उन्मादक परिमल = मादक गंध । धावित = दौड़ते हुए । धनपति = धन का स्वामी । व्योमप्रवाही = आकाश

से प्रवाहित होने वाला । छायामय = आच्छादित, यह प्रयोग बादल के लिए आया है । नभचुम्बी = आकाश को छूने वाले । शीर्ष = चोटी । झंझझानिल = तूफानी हवा ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नागार्जुन की 'बादल को घिरते देखा है' कविता का अंश है । इस अंश में नागार्जुन ने उस अतीत के सौंदर्य को अभिव्यक्ति दी है जो आज भी हमारे मानस को उद्वेलित करता रहता है । कवि का मानस भी उससे उद्वेलित है ।

व्याख्या-नागार्जुन कह रहे हैं कि आज वह स्थिति और दृश्य भी याद आ रहा है जब दुर्गम बर्फीली घाटी में हजारों फुट की ऊँचाई पर अपनी ही नाभि से निकलने वाली अलक्षित मादक गंध के पीछे कस्तूरी मृग दौड़ा करता था । कहा जाता है कि कस्तूरी की गंधक हिरण की नाभि में होती है, किन्तु उसे इसका पता नहीं होता है । अतः वह उस गंध से उन्मथित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक उसी गंध को पाने के लिए दौड़ता रहता है, किन्तु वह उसे मिलती नहीं है । परिणामस्वरूप वह अपने ऊपर ही चिढने लगता है । नागार्जुन की कल्पना है कि ऐसे दृश्य अतीत की निधि थे, अब वे कहीं दिखाई नहीं देते हैं । इसी क्रम में नागार्जुन अतीत के और स्वर्णिम काल के वैभव को याद करते हुए कह रहे हैं कि कुबेर की वह अल्कानगरी कहीं गयी, जिसका वर्णन कालिदास के ग्रंथों में मिलता है । कालिदास के ही ग्रंथों में व्योमप्रवाही गंगाजल का उल्लेख आता है । कवि का संकेत है कि यह सब निश्चित रूप से रहा होगा. किन्तु यह सब अतीत की बात है, आज तो इसका कहीं भी कोई अता-पता देखने को नहीं मिलता है । आज तो बहुत खोजने पर भी मेघदूत का कहीं कोई आभास नहीं मिलता है । अब हमें यह कौन बतायेगा कि वह छायामय मेघ कहीं अन्यत्र बरस रहा होगा । हमारी भारतभूमि का जो सौंदर्य था, वह अब यहाँ कहीं दिखाई नहीं देता है । कवि का संकेत है कि अब तो इसके विपरीत स्थिति दिखाई देती है । कवि ने व्यंग्य का सहारा लेकर यह भी संकेत कर दिया है कि हो सकता है, यह कवि की कल्पना रही हो, क्योंकि हमने तो भीषण शीतकाल में आकाश को छूने वाले पर्वतों की चोटियों पर बड़े-बड़े बादलों को तूफानी हवा से संघर्ष करते हुए देखा है । संकेत यह है कि आज जिस हिमालय को हम देख रहे हैं, वहाँ तो संघर्ष ही संघर्ष है, अतीत का वह सौंदर्य, वह वैभव अब कहीं भी देखने को नहीं मिलता है ।

टिप्पणी- (1) इस पद्यावतरण में तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है । इस शब्दावली का प्रयोग कवि नागार्जुन ने जान-बूझकर किया है । कारण यह है कि ऐसे शब्दों के प्रयोग द्वारा वे कालिदास के भावों, उनकी अनुभूतियों और उस समय के परिवेश को साकार करना चाहते हैं ।

(2) इस अवतरण में नागार्जुन का प्रकृति के प्रति सघन ऐन्द्रिक बोध देखने को मिलता है । कालिदास मात्र प्रकृति सौंदर्य के कवि नहीं थे, वे अपनी भावुक चेतना से राष्ट्रीय सौंदर्य को आरेखित करते रहे । नागार्जुन के मन में भी इस कविता के सृजन के क्षणों में यही भाव रहा है । यही कारण है कि कविता का यह अंश प्रकृति- चित्र एक स्तर पर राष्ट्र में सौंदर्य, प्रेम की आवश्यकता को अनुभव कर रहा है तो दूसरी ओर महामेघ की झझानिल से

गरज-गरज भिड़ते देखा है से कवि वर्तमान स्थिति की ओर संकेत कर रहा है ।

(3) कविता में गंगाजल, धनपति कुबेर, अलका, कैलाश शीर्ष आदि प्रतीकों के माध्यम से कवि ने अपनी भावना को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर दिया है ।

अवतरण 3

शत-शत निर्झर-निर्झरिणी-कल
मुखरित देवदारु-कानन में,
शोणित-धवल-भोजपत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर
रंग-बिरंगे और सुगन्धित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए
शतदल लाल कमल वेणी से
रजत-रचित-मणि-खचित कलामय
पानपात्र द्राक्षासव-पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपदी पर
नरम निदाग बाल-कस्तूरी-
मृगछालों पर पत्थी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है
अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है ।

शब्दार्थ-निर्झर = झरने । देवदारु- कानन = देवदारु के वृक्षों का वन । कुन्तल = बाल । सुघड़ = कोमल और सुन्दर । कुवलय = कानों के आभूषण । शतदल = कमल । रजत-रचित = चाँदी से शोभित । द्राक्षासव-पूरित = मादक पेय पदार्थ से युक्त । पत्थी मारे = पालथी मारकर बैठे हुए । मदिरारुण = मदिरा के मादक नशे से लाल हुई आंखो वाले ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नागार्जुन की 'बादल को घिरते देखा हैं' कविता का अन्तिम अंश है । इस अंश में नागार्जुन ने अतीत के वैभव को याद करते हुए अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है और साथ ही साथ वर्तमान की ओर संकेत भी कर दिया है ।

व्याख्या-कवि नागार्जुन कह रहे हैं कि देवदारु के वृक्षों के वन में प्रवाहित होने वाले सैकड़ों झरने कल-कल करते हुए बहा करते थे । इसी कानन में लाल और श्वेत भोजपत्र

से सज्जित कुटिया के भीतर रंग-बिरंगे और सुगन्धित पुष्पों से बालों को सजाये हुए, शंख जैसी सुघड़ गर्दनों में इन्द्रनील के पुष्पों की माला पहने हुए, कानों में कुवलय के पुष्प के आभूषण लटकाये हुए लाल कमल की वेणी से सजे हुए सफेद और मणि-निर्मित कलापूर्ण पान-पात्र में मादक पेय पदार्थ अपने सामने रखकर लाल चन्दन की त्रिपदी पर मृगछाला पर पालथी मारकर बैठे हुए मादक आँखों वाले उन्मत्त किन्नर-किन्नरियों को अपनी कोमल अंगुलियों से वंशी बजाते हुए देखा है । तात्पर्य यह है कि नागार्जुन ने अतीत की स्थिति, कालिदास द्वारा वर्णित देवदारु वृक्ष के बनों, उनमें स्थित कुटिया और उन कुटियों में पालथी मारकर बैठे हुए किन्नर-किन्नरियों के विलास-वैभव को संकेतित करते हुए यह व्यक्त किया है कि हमारा अतीत का भारत कितना सुन्दर, कितना मादक और कितना ऐश्वर्यपूर्ण था । यह कहकर नागार्जुन यह संकेत कर रहे हैं कि आज वह सब कहीं चला गया है? समय के घात-प्रतिघात सहते हुए आज हम जिस वर्तमान में साँस ले रहे हैं, उसमें इस प्रकार के वैभव-विलास की कल्पना करना अनेक बार कल्पना ही प्रतीत होती है । कवि का संकेत यह भी है कि हमारा अतीतकालीन भारत न केवल समृद्ध था, न केवल वैभवपूर्ण था, अपितु अनेक प्रकार के साधनों से भी सम्पन्न था । आज ऐसे वैभवपूर्ण भारत के हिमगिरि के ऊपर जो बादल उमड़ते-घुमड़ते दिखाई दे रहे हैं, वे वैभव के प्रतीक न होकर संकट के प्रतीक हैं । जो बादल कभी वैभव को व्यक्त करते थे, सौंदर्य के प्रतिमान बने हुए थे, वे ही आज संकट के प्रतीक बनकर हमारे सामने हैं और हम हैं कि उन स्थितियों को भुला बैठे हैं और अपनी ही नीति से दुखी होकर अपना ही मजाक बना रहे हैं ।

टिप्पणी- (1) इस पद्यावतरण में तत्सम शब्दावली का प्रयोग तो हुआ ही है, साथ ही साथ सर्वाधिक प्रयोग सामासिक शब्दावली का हुआ है ।

(2) इस अंश में चाक्षुष गतिशील बिम्ब के प्रयोग के साथ-साथ संवेद्य बिम्बों का प्रयोग भी बड़ी कुशलता से किया गया है । सम्पूर्ण अंश प्रभावी, व्यंजक और कवि की अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने में पूरी तरह समर्थ है ।

16.3.3 कविता परिचय (हरिजन-गाथा)

नागार्जुन द्वारा रचित 'हरिजन-गाथा' कवि की रचनात्मकता का साक्ष्य प्रस्तुत करती हुई सन् 1900 में प्रकाशित 'खिचड़ी विप्लव हमने देखा' काव्य-संग्रह में संकलित है । यह कविता प्रमाणित करती है कि नागार्जुन अपने समय के साथ चलने वाले कवि हैं । उन्होंने अपनी कविता में आसपास की सामाजिक विसंगतियों को बड़ी खूबी के साथ उभारा है । यह कविता बिहार के जातीय संघर्ष को आधार बनाकर लिखी गयी है । यह एक ऐसी कविता है. जिसके अन्तर्गत नागार्जुन ने सवर्णो द्वारा जलाई गयी हरिजन-बस्तियों का बेबाक और मुँहबोलता चित्र प्रस्तुत किया है । सम्पूर्ण कविता तीन अंशों में फैलीं हुई है । प्रथम लघु अंश पैशाचिक दुष्काण्ड के घटित होने की संक्षिप्त घटना से सम्बन्धित है । कविता का प्रारम्भ 'ऐसा तो कभी नही हुआ था' पंक्ति से हुआ है । यह पंक्ति पूरी कविता में एक टेक की तरह बार-बार आती रही है । परिणामस्वरूप कविता में वर्णित यथार्थ सघन से सघन, करुण से करुण और वर्णित स्थिति से उत्पन्न त्रासदी

को शब्दबद्ध करता गया है । यह पंक्ति अभूतपूर्व घटना की ओर इशारा करती है । हरिजन माताओं की गर्भ-कुक्षि में भ्रूण मानो दौड़ लगा रहे हैं और ऐसा आभास उन्हें पहले नहीं हुआ था । इस पंक्ति का अर्थ अभिधा शक्ति से यह सिद्ध होता है कि अब अभूतपूर्व घटित होगा । कविता के दूसरे और तीसरे खण्ड में भी यह पंक्ति बार-बार आती है और कविता में अकल्पनीय अग्निकाण्ड का बिम्ब उभरता चला जाता है । यह कविता यह संकेत करती है कि जो लज्जाजनक काण्ड हुआ, वह मानवीय सभ्यता के बीसवीं शताब्दी के इतिहास पर एक अमिट कलंक बन गया है । गांधी बाबा के हरिजन आज भी पैशाचिक नरमेध में हविष्य बनकर सुलग रहे हैं । सम्पूर्ण कविता बोलचाल की एवं व्यावहारिक भाषा में लिखी गयी है, किन्तु पाठक की चेतना को झकझोरने वाली है ।

अवतरण 1

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था!
महसूस करने लगीं वे
एक अनोखी बेचैनी
एक अपूर्व आकुलता
उनकी गर्भकुक्षियों के अन्दर
बार-बार उठने लगीं टीसें
लगाने लगे दौड़ उनके भ्रूण
अन्दर ही अन्दर
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था
ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि
हरिजन-माताएँ अपने भ्रूणो के जनकों को
खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं-
तेरह के तेरह अभागे-
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिये गये हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन-सम्पन्न ऊँची जातियों वाले
सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा!
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था..... ...

शब्दार्थ-अनोखी बेचैनी = शब्दों में व्यक्त न किए जाने वाली पीड़ा । अपूर्व आकुलता = ऐसी बेचैनी जो पहले कभी अनुभव नहीं हुई । पैशाचिक दुष्काण्ड = राक्षसी कुकृत्य । अकिंचन मनुपुत्र = गरीब मनुपुत्र, मनुपुत्र शब्द पीड़क और पीड़ित दोनों के पूर्व साभिप्राय रखा गया है । मनु द्वारा निर्धारित वर्ण-व्यवस्था - ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

कैसी व्यवस्था है यह जिसमें मनु के पुत्र ही आपस में अपने ही भाइयों के जीवन की होली खेलते हैं । विकराल = भयानक ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नागार्जुन की 'हरिजन-गाथा' शीर्षक कविता का प्रारम्भिक अंश है । कविता की पृष्ठभूमि यथार्थ के कदुसत्य को अभिव्यक्ति देती है । जाति-पाँति और वर्ण-व्यवस्था की अमानवीय कपट-कथा में आज भी देश के पोंगा पण्डित

विश्वास करते हैं । मनु की सन्तान अपने ही भाइयों की होली जला रही है । एक यथार्थ घटना पर आधारित यह कविता हमें अमानवीय स्थितियों से जूझने और मानवीय स्थितियों की स्थापना के लिए प्रेरित करती है ।

व्याख्या-नागार्जुन इस अवतरण में कह रहे हैं कि ऐसा कभी नहीं हुआ जो अब हुआ है । वास्तव में 'ऐसा तो कभी नहीं हुआ के माध्यम से नागार्जुन उस अमानवीय और पैशाचिक नरसंहार की ओर संकेत कर रहे हैं जो हमारे ही देश - बापू के देश में घटित हुआ । कवि नागार्जुन कह रहे हैं कि हमारे देश में आज जो घटित हुआ है, वह अब तक अघटित रहा । इसी घटना से आहत होकर या कहें कि ऐसे दुष्काण्ड को देखकर स्त्रियाँ एक अनकही व्यथा और आकुलता का अनुभव कर रही हैं । उन्हें प्रतीत हो रहा है कि उनके गर्भ में पल रहे भ्रूण इधर से उधर दौड़ लगाने लगे हैं । संकेत यह है कि ऐसी अमानवीय घटना हमारे देश के लिए अकल्पनीय थी और गर्भ में स्थित भ्रूण दौड़ लगाते हुए मानो संकेत कर रहे हैं कि अब जो भी शिशु जन्म लेंगे, वे सब क्रांति के दूत बनकर आयेंगे । इतना ही नहीं, इस अमानवीय और पैशाचिक कृत्य का बदला भी लेंगे । कवि ने स्पष्ट किया है कि अमानवीय और पैशाचिक दुष्काण्ड के माध्यम से चारों ओर भय व्याप्त हो गया है और लोग अपने जीवन को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं । अधिक पीड़ाजनक स्थिति यह है कि एक-दो नहीं, बल्कि तेरह के तेरह अभागे अकिंचन मनुपुत्र जिन्दा आग में झोंक दिये गये हैं । कैसी विडम्बना है कि ये अभागे दलित वर्ग के लोग भी मनुपुत्र थे और झोंकने वाले भी मनुपुत्र ही हैं । साधन-सम्पन्न ऊँची जाति वाले मनुपुत्री ने अभागे निम्नवर्ग के दलित लोगों को आग की लपटों में झोंक दिया है । यह बड़ा अकल्पनीय दृश्य है, अमानवीय दृश्य है । ऐसी कल्पना करना भी कष्टदायक है. फिर यह सब तो घटित हो चुका है । इसी कारण नागार्जुन ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, जैसी पंक्ति बार-बार दोहराकर मानवीय संवेदना को जाग्रत करना चाहते हैं ।

टिप्पणी- (1) अवतरण में अनोखी बेचैनी, अपूर्व आकुलता, बार-बार उठने वाली टीसें, दौड़ लगाते हुए भ्रूण जैसे प्रयोगों द्वारा नागार्जुन ने सोयी हुई मानवीय करुणा और संवेदना को यथार्थ रूप में व्यक्त करने का प्रयास किया है । निश्चय ही इसमें वे सफल हुए हैं ।

(2) अवतरण से यह भी संकेत मिलता है कि हरिजन माताओं को अपने आगे जन्म लेने वाले बच्चों की क्रांतितिधर्मिता पर पूर्ण विश्वास है । अमानवीयता का प्रतिकार करना, अत्याचार का दमन करना और मानवीय भावनाओं को स्थापित करना प्रत्येक युग में प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है । प्रस्तुत काव्यांश के माध्यम से नागार्जुन अपनी इसी मानवीय भावना को अभिव्यक्ति दे रहे हैं ।

अवतरण 2

चकित हुए दोनों वयस्क बुजुर्ग
ऐसा नवजातक
न तो देखा था, न सुना ही था आज तक !
पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी में
क्या करेगा भला आगे चलकर?
रामजी के आसरे जी गया अगर
कौन-सी माटी फोडेगा?
मग्गह का यह बदनाम इलाका
जाने कैसा सलूक करेगा इस बालक से
पैदा हुआ है बेचारा-
भूमिहीन बंधुआ मजदूरों के घर में
जीवन गुजारेगा हैवान की तरह
भटकेगा जहाँ-तहाँ बनमानुस-जैसा
अधपेटा रहेगा अधनंगा डोलेगा
तोतला होगा कि साफ-साफ बोलेगा
जाने क्या करेगा
बहादुर होगा कि बेमौत मरेगा.. .....
फिक्र की तलैया में खाने लगे गोते
वयस्क बुजुर्ग दोनों, एक ही बिरादरी के हरिजन
सोचने लगे बार-बार.....

शब्दार्थ-वयस्क बुजुर्ग = प्रौढ़ एवं वृद्ध व्यक्ति । नवजातक = नया जन्मा हुआ बालक । रामजी के आसरे = ईश्वर की शक्ति के सहारे । बदनाम इलाका = कुकर्मो के लिए प्रसिद्ध क्षेत्र । सलूक = व्यवहार । हैवान = शैतान । अधपेटा = आधा भूखा । बेमौत= द अकाल मृत्यु । फिक्र की तलैया = चिन्ता के सरोवर में या तालाब में ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नागार्जुन की 'हरिजन-गाथा' शीर्षक कविता के द्वितीय अंश के प्रारम्भिक भाग से सम्बन्धित है । यह पद्यावतरण व्यथा-कथा पर विलाप-प्रलाप से अलग हटकर नये जीवन और व्यवस्था-विरोध के लिए सुविधा-सम्पन्न लोगों पर आक्रमण करता हुआ नवजातक के जन्म और उसकी सुरक्षा के भाव को लेकर लिखा गया है । बदनसीब सुखिया के घर में जिस सुन्दर बच्चे का जन्म हुआ है, उसका भाग्य कैसा होगा, इसी ऊहापोह में चिन्तनशील वयस्क बुजुर्गो की मनोदशा को अभिव्यक्ति दी गयी है ।

व्याख्या-नागार्जुन कह रहे हैं कि पैशाचिक दुष्काण्ड की स्थिति में ही एक दलित वर्ग के निर्धन व्यक्ति के घर में जन्म लेने वाले बच्चे को देखकर वयस्क बुजुर्ग चिन्ता में डूब जाते हैं । वे सोचने लगते हैं कि जो नया बालक हमारी ही बिरादरी के एक व्यक्ति के घर में दस दिन 'पहले जन्मा है. वह भविष्य में क्या करेगा? उनकी चिन्ता इस बात को लेकर भी है कि पहले तो वह जीवित ही नहीं रह पायेगा, यदि ईश्वरीय कृपा का बल

पाकर वह जीवित भी रह गया, तो मिट्टी खोदेगा किसी न किसी पत्थर को फोड़ेगा । हमारा यह क्षेत्र बड़ा बदनाम है । यहाँ अमानवीय घटनाएँ होती ही रहती हैं । न मालूम हमारा यह बदनाम क्षेत्र इस बच्चे के साथ कैसा व्यवहार करेगा । इस नवजातक बालक का जन्म एक भूमिहीन बंधुआ मजदूर के घर में हुआ है । ऐसे मजदूर के घर में जन्म लेकर इसका जीवन एक हैवान की तरह व्यतीत होगा । यह इधर से उधर वनमानुष की भाँति भटकता रहेगा । इसे न तो भरपेट भोजन मिलेगा और न शरीर ढकने के लिए वस्त्र ही प्राप्त होंगे । क्या पता, ऐसी स्थिति में निर्धन के घर जन्मा हुआ यह बालक बोल भी पायेगा या नहीं । यदि बोलने भी लगा तो क्या बोलेगा, कैसे बोलेगा और क्या करेगा । हो सकता है यह कोई वीर पुरुष बन जाये और यह भी सम्मव है कि इसकी अकाल मृत्यु भी हो जाये । इसी प्रकार के विचारों में डूबे हुए वयस्क बुजुर्ग चिन्ता के तालाब में गोते खाने लगे । एक ही बिरादरी के ये हरिजन वयस्क बुजुर्ग इसी चिन्ता में तरह-तरह की बातों में डूबे रहे ।

टिप्पणी- (1) पद्यावतरण में निर्धन के घर जन्मे हुए बालक की भविष्य की चिन्ता में डूबे हुए वयस्क बुजुर्गो की मानसिकता को यथार्थ अभिव्यक्ति दी गयी है ।

(2) इस अंश में एक ओर तो ईश्वर के प्रति आस्था व्यक्त की गयी है और दूसरी ओर साधन-सम्पन्न लोगों के प्रति आक्रोश भी व्यंजित है । दलित वर्ग के लोग जीवन-यापन के जिन सहारों की तलाश करते हैं, वे भी उन्हें आज की स्थिति में सहजता से उपलब्ध नहीं हो रहे हैं । इसी चिन्ता की स्थिति को वयस्क बुजुर्गो के माध्यम से अभिव्यक्ति देकर नागार्जुन ने अपनी समसामयिकता से जुड़ी हुई भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान कर दी है ।

अवतरण 3

'सुनते हो' बोला खदेरन
बुद्ध भाई देर नहीं करनी है इसमें
चलो, कहीं, बच्चे को रख आये.....
बतला गए हैं, अभी-अभी गुरु महाराज,
बच्चे को माँ सहित हटा देना है कहीं
फौरन बुद्ध भाई!
बुद्ध ने अपना माथा हिलाया.....
खदेरन की बात पर
एक नहीं, तीन बार!
बोला मगर एक शब्द नहीं
व्याप रही थी गम्मीरता चेहरे पर
था भी तो वही उस में बड़ा
(सत्तर से कम का तो भला क्या रहा होगा!)
'तो चलो! उठो, फौरन उठो!
शाम की गाड़ी से निकल चलेंगे

मालूम नहीं होगा किसी को.....
लौटने में तीन-चार रोज तो लग ही जाएँगे.....
बुद्ध भाई तुम तो अपने घर जाओ
खाओ, पियो, आराम कर लो
रात में गाड़ी के अन्दर जागना ही तो पड़ेगा.....
रास्ते के लिए थोड़ा चना-चबेना जुटा लेना
मैं इतो में करता हूँ तैयार
समझा-बुझाकर
सुखिया और उसकी सास को... .....

शब्दार्थ-शब्दार्थ सरल है ।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्यावतरण नागार्जुन की 'हरिजन-गाथा' शीर्षक कविता के तृतीय अंश के प्रारम्भिक प्रारम्भिक भाग से सम्बन्धित है । इस अंश की प्रमुख चिन्ता और उससे जुड़ा हुआ कार्य संगत प्रतीत होता है । बुद्ध खदेरन, सुखिया, उसकी सास आदि सभी मिल-जुलकर शिशु को सुरक्षित स्थान तक ले जाने और पुन: उसके पालन-पोषण के लिए तत्पर हो जाते हैं । इस प्रकार के वर्णन द्वारा नागार्जुन यह संकेत कर रहे कि दलित शोषित वर्ग यदि एकजुट हो जाये तो वह किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए तत्पर हो सकता है या समर्थ हो सकता है ।

व्याख्या-कवि नागार्जुन कह रहे है कि गुरु महाराज की बातों को सुनकर खदेरन बुद्ध से बोला कि भाई! अब हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए । कारण यह है कि विलम्ब करने पर कुछ भी अघटित घटित हो सकता है । जो बच्चा जन्मा है, उसके पालन पोषण और उसकी सुरक्षा के लिए हम सभी को इसे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना चाहिए । यही सोचकर खदेरन यह भी कहता है कि गुरु महाराज ने अभी- अभी तो बतलाया है कि इसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करो । इसे इसकी माँ के साथ यहाँ से कहीं अन्यत्र ले जाना चाहिए । इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए । खदेरन की यह बात सुनकर बुद्ध ने अपना मस्तक हिलाया और एक बार नहीं, तीन बार हिलाया अर्थात् उसने सहमति में सिर हिला दिया । बुद्ध ने सिर तो हिला दिया, किन्तु अपने मुख से एक शब्द भी नहीं कहा । हाँ, खदेरन की बात का समर्थन करते हुए भले ही वह एक शब्द भी न बोला हो, किन्तु उसके चेहरे पर गम्भीरता झलक रही थी । ऐसा संभवतः इसलिए भी था कि बुद्ध खदेरन से उम्र में कुछ बड़ा था । उसकी अवस्था सत्तर से कम नहीं थी । इस निश्चय के साथ दोनों उठ खड़े हुए और यह भी कहा कि शाम की गाड़ी से ही कहीं बाहर चले चलेंगे और हमारे जाने का किसी को पता भी नहीं चलेगा । लौटने में भी तीन-चार दिन लग जायेगे। खदेरन ने अन्त में यह भी कहा कि बुद्ध भाई, तुम भी अपने घर चले जाओ, खाना खाओ और विश्राम करो । रात की गाड़ी से जाना है तो रात भर जागना ही होगा । मार्ग के लिए भी थोड़ा सा चना-चबैना अर्थात् खाद्य सामग्री रख लेना । तुम तो यह करो और मैं इसी बीच सुखिया और उसकी सास को समझा-बुझाकर जाने के लिए तैयार करता हूँ ।

टिप्पणी- (1) पद्यांश में यह व्यक्त किया गया है कि मानवता की सुरक्षा के लिए संघर्ष आवश्यक है । बिना संघर्ष के अमानवीयता दूर नहीं हो सकती है ।

(2) गुरु महाराज के कथनानुसार यह बालक जिसकी सुरक्षा-व्यवस्था की जा रही है, अपने साथियों में सर्वाधिक बलिष्ठ. धरती से जुल्म को हटाने वाला, मजदूरों के बीच में रहकर भी शक्तिशाली बनकर मानवता का रक्षक बनेगा। गुरु महाराज की इसी बात को हृदय में धारण करके नवजातक की सुरक्षा के लिए दलित वर्ग एकजुट हो जाता है । ऐसा वर्णन करके नागार्जुन ने यह संकेत किया है कि एकजुट होकर ही अन्याय, दमन और अत्याचार को दूर किया जा सकता है । मानवता की सुरक्षा के लिए क्रांतिधर्मी चेतना आवश्यक है ।

(3) सम्पूर्ण कविता जिन तीन खण्डों में लिखी गयी है, इन तीनों में ही भाषा सहज, सरल और व्यावहारिक है । बोलचाल की शब्दावली का सहारा लेकर नागार्जुन ने अपने सहज शिल्पी होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है । पूरी कविता नागार्जुन की मानवीय संवेदनात्मक दृष्टि और चिन्तना को अभिव्यक्ति देने वाली है । वास्तव में इस कविता का कोई भी अंश व्याख्येय नहीं है । हाँ, कतिपय स्थितियों और वर्णनों के व्यंजक भाव को समझना आवश्यक है ।

16.5 सारांश

नागार्जुन माननीय आस्था व जिजीविषा के कवि है । प्रस्तुत इकाई में आपने नागार्जुन की कालिदास सच- सच बतलाना, 'बादल को घिरते देखा है' तथा 'हरिजन गाथा' शीर्षक कविताओं का अध्ययन किया है । कालिदास नागार्जुन के सर्वाधिक प्रिय कवि थे । कालिदास के प्रति लिखी गई कविता कवि कालिदास की भावुक संवेदना व पीड़ा को अभिव्यव्यक्ति प्रदान करती है । 'बादल को घिरते देखा है' शीर्षक कविता कवि की प्रगतिवादी काव्य संवेदना व सौंदर्य बोध को व्यक्त करती है । नागार्जुन की दृष्टि उन लोगों के प्रति आक्रोश भरी है, जो विश्वयुद्ध के मंडराते बादलों को देखकर भी आरामतलब जिन्दगी जी रहे हैं । 'हरिजन-गाथा सामाजिक विसंगतियों, जाति-पाति व वर्ग व्यवस्था की अमानवीय कपट-कथा को चित्रित करती है । नागार्जुन के काव्य में दलितों व शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव विद्यमान रहा है ।

16.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नांकित अवतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए और आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी दीजिए-

1. वर्षा ऋतु की..... कब तक सोए थे?
2. अमल धवलगिरि..... घिरते देखा है ।
3. ऐसा तो कभी..... मनुपुत्रों द्वारा ।
4. 'सुनते हों' बोला..... उसकी सास को ।

16.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रकाशचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा
2. शिवदानसिंह चौहान : प्रगतिशील कवि
3. डॉ. विजयबहादुर सिंह : नागार्जुन का रचना-संसार
4. डॉ. सत्यनारायण : नागार्जुन का काव्य
5. डी. हरिचरण शर्मा : नये प्रतिनिधि कवि

इकाई-17 नागार्जुन के काव्य का अनुभूति व अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 कवि और कृति?परिचय

17.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

- 17.3.1 राष्ट्रीयता
- 17.3.2 युगीन विषमता
- 17.3.3 शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति 1
- 17.3.4 आस्था और संकल्प के स्वर
- 17.3.5 व्यंग्यशीलता
- 17.3.6 रागात्मक संवेदना
- 17.3.7 विद्रोह और क्रांति
- 17.3.8 समसामयिक चिन्तना
- 17.3.9 अन्य प्रवृत्तियाँ

17.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

- 17.4.1 काव्य-भाषा
- 17.4.2 अप्रस्तुत योजना
- 17.4.3 प्रतीक विधान
- 17.4.4 बिम्ब विधान
- 17.4.5 छन्द विधान

17.5 सारांश अभ्यासार्थ प्रश्न

17.6 संदर्भ ग्रन्ध

17.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

- नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन की स्थिति से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे ।
- नागार्जुन के कृतित्व से पूर्णत: परिचित होकर उनके काव्य के अनुभूति पक्ष का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे ।
- नागार्जुन के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से परिचित हो सकेंगे ।

- प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन की स्थिति, उनकी प्रगतिशीलता और उनके योगदान से अवगत हो सकेंगे ।

17.1 प्रस्तावना

छायावाद ने जीवन-सौंदर्य के संगमरमरी ताज को बना तो लिया, किन्तु वह ऑखों को ही तृप्त कर सका । उसका कोई उपयोग न हो सका । जीवन मात्र स्वप्न नहीं है, सत्य भी है । अत: छायावादियो का स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगा और धीरे-धीरे भीतर ही भीतर जन-मानस में एक सुगबुगाहट हुई । यों भी छायावाद अपने अन्तिम समय में कुण्ठाग्रस्त हो गया और उसमें एक गत्यावरोध भी उत्पन्न हो गया । इस स्थिति को नवीन चेतना के वाहक साहित्यकारों ने पहचाना और नये आयाम नये मानमूल्य विकसित हुए । वास्तव में इन सबके मूल में प्रगतिवादी दृष्टि थी और दलितों व शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव था । धीरे-धीरे स्वस्थ सामाजिक दृष्टि का विकास हुआ और इसमें प्रमुख भूमिका निभाई उन प्रगतिशील कवियों ने, जिन्हें हम नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन, रांगेय राघव, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के नाम से जानते हैं। इन कवियों के काव्य की अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं । ये वे कवि हैं जो मजदूरों और पीड़ितों के मात्र हिमायती नहीं हैं, अपितु उनके दुख-दर्द और प्रश्नों को बड़ी मुस्तैदी के साथ काव्यबद्ध करते रहे हैं । इन्होंने जन-सामान्य और दलित वर्ग को सहानुभूति और करुणा के चश्मे से देखा । इन्होंने उत्थान और अभिनव मानव-समाज के निर्माण के लिए प्रयास किया । नागार्जुन इस धारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में उभरे । उन्होंने जीवनास्था प्रेरित प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि की । नागार्जुन की कविताओं में उनका भोक्ता और रचनाकार एक साथ संगति पा सका है । पहले तो उन्होंने नये विचारों की छैनी से पुराने पत्थरों को तराशने का कार्य किया, किन्तु धीरे-धीरे वे एक सजग शिल्पी की तरह व्यंग्य की तीर-कमान लेकर आगे बढते गये ।

17.2 कवि और कृतित्व परिचय

मिथिला निवासी वैद्यनाथ मिश्र नाम का अदना-सा आदमी जब अपने आसपास निरन्तर बढ़ते अन्धविश्वासों और रूढ़ रीतियों से घिर गया, तो उसका मन विद्रोह कर उठा । जब पहले-पहल विद्रोह का यह भाव साहित्यिक अभिव्यंजना लेकर प्रस्तुत हुआ तो उक्त आदमी ही नागार्जुन कहा जाने लगा । नागार्जुन एक व्यक्ति नहीं, मात्र कवि नहीं, अपितु एक सशक्त विद्रोह का पर्याय है, जो सत्ता, व्यवस्था और पूंजीपतियों के प्रति व्यंग्य की धार पैना करके प्रस्तुत किया गया है । जीवन भर संघर्षरत, यायावरी वृत्ति के शिकार नागार्जुन व्यंग्य की खरी चेतना के कवि और कथाकार के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं । उन्हें लोक जीवन से गहरा लगाव है और वे साहित्य को सबके लिए मानते हैं । प्रगतिशील चेतना का वाहक, मध्यवर्गीय चेतना के सरस बिम्बों का प्रस्तुतकर्ता और शोषितों व उत्पीडितों की संघर्षी आत्मा का प्रतिरूपक नागार्जुन अपनी काव्यानुभूति और काव्याभिव्यक्ति में पर्याप्त ईमानदार और जुझारू चेतना का कवि है । उसकी कविता जन-सामान्य के दुख-दर्द और पीड़ा-छटपटाहट की कविता है, किन्तु इसके साथ ही एक

अखण्ड शक्ति और आस्था भी उनकी कविताओं के तल में विराजमान है । वस्तुतः नागार्जुन के काव्य में आजादी के बाद के समूचे भारत की पूरी तस्वीर अपनी तमाम अच्छाई और बुराइयों के साथ नक्श है । उनके काव्य में देश का जो मानचित्र उभरा है उसमें जनता का संघर्ष पहाड़ बनकर खड़ा है और अर्थ व्यवस्था और राजनीति, समाज व्यवस्था की शत-शत धाराओं में विभक्त सरिताएँ श्लथ-मन्द गति के साथ प्रवाहित देखी जा सकती हैं । कवि ने इन सबकी स्थिति-परिस्थिति और गति को पहचाना है और तदानुसार मनोभावों के बिम्ब कहीं सरल और ऋजु भाषा में तो कही व्यंग्य की तीखी शैली में उभरे हैं - उभरते चले गये हैं ।

नागार्जुन का कृतित्व प्रगतिशील चेतना का वाहक है । उनकी काव्य-कृतियों और कथाकृतियों दोनों में यही प्रगतिशीलता विविध कोणों से उभरी है । उन्होंने जो भी लिखा है, उसके चित्र जीवन-विशेषकर मध्यवर्गीय जीवन और मजदूर वर्ग की जिन्दगी के बहीखाते से लिए गए हैं । यही कारण है कि गुणा-भाग में बँटी जिन्दगी पूरी असलियत के साथ अभिव्यक्त हुई है । इनके काव्य की प्रधानतः: तीन धराएँ हैं-पहली धारा में वे कविताएँ आती हैं जो रागात्मक संवेदना को उजागर करती हुई सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति हैं । दूसरी धारा में उन कविताओं को स्थान प्राप्त है जो सामाजिक विषमता और विसंगतियों के साथ-साथ राजनैतिक अव्यवस्था और धार्मिक अंधविश्वासों में बँधी जिन्दगी के प्रखर और साफ-साफ ग्राफ प्रस्तुत करती हैं । तीसरे वर्ग में वे रचनाएँ आती हैं जो उद्‌बोधनपरक और प्रचारात्मक हैं, अतः अपेक्षाकृत हल्की है । इन सभी प्रकार की रचनाओं को उनके ये काव्य संग्रह प्रस्तुत करते हैं - 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली', 'प्यासी पथराई आँखें' और 'भस्मांकुर' । इनके अतिरिक्त कुछेक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में कैद हैं और कुछेक ऐसी हैं जो 'कभी खून और शोले', 'प्रेत का बयान', 'चना जोर गरम' नामों से छपी थी, किन्तु अब स्वतन्त्रतः उपलब्ध नहीं हैं । 'भस्मांकुर' 'मदन-दहन' जैसे पौराणिक संदर्भ को आधार बनाकर लिखा गया काव्य है । हरिजन गाथा एक प्रसिद्ध लम्बी कविता है ।

17.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

नागार्जुन की कविताओं के प्रमुख विषय प्रकृति, प्रणय, सामाजिक जीवन की विषमता, राजनैतिक अव्यवस्था, आर्थिक असमानताजनित शोषण, उत्पीड़न तथा धार्मिक अंधता के साथ-साथ जीवन के गहरे यथार्थ से सम्बन्धित हैं । इन संकेतित विषयों को आधार बनाकर लिखी गयी नागार्जुन की कविताओं में उपलब्ध प्रमुख प्रवृत्तियाँ ये हैं - राष्ट्रीयता, युगीन विषमता की अभिव्यंजना. आस्था और निष्ठा, व्यंग्यशीलता जागरण का स्वर और रागात्मक संवेदना आदि । इन प्रवित्तियों को कवि ने कहीं और किस रूप में प्रस्तुत किया है, इसका सोदाहरण विवेचन आगे किया जा रहा है ।

17.3.1 राष्ट्रीयता

नागार्जुन को देश की धरती से और उस पर बसने वाली जनता से गहरा प्यार है । वे जन मंगल के आकांक्षी और जागरण के प्रतीक रहे हैं । उनकी अनेक कविताओं में राष्ट्रीय भावों में सजी हुई सशक्त रचनाएँ है जो प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में उभरी हैं ।

उनकी राष्ट्रीयता के कई रूप हैं । कभी तो वे जनमंगल की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, कभी धरती और धरतीवासियो की तकलीफों का अनुभव करके उनके प्रति सहानुभूति का अर्घ्य प्रदान करते हैं और कभी राष्ट्रीयता के प्रतीक और देश की आजादी के पुरोधा नेताओं और महात्माओं के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट करते हैं । 'युगधारा' काव्य कृति में संकलित 'तर्पण, 'शपथ' शीर्षक से लिखी गयी कविताओं में नागार्जुन की राष्ट्रीयता को देखा जा सकता है । 'तर्पण' में गांधीजी की मृत्यु पर खेद व्यक्त करते हुए आशा व्यक्त की गयी है कि उनके स्वप्न सत्य बनकर खिलेंगे । उन्होंने लिखा है- जिस बर्बर ने कल तुम्हारा खून किया वह नहीं मराठा हिन्दू है । वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थो का वह मानवता का महाशत्रु ।' राष्ट्रीयता के भावों की अवगति कराने वाली एक और रचना 'महाशत्रुओं की दाल न गलने देंगे नाम से भी उपलब्ध है । गांधी की मृत्यु से विषाद से भरा कवि अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को वाणी देता हुआ कहता है-

बापू मरे । अनाथ हो गयी भारत माता
अब क्या होगा-
अन्धकार ही अंधकार ।

नागार्जुन की राष्ट्रीय भावों की कतिपय रचनाओं में वर्तमान की पीड़ा के प्रति क्षोभ, प्रगति के लिए आशा, संघर्ष की तैयारी और राष्ट्रीय आस्था को अभिव्यक्त किया गया है। इस संदर्भ में 'रामराज्य' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ देखिए-

स्थापित नहीं होगी क्या
लाला लाजपतराय की प्रतिमा मद्रास में?
दिखाई नहीं पड़ेगे लखनऊ में सत्यमूर्ति?
सुभाष और जे. एम. सेन गुप्त क्या सीमित रहेंगे
भवानीपुर और शाम बाजार की दुकानों तक?
तिलक नहीं निकलेंगे,पूना से बाहर ।

'हिम कुसुमों को चंचरीक' शीर्षक कविता में कवि देश के सैनिक की महानता को रेखांकित करता हुआ उसकी देश भक्ति को प्रमाणित करता है । वस्तुत: नागार्जुन की कविताओं में राष्ट्रीयता और जन जागृति का सशक्त एवं विश्वसनीय चित्र अभिव्यक्त हुआ है । चीन के आक्रमण से उसकी देश भक्ति में डूबी आत्मा कराह उठती है और वह आक्रोशमयी वाणी में यहाँ तक लिख देता है कि 'आओ हम माओं को जिन्दा गाढ़ दें ।' फाहियान के वंशधर कविता भी राष्ट्रीयता की इसी जमीन पर लिखी गयी है । उसमें भी कवि का क्षोभ निहित है- 'कहा था कभी कन्यूशियस के बेटों ने नमो बुद्धाय बुद्धं शरणं गच्छामि चीख रहे वही अब जोरों से - नमो युद्धाय, युद्ध शरणं गच्छामि ।

17.3.2 युगीन विषमता

कवि नागार्जुन के काव्य की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति युगीन विषमताओं और विकृतियों की तीखी व्यंजना है । उन्होंने समाजव्यापी कुरीतियों, विकृतियों और असंगतियों को यथार्थ की खुली आंखों से देखा है । समूचे भारत के दुख-दर्द, शंका-कुशंका, पीड़ा-छटपटाहट, दुख-दर्द, ग्रामीण व नगरीय जीवन की विषमताओं, मजदूरों की विषमताओं, अभावों में

पल रही जिन्दगी, नगरीय परिवेश में व्याप्त आपाधापी, स्वार्थपरत यांत्रिकता और शोषण तथा पूंजीपतियों के अत्याचार व उत्पीड़न की कथाओं के सहारे विकसित व्यथा प्रसंगों की मुँहबोलती तस्वीर नागार्जुन की कविताओं में कैद है । असल में समूचा युग और आजादी के बाद का भारत नागार्जुन ने शब्दों में बाँध दिया है । भुखमरी, अकाल, बाढ़. महामारी, महँगाई और बेरोजगारी के प्रकोप और फूत्कार से त्रस्त जनता के दुख-दर्दो को शब्दों का सादा जामा पहनाकर भी कवि सघन प्रभाव उत्पन्न कर सका है-

कहीं बाढ़ भूचाल कहीं पर, **कहीं अकाल कहीं बीमारी**
महँगाई की क्या नजीर दूँ मानो दुपद सुता की सारी ।
भूखों मरो चबाओ पली. मगर अन्न का नाम न लेना
कहीं न तुम भी पकड़े जाओ. कहीं सफाई पडे न देना ।

इसी प्रकार पुलिस और पलटन के हाथी कितना चारा खाते हैं, वही रंग है, वही ढंग है, फर्क कुछ नहीं पाते हैं, जैसी पंक्तियों में भी प्रशासक वर्ग की मनमौजी के कारण निरन्तर होते रहने वाले परिणामहीन खर्चे से उत्पन्न वैषम्य को प्रस्तुत किया गया है । सतरंगे पंखों वाली कृति में संकलित देवता और गंगा मैया और 'खुरदरे पेट' रचनाओं में ग्रामीण और नागरिक जीवन के युगव्यापी वैषम्य चित्रित हुए हैं तो 'प्यासी पथराई आंखों की 'आदम का तबैला' कविता में एक मध्य वित्तीय परिवार के करुण चित्र हृदय को द्रवित कर देते हैं-

ऊपर देखते हैं बाल्टियों के ढेर,
पितरों की प्यासी रूहें ।
अँगूठा चूसती है नवजात बच्ची,
खिड़की से लटका है लाल खिलौना ।

17.3.3 शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति

नागार्जुन की कविताएँ भारत के जनजीवन की मुँह बोलती तस्वीर हैं, जिनमें नगरीय और ग्रामीण समाज की विषमताओं, विवशताओं और विकृतियों के गहरे रंग भरे गये हैं । लोक-चेतना के कवि नागार्जुन ने संतप्त, उपेक्षित और मर्दित जन-समुदाय का चित्रण करके ही नहीं छोड़ दिया है, अपितु उसके प्रति अपनी गहरी सहानुभूति भी अर्पित की है। स्वयं संघर्षो में पलने के कारण तथा निरन्तर विषमताओं की चक्की में पिसते रहने के कारण नागार्जुन का मन पर्याप्त मानवीय और सहानुभूतिशील हो गया है । 'सच न बोलना' और 'राम राज' ऐसी कविताएँ हैं जिनमें कवि पूँजीपतियों के दारुण अत्याचारों में पिसती जनता के प्रति द्रवित है । जब वह कहता है कि 'खादी ने मलमल से अपनी सात-गाँठ कर डाली है, बिड़ला, टाटा और डालमिया की तीसों दिन दिवाली है' या 'जमींदार है साहूकार है बनिया है, व्यापारी है, अन्दर-अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी है' तो युगीन विकृतियों से पीड़ित कवि की आत्मा न केवल चीत्कार करती है, अपितु वह इनके द्वारा उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति व करुणार्द्र होकर उन्हीं की पंक्ति में जा खड़ा होता है । नींद नहीं आती है कविता में भी कवि कृषकों और मजदूरों के प्रति पर्याप्त सहानुभूतिशील हो उठा है-

कुली मजदूर है बोझा ढोते हैं खींचते हैं ठेला
भूल. धुआँ भाप से पड़ता है सबका पाला
थके माँदे जहाँ तहाँ हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन ।

17.3.4 आस्था और संकल्प के स्वर

नागार्जुन ने जहाँ युगीन विकृतियों और विषमताओं के धुएँ और गर्द गुबार से पीड़ित मानवता के चित्र प्रस्तुत किए हैं, वहीं आस्था और संकल्पनिष्ठा के स्वरों को भी ओजस्वी शैली में प्रस्तुत किया है । उपेक्षितों और पीड़ितों का विश्वास बनकर आने वाला नागार्जुन उनकी शक्ति को आस्था में तथा भावना को संकल्पी स्वरों से गूँथता दिखाई देता है । तुम किशोर तुम तरुण, डटे, दनुजदल मिटे अमंगल' , 'मेरी भी आभा है', 'लाल भवानी' जैसी कविताओं में आस्था और संकल्प के स्वर गुँथे हुए हैं । 'सतरंगे पंखों वाली' की ये पंक्तियाँ देखिए-

तन जर्जर है दुख प्यास से
व्यक्ति-व्यक्ति दुख दैन्य से ग्रस्त है
दुविधा में समुदाय पस्त है
लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो
संत बनो प्रज्ञा-प्रयत्न के मध्य
शांति को सर्वमंगला हो जाने दो ।

लोक मंगल के अभिलाषी अपनी मांगलिक भावना को पुलकित तन हो, मुकुलित मन हो, सरस सक्षम जीवन हो, फिर न युद्ध हो, गति न रुद्ध हो, निर्भय निरंतन यौवन हो' जैसी पंक्तियों में बड़ी सफाई से कहा गया है । आशा और विश्वास के कदमों से चलकर जैसे ही कवि 'लाल भवानी' कविता की दुनिया में प्रवेश करता है, तो उसके संकल्पनिष्ठ स्वर यों व्यक्त होते हैं-

सेठों और जमींदारों को
नहीं मिलेगी एक छदाम
खेत खान दूकान मिले
सरकार करेगी दखल तमाम
खेत मजदूरों और किसानों में
जमीन बँट जायेगी
नहीं किसी की कमर के लिए
सिर पर बेकारी मँडरायेगी
नौकरशाही का यह रही ढाँचा
होगा चूरमचूर
'सुजलां सुफलां के गायेंगे गीत
प्रसन्न किसान-मजूर ।

17.3.5 व्यंग्यशीलता

नागार्जुन के काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता व्यंग्यशीलता है । उनका व्यंग्य सटीक, पैना और धारदार है । उसमें भीतर तक छीलते जाने की क्षमता है, सतहीपन से वह कोसों दूर है, किन्तु जीवन के चौराहे पर खड़ा होकर सब ओर देखकर मुस्कराता प्रतीत होता है मानो वह कह रहा हो- 'अरे बच्चू मेरी पीन और पैनी मार से बचकर जाएगा कहाँ?" हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में यदि व्यंग्य का सफल प्रयोक्ता कोई है, तो वे नागार्जुन हैं, जिन्हें उनके करीबी दोस्त उनके इसी गुण के कारण 'नागा बाबा' तक कह देते हैं । विश्वंभर मानव ने ठीक ही लिखा है कि " हरिश्चन्द्र युग के कुछ साहित्यकारों को छोड़कर पिछले पचास वर्षो में नागार्जुन जैसा तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ है । वस्तुत: उनके व्यंग्य में बेपदर्गी, करुणा, विनोदी वृत्ति, पैनापन और वक्रता का अद्भुत समीकरण है । उनके अधिकांश व्यंग्य एक सच्चे और जनहितैषी कवि के व्यंग्य हैं । उनका पैनापन जन-जीवन में व्याप्त व्यथा और तत्प्रेरित रिक्तता के कारण है । व्यंग्य प्रधान कविताओं में 'रामराज्य', प्रेत का बयान, आए दिन बहार के, महाप्रभु जानसन के प्रति, चन्दन और पानी, दीपक और बाती, विज्ञापन सुन्दरी, सौंदर्य प्रतियोगिता, चौराहे के उस नुक्कड़ पर, तालाब और मछलियाँ और देवता और गंगा मैया आदि कितनी ही कविताओं के नाम लिए जा सकते हैं । इन सभी रचनाओं में राजनीतिक नेताओं पर, काँग्रेसी नेताओं पर, भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं पर, अतिरिक्त कर-प्रणाली पर, पूँजीपतियों पर, शिक्षक की दयनीयता पर, फैशनपरस्तों पर, कृत्रिम प्रदर्शनों पर, सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों पर, साधु के रूप में जमे बैठे शैतानों पर और नारी की पराधीनता आदि पर तीखे, किन्तु महीन व्यंग्य किए गए हैं । कतिपय उदाहरणों से इस व्यंग्य का अनुमान लगाया जा सकता है-

1. **पंचवर्षीय योजनाओं के कारण करवृद्धि और योजनाओं की क्रियान्विति पर व्यंग्य**

   आजादी की कलियाँ फूटी
   पाँच साल में होंगे फूल
   पाँच साल में फल निकलेंगे
   रहे पंत जी झूला झूल
   पाँच साल कम खाओ भैया
   गम खाओ पन्द्रह साल
   अपने हाथों से झोंको
   यों आँखों में धूल ।

2. **शिक्षकों की दयनीयता पर व्यंग्य**

   ओ रे प्रेत

कड़क कर बोले
नरक के मालिक यमराज सच-सच बतला
कैसे मरा तू? भूख से
अकाल से?
सुनिए महाराज
तनिक भी पीर नहीं दुख नहीं
दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सहन नहीं कर सकी आँत पेचिश का हमला ।

3. फैशन परस्ती पर व्यंग्य

छि: कौन लगवाये
काले निशान?
कौन ले बैलेट पेपर
मतदान कौन करें?
बात की जरा सी बात
काले निशान की
तीन वोट रह गये
फैशन के नाम पर ।

4. सर्वोदयवादियों पर व्यंग्य

बापू के भी ताऊ निकले
तीनों बंदर बापू के
सरल सूत्र उलझाऊ निकले
तीनों बंदर बापू के
सचमुच जीवनदानी निकले
तीनों बंदर बापू के
ज्ञानी निकले
ध्यानी निकले
तीनों बंदर बापू के ।

5. नेहरू तथा अन्य नेताओं पर व्यंग्य

हम चावल खाते एक किलो
दस का दे आते नोट मगर
यों सिकुड़ते रहते
सिलवाते सपने में
ऊनी कोट मगर
गालियाँ छलकती
बैलों की जोड़ी
को देते बोट मगर

हम गाँजा ही बेचा करते
लेते खादी की ओट मगर
खुलते खिलते कुछ गाल और
तुम रह जाते दस साल और ।

उदाहरण ढेरों हैं, किन्तु नागार्जुन की व्यंग्यशीलता को स्पष्टत: प्रमाणित करने के लिए ये ही पर्याप्त हैं ।

17.3.6 रागात्मक संवेदना

यथार्थ के शिल्पी व्यंग्य के प्रयोक्ता और जीवन की विषमताओं और विकृतियों को कविता के चौखटे में बिठाने वाले नागार्जुन के काव्य में रागात्मक संवेदनाओं की अभिव्यंजना भी प्रवृत्ति बनकर आयी है । उनकी रागात्मकता को प्रकृति-सौंदर्य के अंकन में, मधुर भावों की सांकेतिक व्यंजना में और गौणत: प्रणयाभिव्यक्ति में देखा जा सकता है । नागार्जुन के काव्य में - प्रकृति की ताजा छवियों को देखा जा सकता है - गाँव की भी और नगर की भी । ये प्रकृति छवियाँ युग की भयंकरकरताओं से गुजरते-गुजरते कवि के मन को कभी बाँधती हैं और कभी लुभाती रही हैं । इस तरह यथार्थ का दारुण विष पीने के बाद उससे कवि की श्रमजनित स्थिति को ताजगी मिलती रही है । प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रमाणस्वरूप 'बादल को घिरते देखा है', बसन्त की अगवानी. नीम की टहनियाँ, काली सप्तमी का चाँद, शरद् पूर्णिमा और 'झुक आये कजरारे मेघ' आदि की गणना की जा सकती है । इन कविताओं में कहीं प्रकृति की सरलता और मोहकता अभिव्यंजित हुई है और कहीं उसकी संश्लिष्ट दृश्यावली । लगता है कि कवि के भीतर का कलाकार पूरी तरह सजग है तभी तो वह अपनी राग चेतना को धक्का देकर कवि की कलम तूलिका को बाह्य प्रकृति की टटकी छवियाँ उतारने की प्रेरणा दे देता है । 'बादलों को घिरते देखा हैं' कविता को ही लीजिए, उसमें छायावादी सौंदर्य पंक्तियों की ओट से - सलज्ज नायिका की तरह झाँककर शरमाता प्रतीत होता है । कवि की सहृदयता, सौंदर्याभिरुचि और विशिष्ट रागात्मक संवेदना की पहचान कराने वाली ये पंक्तियाँ देखिए-

अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है
छोटे-मोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों को गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।

कवितान्त में कवि-हृदय का यथार्थ प्रकृति की मनोरमता के न मिल पाने के कारण क्षण भर के लिए विक्षुब्ध भी होता है, किन्तु झटका देकर पुन: चेतना में आकर कह देता है- 'जाने दो, यह कवि कल्पित था ।' बसन्त की अगवानी कविता में भी प्रकृति की उल्लसित छवियों के मुस्कराते चित्र हैं । क्यों न हों? बसन्त के आगमन से प्रकृति-नायिका का पोर-पोर खिल-निखर उठता है-

दूर कहीं अमराई में कोयल बोली
परत लगीं चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की
ठूँठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी का
लगा दहकने
टेसू निकले
मुकुलों के गुच्छे गदराये
अलसी के नीचे
फूलों का नभ मुस्काया ।

धूप के सौंदर्य को भी नागार्जुन ने आत्मीयता से देखा है । उसमें उसे स्थिति गरमाहट भी मिली है और कपूरी गंध मिश्रित ताजगी और उल्लास भी । नागार्जुन प्रारम्भ से ही यात्री रहे हैं । लंका, तिब्बत, हिमालय की तराई और भारत के अनेक स्थानों पर उन्होंने भ्रमण किया है । यही कारण है कि उनके द्वारा प्रकृति सुन्दरी का किया गया क्षृंगार बड़ा ही सजीव बन पड़ा है । नीम की दो टहनियाँ कवि को सीखचों के पार झाँकती हुई दिखाई देती हैं, वहीं रजनीगंधा की सुवास और शीतल समीर के मृदुल झोंके उसके जेल जीवन की कदुता के दमघोंदू वातावरण से निकालकर एक सुखद मादक अनुभूति से भर देते हैं । शिशिर के शीत की प्राणलेवा तेजी तीर की तरह चुभती है और इसीलिए वह कवि को विषकन्या की तरह दिखाई देती है-

हजार बाँहों वाली
शिशिर विषकन्या
उतरी लेकर साँसों में
प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होंठों के प्राण
शोषी चुम्बन
तन-मन पर लेप गये
ज्वालामय चन्दन ।

'कुहरा क्या छाया' कविता में जब शिशिर की तीव्रता बीस गुनी बढ़ जाती है तो कवि को लगता है कि रात-दिन सभी कुहरे में डूब गये हैं, ऐसी स्थिति में कवि मानवीकरण शैली का प्रयोग करता हुआ लिखता है-

रवि-शशि दुबक गए
ओढकर झीनी-झीनी नीहारिका का लिहाफ ।

'कोयल आज बोली है' कविता में भी नागार्जुन ने बसन्त की मदमस्त प्रकृति का वर्णन किया है । कोयल की कूक के साथ टेसू भी लाल हो जाता है, अब अलसी फूट उठती है । आस मंजरियों का सेहरा आम के पेड़ों पर बँधा होता है । दोपहर में रवि रश्मियों की प्रखरता से हरी-भरी प्रकृति त्रस्त हो जाती है । कवि के शब्द देखिए और अनुमानित कीजिए कि पछवा हवा के थपेड़ों से प्रकृति का स्वरूप कैसा हो गया है-

दरक गये केलों के पात
लेते ही करवट
तेजाब की फुहारें
छिड़कने लगा सूरज ।

नागार्जुन की अनेक कविताओं में ग्राम-प्रकृति की श्री-सुषमा के बिम्ब भी अपनी अचुम्बित और अनाघ्रात छवि के साथ आये हैं । 'झुक आये कजरारे मेघ', 'शरद् पूर्णिमा', 'काली सप्तमी का चाँद', 'हिम कुसुमों का चंचरीक' आदि कविताएँ ऐसी ही हैं । प्रकृति सौंदर्य की दृष्टि से 'वर्षा मंगल' कविता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ी है । इसमें कवि ने वर्षा की समस्त विशेषताओं को इस तरह निरूपित किया है कि जैसे वे अभी होने ही वाली है। 'युगधारा' में कवि ने बादल को घिरते देखा था और यहाँ वही कवि शिशु घनों को हिरण की तरह आकाश में चौकड़ी भरते चित्रित कर रहा है । बादलों का घुमड़ना, विद्युत का चमकना, दादुर का संगीत और तदनंतर धरती का धुल जाना आदि सभी वर्षा के आकर्षक बिम्ब हैं । कहने का आशय यही है कि नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति यत्र-तत्र बिखरी हुई है । उसकी समस्त छवियाँ आकर्षक, मनहरण और बिम्ब की श्रृंखला में बँधी होने के कारण उन्हें प्रकृति की राग-चेतना का कवि प्रमाणित करती है ।

'भस्मांकुर' खण्डकाव्य में जो प्रसंग वर्णित है, उसमें प्रकृति का योगदान न केवल विशिष्ट है, अपितु अविस्मरणीय भी है । बसन्त के वैभव के अनगिनत मादक चित्र इस काव्य को कवि की रागात्मक चेतना का प्रसाद प्रमाणित करने वाले हैं । कवि ने शिवजी से पार्वती के भावी मिलन और आलिंगन को बड़ी मनोवैज्ञानिक शैली में अभिव्यक्त किया है। इस मिलन की सांकेतिक व्यंजना प्रकृति के उपादानों द्वारा कराई गयी है-

शाखाएँ ही उठीं खूब छतनार
रोक न पाई, आलिंगन की चाह
लतिकाओं ने पकड़ी सुख की राह
दीर्घ प्रलंबित थाम लिए भुजदण्ड ।

कृत्रिम बसन्त के प्रभाव से काँटों के रूप भी बदल गये हैं । इस प्राकृतिक आकस्मिकता के कारण पार्वती तो आश्चर्यचकित थी ही, पाठक भी रस - विभोर हो जाता है । नगपति का सौंदर्य वर्णन यों तो नागार्जुन ने अनेक बार अनेक स्थानों पर किया है, किन्तु भस्मांकुर खण्डकाव्य में हिमालय को कामदेव ने लताओं, पुष्पों आदि से सजा हुआ प्रस्तुत किया है । प्रकृति का यह रम्य दृश्य देखिए जो पाठकों के मन प्राण को बाँधता हुआ कवि की प्रकृति निरीक्षण क्षमता और सौंदर्याभिरुचि को स्पष्ट कर देता है-

पग-पग पर ऋतुपति का छवि संसार
दिशा दिशा में किसलय कुमार प्रचार
विविध गंध बंधुर समीर-संचार
पिकरव, अलि गुंजन झिल्ली झंकार
स्निग्ध सतरंगी संसार
मुखर हिमाचल, पिछले तरल तुषार
प्रकृति परी ने सजा हरित श्रृंगार

त्वरा भरित झरने हो उठे उदार ।

कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन की राग-चेतना में प्रकृति की अद्भुत सस्मित और मधुर मादक छवियों के मनहरण बिम्बों को उतारने वाली कल्पनाएँ मिलती हैं । उनके प्रकृति बिम्ब आकर्षक और सौंदर्यसिक्त होने के कारण हृदय को गहरे छूते हैं । रागात्मक संवेदनशीलता की अभिव्यंजना नागार्जुन की प्रणयानुभूतिथों में भी मिलती है । यथार्थ के चित्रकार, सामाजिक विषमताओं के सूक्ष्म द्रष्टा और व्यंग्यकार नागार्जुन की कविताऐं प्रणय भाव से शून्य नहीं हैं । कुछ कविताओं में नागार्जुन की प्रणयानुभूतियो के सांकेतिक चित्र भी मिलते हैं । भले ही ऐसे रागात्मक चित्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम हो, किन्तु हैं वे मौलिक और रसप्रवण प्रधान कविताएँ ही । रागरंजित प्रकृति की पृष्ठिका पर स्मृति की गहरी स्याही से लिखी गयी ये पंक्तियाँ रसार्द्रता और मार्मिकता में अनूठी बन पड़ी हैं-

सान्ध्य नभ में पश्चिमान्त समान
लालिमा का जब अरुण आख्यान
सुना करता मैं सुमुखि उस काल
याद आता है तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल ।

नागार्जुन की कविताओं में अभिव्यंजित प्रणय-भाव सामाजिक शील का उल्लंघन कहीं भी नहीं करता है । उनका प्रेम स्वस्थ मनोभूमि पर चित्रित गार्हस्थिक प्रेम है । शालीनता, गरिमा और उदात्तता उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं । 'सिन्दूर तिलकित भाल' प्रेमानुभूतियों को व्यंजित करने वाली शीर्षस्थानीय कविता है । इसमें प्रिया की स्मृति के समानान्तर ही नागार्जुन का कवि मिथिलांचल की सुखद, मादक स्मृतियों में भी डूब जाता है । आम, लीचियाँ, धान के खेत, कमल, कुमुदिनी, ताल, मखाना और वेणुबन भी उसकी आँखों में तैर जाते हैं । नागार्जुन का विरह मात्र विरह नहीं है । उसमें करुणा का गहरा पुट है । इस प्रकार नागार्जुन की प्रणय-भावना स्वस्थ, जीवन्त और प्रेरणास्पद है । स्वतन्त्र प्रेम की परिचायिका पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

तुम नहीं हो पास
मैं तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल
सुनने के लिए
एक की ही दस अंगुलियाँ
नहीं हैं काफी कदाचित्
रेशमी परितृप्तियों का
जाल बुनने के लिए ।

और जब कवि रेशमी परितृप्तियों का जाल बुन लेता है, तो जी भरकर गंध, रूप, रस और स्पर्श का भोग भी कर लेता है । इसी क्रम में कवि की उस मनोदशा को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके वशीभूत होकर वह सहज अनुराग और सौंदर्यानुभूतियों से भरकर प्रभात बेला में अपने पास ही लेटी प्रिया को जगाता हुआ विहाग गीत गाने का अनुरोध करता है । कवि ने स्वस्थ प्रेम की जमीन पर खड़े होकर लिखा है-

पास ही सोई पड़ी
श्लथ कुंताला
प्रेयसी की थपथपाई पीठ
जग गई तो
दिखाकर तारे बचे दो चार
कहा मैं ने पकड़
उसका हाथ
दो घड़ी का हमारा
इनका रहा है साथ
हो रहे विदा
गा दो सुमुखि एक विहाग ।

वस्तुत: नागार्जुन का प्रेम जीवन की अनिवार्यता है । प्रणय का स्वस्थ, सहज, शालीन और पुनीत रूप ही कवि को अधिक प्रिय रहा है । प्रेम के उस छिछले वासनायुक्त आलिंगन चुम्बन और परिरम्भण वाले रूप को नागार्जुन के कवि ने कभी स्वीकार नहीं किया है । यह वह अनुराग है जिसका प्रारम्भ, विकास और परिणति सभी स्थितियों में एक समान है-एक सामाजिकता है और है एक स्वस्थ शालीन आभा ।

17.3.7 विद्रोह और क्रांति

सामाजिक यथार्थ का चितेरा व्यंग्य का तिक्ण गायक और राग चेतना सम्पन्न कवि नागार्जुन के काव्य का एक महत्वपूर्ण स्वर विद्रोह और क्रांति से सम्बन्धित है । क्रांति और विद्रोह की वाणी बोलने वाला कवि व्यंग्यपरक शैली में अन्याय और अत्याचार का विरोध करता है । यदि छद्मवेशी नेताओं को देखकर उसका मन विद्रोह कर उठता है तो छल-कपट का व्यवहार करने में पटु राजनीतिज्ञों पर वह बरस पड़ता है । धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार, पाखण्ड, स्वार्थ, लोभ और ईर्ष्या आदि भावों के सहारे कालयापन करने वाले व्यक्तियों और साधुवेशी कुकर्मियों से उसे नफरत है । ऐसे लोगों के प्रति उसका आक्रोश पैनी और चुभने वाली शैली में व्यक्त हुआ है । क्रांति और विद्रोह की शैली में कवि ने लिखा है-

देश हमारा भूखा नंगा
घायल है बेकारी से
मिले न रोटी भर के
दर-दर बने भिखारी-से
स्वाभिमान सम्मान कहाँ है
होली है इन्सान की
बदला सत्य, अहिंसा बदली
लाठी गोली डण्डे हैं
कानूनों की सड़ी लाश पर
प्रजातंत्र के झंडे हैं

निश्चय राज्य बदलना होगा
शासक नेताशाही का
पद लोलुपता
दलबन्दी का
भ्रष्टाचार तबाही का ।

आज की दुनिया में सत्य का स्थान झूठ ने ले लिया है । झूठ ही व्यक्ति की विविध जीवन स्थितियों का नियामक हो गया है । इसी झूठ की सहोदरा चापलूसी भी दिन रात चौगुनी तरक्की कर रही है । इसी विकृत मनोवृत्ति पर व्यंग्य करता हुआ नागार्जुन का कवि साफगोई शैली मे लिख गया है-

सपने में भी सच न बोलना
वरना पकडे जाओगे
भैया लखनऊ दिल्ली पहुँचो
मेवा मिसरी पाओगे
माल मिलेगा
रेत सको यदि गला मजूर किसानों का
हम मरभुक्खों से क्या होगा
चरण गहो श्रीमानों का ।

वह स्थिति व्यक्ति तक ही सीमित हो सो बात नहीं है, इसे भारत सरकार की योजनाओं में भी देखा जा सकता है । भारत सरकार की योजनाओं में दिन-प्रतिदिन पनपती भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति को व्यंग्य और विद्रोह का निशाना बनाते हुए नागार्जुन का कवि स्पष्ट शब्दावली में लिख गया है-

पाँच वर्ष की बनी योजना
एक दो नहीं, तीन
कागज के फूलों ने ले ली
सबकी खुशबू छीन
बलिहारी कागजी खुशबू की
क्यों न बजायें बीन
फटे बाँध से बालू बोले
हम भी हैं स्वाधीन
अश्वमेध का घोड़ा दौड़ा
चित्त है चारों नाल
कौन कहेगा आजादी के
बीते तेरह साल ।

इसी क्रम में उस स्थिति को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके तहत लोग गांधी का नाम लेकर वोट बटोरते हैं और अपनी स्वार्थी व अवसरवादी प्रवृति को प्रकट करते हैं। ऐसे नेताओं पर व्यंग्य की बौछार करता हुआ नागार्जुन का कवि अपनी विद्रोह-भावना को यों शब्दबद्ध करता है-

बेच बेच कर
गांधी का नाम
बटोरो वोटप्रवृत्ति
बैक बैलेंस बढाओ
राजघाट पर बापू की
वेदी के आगे अश्रु बहाओ ।

इसी तरह कवि नागार्जुन ने राजनीतिक नेताओं धार्मिक ठेकेदारों, स्वार्थियों, भ्रष्टाचारियों, अवसरवादियों, अत्याचारियों और पाखण्डी साधुओं पर व्यंग्य भी किया है और इन सबके प्रति अपने विद्रोह, विरोध और क्रांतिकारी मनोभावों की व्यंजना भी की है । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि नागार्जुन का विद्रोही स्वर मात्र विद्रोही नहीं है, उसमें स्वस्थ जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न भी दिखाई देता है । विद्रोह के लिए विद्रोह या क्रांति के लिए क्रांति नागार्जुन को कभी प्रिय नहीं रहे हैं । उनकी प्रगतिशील दृष्टि सदैव ऐसे प्रतिमानों की स्थापना हेतु कार्यरत रही है जो जीवन के लिए उपयोगी भी हों और अनिवार्य भी ।

17.3.8 समसामयिक चिन्तना

नागार्जुन की प्रगतिशीलता का एक उल्लेख्य आयाम समसामयिक चिन्तन और संदर्भो से सम्बन्धित है । नागार्जुन न केवल सामाजिक यथार्थ के कवि रहे हैं, अपितु दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण की स्थितियों से भी प्रतिबद्ध रहे हैं । उनकी प्रतिबद्धता स्वस्थ जीवन मूल्यों के निर्माण की कटिबद्धता भी है और काव्य की अनिवार्यता भी है । इसी अनिवार्यता का परिणाम है कि वे बड़ी तीव्रता के साथ समसामयिक संदर्भो, स्थितियों और घटनाओं को अपने काव्य में वाणी देते रहे है । उनकी अनुभूतियों के गोलक में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक. राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय और दैनिक घटनावली के बिम्ब स्वत: ही सिमटते गये हैं और बँध से गये हैं यथार्थ और व्यंजनामूलक शिल्प में । एक ओर देश अपने निर्माण की दिशा में संलग्न हो और दूसरी ओर देशव्यापी महँगाई महामारी की तरह फैलती जा रही हो, तब कवि की अनुभूति इस रूप में व्यक्त होती है-

पैटन टैंक
उन्होंने तोडे
महँगाई के टैंक
कौन तोड़ेगा?

कवि नागार्जुन अपने समय का न केवल सजग कवि है, अपितु समय का सचेत सार्थवाह भी है । यही कारण है कि यदि वह बढ़ती हुई महँगाई को देखकर चिन्तित है तो पुलिस छात्र संघर्ष, देशव्यापी भ्रष्टाचार, स्वार्थ, अवसरवादिता और कुत्सित विचारणा के प्रति भी सतर्क है । उसकी दाहिनी आँख में यदि सामाजिक विकृतियों के ध्वंस का संकल्प दीपित है तो बायी आँख में उन विकृतियों को चुन-चुनकर दाई आँख तक पहुँचाने का श्रमजनित भाव भी प्रतिभासित है । देशव्यापी भ्रष्टाचार को देखकर उसका हृदय कराह- उठता है । वह भ्रष्टाचार को रावण का रूप देकर अपना आक्रोश इस प्रकार व्यक्त करता है-

राम-राज में अब की
रावण नंगा होकर नाचा है
सूरत शक्ल वही है भैया
बदला केवल ढाँचा है
नेताजी की नीयत बदली
फिर तो अपने ही हाथों
भारत माता के गालों पर
कसकर पडा तमाचा है ।

इसी क्रम में कवि की समसामयिक चिन्तना का एक वृत्त यह भी है, जिसमें वह राजनैतिक क्षितिज पर घटित होने वाली घटनाओं को देखता है । आजादी मिल गयी, ठीक हुआ, किन्तु उसके साथ ही देशी नवाबों और राजा-महाराजाओं की आजादी छिन गयी । उनकी गद्दी के छिनते ही उनमें जो प्रतिक्रिया हुई, उसे शब्दों के चौखटे में जड़ते हुए कवि ने लिखा है-

पछताते हैं राजा
पछताते हैं नवाब
देखते हैं पुराने दिनों के ख्वाब
राजा होंगे स्वतन्त्र
स्वतन्त्र होंगे राजा
लौटेगी शहंशाही
शासन होगा ताजा
एक होगा
राजाधिराज बहादुर
गायेंगे यश
झींगुर और दादुर ।

नागार्जुन की 'त्रिमूर्ति' कविता भी एक ऐसी ही कविता है जिसमें समसामयिक संदर्भों को वाणी दी गयी है । 'फिजो' और 'दलाईलामा' का संदर्भ इस कविता में आया है । दलाईलामा फिजो को याद करता है और फिजो दलाईलामा को । इसी क्रम में चीन और पाक मैत्री का संदर्भ भी नागार्जुन की कविताओं में आया है । इस सम्बन्ध की अपावनता और - कूटनीतिकता नागार्जुन से छिपी नहीं रही है और उसने व्यंग्य की वाणी में लिख दिया है-

आ गये
अब तो दिन ऐश के
मार्क्स तेरी दाढ़ी में
जूं ने दिये होंगे अण्डे
निकल रहे हैं
उन्हीं में से कम्यूनिज़्म के पंडे ।

'हिन्दी चीनी भाई-भाई' का नारा देने वाले चीन ने जब भारत पर आक्रमण किया तो कवि की आत्मा तिलमिला उठी, पंचशील का सिद्धान्त उसे हवा में टुकड़े-टुकडे होकर उड़ता हुआ दिखाई दिया । फलत: कवि ने लिखा है-

अब तो मुँह में
दही जम गया ।
अब तो आती है
उबकाई
बोलो फिर
कौन कहेगा
हिन्दी चीनी
भाई-भाई ।

नागार्जुन की समसामयिकता का वृत्त काफी चौड़ा है । उसमें भारत के मानचित्र को ही रंग रूप और रेखाएँ प्रदान नहीं की गयी हैं, अपितु पड़ौसी देशों की गतिविधियों को भी नक्श किया गया है । रूस ने जब चेकोस्लाविया की राजधानी प्राग पर आक्रमण किया तो वहाँ की शांतिप्रिय जनता के अशांत हृदय का मार्मिक बिम्ब प्रस्तुत करते हुए कवि रूस की इस अशोभनीय और अवांछित हरकत पर व्यंग्य करता है । उसने लिखा है-

जी आपको गलतफहमी हुई है
जो हमने ही चिड़ाया था, पहले
जी उल्टे हमीं ने
इन्हें गालियाँ दीं थीं
जी, यूं ही
दिखाई दे गयी
प्राग में
रूसी टैंकों की कतार
जी, वो तो मांगलिक रथयात्रा थी
हमारे अंग्रेज़ों की ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन के काव्य में समसामयिक संदर्भों को भी अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है । इस अभिव्यंजना में कवि मात्र औपचारिक नहीं है, वह तो पूरे मन-प्राण से सतर्क है, अपने आसपास के परिवेश का हिस्सा बना हुआ है । परिवेश के प्रति साझेदारी और सजगता कम ही कवियों में मिलती है ।

17.3.9 अन्य प्रवृत्तियाँ

नागार्जुन की कविता एक मेहनतकश इन्सान की पक्षधरता को निरूपित करती है । 'वे और तुम' इसका उदाहरण है । इसमें कवि सहभोक्ता होकर श्रमिकजनों से यह प्रकट कर रहा है कि हम भी श्रमिक हैं- साधारण जन हैं । हमारी समस्याएँ भी तुम्हारी जैसी ही हैं। यह वह कविता है, जिसमें कवि ने मानसिक और शारीरिक श्रम करने वाले मनुष्यों की जीवन व्यवस्था और स्थिति का अंकन किया है । यों इस कविता का मूल संदर्भ

मेहनतकश इन्सानों और मध्यवर्गीय इन्सान की कुण्ठाओं से ग्रसित जिन्दगी की तुलना से सम्बद्ध है । दोनों का दर्द एक है, किन्तु उसका स्वरूपगत आधार भिन्न है । मजदूर अपने श्रम के परिणाम से और कलाकार अपने बुने हुए सपनों से प्रसन्नता का अनुभव करता है । कवि के ये शब्द देखिए-

वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्थर जोड रहे हैं
तुम सपने जोड रहे हो
उसको दुख है
तरुण आम की मंजरियों को
पाला मार गया है
तुमको दुख है
काव्य-संकलन
दीमक चाट गये हैं ।

सहानुभूति और करुणा का भाव भी नागार्जुन के काव्य का सशक्त स्वर है । उनकी करुणा और सहानुभूति का जल न केवल मजदूरों, कलाकारों और मध्यवर्गीय व्यक्ति के मानस की प्यास बुझाता है, अपितु पुलिस के जुल्म से त्रस्त और क्षुब्ध विद्यार्थी वर्ग को भी उतनी ही शक्ति देता है । शिक्षा के मंदिरों में पुलिस की दखलंदाजी कवि की आत्मा को कचोटती है और उसका सारा आक्रोश उन पर उतरता है जो विद्यार्थियों को उत्तेजक कार्यवाहियाँ करने को प्रेरित करते हैं । वी. एन. कॉलेज पटना में हुए गोलीकाण्ड से दुखी होकर ही नागार्जुन ने 'ऐसा क्या अब फिर फिर होगा' कविता लिखी थी ।

'प्रेत का बयान' कविता में भी जहाँ कवि जीवन की विसंगतियों. भयावहताओ और त्रासद स्थितियों को संकेतित करता है, वहीं उसकी करुणापूरित वाणी प्राइमरी शिक्षक की पीड़ित स्थितियों पर भी मरहम लगाती है । प्राइमरी स्तर के शिक्षक को केन्द्र बनाकर लिखी गयी यह कविता करुणा की भावभूमि पर लिखी जाकर अनेक सामाजिक विसंगतियों को प्रस्तुत करती है । इसमें संकेतित है कि मनुष्य अनिवार्य सुविधाओं के अभाव में काल कवलित हो रहा है । भुखमरी सर्वत्र व्याप्त है । फलतः: सामाजिक जीवन असंगतियों से ग्रसित है । अकाल, बुखार और कालाबाजार जैसी भयावह स्थितियों से जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है । अत: यह कह सकते हैं कि नागार्जुन का काव्य एक चेतन कलाकार का काव्य है- उस कलाकार का जिसने जीवन को उसकी समस्त स्वीकृतियों के साथ देखा है । उसकी भयावहताओ त्रासदियों और पीड़ाओं के जटिल दुर्गम जाल में फँसे मानव समाज को समता, सहानुभूति, करुणा, आस्था और सकल्पी वृत्तियों का संदेश दिया है और इस प्रकार एक स्वस्थ समाज के निर्माण का प्रयास किया है । वह एक ऐसा कवि है जो वादों, प्रवादों और प्रयोगों के जंगल में कभी भूल से भी नहीं गया है । उसकी पहुँच खेत, खलिहान, मजदूर, किसान और मध्यवर्गीय व्यक्ति और जनजीवन तक रही है और उनकी ही जिन्दगी के बिम्ब उसकी कविताओं में बँधते गये है ।

17.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

नागार्जुन शिल्पी नहीं हैं । उनकी कविता वह सीधी-सादी और अनलंकृत ग्रामबाला है, जिसे अपने श्रृंगार-प्रसाधन की तनिक भी चिन्ता नहीं होती है । कारण, प्रगत्युमुखी चेतना के कवि होने के कारण उनका ध्यान 'कन्टेन्ट' पर ही अधिक केन्द्रित रहा है । ऐसी स्थिति में उनका काव्य भाव और विषय वैविध्य की यथार्थता को अधिक निरूपित करता है, शैली-शिल्प की प्रसन्नता को अपेक्षाकृत कम । सामान्य जनता के दुख-दर्दो का अनुभवकर्ता और उनकी ही बोली बानी में बोलने वाला नागार्जुन न तो शब्दों की मँजावट और सजावट की ओर ही अपना ध्यान दे पाया है और न ही अभिव्यक्ति के नवीन द्वारों को खोलने के लिए प्रयत्नशील रहा है । अपने अन्य सहयोगियों की ही भाँति नागार्जुन कला और शिल्प की ओर से उदासीन दिखाई देते हैं । जहाँ ऐसा है वहाँ उनकी कविताएँ नीरस और रूखी प्रतीत होती हैं और ऐसा वहाँ अधिक हुआ है जहाँ कवि जनवादी स्वर में बोलता चला गया है । इसके साथ ही यह तथ्य भी बट्टे खाते में डालने लायक नहीं है कि जहाँ नागार्जुन ने अपनी रागात्मक संवेदना को वाणी दी है, वहाँ रचत: ही अनेक व्यंजनागर्भित पंक्तियाँ, वक्रतापूर्ण कथन-भंगिमाएँ और अर्थावेग से निसृत कोमल कल्पनाएँ उनकी कविताओं के घूँघट से झाँकती रही हैं । प्रकृति की सुषमासिक्त छवियों के अंकन में, सौंदर्य की मारक अभिव्यक्तियों में और प्रेमजनित भावानुभूतियों की व्यंजना में नागार्जुन का शिल्प अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक और आभिजात्यपूर्ण हो गया है । यही कारण है कि जनभाषा का प्रयोक्ता नागार्जुन संस्कृत शब्दावली को भी बेहिचक अपनाता चला गया है ।

17.4.1 काव्य-भाषा

नागार्जुन कला के प्रति सतर्क कभी नहीं रहे । उनकी दृष्टि तो कथ्य की ओर रही है । उनकी मान्यता तो यह रही हैं कि कथ्य वजनी हो, बात गहरी हो तो शिल्प स्वत: ही तदनुकूल आचरण करने लगता है । नागार्जुन ने कतिपय कविताओं में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग भी किया है । जहाँ संस्कृतनिष्ठ शब्दावली काम में ली गयी है, वहीं वह शब्दावली कवि की प्रकृति के अनुकूल प्रतीत नहीं होती है । 'भस्मांकुर' काव्य की भाषा तो अधिकांशत: तत्समीकरण की प्रवृत्ति युक्त है । इसी प्रकार 'बादल को घिरते देखा है' और 'जन-वंदना' कविताओं में भी संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के दर्शन होते हैं । 'अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है और वर्षाऋतु की स्निग्ध भूमिका, प्रथम दिवस आषाढ़ मास का, 'चित्रकूट के सुभग शिखर पर उन पुकरावर्त मेघों का जैसी कालिदास के प्रति कविता में भी भाषा की संस्कृतनिष्ठता को देखा जा सकता है । इसी प्रकार नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त इस प्रकार की शब्दावली को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता-युग्म, लावण्य, प्रलम्बित, मणिकुट्टिम, अधित्यका, ब्रीडा, विगलित, हिमप्रान्तर, किसलय-कुसुम-प्रसार, युगनद्ध, धवलाद्रि शिलोच्चय, वलय, गुच्छ, जिजीविषा और निभृत कक्ष आदि ।

नागार्जुन की काव्य-भाषा में जहाँ एक ओर संस्कृत के ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहीं तद्भव शब्द भी प्रचुरता से आये हैं । जनकवि होने के नाते नागार्जुन की कविताओं में लोकभाषिक आग्रह अधिक दिखाई देता है । जनता के मन की बात को जनता की भाषा में कहने वाला नागार्जुन अपनी भाषिक संरचना में सरल, स्पष्ट और बोलचाल के शब्दों को ही अधिक अपनाता रहा है । उनकी भाषा भावों के अनुसार न केवल बदलती रही है, अपितु जनमानस की संवेदनाओं के रंगों में ही ढलती भी रही है । भाषा को सामान्य स्तर पर लाने के प्रयास में ही नागार्जुन ने ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है । बंगला, अंग्रेजी, उर्दू और फारसी के शब्दों का सहयोग लेकर नागार्जुन ने अपनी अभिव्यंजना को सरल से सरलतम और स्पष्ट से स्पष्टतर बनाने का प्रयास किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त देशज और बोलचाल के कुछ शब्द ये हैं- थाम, घाम, जादुई, छिरकना, दोजने, थपथपाना, खूसट, निढाल, खिलवाड़, ऊटपटाँग, बकबक, अनापशनाप, असगुन, जमात, गलबहियाँ, ढूँठ, बौड़म, दुकुर-दुकुर, छलिया, ऑखमिचौनी सजी-धजी और पटिया आदि । कवि ने अपनी भाषा को व्यावहारिक, सरल और बोधगम्य बनाने के लिए उर्दू के निगाह, मुताबिक, अमानत, नदारद, दीवाने, दरवेश, बखान, लहजा, इलाज, जादूगर, होशहवाश जर्द, फिक्र, माफ, सुलह, गायब, खाक, महँगा, हाजिर, मुस्तैद, अलहदा, अलविदा और सोहबत आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है । भाषा को प्रभावी और सहज रूप देने के लिए नागार्जुन ने मुहावरों और लोकोक्तियों का पर्याप्त प्रयोग किया है । आवश्यकतानुसार अंग्रेजी शब्दों को भी काम में लिया गया है । परिणामस्वरूप भाषा प्रेषणीयता के गुण से युक्त हो गयी है । उनकी अनेक कविताओं में लोहा पीटना, पाला मार जाना, दीमक चाट जाना, बात बात पर बहसना, नाक रकड़ना, छुट्टा छोड़ देना, नंगा होकर नाचना, पौ बारह होना, मुँह की खाना, अंगुली उठाना, सत्तू घोलना, फूले न समाना, बिगड़ी बात बनाना और तीसों दिन दीवाली होना आदि प्रयोग उनकी भाषा की लोकशक्ति और प्रेषणीयता को स्पष्टत: रेखांकित करते हैं । आवश्यकतानुसार भाषा में सहजता लाने के लिए उन्होने कतिपय कहावतों और प्रतीकों का प्रयोग भी किया है ।

वर्ण-मैत्री नागार्जुन की काव्यभाषा की एक अतिरिक्त विशेषता है । इससे उनकी भाषा में प्रवाह आ गया है, एक गति आ गयी है । उदाहरणार्थ-कम्पित कलिकाकोर, चलाकर तीर, बदल-बदलकर सींग, रोम-रोम से टपकाता, उछल-उछल, पोर-पोर, टहनी-टहनी एक एक कर टूट गये, झुक-झुक सूँघ रहे, पल-पल पुलकन भरते गौरी तरुणी तरुण-तरुण शिवनाथ दिशा-दिशा में किसलय कुसुम प्रसार, झिल्ली-झंकार, फड़क-फड़क उठती थी दाई आँख और दुकुर-दुकुर ताकती रही आदि प्रयोगों में वर्ण-मैत्री के विधान से भाषिक सौंदर्य द्विगुणित हो गया है । नागार्जुन की सीधी सरल भाषा में कहीं कहीं लाक्षणिकता भी मिलती है । यों लाक्षणिकता की अपेक्षा व्यंजनात्मकता का गुण उनकी भाषा में अधिक मिलता है । इतने पर भी कुछेक लाक्षणिक प्रयोग बड़े आकर्षक और अर्थगर्भित बन पड़े हैं । लाक्षणिकता का विधान मुहावरों के रूप में अधिक हुआ है । आम जनता की भाषा के प्रयोक्ता इस कवि की भाषा में व्यंजना शक्ति भी गजब की है । नागार्जुन बात को वक्रता के साथ प्रस्तुत करने में पूरे कुशल हैं । भाषा की व्यंजकता का यह रूप तो देखिए-

जनगणमन अधिनायक जय हो प्रजा विचित्र तुम्हारी है
भूख भूख चिल्लाने वाली अशुभ अमंगलकारी है
बंद सेल. बेगूसराय में नौजवान दो भले मरे
जगह नहीं है जेलों में - यमराज तुम्हारी मदद करे ।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् कहा जा सकता है कि नागार्जुन की भाषा भाव और विषय से जुड़ी हुई है । भाव की कीमत चुकाकर भाषा को सजाने-सँवारने का काम नागार्जुन ने नहीं किया है । उनके विषय इतने स्पष्ट और मर्मस्पर्शी हैं कि भाषा स्वत: ही उनकी हमसाया बन गयी है । वस्तुत: राग चेतना प्रधान कविताओं की भाषा में मधुरता, मदिरता मसृणता और संस्कृतनिष्ठता है तो व्यंग्यपरक और यथार्थ की प्रतिबोधक कविताओं में शब्द सीधे जन-जीवन के अंचल से उठाये गये हैं । भाषा में गरिमा बोध वहीं अधिक है, जहाँ कवि या तो श्रद्धाभावना से आपूरित है या प्रकृति की नूतन भव्य छवियाँ उसके मानस को आंदोलित करती हैं । यही कारण है कि रवि ठाकुर, निराला और राजकमल को सम्बोधित कविताओं में भाषा का आभिजात्य देखने को मिलता है । 'युगनद्ध मिथुन की भावभूमि तुम रतन-पिच्छल तुम स्वेद सुरभि हारा जिससे मृगमद परिमल, एक ओर तो भाषा का यह आभिजात्य है और दूसरी ओर जब कवि की चेतना पर व्यंग्य हावी होता है तो यह चुटीली भाषा लिखता है, यथा-

1. बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के
   सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के
2. दस हजार दस लाख मरें, पर झण्डा ऊँचा रहे हमारा
   कुछ हो कांग्रेसी शासन का डंडा ऊँचा रहे हमारा ।
3. पाँच साल कम खाओ भैया, गम खाओ दस पन्द्रह साल
   अपने हाथों से झोंकों अपनी ही आँखों में धूल ।

17.4.2 अप्रस्तुत योजना

जनता की भाषा में अपनी बात कहने वाला नागार्जुन अलंकारों के पीछे नहीं पड़ा है । अपनी बात कहने की उनकी अलग अदा है । फिर जिनके पास अदा हो और अपनी भाव पूँजी हो तो वह किसी बाहरी तत्व का सहारा क्यों ले? ही, यदि किसी को ऐसे अदाकार की अदा पसन्द हो तो वह चाहे तो उसकी अदा का हमराज बन जाये । नागार्जुन एक ऐसे ही- अदाकार हैं । उन्हें अलंकारों की जरूरत नहीं पड़ी है । अलंकार भले ही उनकी अदा के कायल होकर उनके पास चले गये हों और आकस्मिक रूप से आये मेहमान की तरह यदि उन्हें कवि ने उपकृत कर दिया हो, तो जुदा बात है । सौ बात की बात यह है कि नागार्जुन ने अलंकारों के प्रति ममत्व नहीं दिखाया है । हाँ, अपनी भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति करते समय स्वत: ही चलकर आये मित्र की तरह उन्हें निराश लौटाया भी नहीं है । फलतः: जहाँ तहाँ उपमा, रूपक, असंगति, विरोधाभास, मानवीकरण और उत्पेक्षा आदि के प्रयोग मिल जाते हैं । उनका प्रकाशित काव्य 'भस्मांकुर' अवश्य ऐसा है जिसमें अनेक नये पुराने अलंकारों को अपनाकर कवि ने अपने कथ्य को मार्मिक शैली में प्रेषणीय बनाया है ।

उपमा के कतिपय आकर्षक प्रयोग 'भस्मांकुर में देखे जा सकते हैं- निपट मुग्ध सी भाव विभोर, 'सजी धजी गुड़िया-सी सुन्दर नारि', जादूकर-सा रति को लगा बसन्त नासा चन्दन-सी लगती थी भीगी धूल, पारद की नलियों- सी बार-बार जटा-जूट में दिपती सुरसरि-धार, तनिक उगे सींगों-से युगल उरोज आदि में उपमाओं का सौंदर्य तो देखते ही बनता है । रूपक अलंकार का प्रयोग नागार्जुन ने 'भस्मांकुर' काव्य में अधिक और अन्य कविताओं में कम किया है । इसी क्रम में 'भस्मांकुर' काव्य में आये रूपक प्रयोगों की भी बानगी लेने लायक है । प्रगतिशील चेतना का सूत्रधार इन रूपकों में छायावादी हो गया है- 'प्रकृति परी ने सजा हरा श्रृंगार', 'असमय हरियाली का पारावार', 'दो-दो दृगमणि चारों की द्युति एक', दमक उठा गिरितनया का मुख पद्म', 'कहीं दब गया जाने संशय कीट' और 'स्वच्छ बर्फ की धवल मुलायम शाल' जैसे प्रयोग कवि की भावुकता के प्रमाण हैं । उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी एक- दो स्थल पर आकर्षक बन पड़ा है- 'झेल रहा है मानो यहाँ त्रिकाल, फुहियों की माला किरणों का जाल' और तभी कपोलों पर संकोच विलास छिटके मानो मिला सुखद आभास ।' मानवीकरण के आकर्षक प्रयोगों की स्थिति भी अभिभूत करती है । स्पष्टीकरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए-थिरक उठी, कंटकित झाड़ियाँ आज, पलकों पर जम कर बैठा संकोच, आँख मिचौनी खेलेंगे नक्षत्र तिमिर पुत्रियों का पायेंगे प्यार, लतिकाओ ने पकड़ी सुख की राह, और दब रही कुसुमाकर की मुस्कान गालों में घुटती हाठों में कैद जैसे प्रयोगों में कांतिमती अनुभूतियाँ मूर्तित हो उठी हैं । अपवादस्वरूप असंगति, विरोधाभास और विशेषण विपर्यय का प्रयोग भी नागार्जुन के काव्य में मिल ही जाता है । इस प्रकार कह सकते हैं कि नागार्जुन अप्रस्तुतों के पीछे नहीं पड़े हैं । उन्होंने सहज रूप में ही उन्हें अपनाया है । ये कवि की भावानुभूतियोंके सहचर हैं जो वर्ण्य अनुभूतियों से एकाकार हो गये हैं । अत: भावोत्कर्ष में सहायक हैं ।

17.4.3 प्रतीक विधान

रूप, गुण और भाव की अवगति कराने वाली वह कल्पना प्रतीक कहलाती है जिसमें उपमेय का निगरण हो जाता है । नागार्जुन का काव्य जनकाव्य है । उसमें सीधी और सरल भाषा शैली को अपनाया गया है, किन्तु ये सीधे सरल और व्यावहारिक शब्द ही अनेक बार प्रतीक बनकर आये हैं । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि एक सफल व्यंग्यकार होने के नाते नागार्जुन के काव्य में प्रतीक अपनी अनिवार्यता लेकर आये हैं । प्रतीकों के सहारे ही यह कवि अपने अभीष्ट भाव की व्यंजना कर सकने में सफल हुआ है । 'भुस का पुतला' कविता में कांग्रेसियों को 'भुस का पुतला' कहा गया है । देश की विविध समस्याओं को सुलझाने में उनकी असमानता को कवि नागार्जुन ने खेत में खड़े मौन पुतले के समान माना है ।

नागार्जुन ने प्रतीकों में समसामयिक समस्याओं, नेताओं और अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियों आदि पर करारे व्यंग्य किये हैं और इन सभी के लिए उसने प्रतीकों का प्रयोग किया है । इनमें अर्थ-भार वहन करने की अद्वभूत क्षमता है, प्रेषणीयता का विलक्षण गुण है और ये प्रतीक ही है जो कवि के अभिप्रेत को मनोरंजक और प्रभावी शैली में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं । 'परसों था जंगल का राजा कल था घायल शेर' में यदि पुराने कांग्रेस

कर्मियों पर प्रतीक शैली में व्यंग्य किया गया है तो शासन में रहकर अत्याचार करने वाले प्रशासकों की स्थिति का अभिव्यंजन प्रतीकों के सहारे इन पंक्तियों में हुआ है- 'जगती अशोक सिंहों पर बेशर्म उल्लुओं की जमात ।' इसी प्रकार अपने स्वार्थ में लिप्त अवसरवादियों के लिए अपनाये गये ये प्रतीक देखिए-

देखा हमने चिड़ियाखाना सुना चीखना और चिल्लाना ।
धवल टोपियाँ फैंक रहे थे, मगर गधों से रेंक रहे थे ।
धोती कुर्ते में थे हाथी, सूअर, ऊँट थे जिनके साथी ।
बैलों के पीछे अनबोले, मचल रहे थे साँप सपोले । ।

इधर पिछले वर्षो में लिखी गयी नागार्जुन की कविताओं में 'एक बंदरिया', रानी मक्खी, आओ आओ, अच्छा हुआ कि जनता को मिल गयी तुम्हारी थाह और 'बूढ़ा शेर' आदि प्रमुख प्रतीकात्मक कविताएँ हैं । रानी मक्खी' देश की राजनीति की, 'एक बंदरिया' प्रमुख नारी नैत्री की, चिड़ियाखाना भ्रष्ट राजनीति का प्रतीकार्थ रखते हैं । एक बंदरिया का प्रतीक तो बड़ा ही मार्मिक और तीखा बन पड़ा है । 'भस्मांकुर' में आये प्रतीक भी विविधात्मक हैं । उसमें प्राकृतिक, सांस्कृतिक और दैनिक जीवन सभी क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया गया है । इस काव्य में 'अमृत मिठास और माधुर्य का पी जाती यह हलाहल चुपचाप में हलाहल आपदा या पीड़ास का, यातुधान और वैतालिक शब्द जादूगर बसन्त के, बारूद क्रोध का और मलयानिल रति भाव के पोषक प्रतीक हैं ।

17.4.4 बिम्ब विधान

बिम्ब कविता का प्राणतत्व है । इनका निर्माण कल्पना के सहयोग से हुआ है । वस्तुतः बिम्ब कल्पना और स्मृति की वह क्रिया है जो शब्दों के द्वारा चित्र प्रस्तुत करती है । कई बार तो बिम्ब सीधी सरल शब्दावली द्वारा खड़े किये जाते हैं और कई बार अलंकृति द्वारा, किन्तु सर्वाधिक सफल बिम्ब वे होते हैं जो ऐन्द्रिय संवेदनों द्वारा खड़े किये जाते हैं । अतः कह सकते हैं कि बिम्ब एक ऐसा ऐन्द्रिय शब्दचित्र होता है जिसमें अलंकृति का स्पर्श भी होता है और भावावेगमयी कल्पना का भी । नागार्जुन के बिम्बों में ताजगी है, सरसता है, चुटीलापन है और कहीं-कही वे स्मृति के सहारे भी खड़े किये गये हैं, किन्तु अधिकांश ऐन्द्रिय संवेदनों के सहारे निर्मित हुए हैं ।

नागार्जुन के दृश्य या चाक्षुष बिम्ब सर्वाधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बन पड़े हैं । 'बादल को घिरते देखा है' कविता में आया यह बिम्ब देखिए-

अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है
छोटे -मोटे मोती जैसे
अतिशय शीतल वारिकणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है ।

वस्तुतः यह पूरी कविता ही ऐसे सशक्त और अनाघ्रात बिम्बों से सज्जित है । इसी क्रम में निम्नांकित पंक्तियों में आये बिम्ब को लीजिए-

पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड बीन रही
पत्नी बेचारी मर्भ-भार से अलस
शिथिल हैं अंग-प्रत्यंग ।

नागार्जुन के काव्य में भावबिम्बों की भी कमी नहीं है । उन्होंने प्रेमजनित स्थितियों से सम्बन्धित अनेक बिम्ब प्रस्तुत किए हैं । केवल दो उदाहरण देखिए-

1. तुम नहीं हो पास / मैं तो तरसता हूँ
   प्यार के दो बोल / सुनने के लिए
   एक ही दो अंगुलियाँ नहीं हैं काफी
   कदाचित / रेशमी परितृप्तियों का
   जाल बुनने के लिए ।
2. वे लोटा पीट रहे हैं / तुम मन को पीट रहे हो
   वे पत्तर जोड़ रहे हैं / तुम सपने जोड़ रहे हो
   उनकी घुटन / ठहाकों में घुलती है
   और तुम्हारी घुटन उनींदी घड़ियों में चुरती है ।

नागार्जुन ने ऐन्द्रिय बिम्बों के दृश्य, श्रव्य, घ्रण, रंग, आस्वाद्य और स्पर्श बिम्बों की सफल सृष्टि की है । कतिपय उदाहरण देखिए-

श्रव्य बिम्ब

नचाकर लम्बी चमचों सा पंचगुरा हाथ
रूखी पतली किटकिट आवाज में
खड़ खड़ खड़..... ..हड़ हड़ हड़...
काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढाँचा ।

स्पर्श बिम्ब

झुकी पीठ को मिला किसी हथेली का स्पर्श
तन गयी रीढ़ ।

घ्राण बिम्ब

वृद्ध वनस्पतियाँ की दूँठी शाखाओं में
पोर पोर टहनी टहनी का लगा दहकने
टेसू निकले मुकुलों के गुच्छे गदराये
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया ।

वर्ण या रंग बिम्ब

1. प्रकृति परी ने सजा हरित श्रृंगार ।
2. रति के रतनारे नयनों की छाप ।
3. शतदल लाल कमल वेणी में
   रजत-रचित मणि-खचित कलामय ।

'भस्मांकुर' काव्य में नागार्जुन ने कम्पन बिम्ब, 'थरमल इमेजेज' तक का प्रयोग किया है। जब वह लिखता है कि कीप रहा था रति का मृदुल शरीर, स्वेद सिक्त रोमांचित कांतिविहीन तो ऐसे ही बिम्ब की आभा मूर्तित हो जाती है । अनेक बार ऐसा भी प्रतीत होता है जब कल्पना प्राय: निष्क्रिय हो जाती है तब स्मृति बिम्बों की सर्जना होती है । अतीत की अनुभूतियों के सहारे खड़े किये गये बिम्ब इसी प्रकार के होते हैं-

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल

याद आता, तुम्हारा सुन्दर सिन्दूर तिलकित भाल

शिशिर विषकन्या कविता में अमूर्त वस्तु का मानवीकरण करके नागार्जुन ने श्रेष्ठ बिम्ब प्रस्तुत किया है । इसे अलंकृत बिम्बों की कोटि में रखा जा सकता है, किन्तु इसमें स्पर्शेन्द्रिय बिम्ब भी स्पष्ट आभासित होता है । यों कहीं-कहीं कवि ने दृश्य बिम्बों का सम्मिलित रूप भी प्रस्तुत किया है-

तुम कही पंक जिसकी पलकें होती शतदल

युग की भ्रमराबलि करती गुन गुन अविरल ।

उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने सफल और आकर्षक बिम्बों की सृष्टि की है । उन्हें सर्वाधिक सफलता वस्तुपरक या चाक्षुष बिम्बों और ऐन्द्रिय संवेदना पर आधारित बिम्बों में मिली है । उनका काव्य प्रतीकों, बिम्बों दोनों ही दृष्टियों से न केवल कलात्मक है, अपितु पाठकीय संवेदना को गहरे तक छूता है ।

17.4.5 छन्द विधान

नागार्जुन के काव्य में प्रयुक्त छन्दों का निजी वैशिष्ट्य भी है और शास्त्रीय आधार भी है। उन्होंने प्रगीतों की भी सृष्टि की है और मुक्त छन्द का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया है । जितनी सफलता उन्हें प्रगीत सृष्टि में मिली है, उतनी ही सफलता मुक्तछंदीय प्रयोगों में । छन्दबद्ध तुकान्त कविताओं में गेयता है, लय है, तुक-ताल है । छन्दबद्ध कविताओं में कुछेक कविताएँ ऐसी भी हैं जो छंदों की सीमा को स्वीकारती हुई भी अतुकांत हैं । कहीं-कहीं तुकांत कविताओं में मात्रिक क्रमबद्धता का अभाव भी दिखाई देता है । केदार अग्रवाल को सम्बोधित कविता इसी प्रकार की है । स्वतन्त्र और मुक्त छन्द का प्रयोग भी नागार्जुन ने बड़ी सफलता से किया है । 'बौद्ध भिक्षुणी' से सम्बन्धित कविता इसका सफल उदाहरण है । प्रेत का बयान, वे और तुम जैसी कविताएँ भी छांदसिक कलात्मकता का ही उदाहरण हैं । भस्मांकुर काव्य बरवै छन्द में लिखी गयी रचना है । 19 मात्राओं के इस छन्द के प्रयोग से नागार्जुन ने अपनी मौलिकता प्रकट की है । इससे आलोच्य काव्य में न केवल सरसता, मधुरता और स्निग्धता का संचार हुआ है' अपितु प्रवाहशीलता व गत्वरता का विनियोग भी सहज ही हो गया है ।

17.5 सारांश

समग्र विवेचनोपरान्त स्पष्टत: कहा जा सकता है कि नागार्जुन का काव्य एक जाग्रत, सचेता और प्रगतिशील रचनाकार का काव्य है । छायावादोत्तर कवियों में ही नहीं, उसके बाद के कवियों में भी नागार्जुन जैसी तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंग्यकार हमारे

साहित्य में नहीं हुआ है । नागार्जुन अपने समानधर्मा कवियों में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं । वे प्रगतिशील चेतना के वाहक, जनचेतना के पक्षधर, निम्नवर्गीय व्यक्तियों के प्रति करुणाशील उदार, मानवतावाद के पोषक, स्वस्थ प्रेम के व्याख्याता, प्रखर व्यंग्यकार, जीवन के प्रति आस्थावान होने के कारण सच्चे प्रगतिशील, सर्जनात्मक क्रांति के सार्थवाह, मानवता के प्रतिष्ठापक और अशिव के ध्वंस पर शिव का निर्माण करने वाले कवि हैं ।

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "नागार्जुन का काव्य प्रगतिशील चेतना का काव्य है ।" इस कथन के आलोक में नागार्जुन के काव्य में उपलब्ध प्रगतिशीलता के बिन्दुओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए ।
2. "नागार्जुन ने एक ओर तो अपने काव्य में युगीन विकृतियों और विषमताओं के धुएँ और गर्द-गुबार से पीड़ित मानवता के चित्र प्रस्तुत किए हैं, शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति दिखाई है तो दूसरी ओर आस्था और संकल्पनिष्ठा के स्वरों को भी वाणी दी है ।" इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए ।
3. "नागार्जुन की व्यंग्यशीलता एकपक्षीय न होकर व्यापक और विविधक्षेत्रीय है ।" इस कथन के आलोक में नागार्जुन की व्यंग्यशीलता पर सोदाहरण प्रकाश डालिए ।
4. नागार्जुन के काव्य में उपलब्ध रागात्मक संवेदना के स्वरूप और उसके वैशिष्ट्य को उपयुक्त उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए ।
5. "नागार्जुन के काव्य में समसामयिक चिन्तना तो मिलती ही है, वे विद्रोह और क्रांति का स्वस्थ चित्र भी प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं ।"" इस कथन को उदाहरण सहित विवेचित कीजिए ।
6. "नागार्जुन का शिल्प सहज, सरल और जनसामान्य के निकट है ।" इस कथन के परिपेक्ष्य में नागार्जुन के काव्य की अभिव्यक्तिगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
7. प्रतीक-प्रयोग और बिम्ब-प्रस्तुति की दृष्टि से नागार्जुन के काव्य का मूल्यांकन कीजिए ।

17.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रकाशचन्द शुक्ल : हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा
2. शिवदानसिंह चौहान : प्रगतिशील कवि
3. डॉ. विजयबहादुर सिंह : नागार्जुन का रचना-संसार
4. डॉ. सत्यनारायण : नागार्जुन का काव्य
5. डॉ. हरिचरण शर्मा : नये प्रतिनिधि कवि

इकाई-18 सच्चिदानन्द. हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का काव्य : असाध्यवीणा

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 कवि और काव्य यात्रा

18.2.1 जीवन सन्दर्भ

18.2.2 कृतित्व

18.3 असाध्यवीणा - कविता-परिचय

18.4 असाध्यवीणा - संदर्भ व्याख्या

(क) आ गये प्रियंवद! ..... प्रियंवद के चेहरे पर ।

(ख) उसी किरीट तरू से.....साथ ही जीवन-लीला

(ग) चुप हो गया प्रियंवद ।..... सचमुच क्या है असाध्य

(घ) पर उस स्पन्दित सन्नाटे में .....जीवन-भर की साधना रही

(ङ) राजा ने अलग सुना.....वह कर देगा ।

(च) रानी ने अलग सुना..... प्यारी को साधेगी ।

(छ) सब डूबे तिरे झिपे जागे-.....वीणा फिर मूक हो गयी ।

(ज) श्रेय नहीं कुछ मेरा.....सब में गाता है ।

18.5 सारांश

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के पश्चात् आप -

- अज्ञेय कवि के जीवन-सन्दर्भो तथा उनकी काव्य यात्रा से परिचित हो सकेंगे ।
- अज्ञेय के सृजन-संघर्ष की मनोभूमि तथा युग के परिवेश से परिचित हो सकेंगे ।
- असाध्य वीणा कविता से परिचय प्राप्त कर उसके मर्म को हृदयंगम कर सकेंगे ।
- असाध्य वीणा लम्बी कविता के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्याओं को हृदयंगम करते हुए स्वयं भी अन्य पदों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- कविता में आए संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

कवि अज्ञेय के जीवन-सन्दर्भो को आपके लिए कई रूपों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । उनका जन्म, शिक्षा, दीक्षा, परिवार के संस्कार, परिवेश तथा उनके संघर्षशील व्यक्तित्व के प्रयास व उपलब्धियों को इनमें स्थान दिया जा सकता है । मानव ने जब कंदराओं से निकल कर मैदान में अपने आपको विकसित किया तभी से उसकी भाषा में भी मित्रता आने लगी और इसी भाषा ने जब समयानुसार साहित्य के रूप में अपने को ढालना प्रारम्भ किया तो साहित्य के अनेक नवीन आयाम उत्पन्न हुए । इन्हीं विभिन्न कालों और वर्गो में समय की दौड़ पर एक मुकाम आया आधुनिक काल । साहित्यिक विचारक की नयी सोच और प्रयोग सामने आए तथा इसी सोच और प्रयोग के सेतु बने वात्स्यायन जी । अज्ञेय का रचनाकार-व्यक्तित्व छायावादोत्तर काल में 'आधुनिक भाव बोध' के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और नवीन हिन्दी साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद से अलग हटकर नए सृजन को दिशा-दृष्टि देने के प्रयास के लिए उनका नाम सदैव स्मरण किया जाएगा ।

' तार सप्तक' ', दूसरा सप्तक', तीसरा सप्तक की योजना, चौथे सप्तक, 'प्रतीक' पत्रिका का सम्पादन तथा ' 'दिनमान ' साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादक, प्रसारण, गोष्ठी आयोजन आदि सभी कोणों से अज्ञेय की दृष्टि और नए बोध के विकास की दिशा का महत्व है । साहित्य के इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अज्ञेय के प्रखर और चिंतनशील, प्रयोगशील और सरकारी, विद्रोही व्यक्तित्व ने नवीन सर्जनात्मकता को ही आच्छादित नहीं किया- बल्कि उसके विकसित होने में भी पूरा योगदान दिया है । अज्ञेय कृत असाध्य वीणा, जीवन सत्य, व दर्शन को व्यक्त करने वाली एक लम्बी कविता है जो मनुष्य को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने कार्य के प्रति तदात्मक या एकाकार होकर प्रवृत्त होने का संदेश देती है । यह कविता है जो आत्मशोधन, परिष्कार और जीवन-सत्य की प्रेरिका बनकर सत्यानुभूति की भूमिका भी तैयार करती है ।

18.2 अज्ञेय कवि और काव्य यात्रा

18.2.1 जीवन सन्दर्भ

पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी के पद पर 7 मार्च 1911 ई. को जिस शिशु ने जन्म लिया वह बाल्यावास्था से ही अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगा था । पिता के संग-संग एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरन्तर घूमते रहने से जीवन में यायावरी के गुण विकसित होने लगे थे । प्रकृति से प्रेम पनपने लगा था और पुरातन के प्रति विद्रोह ने अपने अंकुर उस किशोर के हृदय में अंकुरित कर दिये थे । तबादलों के सिलसिले में उनके पिता का तबादला नालन्दा हुआ और वही वे हरिनारायण आप्टे और राखलदास के सम्पर्क से उन्होंने बंगला भाषा सीखी थी । इसी अवधि में अज्ञेय जी ने विश्वेश्वर नाथ और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की लिखी इतिहास पुस्तकें तथा मीराँ के पद और तुलसी की रचनाएँ पढ़ी । इन्हीं दिनों अज्ञेय का परिचय मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय,

श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, प्रेमयोगी और देवेन्द्र आदि की कविताओं से हुआ ।

एक तरह से अज्ञेय बचपन से ही एकान्त प्रिय और समाज से दूर रहे थे । बचपन में वे किसी स्कूल में नहीं नये, जिससे बाल समाज से भी ये अनभिज्ञ रहे । इस कारण अज्ञेय प्रकृति प्रेमी होते चले नये । उन्होंने तो एक जगह लिखा भी है कि "मैं बचपन से ही एकान्तप्रिय था और पारिस्थियाँ भी अकेला रखती आई थी, पर वही (ऊटकमण्ड) तो मानों मैं एकान्त में ही डूब गया । यद्यपि प्रकृति के स्पन्दन भरे एकान्त में जिसमें इस बात की भी चिन्ता नहीं थी कि परिवार के बाहर का कोई भी हमारा एक भी शब्द समझने वाला न था, - न हम किसी का एक भी शब्द समझते थे "।' यही उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और इसी दौरान जलियाँवाला काण्ड हुआ, जिससे अज्ञेय का किशोर मन क्रांति की ओर उन्मुख हुआ। स्कूलिंग के बाद उन्होंने कॉलेज में प्रवेश किया है यहीं उनकी पहचान चन्द्रशेखर, सुखदेव भगवतीचरण आदि से हुई और वे भी एक स्वयं सेवक बन गये । 1929 में बीएससी. करने के बाद उन्होंने एम. ए. अंग्रेजी मे प्रवेश लिया और इसी वर्ष वे क्रान्तिकारी दल में सक्रिय रूप से शामिल हो गये । उसके बाद जेल का एक दौर चल पड़ा । इस प्रकार उन्होंने बंदी के रूप में एक माह लाहौर किले में और साढ़े तीन साल दिल्ली व पंजाब की जेलों में बिताये और फिर दो माह किले और दो वर्ष नजरबंदी में बिताये । विद्यानिवास मिश्र के अनुसार उनकी पूरी अवधि घोर आत्ममंथन, शारीरिक यातना और स्वप्न भंग की थी । सन् 1934 ई. में नजरबंदी की स्थिति में घर आने पर एक साथ छोटे भाई और माता की मृत्यु तथा पिता की सेवानिवृत्ति ने क्या आघात पहुँचाया ये वे स्वयं ही जानते थे । इस घटना ने इन्हें नयी जिम्मेदारियों के सामने लाकर खड़ा कर दिया ।

वात्स्यायन जी की प्रथम कविता लाहौर कॉलेज की पत्रिका में छपी थी, जो अब उनके दूसरे कविता संग्रह 'चिन्ता' में संगृहित है । जिस समय वे गुप्त क्रान्तिकारी आन्दोलन में संलग्न थे, उस समय उन्होने अधिकतर कहानियाँ ही लिखी । एक उपन्यास भी लिखा जो बाद में पुलिस के हाथ लग गया जो आज तक प्रकाशित नहीं हो पाया । उन्होंने अपने अधिकतर साहित्य का सृजन जेल में ही किया और वहीं वे सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन से 'अज्ञेय बन गये ।

अन्य संदर्भ

1937 ई. के अन्त में बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर अज्ञेय 'विशाल भारत' के सम्पादक मण्डल में शामिल हो गये और साढ़े पाँच वर्ष तक वहीं रहे । कुछ दिन आपने पटना से प्रकाशित होने वाली 'बिजली' पत्रिका का भी सम्पादन किया । आल इण्डिया रेडियो में नौकरी की तथा उसी साल विवाह भी सम्पन्न किया जो बाद में तलाक में परिवर्तित हो गया । 1943 ई. में जब महायुद्ध चल रहा था, अज्ञेय जी भी सेना में भर्ती हो गये और 1946 ई. तक कोहिमा फ्रन्ट पर रहे । 1946 में पिता के देहावसान से व्यथित हो वे सम्पूर्ण रूप से साहित्य साधना में जुट गये । मार्च 1947 ई। में उन्होंने इलाहाबाद को अपना निवास बनाया और 'प्रतीक' नाम मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। किन्तु प्रकाशकों की धोखाधड़ी से 'प्रतीक' 1952 में बंद हो गयी और उन्होंने फिर

ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली में नौकरी कर ली । 1955 तक यहीं रहे और इसी बीच अंग्रेजी साप्ताहिक 'धार' का साहित्य सम्पादन करते रहे । इसी अवधि में कपिला जी अज्ञेय के जीवन में आई और अन्ततः 7 जुलाई व 1956 ई. को दोनों विवाह सूत्र में बँध गये । अप्रेल 1955 ई. में अज्ञेय यूनेस्को के निमन्त्रण पर यूरोप यात्रा पर गये ।

1957 ई. में वे अपने विवाह के उपरान्त इलाहाबाद में ही रहने लगे । 1960 में वे पुनः यूरोप यात्रा पर निकले । डॉ. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, "इस बार वे मसीही संस्कृति की साधना की गहराइयों में प्रविष्ट होने के लिए गये थे" सितम्बर 1961 में अज्ञेय जी केलिफार्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्राध्यापक होकर गये और 1964 ई. तक वही रहे । 1964 में विदेश से लौटने.... के बाद उन्होंने 'दिनमान' साप्ताहिक का सम्पादन प्रारम्भ किया । उनकी संगठन शक्ति, कल्पना और निष्ठा ने छः महीने के भीतर 'दिनमान' को हिन्दी का अन्यतम साप्ताहिक बना दिया ।

1965 ई. में फिर उन्हें अनेक आघातों को एक साथ सहना पड़ा । पहले अपने छोटे भाई की मृत्यु, फिर मुक्तिबोध और मैथिलीशरण गुप्त का निधन, जिन्होंने उनके मन को झकझोर दिया । सन् 1968 में वे पुनः केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर होकर कुछ समय के लिए चले गये ।

सन् 1971 में वे जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य विभाग के अध्यक्ष बने और इसी वर्ष विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने उन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि से सम्मानित किया । 1972 में उन्होंने जोधपुर से त्यागपत्र दे दिया । 1973 में उन्होंने 'नये प्रतीक' नाम से 'प्रतीक' का पुनः सम्पादन प्रारम्भ किया और गोल्फ लिंग में रहकर सम्पादन व साहित्य लेखन करते रहे । 1977 में आप 'नवभारत टाइम्स' दैनिक के सम्पादक नियुक्त किये गये । 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' नामक काव्य संग्रह पर आपको भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया । सन् 1979 में नवभारत टाइम्स से त्यागपत्र दे स्वतन्त्र लेखन में संलग्न हो गये । लगभग आधी सदी तक हिन्दी साहित्य की दुनिया में सबसे अधिक चर्चित रहने वाले अज्ञेय जी 4 अप्रैल, 1987 को सुबह दिल का दौरा पड़ने से सांसारिक मोह बंधनों से नाता तोड़कर परलोक चले गये ।

18.2.2 कृतित्व

साहित्य का सम्बन्ध मानव के राग तत्त्व से है और राग तत्त्व में काव्य का प्रमुख स्थान है । अज्ञेय मूलतः कवि हैं और कवि के रूप में अधुनातन हिन्दी काव्यधारा के प्रवर्तन को श्रेय भी मिलता है । वे प्रयोगवाद के शलाका पुरूष भी कहे गये हैं उनके कृतित्व में उनकी काव्य कृतियों का अध्ययन मनन ही अपेक्षित है । आत्मस्वीकृति को प्रमाण मानें तो कवि रूप ही उनका मनचीता व वास्तविक रूप है । अज्ञेय का कथन है, "मेरी जैसी दृष्टि है उसकी जो विशिष्टता है और जो सीमा है, उसे देखते हुए मैं कवि ही रहूँगा, उपन्यासकार नहीं बनूँगा ।'"

अज्ञेय की काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. भग्नदूत

भग्नदूत अज्ञेय की कविताओं का पहला संग्रह है । यह कृति किशोर की अवसादमयी प्रणयानुभूति से युक्त है । कवि अपनी प्रणयानुभूति को दीपक के प्रतीक के द्वारा प्रकट करता है । यह देखता है कि उसकी प्रियतमा दीपशिखा एक पतंगे से प्रेम कर रही है । वह देखकर वह व्याकुल हो जाता है ।

मेरे हृदय रक्त की लाली' इसके तन पर छाई है'
किन्तु मुझे तज दीपशिखा ने, पर से प्रीति लगाई है ।
इस पर मरते देख पतंगे, नहीं चैन में पाती है
अपना भी परकीय हुआ, यह देख जली मैं जाती हूँ ।

इस काव्य संग्रह में प्रणय की विफलता से उत्पन्न हीनता और अवसाद का चिन्त्रण है । इसमें कवि नितान्त अन्तर्मुखी व आत्मरति में लीन हो जाता है ।

2. चिन्ता

चिन्ता एक लम्बी आख्यानक कविता है, जो दो अंशों में विभक्त है- 1. विश्वप्रिया तथा 2. एकायन । विश्वप्रिया में स्त्री के प्रति पुरूष के भावुक उद्गार हैं तथा 'एकायन' में नारी की प्रणयानुभूति का चित्रण हुआ है । इसकी कथा गद्य-पद्य मय है । पुरूष पहले नारी सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होकर सोचता है कि क्या इसके भी हृदय है या सिर्फ रूप ही रूप है । निकट आने पर उसे महसूस होता है कि उसके पास हृदय भी है तब उसका अहं गलकर विलीन हो जाता है और उसे विश्वप्रिया मिलती है । 'एकायन' खण्ड में नारी पुरूष को अपना स्वरूप बताती हुई कहती है कि वह सिर्फ रूप ही नहीं है, उसमें उत्ताप है, दीप्त है केवल प्रणयिनी होने के कारण ही वह कोमल अथवा विनम्र है ।

3. इत्यलम

इसमें 1933 से 1945 तक कविताएँ संग्रहीत हैं । इसमें भग्नदूत की चुनी हुई कविताओं के अतिरिक्त शेष चार भागों में 'बंदी स्वप्न', 'हिय हारिल', 'बचना के दुर्ग', ,मिट्टी की ईहा' शीर्षक नाम के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली कविताएँ हैं । 'बंदी स्वप्न' खण्ड में बंदी कवि आत्मा का रूदन व हाहाकार व्यक्त हुआ है, किन्तु इसका दूसरा छोर भी मिलता है**,** जहाँ ' वह घृणा का गान गाता है**-**

तुम सत्ताधारी मानवता के शव पर आसीन
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ सुनो घृणा का गान । (इत्यलम पृ. 53)

कवि में देशप्रेम की प्रबल भावना है । 'रक्तस्नात् वह मेरा साकी' कविता इस बात का प्रमाण है-

तडप उठा मैं चीख उठा' मेरा हा निस्तार कहाँ है,
मेरे हित कलंक कालिका का अब बस गुरू भार यहाँ है
फट जा आह धरित्री! मेरी दुस्सह लज्जा आज मिटा दे
रक्तस्नात वह मेरा साकी, मेरी दुनिया भारत माँ है ।

'बंदी स्वप्न', खण्ड में 'मत माँग', 'राखी', 'बंधुत्व' व 'द्वीतीया' आदि कविताएँ मुख्य स्थान की अधिकारिणी हैं ।

'हिय हारिल' खण्ड में प्रणयानुभूति प्रधान कविताएँ संकलित हैं । 'आज थका हिय हारिल मेरा' कवि ने हारिल पक्षी को अपना प्रतीक बनाया है । यहीं अज्ञेय खग-युगल के प्रेम को आदर्श समझते हुए तथा क्षण के महत्व को बताते हुए कहते हैं-

खग युग करो सम्पन्न प्रणय. क्षण के जीवन में हो तन्मय
हाय तुम्हारी नैसर्गिकता! मानव नियम निराला है ।
वह तो अपने से ही अपना प्रणय छिपाने वाला है । (इत्यलम पृ. 56)

इस खण्ड में कवि ने सर्वप्रथम अपने विशिष्ट रहस्यवाद का परिचय दिया है अर्थात इसमें कवि ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं हुआ है । 'कीर', 'सूर्यास्त', 'अन्तिम आलोक' तथा 'मौन' इस खण्ड की अन्य कविताएँ हैं । प्रेमानुभूति की एक प्रसिद्ध कविता है 'नाम तेरा' । कवि कहता है कि "प्रेम में चिर ऐक्य तो कोई मूढ़ ही रहेगा, विरह की पीड़ा के बिना प्रेम जीता नहीं रह सकता ।"

'वंचना के दुर्ग' खण्ड में कवि एक प्रयोक्ता के रूप में सामने आते हैं । 'चेहरा उदास', 'कंकरीट पोर्च', 'आज मैं पहचानता हूँ', 'चार का गजर' तथा उषा:काल की भव्य शान्ति नामक कविताओं में मनोविश्लेषण शास्त्र की स्वप्न संदर्भ शैली का प्रयोग किया गया है। उषा काल की भव्य शान्ति में भाषा विषयक दुविधाग्रस्त दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इसमें एक ओर तो वे निबिडान्धकार, अकिंचन, अनाहूत, ईषत्कण और स्निग्ध जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर पिल्ला, छपर, तुलक, रिरियाता आदि शब्दों का मोह भी विद्यमान है । इस खण्ड की अधिकांश कविताओं में यौन कुण्ठाओं को बिम्बों व प्रतीकों में मूर्त करने की प्रवृत्ति रही है ।

'मिट्टी की ईहा' खण्ड में अज्ञेय की रहस्यवादी प्रणयानुभूति समन्वित सूक्तिपरक तथा आत्मोन्मुख कविताओं का संकलन है । 'पानी बरसा', 'माघ फागुन चैत' तथा 'जन्मदिवस' आदि इस खण्ड की मुख्य कविताएँ हैं । समग्र रूप से देखने पर 'इत्यलम' में अहम् और कुण्ठा, बौद्धिकता, शंका, नियति, क्षणवादी दर्शन, श्रृंगार भावना सौन्दर्यानुभूति के सुस्ठु तथा भदेश दोनों रूपों का चित्रण हुआ है।

4. हरी घास पर क्षण भर

यह कविता संकलन 1949 में प्रकाशित हुआ । 'हरी घास पर क्षण भर' से पहले तक का 'अज्ञेय का काव्य एक ऐसे व्यक्ति का काव्य है जिसे उन्हीं के शब्दों में राहों का अन्वेषी कहा जा सकता है । इनमें एक टोह, एक अन्वेषण या टटोलने का भाव है ओर यही कवि की रचनात्मकता का प्रमाण है । 'इत्यलम संग्रह की काव्य भावनाएँ इस संग्रह में पुष्ट हुई हैं । 'हरी घास पर क्षण भर', 'कलंगी बाजरे की', 'नदी के द्वीप', 'कवि क्या हुआ फिर', 'छन्द है यह फूल', 'कितनी शान्ति, 'पावस-प्रात:', शिलड्' आदि बहुचर्चित कविताएँ इसी संग्रह की है । 'हरी घास' निर्बन्ध तथा मुक्त जीवन के भाव का प्रतीक तथा 'नागरिक' आधुनिक सभ्यता का प्रतीक है । प्रभाकर माचवे लिखते हैं,"इस संग्रह में आकर उनकी कविता हरी घास पर क्षण भर रूक गई है । शबनम की तरह नहीं कि जो दूसरे क्षण में ढुलक जायेगी बल्कि अतीत के शरणार्थी की भाँति जीवन के अनुभव का प्रत्यावलोकन करने, आत्मंथनरत होकर । कुल मिलाकर यह संग्रह स्मृतियों का एक

अलबम सा है जिसमें कि कुछ चित्रों के रंग उड़ गये हैं, कुछ चित्र फीके पड़ गये हैं, कुछ खण्डित हो गये हैं ।"

5. बावरा अहेरी

अज्ञेय के गाये हुए गीतों में चार प्रकार के स्वर सुनाई पड़ते हैं । पहला स्वर अहम का है, जिसे 'आज तुम शब्द न दो', यह दीप अकेला और जो कहा नहीं गया' नामक कविताओं में सुना जा सकता है । पहली कविता में अहम् की अभिव्यक्ति करने का दृढ़ निश्चय दिखाई देता है । दूसरी में अहम् का समर्पण, समाजीकरण या उसे विलीन कर देने की चाह है-

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो । (बावरा अहेरी पृ. 62)

तीसरा स्वर स्वयं से भी बड़ा है । चौथा स्वर जीवन की नश्वरता, किन्तु गतिशीलता से सम्बन्धित है । वर्षान्त में जीवन की परिवर्तनशीलता की ओर संकेत किया गया है-

इस बालू के तट पर..
बैठे हम अवसान भाव से पूछ रहे हैं
कहाँ गया वह ज्वार, हमारा जीवन, यह हिल्लोलित
सागर कैसे कहाँ गया? (बावरा अहेरी पृ. 27)

और पाँचवा स्वर उनकी प्रकृतिपरक रचनाओं में अनुगुंजित है । "प्रथम किरण" में सूर्य की स्तुति है । 'बावरा अहेरी' में सूर्य से निवेदन किया गया है कि-

विफल दिनों की कालोंस पर माँज जा
मेरी औखें आँज जा
कि तुझे देखूँ
देखूँ और मन में कृतज्ञता उमड़ आये । (बावरा अहेरी पृ. 17)

शैली की दृष्टि से इस संग्रह मे पाँच प्रकार की शैलियाँ दृष्टिगोचर होती है-

(1) आत्कथात्मक: : जैसे 'आज तुम शब्द न दो', 'यह दीप अकेला' 'जो कहा नहीं गया' आदि कविताओं में: (2) प्रतीकात्मक: 'बावरा अहेरी' तथा अन्य प्रकृति परक कविताओं में (3) आलंकारिक : जैसे नख-शिख में, (4) व्यंग्यात्मक : जैसे 'शोषक भैया' आदि कविताओं में, (5) लोक गीत शैली : जैसे 'काँगडे की छोरियाँ', 'चाँदनी जी लो'. में देखी जा सकती है । इनमें से अज्ञेय को प्रतीकात्मक शैली अधिक प्रिय रही है ।

6. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये

इस संकलन में सन् 1954 से 1955 तक की कविताएँ संकलित है । 59 कविताओं के इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1957 में सरस्वती प्रेस इलाहाबाद बनारस से हुआ । पुस्तक का प्रारम्भ कवि ने मंगलाचरण से किया है । इस संग्रह की कविताएँ अज्ञेय के काव्य-विकास को एक नयी दिशा की ओर इंगित करती है । छंद प्रयोग की दृष्टि से देखा जाय तो प्रधानता मुक्त छन्द की ही है । कुछ नये छन्द भी सहज रूप में निर्मित हो गये हैं । कुछ कविताएँ ऐसी अवश्य है जिनमें गीतात्मकता है, अन्यथा प्राय: सर्वत्र मुक्त छन्द के

वाक्यों का गठन गद्यता लिए है और कम से कम प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कविताओं में यह प्रवृत्ति अत्यधिक मुखर है ।

आस्था न काँपे तो मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है ।

'मैं वहाँ हूँ' नामक कविता में कवि ने अपने इसी आस्थावान मानवतावादी व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत की है-

जो मानव से मानव का हाथ मिलाने से बनता है ।

(इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 51)

\+ + +

जो मानव को एक करता है

समूह का अनुभव जिसकी मेहराबें हैं

और जनजीवन की अजस्त्र प्रवाहमयी नदी जिसके नीचे बहती है ।

(इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 21-22)

'एक दिन जब', मैं - तुम्हारा प्रतिभू हूँ 'क्योंकि तुम हो', 'यही एक अमरत्व है' 'रूप की प्यास', 'ओ लहर', 'बार-बार अथ से' 'शरद', 'बर्फ की झील', 'तुम हँसी हो', 'मैं-मेरा तू-तेरा' आदि कविताओं में किसी न किसी रूप में कवि अपने आपको दान कर देने की, लुटा देने की और निर्विकल्प एवं निसक्त भाव से स्वयं को, अस्मिता को, अहं और स्वत्व को गलाने की महत्ता प्रतिष्ठापिता करता है । 'हरी घास पर क्षण भर में कवि जिस अहं के, स्वरति के घेरे में शांति की खोज करता देखा गया था, उसने क्योंकि तुम हो और हम हँसी हो में आकर उस शांति को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया है ।

दूसरा उपकरण है 'क्षण' जिसके प्रति अज्ञेय अत्यन्त आस्था प्रदर्शित करते हैं । कवि ने 'बावरा अहेरी' में कहा था 'कहा तो सहज पीछे लौट देखेंगे नहीं, पर नकारों के सहारे कब चला जीवन । स्मरण को पाथेय बनने दो कभी तो अनुभूति उमडेगी प्लवन का सान्द्र घन भी बन ।' अज्ञेय क्षण की पहचान और उसकी पकड़ पर विशेष बल देते हैं । इसका स्पष्टीकरण उन्होंने स्वयं इन शब्दों में किया हैं कि 'अनुभूति और परिस्थिति में जब विपर्यय, असंतुलन या विरोध होता है तब कलाकार अनुभूति पर आग्रह करता है ।" जीवन क्षणों की अविच्छिन्न लड़ी है, एक गतिशील कड़ी हैं । 'क्यों आज' और 'सर्जना के क्षण नामक कविताओं में क्षण के प्रति इसी प्रकार की आस्था के स्वर सुने -जा सकते हैं। सर्जना के क्षण' में कवि कहता है कि-

एक क्षण भर और

रहने दो मुझे अभिभूत

\+ + +

लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते ।

'नयी कविता : एक सम्भाव्य भूमिका में कवि इस क्षण के प्रति आग्रह को नयी कविता की एक प्रवृत्ति, एक विशेषता के रूप में व्यक्त करता है । इनके अतिरिक्त तीसरी वस्तु है : दर्द, जो कवि की आस्था को विस्तार देता हैं दर्द व्यक्ति को माँजता है और जिनको माँजता है, उन्हें यह सीख देता है कि वे सबको मुक्त रखें । 'हरी घास पर क्षण भर' की दर्द सम्बन्धी कवि की यह धारणा क्षणों का दर्द है जिसमें स्रष्टा अपने को होम कर देता

है और तब एक अंकुर फूटता है एक मोती का जन्म होता है । इन कविताओं के अतिरिक्त इस संग्रह में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनमें आधुनिक सभ्य-समाज, संस्कृति और विभिन्न प्रकार की परम्पराओं, धारणाओं के प्रति व्यंग्य है । जैसे 'साँप' नामक एक कविता है-

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया ।
एक बात पूँछूं (**उत्तर दोगे**?)
तब कैसे सीखा डँसना-
विष कहाँ पाया? (इन्द्रधनु रौंदे हुए ये पृ. 29)

पश्चिम के समूह-जन' 'सागर और गिरगिट', 'हमने पौधे से कहा', कवि के प्रति कवि, आदि कविताओं में इसी प्रकार की विभिन्न व्यंग्यात्मक अनुभूतियाँ से अदभूत हुई है ।

7. अरी ओ करूणा प्रभामय

इस संग्रह का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् 1959 में हुआ । संग्रह में कवि की 1956-58 की कविताएँ हैं, जो चार भागों में विभक्त है, जिनका क्रम इस प्रकार है-

रोपयित्री

इस खण्ड में व 18 कविताएँ हैं । इनमें से 'अच्छा खण्डित सत्य', 'हम कृती नहीं है', 'शब्द और सत्य', नया: 'आत्म-स्वीकार', 'बड़ी लम्बी राह' 'नये कवि से', 'इशारे जिन्दगी के', 'एक प्रश्न' आदि कविताएँ कवि ने अपने साहित्यिक सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए लिखी है । कवि की दृष्टि में व्यर्थ के मधुर छन्दों के सुनने से सार्थक मौन कहीं अधिक अच्छा है और-

अच्छे
अनुभव की भट्टी में तपे हुए कण-दो कण
अन्तर्दृष्टि के
झूठे, **नुस्खे**, **वाद**, **रूढिख उपलब्धि परायी के प्रकाश से**
रूप-शिव, **रूप सत्य की सृष्टि के ।** (अरी ओ करूणा प्रभामय पृ. 16)

रूप केकी :

इस खण्ड में 34 कविताएँ हैं जिनमें से कुछ को छोडकर सभी कविताएँ लघु कविताऐं हैं और साथ ही प्रकृति परक है । 'रूप-केकी', 'ऋतुराज' और 'उन्मत्त' में प्रकृति के भावनात्मक चित्र है । 'रात में गाँव', 'धूप', 'बसन्त', 'पहाड़ी यात्रा' 'पगडण्डी', 'पूनो की साँझ', 'सांध्य तारा', 'एक चित्र, 'अंगूर-बेल', 'नदी तट' : एक चित्र 'प्यार : अव्यक्त', 'चिड़िया की कहानी' आदि लघु कविताओं में कवि ने विभिन्न प्रकार के बिम्बों की सर्जना की है । यद्यपि कविताएँ एक-एक वाक्य में ही समाप्त हो जाती है, फिर भी बिम्बों में खण्डित कुछ भी नहीं होता ।

'यह कली' 'सोन मछली,' 'खिड़की एकाएक खुली', 'पहेली', 'जीवन छाया', 'रश्मिबाण' ये कविताएँ प्रतीक पद्धति की कविताएँ हैं, जिनमें कवि की बौद्धिकता का पूरा परिचय मिल

जाता है । 'पहेली' नामक कविता तो एकदम कबीर की उलटबाँसियों के समान है, जहाँ गुरूचेले के हाथ में जाल छीन लेता है और कहता है-

कहाँ चला ले जाल अभी

पहले मछलियाँ पकड तो ला । (अरी ओ करूणा प्रभामय पृ. 87)

एक चीडा का खाका

'एक चीड़ का खाका' नामक खण्ड के अन्तर्गत.. जापानी कविताओं के अनुवाद है । इनका परिचय अज्ञेय ने स्वयं इन शब्दों में दिया है-'मूल कवि के नाम कविता के अन्त में दिये गये हैं ।

इस खण्ड की सभी कविताएँ, लघु कविताएँ है तथा प्राकृतिक बिम्ब प्रधान हैं । कविताओं की संख्या 27 हैं जापानी कवियों में अज्ञेय को बाशो बूसोंन् और रांसेत्यु अधिक प्रिय रहे हैं । 'रूप केकी' नामक खण्ड की कविताओं के रूप में इन कविताओं का प्रभाव स्पष्ट है, लेकिन वस्तु की दृष्टि से कवि पूर्णत: भारतीय रहा है । इसमें सन्देह नहीं रहा ।

द्वार हीन हार

इस खण्ड के अन्तर्गत 32 कविताएँ हैं । इन लघु कविताओं में वही क्षण की अनुभूति के लिए अनुभूति की प्राथमिकता पर आग्रह दिखाई देता है । 'साधना का सत्य', 'प्राप्ति', 'एक हवा सी बार-बार', 'जन्म-दिवस', 'सागर में ऊब डूब', 'सागर-चित्र', 'सागर पर भोर', 'सागर-तट' : 'संध्या तारा', 'मैंने देखा एक बूँद', 'हवाई अड्डे पर विदा' 'रात भर आते रहे सपने', 'सपने का सच', 'चाँदनी चुपचाप', 'मोह बँध', 'यह मुकुर', 'वह क्या लक्ष्य', 'द्वारहीन द्वार', 'घाट घाट का पानी', 'न दो प्यार', 'पगली आलोक किरण', 'मानव अकेला', 'जब-जब' आदि कविताएँ ऐसी ही है जिनमें कवि ने क्षण विशेष की अनुभूति को व्यक्त किया है । अत: इन कविताओं में उस एकसूत्रता का अभाव है जो पूर्व संकलनों में दिखाई देती है । अन्य कविताएँ भी इसी प्रकार की स्वतन्त्र अनुभूत क्षणों की अभियक्ति है, लेकिन फिर भी उनमें परस्पर नहीं तो कम से कम पूर्व संकलनों की काव्य वस्तु से सम्बन्ध सूत्रं खोजा जा सकता हैं

8. आँगन के पार द्वार

इस संकलन में 1959 से 1961 तक की रचनाएँ सम्मिलित हैं । यह अज्ञेय की नवीनतम कविताओं का संग्रह है । इसका प्रकाशन सन् 1961 में भारतीय ज्ञानपीठ काशी से हुआ है । इस संग्रह की कविताएँ तीन प्रमुख शीर्षकों में विभक्त हैं । पहला शीर्षक '**अन्त:सलिला**, है, जिसमें 'सरस्वती पुत्र', 'बना दे चितेरे', 'भीतर जागा दाता', 'अन्धकार में द्वीप', 'पास और दूर', 'पहचान', 'झील का किनारा', 'अन्तरंग चेहरा', 'परायी राहे', 'पलकों का काँपना' 'एक उदास साँझ' 'अनुपरिपक्व', 'सूनी सी साँझ एक', 'साँझ का पुतला' आदि यह अठारह कविताएँ संकलित हैं ।

दूसरा प्रमुख शीर्षक है '**चक्रान्त शिला**' जिसके अन्तर्गत 20 कविताएँ हैं । कविताओं को उपशीर्षकों में न रखकर संख्या क्रम में रखा गया हैं । प्रमुख शीर्षक का नामकरण विलक्षणता लिए हुए है । इस शीर्षक के अनतर्गत उन्नीसवीं कविता की पहली पंक्ति में 'शिला' और छठी पंक्ति में 'चक्रान्त' शब्द का प्रयोग हुआ है । कविता के इन दोनों

शब्दों को संयुक्त करके शीर्षक का निर्माण हुआ है । शीर्षक स्पष्टत: विलक्षण है, जिसमें किसी निगूढ़, संकेत को भी ग्रहण किया जा सकता है । तीसरा प्रमुख शीर्षक '**असाध्य वीणा**' है । यह अकेली लम्बी कविता है, पर है महत्त्वपूर्ण । इसके सम्बन्ध में कवि पाठक अनुमान लगाते रह जाते हैं । कोई इसे मुक्तक मानता है और कोई इसे खण्ड प्रबन्ध, पर इसमें दोनों का ही परम्परागत स्वरूप प्रदर्शित नहीं होता । यह कविता अज्ञेय की काव्य सृष्टि की नूतन उपज है । 'आँगन के पार द्वार' का कवि रहस्य अन्वेषी हो गया है । उसकी वाणी में भाव व सिद्धान्त, विचार व राग, चिन्तन व अनुभूति सब घुल-मिल गये हैं । कवि कभी सामान्य भाव को दर्शन की सीमा तक उठा ले जाता है और कभी दर्शन को भाव की धरा पर ला बिताता है । अज्ञेय ने बहुत दिन पहले अपने रहस्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा था-

मेरा रहस्वाद ईश्वर की ओर उन्यूख नहीं है
मैं उस असीम शक्ति से
सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूं
अभिभूत होना चाहता हूँ
जो मुझमें भीतर है । (इत्यलम पृ. 96)

संक्षेप में इस रहस्य अन्वेषी की अन्त:साधना का जो रहस्य है वह उसके मौन, दान, समर्पण व शून्य की सर्वमयता में निहित है । इन्ही आधारों पर उसने अपनी आत्मा से सम्बन्ध जोड़ा है और फिर महाशून्य से उनकी भाँवरे डाल दी हैं ।

9. कितनी नावों में कितनी बार

इसमें 1962 से लेकर 1966 तक की कविताएँ सम्मिलित हैं । इस संग्रह में अज्ञेय ने मनुष्य के प्रति अपनी गहरी संवेदना को एक नया संस्कार दिया हैं । वह यही कह सकता है कि मैं धीर, आश्वस्त, अक्लांत, अपने अनबूझे सत्य के प्रभा मण्डल की ओर कितनी ही नावों में कितनी ही बार आया हूँ । इसमें एक युद्ध सम्बन्धी कविता भी है, जो पिछले संकलनों में नहीं है । संध्या कल्प, निरस्त्र, ओ निस्संग ममेतर', 'ओ एक ही कली की', 'महानगर', 'कुहरा', 'पेरियार', 'फोकिस में आदिपौस', 'काले मैदान', आदि विशिष्ट कविताएँ हैं । इस संग्रह में प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है ।

10. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ

इस संकलन में 1965 से 1968 तक की कविताएँ संकलित हैं, जो अज्ञेय की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं । इस संग्रह की रचनाएँ दो वर्गो में विभक्त हैं- 'गूँजेगी आवाज' तथा प्रार्थना का एक प्रकार । 'होते हैं क्षण', 'मोड़ पर का गीत', 'एक दिन अँधेरे', 'पत्थर का घोड़ा' आदि कविताओं में किसी न किसी दार्शनिक सत्य को वाणी दी गई है । 'होते हैं क्षण' कविता में क्षण के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कवि ने बताया है कि काव्य रचना ऐसे ही अमर क्षणों की देन होती है-

होते हैं क्षण : **जो देशकाल मुक्त हो जाते हैं**
होते हैं, **पर ऐसे क्षण हम कब दोहराते हैं**
या क्या हम लाते है

जीना, भोगा जाना

है स्वर सिद्ध, सब सतत पूर्व । (छोटे है क्षण पृ. 1)

11. सागरमुद्रा

इस संकलन में अज्ञेय की सन् 1967 से 1969 तक की 78 कविताएँ संकलित की गई हैं। इस संकलन की कविताएँ विषय व शिल्प की दृष्टि से कवि की प्रौढ़ता को व्यक्त करती हैं । अनेक कविताओं में काल की अवधारणा व्यक्त हुई है । 'काल की गदा', 'बालू घड़ी', 'नदी का बहना', 'गाड़ी चल पड़ी', 'गजर', कालस्थिति 1 ' कालस्थिति 2' आदि कविताओं में कवि की चेतना काल के अस्तित्व से प्रभावित हो जीवन मार्ग ढूँढने की चेष्टा करती सी प्रतीत होती हैं । 'काल की गदा' कविता में काल की अवधारणा प्रहारक के रूप में अथवा मृत्यु के रूप में व्यक्त हुई है । 'प्रेमोपनिषद', 'छातियों के बीच', 'मरण के द्वार पर' कविताएँ प्रेमानुभूति से युक्त हैं । 'सोया नींद में', 'जागा सपने में', 'देलोस से एक नाव' कविताएँ कवि की चेतना को स्पष्ट करती है । 'देलोस से एक नाव' खण्ड की कविताएँ अज्ञेय द्वारा ग्रीस भाषा से हिन्दी भाषा में रूपान्तरित हैं । इस संकलन की सागरमुद्रा शीर्षक नाम से ग्यारह कविताएँ हैं, जो अलग अलग बिम्ब देकर भिन्न-भिन्न प्रभाव छोड़ती प्रतीत होती हैं ।

12. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ

इस संकलन में अज्ञेय की 1970 से 1973 तक की कविताएँ संकलित हैं, जिन्हें तीन खण्डों में विभक्त कर दिया गया है- (1) वन झरने की धार, (2) खुले में खड़ा पेड़ तथा (3) नन्दा देवी । इस संकलन की कविताओं में अस्तित्व बोध, चेतना की विभिन्न स्थितियाँ, देश, काल, जीवन और मृत्यु आद के सन्दर्भ में कवि की अनुभूतियाँ व्यक्त हुई है । इस संकलन की पहली कविता 'एक सन्नाता बुनता हूँ' में कवि स्वर से सन्नाटा बुनता है । इसमें 'स्वर' ताना है तथा 'छन्द' बाना । कवि कहता है कि मरण से बंधे हुए होने पर भी वह इन स्वर हारों के माध्यम से स्वयं को काव्य से बाहर पाता है । 'सागरमुद्रा' नाम से कविता 'हरा अंधकार', 'खुले में खड़ा पडे' में 'कोई है जो', मृत्युर्धावति पंचमा, 'सागरमुद्रा' तथा 'नन्दादेवी' नामक खण्ड में 15 कविताएँ संकलित हैं । इसमें प्रकृति सौन्दर्य के भी दर्शन होते हैं ।

13. महावृक्ष के नीचे

इस संग्रह में अज्ञेय की 1974 से 76 तक की 42 कविताओं को स्थान मिला है । इन कविताओं में विषय वस्तु तो पिछले संकलनों के समान ही है किन्तु उनकी प्रस्तुति बदली हुई है । इसमें अभिजात्य गुण को छोडकर सरल बोलचाल की भाषा माध्यम बनी है । अधिकांश कविताएँ प्रकृति तथा सौन्दर्य के धरातल पर रची गई हैं । इस संग्रह की पहली कविता 'नाच' में कवि ने मानवीय तनाव व विवशता को प्रस्तुत किया हैं । 'झर गई 'दुनिया', 'चुपचाप नहीं', 'मथो', 'हट जाओ', 'जीओ देश', 'साल दर साल', 'धूप सनी छाया', 'बसन्त आया तो है' पिछले बसन्त के फूल', 'शरद विलायती' आदि कविताएँ सहज, किन्तु आत्मीय शिल्प में निर्मित हैं

अज्ञेय की काव्यमाला के विभिन्न पड़ावों का स्पष्टीकरण देते हुए डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा ने लिखा है, हिन्दी कविता के क्षेत्र में कवि अज्ञेय एक रोमांटिक चर्या में लीन या प्रेम प्रधान

कवि के रूप में पर्दापण करते हैं । इनकी प्रारम्भिक कविताओं में विफल प्रणयानुभूति दुख व निराश का अवसाद छाया हुआ है । यह यात्रा 'भग्नदूत' से लेकर 'इत्यलम' के मध्य भाग तक हुई । 'इत्यलम' में संकलित 'वंचना के दुर्ग' में उनका प्रयोक्ता कवि उभरने लगता है । प्रयोगवादिता की दृष्टि से 'हरी घास पर क्षण भर' तथा 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये' में अज्ञेय निरन्तर विकसित होते गये हैं । इसके बाद वे दर्शन व रहस्यवाद की ओर उन्मुख होते हैं जिसकी परिणति आँगन के पार द्वार की कविताएँ हैं ।.. शिल्प की दृष्टि से इत्यलम तक उनमें नवीनता के दर्शन विरल हैं । छन्दगत शैथिल्य के कारण ही वे छन्दमुक्ति का प्रयास करते हैं और उनका परवर्ती काव्य इसी प्रयास की सुन्दर कथा है ।''

19.3 असाध्यबीणा : कविता परिचय

'असाध्य वीणा कविता अज्ञेय द्वारा रचित हैं और उनके प्रसिद्ध और पुरस्कृत काव्य-संग्रह 'आँगन के पार द्वार से ली गयी हैं । 'असाध्य वीणा' अज्ञेय की एक महत्वपूर्ण कलाकृति है । यह उनकी लम्बी कविता है जो सर्जना के गहन एवं विशिष्ट स्तरों का संकेत देती है। इसकी कथा प्रख्यात प्राचीन चीनी कथा पर आधारित है । इस कविता पर बौद्ध आख्यान का प्रभाव भी माना जाता है । 'असाध्य वीणा' की कथा किसी राजा और कलाकार की साधना से बनी है । वीणा का निर्माण उत्तराखण्ड के गिरिप्रान्तर के घने वनों में उगे हुए 'किरीटी तरु' से हुआ है । वजकीर्ति ने इस वीणा को बनाया है । वजकीर्ति वीणा बनाकर राजा को भेंट कर देता है । वीणा को बनाने में वजकीर्ति ने अपना पूरा जीवन लगा दिया, वीणा तो बन गयी पर वजकीर्ति का जीवन समाप्त हो गया ।

इस वीणा को वजकीर्ति ने किसी अत्यन्त प्राचीन किरीट वृक्ष से निर्मित किया था । यह वृक्ष अत्यन्त पवित्र था । इस वृक्ष को वजकीर्ति ने मन्त्रों से पवित्र बनाया था । इसी कारण यह वीणा भी पवित्र हो गयी है । यह किरीट वृक्ष आकार में इतना ऊँचा था कि आकाश का स्पर्श करता था ।

जिस प्रकार योगीजन व सिद्धजन हठयोग द्वारा ईश्वर के समक्ष अपना अभीसिप्त ध्येय पूर्ण करवाने का प्रयास करते हैं, उसी प्रकार वस्तुत: वीणा का निर्माण करना ही वजकीर्ति की एकमात्र साधना थी कि किसी प्रकार वीणा का रचना कार्य पूरा हो । उस वीणा के पूर्ण होने के साथ ही वजकीर्ति की चिरकाल से चली आ रही अनवरत अनन्त, अबाधित साधना भी पूर्ण हो गयी और साथ ही जीवनलीला भी पूर्ण हो गई थी ।

अब वीणा को बजाने वाला कोई नहीं रहा । अत: वह वीणा 'असाध्य वीणा' होकर रह गयी । यद्यपि राजा के दरबार में अनेक कलाकार थे, लेकिन कोई भी कलावन्त उस वीणा को बजा न सका । एक दिन राजा के आमंत्रण पर प्रियंवद नाम का एक महान तपस्वी साधक वहाँ आया और उसने अपनी साधना से वीणा के असाध्य तारों को झंकृत कर दिया । साधक वजकीर्ति का कठोर तप व्यर्थ नहीं गया, उसकी साधना उचित और सही थी, किन्तु इतना सही है कि यह वीणा उसी दिन मुखरित और झंकृत हुई, जब कोई सच्चा स्वर-सिद्ध प्रियवंद जैसा साधक इसे अपनी गोद में रख सका । इस प्रकार साधक

उस महान कलावन्त की साधना से दरबार में रस का सागर उमड़ पड़ा । राजा तथा सम्पूर्ण प्रजा आनन्दमग्न हो गये ।

असाध्य वीणा से निःसृत होने वाले संगीत का जब राजा पर प्रभाव पड़ा तो उन्हें ऐसा लगा जैसे यश और विजय की देवी जयमाला लिए मंगल गीत गा रही हो और दूर कहीं विजय की दुंदुभि बज रही हो । उसे अपने सिर पर रखा राजमुकुट हल्का लगने लगा, मानो वह शिरीष का फूल हो । उनकी जलन, महान आकांक्षाएँ, द्वेष, चाटुकारिता आदि की समस्त दुर्भावनाएँ अचानक ही समाप्त हो गयी और उनमें जीवन रूपी धर्म-भाव निखर आया था, जिसमें ज्योति एवं प्रकाश विद्यमान था।

जिस व्यक्ति ने जिस विशेष स्तर तक उस अप्रतिम संगीत को ग्रहण किया उसके जागरण का परिणाम भी उसी सीमा तक रहा । सभा में स्थित अलग-अलग विशिष्ट अनुभूतियाँ परस्पर सन्धीत हुई तथा अब उस लोकातीत संगीत की विशिष्टता भी सार्वजनिक हो गयी । इसी विभोरता में वह साधक कहीं चला गया । इसी लघु कथा को लेकर इस कृति की रचना की गयी है ।

18.4 असाध्यबीणा - सन्दर्भ और व्याख्या

18.4.1 आ गये प्रियंवद!.. ..... प्रियंवद के चेहरे पर

आ गये प्रियंवद! केशकम्बली! गुफा-गेह!
राजा ने आसन दिया । कहा
"कृतकृत्य हुआ मैं तात! पधारे आप ।
भरोसा है अब मुझको
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी ।
लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े । लाये असाध्य वीणा
साधक के आगे रख, हट गये ।
सभा की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं,
प्रियंवद के चेहरे पर ।

संदर्भ और व्याख्या

असाध्य वीणा कविता की ये प्रारम्भिक पंक्तियाँ अज्ञेय द्वारा रचित हैं और उनके प्रसिद्ध और पुरस्कृत काव्य-संग्रह ' आँगन के पार द्वार से ली गयी है ।'

यह 'असाध्य वीणा' जिसे अनेक साधक साधने मे असफल रहे, उसी को साधने के लिए जब प्रियंवद केशकम्बली का आगमन राजा के दरबार में हुआ, तब राजा ने प्रियंवद को उस असाध्य वीणा के इतिहास से परिचित भी कराया और उसका स्वागत भी किया । प्रियंवद को उचित सम्मान देकर राजा ने अपने आपको कृतार्थ अनुभव किया । प्रियंवद के राजा के वार्तालाप से ही वीणा लाने का संकेत पाकर सेवक गण उस असाध्य वीणा को दरबार में ले आये । यह वीणा साधारण सामान्य वीणा नहीं थी । अपितु इसे तो

अनेक अनुभवी ज्ञानी साधने में सफलता प्राप्त नहीं कर सके थे । सम्भवत: इसी कारण इसे असाध्य वीणा की संज्ञा दी गयी थी । सेवकों ने वीणा साधक अर्थात् प्रियंवद के सम्मुख रख दी । वस्तुत: एक सच्ची, साधना में तनाव व लक्ष्याभिमुख लगन अवश्य होती है । इसके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता है । इसी सच्ची साधना के अभाव में अनेक साधक इस वीणा को साधने या संस्कारित करने में असफल रहे थे । अब समाप्त सभाजनों की उत्सुक आँखों ने पहले तो अद्भुत वीणा को देखा और फिर उसे साधने का प्रयत्न करने वाले साधक प्रियंवद को भी देखा ।

विशेष

सभा शब्द का प्रयोग यहाँ अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है । सभा में विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व राजा और रानी कर रहे हैं और सामान्य वर्ग को द्योतित करने के उद्देश्य से सभा शब्द का प्रयोग किया गया है ।

वीणा यहाँ अभिव्यक्ति का प्रतीक है । कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वीणा की मन्त्रमुग्ध, मनमोहक और आत्मविस्मृत सी करने वाली छवि सामान्य वर्ग के लिए महत्वपूर्ण है । कवि कहता है कि लोकातीत, कालातीत अभिव्यक्ति समस्त वर्गो के लिए होती है । यह अलग बात है कि वह आत्मभिव्यक्ति व्यक्ति अपनी-अपनी मनोभूमि से ग्रहण करता है ।

कवि के अनुसार वीणा अभिव्यक्ति का प्रतीक है और प्रियंवद की साधना की प्रक्रिया वस्तुत: कविता रचने के क्रम को सूचित करती है ।

18.4.2 उसी किरीट..... साथ ही जीवन-लीला

उसी किरीट तरू से वजकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढ़ा:
हठ-साधना यही थी उस साधक की
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला

संदर्भ और व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने वजकीर्ति के द्वारा किरीटी वृक्ष से वीणा गढ़ने की प्रक्रिया को प्रतीकात्मक शैली में व्यक्त किया है । वीणा के निर्माण की प्रक्रिया बताते हुए राजा प्रियंवद से कहता है कि तप:पूत वातावरण में स्थित ऐसे किरीट तरू से, जो स्वयं व्यष्टि व समष्टिगत समस्त चराचर जगत की असंख्य अनुभूतियों का पुंजीभूत रूप है, वजकीर्ति ने इस अद्भूत वीणा का निर्माण' किया था । इस असाध्य और अतिविशिष्ट वीणा की रचना-प्रक्रिया एक लम्बे अन्तराल के पश्चात समाप्त हुई और वीणा का निर्माण हुआ । जिस प्रकार योगीजन व सिद्धजन हठ-योग द्वारा ईश्वर के समक्ष अपना अभीप्सित ध्येय पूर्ण करवाने का प्रयास करते हैं, उसी प्रकार वस्तुत: वीणा का निर्माण कर वजकीर्ति की साधना ने स्वरूपाकार ग्रहण किया तथा वीणा का निर्माण हुआ तब जैसे उस वीणा के पूर्ण होने के साथ वजकीर्ति की साधना भी पूर्ण हो गयी और साथ ही जीवनलीला भी पूर्ण हो गयी थी ।

यहाँ कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का जीवन उसकी लीलाओं, क्रिया-कलापों, गतिविधियों का ही पुंजीभूत रूप होता है । वजकीर्ति के जीवन की समस्त गतिविधियाँ वीणा के निर्माण में केन्द्रित थी अत: जब वीणा सम्पूर्ण हुई तो जैसे वजकीर्ति के जीवन का ध्येय, उसका लक्ष्य पूर्ण हो गया । उसकी समस्त गतिविधियाँ उसी वीणा की आयत्त होकर लुप्त हो गयीं । 'वीणा' अभिव्यक्ति का प्रतीक है । जब कवि इस चराचर, जड-चेतनमय सृष्टि से समृक्त होता है तो उसके जीवन की समस्त क्रिया कलापों में उसकी संचित समष्टिगत अनुभूतियाँ प्रतिबिम्बित होने लगती है । जब यह सार्वजनीन अनुभूतियाँ नितान्त वैयक्तिक रूप धारण करती हैं तो कवि अपनी इन अनुभूतियों को एक निश्चित आकार, एक सुदृढ़ स्वरूप प्रदान करता है ।

विशेष

यहाँ वजकीर्ति यशःकाय कवियों का प्रतीक है, जिन्होंने सार्वजनीन अनुभूति को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर यश प्राप्त किया और अमर हो गये ।

किरीटी तरू वस्तुत: परम्परा से गहीत व्यष्टि और समष्टिगत असंख्य अनुभूतियों का संकेतक है ।

18.4.3 चुप हो गया..... क्या है असाध्य

चुप हो गया प्रियंवद ।
सभा भी मौन हो रही ।
वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया ।
धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया ।
सभा चकित थी- अरे, प्रियंवद क्या सोता है-
केशकम्बली अथवा होकर पराभूत
झुक गया वाद्य पर-
वीणा सचमुच क्या है असाध्य

सन्दर्भ और व्याख्या

प्रस्तुत पद्यांश में कवि अज्ञेय ने बड़ी कुशलता के साथ एक ओर तो प्रियंवद की शालीनता, विनम्रता और श्रद्धा भावना को व्यक्त किया है और दूसरी और सभा के वातावरण को भी संकेतित कर दिया है । अज्ञेय मानो यह व्यक्त करना चाहते हैं कि सच्चे शिष्य-साधक और रचनाकार कम बोलते हैं, पर काम का बोलते हैं । प्रियंवद भी अपनी बात कहकर और वीणा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के पश्चात् चुप हो गया था । प्रियंवद की बातें सुनकर सभा भी मौन हो गयी । सभा में से कोई भी व्यक्ति कुछ भी नहीं बोला । जब चारों और इस प्रकार का सन्नाटा व्याप्त हो गया, तब प्रियंवद ने वीणा को उठाया और अपनी गोद में रख लिया । वीणा को गोद में रख लेना इस बात का सूचक है कि वह वीणा के तारों को यकायक छेड़ना नहीं चाहता है, अपितु पूर्ववर्ती साधकों द्वारा किये गये कार्य - कलापों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करना चाहता है । जब कोई साधक या कलाकार किसी को अपनी गोद में स्थान दे देता है. तब ऐसा कहकर वह उससे आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है । प्रियंवद क्योंकि सच्चा शिष्य साधक

है, इसलिए वह वीणा को अपनी गोद में रखकर श्रद्धा और स्नेह भाव से उसके साथ अपनी आत्मीयता कायम करना चाहता है । इसी प्रक्रिया में प्रियंवद धीरे-धीरे गोद में रखी हुई वीणा पर झुक जाता है ।

प्रियंवद का धीरे-धीरे वीणा पर झुकना और उसके तारों पर अपना मस्तक टेक देना इस बात का संकेत है कि वह वीणा के प्रति अपनी पूज्य और पवित्र भावना को समर्पित करते हुए भीतर उससे अपना जुड़ाव अनुभव करना चाहता है । प्रियंवद के ऐसे क्रिया कलापों को देखकर सभा आश्चर्यचकित हो जाती है । उपस्थित जन-समूह यह निर्णय नहीं कर पाता है कि प्रियंवद का लक्ष्य क्या है? क्या वह वीणा और उसके तारों पर मस्तक टिकाकर सो गया है अथवा कुछ सोच रहा हैं - ध्यान से देखें तो सभासदों या सभाजनों की यह प्रक्रिया और उनके मन में ऐसे विचारों का आना स्वाभाविक ही है । उपस्थित सभाजनों में से कोई तो यह कल्पना करता है कि प्रियंवद सो गया है और कोई यह सोचता है कि प्रियंवद भी अन्य कलाकारों की भाँति पराजित भाव से वीणा पर झुक गया है । यदि ऐसा है तो निश्चित ही यह वीणा असाध्य ही है । इसे कोई भी कलाकार साध नहीं पायेगा ।

विशेष

प्रस्तुत पद्यांश में अज्ञेय जी ने यह प्रतिपादित किया है कि प्रियंवद की मन: स्थिति क्या थी? निश्चित ही एक साधक की मनःस्थिति को सही रूप में चित्रित कर दिया गया है ।

अज्ञेय ने राजसभा में उपस्थित जन-समूह को मनोवैज्ञानिक चित्रण कर दिया है । वीणा पर झुका देखकर लोगों के मन में तरह तरह के तर्क-वितर्का के साथ ही जनसमूह के मन में वीणा बजने और न बजने को लेकर जो द्न्द् और उत्सुकता है, उसे भी यहाँ कम से कम शब्दों में अभिव्यक्ति दे दी गयी है ।

अज्ञेय ने वीणा को प्रियंवद द्वारा शीघ्र ही नहीं बजवाया ऐसा करके उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि वीणा असाध्य थी ही, विशिष्ट भी थी । ऐसा करके राजा रानी और जन-समूह की उत्सुकता और प्रतीक्षा को और अधिक जाग्रत भी कर दिया गया है ।

प्रस्तुत पद्यांश में भाषा का प्रयोग बड़ा सहज प्रतीत होता है । हाँ, इतना अवश्य हैं कि यदि कोई संस्कृत शब्द भी आया है तो वह सहजग्राह्म है । जन समूह की मानसिकता का व्यक्त करने के लिए जो शैली अपनाई गयी है, वह सटीक और सार्थक है । इस शैली में व्यंजनात्मकता अधिक है । 'धीरे-धीरे' शब्द का प्रयोग पुनरूत्ति़प्रकाश अलंकार को भी प्रमाणित करता है और साथ ही साथ प्रियंवद की उस मानसिकता को भी ।

18.4.4 पर उस स्पन्दित..... की साधना रही-

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा-
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था ।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीट-तरू को ।

कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारूवाद्य के सम्मुख आवे-
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन-भर की साधना रही-

सन्दर्भ और व्याख्या

प्रियंवद को वीणा के समक्ष नतमस्तक देखकर सम्पूर्ण सभा हतप्रभ सी थी । सभी के हृदय में प्रियंवद की सफलता के प्रति शंका उत्पन्न हो रही थी, परन्तु प्रियंवद वस्तुत: अपनी अन्तश्चेतना से संपृक्त हुआ बाह्य संसार से पूर्णतया कट चुका था । इस प्रकार वह आत्मनिर्वासित सा हो उस असाध्य वीणा व अतिप्राचीन किरीटी तरू से अपना तादात्म्य स्थापित कर रहा था । इसी भाव को इन पंक्तियों में प्रतीकात्मक रूप से चित्रित किया गया है ।

प्रियंवद को वीणा पर नतमस्तक होता हुआ देखकर सभी के हृदय में सहज आशंका ने जन्म लिया । प्रियंवद की सफलता-असफलता, विजय-पराजय के प्रति अनेक शंकाएँ, नाना प्रश्न सभाजनों के अन्तर्मन को व्यथित करने में लगे, परन्तु वातावरण शब्दरहित, नीरव, स्तब्ध था जिसमें कहीं कोई हलचल न थी । ऐसे स्पन्दित सन्नाटे में गतिहीन, क्रियाहीन प्रियंवद वस्तुत: वीणा को साधने में प्रयासरत था अथवा वह आत्मशोधन कर रहा था । कवि अज्ञेय ने यहाँ सन्नाटे का अति सार्थक विशेषण 'स्पन्दित' प्रयुक्त किया है । बाह्य वातावरण नीरव होते हुए भी अन्तर्मन सहज आशंका के वशीभूत होकर अति व्याकुल अव्यवस्था मे स्पन्दित हो रहा है ।

कवि कह रहा कि कि वह शब्दहीन स्पन्दित वातावरण नीरव हो रहा था । प्रियंवद एकाग्रचित हो, एकात्मभाव से शनै: शनै: अपनी अन्तश्चेतना से संम्पृक्त हुए । वह बाह्य वातावरण से कटकर उस असाध्य वीणा को साधने का प्रयत्न कर रहा था । 'साधना' शब्द गहराइयों तक, अपने साध्य से जुड़ता है, उससे तादात्म्य स्थापित करता है, तब साधने की प्रक्रिया आरम्भ होती है । कवि कहता है कि वह मौन प्रियंवद वस्तुत: स्वयं को शोधन की प्रक्रिया भी उसी एकान्त मे कर रहा था । शोधन अर्थात परिशोधना करना स्वयं संस्कारयुक्त बनाना ही है । अपने अहंभाव (वैयक्तिकता) को शोधने की प्रक्रिया है। इस प्रकार का आत्मशोधित आत्मविवेचित युक्त प्रियंवद स्वयं को उस सघन एकान्त में एकनिष्ठ भाव से उसी प्राचीन किरीटी तरू को सौंप रहा था, जिससे इन असाध्य वीणा का निर्माण हुआ था । एकान्त भी सघन तब बनता है जब व्यक्ति आत्मनिवार्सित हो जाता है । वह बाह्य क्रिया-कलापों से पूर्णतया विलग होकर अपनी अन्तश्चेना से समृक्त होता है । ऐसे एकान्त में वह साधक प्रियंवद अपने परिशोधित अस्तित्व को, व्यक्तिगत रूप को, उस किरीटी तरू के प्रति समर्पित कर रहा था । वह किरीटी तरू जो परम्परा से गृहीत व्यष्टि और समष्टिगत असंख्य अनुभूतियों का अखण्डन पुंजीभूत स्वरूप है, उसके प्रति आज प्रियंवद अपना आत्मशोधित व्यक्तितत्व, समर्पित कर रहा था ।

प्रियंवद अपने को इस समष्टिगत स्वरूप के प्रति समर्पित स्वत: ही यह प्रश्न करता है कि ऐसा कौन प्रियंवद है, ऐसा कौन साधक है जो अपने अहंभाव से कुरूपित व्यक्तितत्व के साथ इन मन्त्रपूत वीणा का साक्षात्कार भी कर सके । अर्थात् अहंग्रस्त व्यक्तितत्व इस

अप्रतिम कलाकार के वाद्य का साक्षात्कार ही नहीं कर सकता, उसे झंकृत करना तो दूर की बात है । दम्भ से विरूपित साधना साधन का सत्य से साक्षात्कार कराने में बाधक होती है । प्रियंवद स्व-अस्तित्व को विस्मृत कर कहता है कि ऐसा कौन समर्थ हैं जो इस असाध्य वीणा को झंकृत कर सके । यह वीणा कोई सामान्य वीणा नहीं है, अपितु यह तो वजकीर्ति के सम्पूर्ण जीवन की साधना का ही प्रतिफल है । वजकीर्ति ने बाह्य उपादानों द्वारा, जिनमें आदिम अनुभूतियाँ संचित थीं, अपनी अनवरत साधना करके इस वीणा का निर्माण किया था । अत: इस अति विशिष्ट वीणा को कौन झंकृत कर सकता है?

विशेष

अज्ञेय ने 'आत्मनेपद' में कहा है - प्राचीन कवि, अहं को विलीन करके ही लिखते थे, उनके लिए कविता स्वास्थ्य लाभ का साधन ही नहीं, स्वस्थ व्यक्ति का आनन्द थी ।

प्रस्तुत पद्यांश में सौंपा शब्द अतिसारगर्भित है । वस्तुत: यह अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया का मूल मंत्र हैं - सत्य के सम्मुख साधना के सम्मुख, व्यक्ति अपनी अलग इकाई को सौंप कर, अहंमुक्त होकर ही अपनी व्यक्तिनिष्ठ साधना की परम उपलब्धि कर सकता है ।

18.4.5 राजा ने अलग..... वह कर देगा

राजा ने अलग सुना
जय देवी यश: काय
वरमाल लिए
गाती थी मंगल-गीत
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राजमुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का ।
ईष्या महदाकांक्षा, द्वेष, चादुता
सभी पुराने लुगड़े-से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा ।

सन्दर्भ और व्याख्या

प्रस्तुत पद्यावतरण अज्ञेय कृत लम्बी कविता 'असाध्य' वीणा से अवतरित है । पूर्वोक्त प्रसंग में ही असाध्य वीणा से निःसृत होने वाले संगीत का विभिन्न श्रोताओं के मन पर पड़े प्रभाव का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वीणा से निकले स्वर-संगीत ने राजा और को प्रबोधित किया । सभी सभा जनअपने-अपने में आत्मविस्मृत हो गये । राजा ने जब इस स्वर को सुना तो उसे ऐसा लगा जैसे यश और विजय की देवी जयमाला लिए मंगल गीत गा रही हो और दूर कहीं विजय की दुंदुभि बज रही हो । उसे अपने सिर पर रखा राजमुकुट हल्का लगने लगा, मानो वह शिरीष का फूल हो । उनकी जलन, महान आकांक्षाएँ, द्वेष, चाटुकारिता आदि समस्त दुर्भावनाएँ अचानक ही समाप्त हो गयी और उनमें जीवन रूपी स्वर्ण का धर्म भाव निखर आया था, जिसमें ज्योति एवं प्रकाश विद्यमान था ।

भाव यह है कि वीणा से निकली हुई स्वर लहरी इतनी मोहक और प्रभावशाली थी कि उससे निकले अमृतमय आनंद के कारण राजा की सभी स्वार्थ, ईर्ष्या और प्रलोभन आदि की भावनाएँ विलीन हो गई । राजा के सिर पर शोभा पाने वाला मुकुट भी उसे भारहीन और आनंददायक प्रतीत हुआ । अब तक राजा के जीवन में जो भी विकृतियाँ थी, वे समाप्त हो गई । परिणाम स्वरूप राजा का जीवन निर्मल हो गया और धर्म की भावना उसके हृदय में उदित हो गई ।

विशेष

प्रस्तुत पद्यांश में वीणा की महत्ता प्रतिपादित की गई है।वह असाध्य होने के साथ-साथ असाधारण भी बतला दी गई है ।

धन-संपदा की तुलना में प्रेम और समर्पण को ही सच्ची निधि बतलाया गया है । उपमा अलंकार का सौन्दर्य कविता की पंक्तियों में आये भाव को कई गुना बढ़ाने मे समर्थ है । सभी पुराने लुगड़े से झर गये' जैसा अप्रस्तुत नवीन व्यावहारिक और मौलिक है । 'जीवन कांचन' में रूपक अलंकार का सौन्दर्य देखा जा सकता है ।

18.4.6 रानी ने अलग.....प्यारी को साधेगी

रानी ने अलग सुना
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी-
तुम्हारे ये मणि-माणिक, कंठहार, पट-वस्त्र
मेखला किंकिणि-
सब अन्धकार के कण हैं ये! आलोक एक है
प्यार अनन्य! उसी को
विद्युल्लता घेरती रहती है रस भार मेघ को,
थिरक उसी को छाती पर, उसमें छिप कर सो जाती है
रानी
उस एक प्यारी को साधेगी ।

सन्दर्भ और व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर अज्ञेय ने प्रतीकात्मक शैली में यह स्पष्ट किया है उस कालातीत, संगीत के स्वरों को सभी ने अपनी-अपनी मनोभूमि पर ग्रहण किया । राजा ने उससे विजयश्री की वरमाला देखी तो रानी ने अनन्य प्यार का आलौकिक संदेश सुना । चिरकाल से असाध्य उस आलौकिक वीणा में से जब सीमातीत संगीत की स्वर लहरियाँ समग्र सभा में गुंजिम होने लगी तो सभा में विद्यमान प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी-अपनी मनोभूमि पर उसे अपने भावयन्त्र के अनुसार ग्रहण किया । रानी को वे संगीत स्वर एक आलौकिक संदेश की भाँति ध्वनित होते सुनायी दिये ।

जिस प्रकार आकाश का मेघाच्छादन छँटता है और अकस्मात् ही त्वरित गति से उसमें विद्युत कौंध जाती है उसी प्रकार जब रानी के अन्तर्मन से वैयक्तिक बोध, मोहादि के मेघ, उस दिव्य संगीत के प्रभाव में छँटने लगे तब अकस्मात् ही उसके हृदय में सत्य रूपी कंठहार, बहुमूल्य वस्त्र, कटिबन्ध, कंगन अर्थात् सभी चमकते हुए ऐश्वर्य के साधन

वस्तुत: अन्धकार के इधर-उधर फैले कण मात्र प्रतीत हुए । उसे लगा कि इनकी दीप्ति वस्तुत: मिथ्या है । समग्र संसृति में मात्र एक ही ज्योति प्रकाश है जो आसाधरण असीमित प्रेम है ।

रानी को ऐसा प्रतीत होता है कि समष्टि के प्रति अप्रमेय प्रेम का ही एकमात्र आलोक है तथा सकल सृष्टि के भौतिक उपादान मिथ्या हैं । जिस प्रकार, जलपूरित मेघ को भेदकर, उसके अन्दर से निकलने वाली विद्युत की दीप्ति जैसे मेघ के हृदय प्रदेश पर थिरकती हुयी सी प्रतीत होती है. अन्तत: वह उसी मेघ में बड़े विश्वस्त भाव से सिमटकर सो जाती है, उसी प्रकार वह असीमित प्रेम, करूणा के रस के आर्द्र उस समष्टिगत स्वरूप के अन्तस् से निकलकर दिक्-दिगन्त में विर्कीण हो जाता हैं, उसके आलोक से न केवल एक व्यक्ति सत्ता अपितु सभी, अनुरंजित हो जाते हैं ।

यह असाधारण प्रेम समष्टिगत स्वरूप से निकल कर उसी में समाहित हो जाता है और उस विराट स्वरूप में नष्ट होने के भय से रहित यह प्रेमभाव आश्वस्त भाव से निवास करता हैं । अत: रानी उसी अप्रमेय प्रेम को प्राप्त करना अपने जीवन का ध्येय स्वीकार करती हैं जो इस अनन्य प्रेमभाव से समृक्त होगा वही समष्टिगत स्वरूप से भी सम्बद्ध होगा और स्वयं को उसी विराट स्वरूप में विसर्जित कर देगा ।

विशेष

प्रस्तुत पद्यांश प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है ।

वस्तुत: व्यष्टि सत्ता के विलयन को अनिवार्य मानते हुए भी कवि यहाँ यह स्वीकार करता है कि इस महासिन्धु से तिरने की प्रक्रिया सबकी अलग और विशिष्ट होती है ।

भाषा परिष्कृत और विशिष्ट है । सब अंधकार के कण हैं पंक्ति भाषा की लाक्षणिकता की सूचक है ।

18.4.7 सब डूबे तिरे.....मूक हो गयी

सब डूबे तिरे झिपे जागे-
हो रहे वंशवद स्तब्ध:
इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी,
संघीत हुई
पा गयी विलय ।
वीणा फिर मूक हो गयी ।

सन्दर्भ और व्याख्या

अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि चिरकाल से असाध्य उस आलौकिक वीणा में जब लोकातीत संगीत लहरियाँ प्रफुटित हुई तो उनके सान्द्र और सरस प्रभाव में सम्पूर्ण राज्यसभा आकण्ठ निमग्न हो गयी । सभी एक साथ उस संगीत की सरसता में डूब गये, परन्तु उस गहन, गम्भीर संगीत से महासिन्दु से तिरने की प्रक्रिया सबकी पृथक-पृथक और विशिष्ट होती है । प्रत्येक व्यक्ति ने अपने विशिष्ट भावयन्त्र के माध्यम से अपनी पृथक मनोभूमि पर आलौकिक संगीत को ग्रहण किया और संतुष्टि प्राप्त की, अत: तिरने की प्रक्रिया सबकी अलग-अलग हुई ।

सुप्तावस्था व जागरण की अवस्था के मध्य तन्द्रावस्था होती है जिसमें आलस्य के वशीभूत हो व्यक्ति इतनी शान्ति अनुभव करता है कि वह छोटा सा कार्य करने में स्वयं को सक्षम नहीं मानता । यह अवस्था कुछ ही क्षणों में समाप्त हो जाती है । अत: उस कालातीत संगीत के प्रभाव से उन सभाजनों की चेतना जागृत हुई । इससे पूर्व प्राणों का स्पन्दन होते हुए भी वह जड़ीभूत व्यक्ति के सदृश थे, क्योंकि उनकी चेतना सुप्तावस्था में थी, परन्तु आज इस सहजानुभूतिपरक सरस संगीत की सरसता होकर सभा में बैठे हैं। कवि कहता है कि जिस व्यक्ति ने जिस विशेष स्तर तक अप्रतिम संगीत को ग्रहण किया उसके जागरण का परिणाम भी उसी सीमा तक रहा । सभा में स्थित अलग-अलग विशिष्ट अनुभूतियाँ परस्पर सन्धीत हुई तथा अब उस लोकातीत संगीत की विशिष्टता सार्वजनीन हो गयी । सभाजन परस्पर भावनाओं के स्तर पर जुड़कर एक हो गये विशिष्टतायें एक विराट अनुभूति मे विलीन हो गयी और संगीत ने अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया ।

विशेष

प्रस्तुत पद्यांश में इस टिप्पणी का सन्धीत होने और विलय पा जाने में आत्मविसर्जन का विधान किया गया है । कला विशिष्ट है, पर उस विशिष्टता का भी अन्त में यदि विसर्जन नहीं होता है तो वह मिथ्या अहं को जागृत करने के कारण अपने लक्ष्य से च्युत होगी, ऐसी कवि की मान्यता है ।

प्रस्तुत पद्यांश में डूबे, तिरे झिपे, जागे यह क्रम अत्यन्त प्रभावपूर्ण है । सभी व्यक्ति एक साथ नदी में नहीं डूबते हैं परन्तु अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार किनारे पर अलग-अलग समय पर पहुँचते हैं और तट पर पहुँचते ही क्लांति वश कुछ क्षण निश्चल से पड़े रहते हैं और तत्पश्चात् जागरण होता है, यही क्रम वस्तुत: सभा जनों और उस संगीत के प्रभाव के मध्य बना रहा ।

18.4.8 श्रेय नहीं कुछ..... सब में गाता है

श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था सुना आपने जो वह मेरा नहीं
न वीणा का था :
वह तो सब-कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त,अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है ।

सन्दर्भ और व्याख्या

जब लोकातीत संगीत की स्वर लहरियाँ शान्त हुई तो समस्त सभाजन व राजा उस कलावन्त प्रियंवद के प्रति कृतार्थ भाव रखते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे ।

केशकम्बली स्वरजित् प्रियंवद सभा को सम्बोधित करते हुए कहता है कि इस असाध्य वीणा को साधने में तथा इसमें सुप्त संगीत को जागत करने में मैने कोई प्रयास नहीं किया है । वस्तुतः जिस आलौकिक, सहानुभूतिपरक संगीत ने आज सभी की अन्तरात्मा को अखण्ड आनन्द दिया है । उस संगीत के सृजन का श्रेय मुझे प्राप्त नहीं होता क्योंकि मैं अंगुलियाँ पकड़कर शनैः-शनै' उस ब्रह्मण्ड में पहुँच गया था । जहाँ संगीत के अतिरिक्त कुछ विद्यमान न था ।

प्रियंवद सभाजनो के समक्ष उस समष्टिगत स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए कहता है कि वह परम्परा से गृहीत व्यष्टि और समष्टिगत अनुभूतियों का पुंजीभूत रूप महाशून्य है अर्थात् जहाँ उसके स्वर ध्वनित होते हुए भी इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है । अतः वह महामौन है । अखण्ड, अप्राप्य, अतुलनीय है । एकमात्र वही इस सम्पूर्ण संसृति में पूर्णरूप है, जो एकात्म, एकांगी भाव से साधानारत साधन के लिए प्राप्य है अन्यथा उसे प्राप्त करना द्रवित करना असम्भव है, वह अनुपमेय है ।

प्रियंवद कहता है कि वह समस्त प्राणीजनों में स्पन्दित होने वाला अखण्ड स्वरूप वस्तुतः शब्दों से परे है, अनिवर्चनीय है और शब्दहीन होते हुए भी वह अखिल सृष्टि के प्रत्येक जीव में गाता है अर्थात उसमें जीवन का संगीत प्रवाहित होता है और वही उनके जीवन में आशा, विश्वास, श्रद्धा के स्वरों को झंकरित करता है ।

विशेष

कवि अज्ञेय नवीन शब्दों को गढ़ने से सिद्धहस्त हैं जिसका एक उदाहरण तथता जैसा शब्द है ।

प्रस्तुत पद्यांश में वर्ण मैत्री व लयात्मकता से अंश प्रभावपूर्ण बन गया है ।

18.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में कवि अज्ञेय के जीवन सन्दर्भ, सृजन - संघर्ष की मनोभूमि, उनके व्यक्तित्व व रचनाओं की जानकारी के साथ-साथ 'असाध्य वीणा' पर विस्तृत जानकारी विद्यार्थियों को दी गई है । वस्तुतः यह सत्य है कि हिन्दी की आधुनिक काव्यधारा मे भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद, निराला जी की दिशा दृष्टि को सांस्कृतिक संवेदन व संस्कार के साथ रचनात्मकता में ढालने वालों में अज्ञेय का नाम विशिष्ट प्रतीत होता है ।

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अज्ञेय के जीवन-सन्दर्भ के विभिन्न पक्षों का विवेचन-विश्लेषण कीजिए
2. अज्ञेय के व्यक्तित्व व कृतित्व पर एक सटीक लेख लिखिए
3. निम्नांकित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए -
   - (क) सब डूबे तिरे, झिपे जागे-..... वीणा फिर मूक हो गयी
   - (ख) पर उस स्पन्दित सन्नाटे में .....जीवन-भर की साधना रही

4. टिप्पणी लिखिए-
    1. आँगन के पार द्वार
    2. बावरा अहेरी
    3. असाध्य वीणा

18.8 सन्दर्भ ग्रंथ

भग्नदूत – अज्ञेय
चिन्ता – अज्ञेय
इत्यलम – अज्ञेय
हरी घास पर क्षण भर – अज्ञेय
इन्द्र धनु रौंदे हुए ये – अज्ञेय
अरी ओ करूणा प्रभामय – अज्ञेय
कितनी नावों में कितनी बार – अज्ञेय
बावरा अहेरी – अज्ञेय
क्योंकि मैं उसे जानता हूँ – अज्ञेय
पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ – अज्ञेय
सम्पादक रमेश चन्द्र शाह – अज्ञेय : असाध्यवीणा
नरेन्द्र देव वर्मा – अज्ञेय व समकालीन काव्य
राजकमल राय – अज्ञेय : सृजन व संघर्ष
नन्दकिशोर आचार्य – अज्ञेय की काव्य तितिर्षा
शिवकुमार मिश्र – अज्ञेय का रचना संसार

इकाई-19 सच्चिदानन्द हीरानन्द बात्सायन 'अज्ञेय' काव्य का अनुभूति व अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अज्ञेय काव्य का अनुभूतिपक्ष (संवदेनात्मक पक्ष)

- 19.2.1 रहस्यवाद
- 19.2.2 प्रेम व नारी चित्रण
- 19.2.3 राष्ट्रीय भावना
- 19.2.4 मानवतावाद
- 19.2.5 बुद्धिवाद
- 19.2.6 निर्वैयक्तिकरण
- 19.2.7 यथार्थवाद
- 19.2.8 आत्मसमर्पण व आत्मत्याग
- 19.2.9 सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्
- 19.2.10 अस्तित्ववाद
  - 19.2.10.1 व्यष्टि का महत्व
  - 19.2.10.2 परिवेशज यथार्थ
  - 19.2.10.3 मृत्यु बोध
  - 19.2.10.4 क्षणबोध
  - 19.2.10.5 यथार्थवादी चिन्तन

19.3 अज्ञेय काव्य का अभिव्यंजना शिल्प

- 19.3.1 बिम्ब विधान
- 19.3.2 प्रतीक विधान
- 19.3.3 अप्रस्तुतविधान
- 19.3.4 छन्द विधान
- 19.3.5 काव्य-भाषा

19.4 सारांश

19.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.6 संदर्भ ग्रंथ

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अज्ञेय के काव्य की मूल संवेदना को समझ सकेंगे ।
- अज्ञेय काव्य में परम्परा, प्रगति, प्रयोग, सांस्कृतिक बोध, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद व मानवतावाद आदि काव्य प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे ।
- अज्ञेय काव्य के शिल्प पक्ष (काव्य-भाषा, बिम्ब, प्रतीक व अप्रस्तुत आदि) के विविध प्रयोगों को गहराई से समझ सकेंगे ।
- कवि अज्ञेय का समग्रता में विश्लेषण करते हुए उनके काव्य का अस्वाद व मूल्यांकन कर सकेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

अज्ञेय को पढ़ते हुए छायावादोत्तर कविता के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना होगा । आरंभिक कविताओं में अज्ञेय छायावाद के प्रभाव से मुक्त नहीं है, परंतु वही कुछ - कुछ नएपन का आग्रह भी दिख जाता है । छायावाद के अंत के साथ प्रगतिवाद आया । यह सन् 1935-36 का समय है । अज्ञेय प्रगतिशील लेखक संघ के आयोजकों में उपस्थित, रहे परंतु व्यक्तित्व की स्वतंत्रता शीघ्र ही उनका प्रमुख आग्रह बनी तथा 1943 में तार सप्तक का संपादन भले ही संयोग हो, तार सप्तक में कवि अज्ञेय का अपने वक्तव्य में प्रयोग और अन्वेषण को कविता का महत्वपूर्ण प्रयोजन बताते हैं । प्रयोगवाद की मुख्य समस्या नए अनुभव, नए मूल्य-बोध और भाषा शिल्प के प्रयोग की है ।

छायावादोत्तर कविता में प्रयोगवाद और नयी कविता के अग्रणी कवि के रूप में अज्ञेय का महत्व निर्विवाद है । आधुनिक भाव-बोध और संवेदना के कवि के रूप में उनकी एकदम अलग पहचान है । उनके आधुनिक बोध के मूल में है व्यक्तित्व की खोज । अज्ञेय की कई कविताएँ काव्य की रचना प्रक्रिया की ही कविताएँ हैं । उनमें अधिकतर कविताएँ अवधारणात्मक हैं जो व्यक्ति और सामाजिक के द्वंद को, रोमांटिक व आधुनिक के द्वंद को प्रत्यक्ष करती हैं । जिजीविषा, मानवतावाद, रहस्यवाद, बौद्धिकता, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद आदि उनके काव्य संवेदना के प्रमुख विषय रहे है । साथ ही अज्ञेय निवैयक्तिक संवेदना को भी पर्याप्त महत्व देते हैं ।

आधुनिक भावबोध के साथ-साथ अज्ञेय ने काव्यभाषा और काव्यशिल्प की दृष्टि से हिन्दी कविता को नयी समृद्धि दी है । उन्होंने छायावादी संस्कारों के प्रभाव से मुक्त होने को प्रक्रिया में एक नयी काव्यभाषा अर्जित की जिससे प्रयोगवाद और आगे नयी कविता की पहचान बनी । अज्ञेय की नयी काव्यभाषा आकस्मिक घटना नहीं है । उसके पीछे लंबा संघर्ष है । उनकी लम्बी कविताएँ नाटकीय भी हैं और प्रगीतात्मक भी । वस्तुतः अज्ञेय काव्य शिल्प की सिद्धि के कवि है ।

19.2 अज्ञेय काव्य का अनुभूति पक्ष

सच्चिदानन्द हीरानन्द वातस्यायन अज्ञेय का नाम हिन्दी कविता की प्रयोगवादी धारा के प्रतिनिधि के रूप में लिया जाता है । अज्ञेय प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि भी हैं और पुरस्कर्ता भी है । उनका काव्य विभिन्न जीवन दृष्टियों का समाहार किए हुए है । उनकी प्रारम्भिक कृतियों में रहस्यवादी जीवन सत्य की अभिव्यक्ति हुई

है। सन् 1942 ई. के पश्चात् की रचनाओं में राष्ट्रीयता, देशप्रेम और मानवतावादी, दृष्टिकोण प्रमुख रहा है और अधुनातन काव्य संकलनों में बुद्धिवाद, निवैयक्तिकवाद, नागरिक सभ्यता के प्रति अनास्था आदि के स्वर प्रधान रहे हैं ।

अज्ञेय के काव्य में अनुभूति पक्ष को निम्नांकित रूपों में समझा जा सकता है ।

19.2.1 रहस्यवाद

अज्ञेय की प्रारम्भिक कृतियों में चिन्ता व इत्यलम में संगृहित कविताओं में रहस्यवादी भावना व्यक्त हुई है । चिन्ता में उन्होंने अपनी रहस्य भावना को अपना धर्म कहा है । 'इत्यलम' की कविताओं में आत्मा व परमात्मा का सम्बन्ध निरूपण किया गया है । अज्ञेय का रहस्यवाद असीम, अनन्त सम्बन्धी अनुभूति और ज्ञान के द्वंद्व का रहस्यवाद है- ज्ञान कहता है कि जो आवृत्त रहस्य है, उससे कभी मिलन नहीं हो सकता और अनुभूति मिलन को आवश्यक मानती है । इस प्रकार तर्क-द्वंद्व में अज्ञेय अपनी रहस्य-भावना को कोई निश्चित रूप नहीं दे पाते-

"**असीम का नंगापन ही सीमा है**.
रहस्यमयता वह आवरण है जिससे ढककर हम
उसे असीम बना देते हैं ।"[1] (इत्यलम् पृ. 94)

अज्ञेय की रहस्य भावना का असीम कोई सत्ता नहीं है. जिसे ईश्वर कहते है । उनकी आत्मशक्ति ही वह असीम सत्ता है, जिससे वह अभिभूत होना चाहते. हैं-

मैं भी एक प्रवाह में हूँ
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है ।"[3]

[4](इत्यलम्, पृ. 93)

इस प्रकार अज्ञेय का रहस्यवाद एक विशिष्ट प्रकार का रहस्यवाद है, जिसमें भावना के समान ही तर्क को भी स्थान है और जिसका अनन्त प्रियतम कोई ईश्वर नहीं है, वरन् कवि की अपनी आत्मा के भीतर की शक्ति है । आत्मा ही प्रियतम है और वही प्रेयसी, वही असीम है, वही ससीम है ।

19.2.2 प्रेम व नारी चित्रण

अज्ञेय घनीभूत इच्छाओं के आवेग को प्रेम कहते हैं । उनकी दृष्टि में प्रेम का दुर्दम रूप ही प्यार बन जाता है-

कुछ नहीं यहाँ भी अंधकार ही है
काम रूपिणी वासना का विकार ही है
यह गुथीला व्योमग्रासी धुआँ जैसा
आततायी दुष्ट दुर्दम प्यार ही है ।[6] (**हरी घास पर क्षण भर**, **पृ**. 46)

अज्ञेय प्रेम को एक निर्बन्ध भावना मानते हैं । प्रेम पात्र को पाने की और उसे अपनी ही अधिकार सीमा में रखने की जो प्रवृत्ति मनुष्य में होती है-वह सामाजिक नियम संयम के कारण । प्रेम को पुष्ट व सुसंस्कृत रूप देने के लिए अज्ञेय आत्मदान की भावना को परम आवश्यक मानते हैं । इसी प्रकार प्रेम व विचारशीलता को वे परस्पर सहयोगी

मानते हैं । विचारों को वे प्रेम को प्रकाशित करने वाली दीपालोक मानते हैं और प्रेम को विचारों के दीप को स्नेह देने वाला जीवन तत्त्व किन्तु प्रेम व विचारशीलता दोनों का सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता है और एक के अभाव में दूसरे की सत्ता बड़ी विशद अनिर्वन्ध जान पड़ती है ।

जिस समाज ने पीड़ित निम्न वर्ग के प्रति आधुनिक काव्य में सहानुभूति व्यक्त की गई है, उसी प्रकार युगों से उपेक्षित और प्रताड़ित नारी के प्रति भी आधुनिक कवियों का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण व मानवतावादी रहा है । प्राय: प्रत्येक आधुनिक कवि ने नारी के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की है और मनुष्य जीवन में उसको एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद प्रतिष्ठित किया है । अज्ञेय ने भी नारी के विषय में अपने विचारों को अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है । वे नारी को काव्य की प्रमुख प्रेरणास्त्रोत मानते हैं । अज्ञेय की दृष्टि में पुरूष तर्कनामय है और नारी भावनामय-

पुरूष तर्क का कठपुतली भर
स्त्री असीम अन्त: निर्झर । (चिन्ता, पृ. 82)

उसमें इतनी उदारता होती है कि पुरूष की प्रताड़ना को सहकर भी वह उसके लिए आत्मदान को सदैव तत्पर रहती है । अपनी इस हृदय सरलता के कारण ही नारी पुरूष के द्वारा सदैव छली जाती रही है-

सूरज ने खींच लकीर लाल
नम का उर चीर दिया । (इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 80)

इस प्रकार अज्ञेय सिर्फ नारी के प्रति सहानुभूति ही व्यक्त करते हैं, कि वह सदैव पुरूष द्वारा छली जाती है । नारी जीवन-निर्माण की कोई स्वस्थ कामना उनके काव्य में नहीं मिलती । उनके काव्य में नारी रूप व श्रृंगार की प्रतिमा बनकर ही प्रतिष्ठित है । 'चिन्ता', 'इत्यलम', व 'बावरा अहेरी' की नारी विषयक कविताओं में अज्ञेय की श्रृंगार भावना अधिक स्पष्ट है ।

19.2.3 राष्ट्रीय भावना

अज्ञेय की राष्ट्रीय भावना उनकी कविताओं में ही नहीं प्रत्युत उनके कार्यो में भी अभिव्यक्त हुई है । जब वे एम.ए. के विद्यार्थी थे, तभी देश में स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाने के उद्देश्य से क्रांतिकारी षड्यंत्रों में भाग लेने लगे थे । अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण उन्हें जेल यात्राएँ करनी पड़ी । देश की स्वाधीनता के लिए महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन में अज्ञेय को विश्वास नहीं था । वे क्रांति के द्वारा ही स्वतन्त्रता प्राप्ति को संभव मानते थे । शासन सत्ता देशप्रेमियों को कारागार में बन्द कर देती है । उनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लेती है और उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ देती है, किन्तु शासकों की दमन नीति बन्दी की स्वाधीनता कामना को प्रभावित नहीं कर पाती और उसकी त्याग भावना के समक्ष बलिदान स्वयं लज्जित हो जाता है-

उसकी भूख प्यार भी नियमित
उसकी अन्तिम सम्पत्ति परिहृत
लज्जित पर बलिदान देखकर

उसका जीवन दान
मुक्त बन्दी के प्राण ।[8] (इत्यलम् पृ. 57)

अज्ञेय देश की स्वाधीनता चाहते हैं और स्वाधीनता के माध्यम से देश के ऐसे विकास की कामना करते हैं कि भारत पुन: विश्व को आलोकित करने में समर्थ हो सके । 'कर से कर तक, उर से उर तक, बढ़ती जाए ज्योति हमारी छप्पर तल से महल, शिखर तक चढ़ती जाओं ज्योति हमारी । पैतीस कोटि शिराएँ जलकर कोना कोना दीपित कर दे एक अन्य दीपक सा भारत, जगती को आलोकित कर दे ।' अज्ञेय की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना की द्योतक कविताएँ उनके काव्य संग्रह 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ स्पष्टत: देखी जा सकती हैं । इस संग्रह में कवि की राष्ट्रीयता व्यापक भूमिका पर उतर कर उन्हें उस सोपान पर ले जाती है जहाँ राष्ट्र भक्ति के लिए और व्यक्ति राष्ट्र के प्रति समर्पित दिखाई देता है ।

19.2.4 मानवतावाद

आधुनिक युग के अन्य कृति-कवियों के समान ही अज्ञेय के जीवन दर्शन में भी मानवतावाद को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है । मानव में ही ईश्वरत्व की प्रतीति में, समाज के पीड़ित दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश की भावना व्यक्त करने में, लोक हित की भावना की अभिव्यंजना में और अनेक रूपात्मक मानवलोक के प्रति आकृष्ट रहने के मूल में अज्ञेय की मानवतावादी विचार क्रियाशील रहते हैं ।

समाज के शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश की भावना में अज्ञेय के मानवतावाद का दूसरा रूप देखा जा सकता है, जो मानव को जाति, धर्म, अर्थ और राजनीति के क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से अपमानित करते हैं और उसका शोषण करते हैं । ऐसे व्यक्तियों के प्रति अज्ञेय ने घृणा व्यक्त की है और उन्हें ललकारा है । श्रम व संगीत को अज्ञेय मानवत्व का विकास मानते हैं-

"**मुझे उसे मानव कहते संकोच होता है**,
मैं कभी अंतस् में भी उसे मनुष्य समझने का भाव
नहीं पाता । (अज्ञेय : इत्यलम् पृ. 80)

लोकहित की कामना अज्ञेय के मानवतावाद की एक अन्य विशेषता है । मानव के जीवन के अधिकाधिक हित-साधन की पुकार अज्ञेय के काव्य में सर्वत्र है । लोक कल्याण की भावना के बिना कोई कवि सफल नहीं हो सकता । इसलिए अज्ञेय का सन्देश है कि-

भावनाएँ तभी फलती है कि उनसे लोक के
कल्याण का अंकुर कहीं फूटे । (हरी घास पर क्षण भर, पृ. 44)

19.2.5 बुद्धिवाद

तटस्थतापर्वूक सत्य की खोज करने की प्रवृति तथा बुद्धि-संगत बातों से ही आस्था की भूमि तैयार होती है । अज्ञेय ने अपने अन्तर्गुहावासी आराध्य से निवेदन किया है कि

उन्हें जीवन में ऐसी विवेक दृष्टि मिले जिसके द्वारा वे सत्य की खोज में दृढ़ आस्था रख सके और समस्त बाधाओं को जी सकें-

आकांक्षा का मधुर कुहासा
सुख का तम करे
न ओझल
वह पैना विवेक जिसको
दुश्चिंता कोई करे न बोझल
सच का आग्रह
निष्ठा का हठ
अग जग के विरोध का धक्का जिसको ढहा न जाए । [12] (अज्ञेय : इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 95)

सत्य की खोज में अज्ञेय को जो सत्य के अनेक रूप दिखाई दिए उनकी तुलना में उन्हें अपना खण्ड-सत्य ही अच्छा लगा-

अच्छे
अनुभव की भट्टी में तपे हुए कण दो कण
अन्तर्दृष्टि के
झूँठे नुस्खेवाद, रूढ़ि उपलब्धि परायी के प्रकाश से
रूप शिव, रूप सत्य की दृष्टि के । (अरी ओ करूणा प्रभामय पृ. 1)

अज्ञेय की मान्यता है कि सत्य की खोज व उसकी उपलब्धि उतनी कठिनता से साध्य नहीं होती है, जितनी कठिनता से साध्य उसकी अभिव्यक्ति होती है, शब्द अर्थात् अभिव्यक्ति व सत्य के बीच में जो दीवार होती है, वे उसे ढहा देना चाहते हैं-

यह नहीं कि मैंने सत्य पाया था
यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी-कभी मिलता है (अरी ओ करूणा, प्रभामय पृ. 29)

अज्ञेय ने अपनी भावना को भी तर्क के प्रकाश में देखा है । चिन्ता में प्रेम का विश्लेषण अज्ञेय की बुद्धिवादी दृष्टि को ही प्रमाणित करता है । इसी प्रकार 'हरी घास पर क्षण भर", 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये' और 'अरी ओ करूणा प्रभामय' की कविताओं में बुद्धिवादी प्रेरणाएँ क्रियाशील है ।

19.2.8 निर्वैयक्तिकरण

अज्ञेय के काव्य की मूल प्रेरणाएँ व्यक्ति से ही संबद्ध है, किन्तु व्यक्तिवाद को अवांछनीय तत्त्व मानते हैं । अत: उन्होंने निर्वैयक्तिकरण का सन्देश दिया है । उनका मत है कि 'काव्य' अपने को अपनी अनुभूति से पृथक् करने का प्रयत्न है-अपने ही भावों के निर्वैयक्तिकरण की चेष्टा । बिना इसके काव्य निरा आत्मनिवेदन है और सच होकर भी इतना व्यक्तिगत है कि काव्य की अभिधा के योग्य नहीं है-सर्वजनीनता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है ।

निर्वैयक्तिकरण की प्रमुख विशेषता व्यक्तिगत अनुभूति के साधारणीकरण में निहित है । अज्ञेय की निम्नांकित पंक्तियों में यही प्रवृत्ति स्पष्ट हुई है-

आज के विविक्त अद्वितीय. इस क्षण को
पूरा हम जी ले, पी लें, आत्मसात कर ले । (चिन्ता की भूमिका, पृ.6)

इस प्रवृत्ति को अज्ञेय ने 'अहम का विलयन' भी कहा है । अहं के विलयन के प्रति, आज के कवि की उदासीनता पर चिन्ता और उसके (अहं के विलयन) प्रति अपना विश्वास व्यक्त करे हुए अज्ञेय ने कहा है- काव्य रचना का किसी भी कला-सृष्टि का अधिकार तभी आरम्भ होता है जब व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विलयन हो जाए, यह मानना तो दूर की बात रही, आज का कवि साधारणत: इतना भी नहीं मानता कि कविता या कि कला-सृष्टि व्यक्ति के विलयन का माध्यम है या कि कविता के द्वारा कवि व्यक्ति को वृहत्तर इकाई में विलीन कर देता है । आज का कवि तो कविता को वरंच-व्यक्तित्व की, व्यक्ति के अहम् की, प्रखरतर अभिव्यक्ति और उस अहम् को पुष्ट करने वाली रचना मानता है ।

अज्ञेय का निर्वैयक्तिकरण सम्बन्धी दृष्टिकोण पाश्चात्य विचारक टी.एस. इलियट के, अव्यक्तिवाद से प्रभावित है । अपनी इस प्रवृति विशेष के कारण अज्ञेय ने अपने काव्य को व्यक्तिवाद की संकीर्णताओं से मुक्त रखने का प्रयत्न किया है ।

19.2.7 यथार्थवाद

अज्ञेय काव्य में जीवन सत्य यथार्थवाद के रूप में भी अभिव्यक्त हुआ है । रहस्यवाद को छोड़कर उनकी शेष सभी मान्यताएँ यथार्थवाद से प्रभावित है । प्रेम के सम्बन्ध में अज्ञेय का दृष्टिकोण मनोविश्लेषण पर आधारित है और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के नाम से अभिहित किया जा सकता है । अज्ञेय की मानवतावादी चिन्तन दृष्टि भी यथार्थवाद से प्रभावित है । इतना अवश्य है कि अज्ञेय का यथार्थवाद व्यक्तिवादी यथार्थवाद है और इसीलिए उन्होंने मानवता की अपेक्षा मानव व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया है । राष्ट्रीय भावना से परिभाषित होकर उन्होंने जो काव्यरचना की है, उसमें यथार्थवाद सर्वाधिक मुखर हुआ है । देश पर लगभग सभी राष्ट्रीयतावादी कवियों ने कविताएँ लिखी है, किन्तु अज्ञेय की 'हमारा देश' नामक कविता जैसी यथार्थवादी कविताएँ इस विषय में कम ही मिलेगी । इसी प्रकार देश की वास्तविक दशा का चित्रण 'हरा भरा है देश' नामक कविता में हुआ है । अपनी यथार्थवादी प्रेरणाओं व व्यंग्यात्मकता के लिए यह कविता दृष्टव्य है। कविता का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है-

हरे भरे है खेत
मगर खलिहान नहीं
बहुत महतो का मान
मगर दो मुट्ठी धान नहीं । (अरी ओ करूणा प्रभामय पृ. 41)

अज्ञेय के अन्य जीवन सम्बन्धी विश्वास भी यथार्थवादी तत्त्वों से अनुप्राणित है । व्यक्ति की अनुभूति को प्रधान स्थान देने के कारण अज्ञेय का यथार्थवाद व्यक्तिवादी यथार्थवाद का एक अंग है । यथार्थवाद जगत के बौद्धिक चिन्तन को अज्ञेय संकट की

स्थिति मानते हैं । उनकी मान्यता है कि यथार्थजगत के अनुभव के आधार पर उसका जो चित्रण होगा वही श्रेयस्कर हो सकेगा ।

व्यक्ति की अनुभूति को प्रधान स्थान देने के कारण अज्ञेय का यथार्थवाद व्यक्तिवादी यथार्थवाद का एक अंग है । यथार्थवाद जगत के बौद्धिक चिन्तन को अज्ञेय संकट की स्थिति मानते हैं । उनकी मान्यता है कि यथार्थजगत के अनुभवों के आधार पर उसका जो चित्रण होगा वही श्रेयस्कर हो सकेगा । यर्थाथ के बौद्धिकरण के कारण जो संकट उपस्थित होता है, उसे अज्ञेय ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है-

"संक्षेप में यह कहूँ कि मैं व्यक्ति को अपने प्रति भी उत्तरदायित्व मानता हूँ समाज के प्रति भी, यह कोई नई बात नहीं है । पर मैं अपने प्रति उत्तरदायित्व की प्राथमिकता मानता हूँ और समाज के प्रति उत्तरदायित्व को उसी से उत्पन्न ।"

19.2.8 आत्म समर्पण व आत्म त्याग

अज्ञेय ने ईसा बुद्ध व आदम का आदर्श हमेशा अपने काव्य सृजन के समक्ष उपस्थित किया है । क्योंकि ईसा, बुद्ध व आदम का आत्मत्याग व समर्पण अभूतपूर्व है । इन्होंने संसार का वह सब कुछ सहन किया जिसे सामान्य मनुष्य वरण नहीं कर पाता, परन्तु मानवता की सच्ची सेवा की । अज्ञेय ने मनुष्यता के लिए उस यातना व बलिदान को आदर्श माना जो ईसा को मिला । मर्माहत होकर जिस नारी ने अपने पुरूष को संसार के लिए दान कर दिया, वह यशोधरा गौतम पत्नी और वह आदम जिसने मनुष्यता की उपासना के लिए दिव्य सत्य से सम्बन्ध हेतु लौकिक सम्बन्ध छोटे नहीं होने दिए । इनका सभी का आदर्श अज्ञेय ने स्वीकार किया तथा अपने काव्य में आत्म समर्पण व आत्म त्याग को जीवन-सत्य अभिव्यक्त कर मानव को प्रेरणा दी । सृजनात्मक कर्म के प्रति निस्वार्थ, जागरूक रहना आत्म-समर्पण व मानव सेवा को जीवन का अंग मानकर चलना, यह सब अज्ञेय का चारित्रिक मूलधन है ।

मानव सेवा न केवल कर्म से ही, बल्कि चिन्तन मनन से भी होती है । यहाँ तक कि हृदय की प्रत्येक धड़कन में भी मनुष्य मात्र की वेदना ही धड़कती रहे-

मेरे हर सुख में
हर दर्द में हर यत्न. हर हार में
हर साहस, हर आघात के हर प्रतिकार में
धड़के नारायण । तेरी वेदना जो गति है, मनुष्य मात्र की । (कितनी नावों में कितनी बार, पृ. 34)

19.2.9 सत्यम् शिवम् व सुन्दरम्

अज्ञेय की जीवन दृष्टि में सत्यम् शिवमू व सुन्दरम् का समायोजन निहित है । कवि का सत्य कल्याणमय व सुन्दर होना चाहिए ताकि वह प्रभावोत्पादक हो ।

अज्ञेय के अनुसार कवि का उद्देश्य सत्य की भूमि में सौन्दर्य के पौधे से शिवत्व का फल प्राप्त करना रहा है । जिस प्रकार ज्ञान, भावना व संकल्प से ज्ञान, भक्ति व कर्ममार्ग

की सरणियाँ बनती है, उसी प्रकार जीवन की सुघड़ता सत्य, शिव व सुन्दर के समन्वय में ही संरक्षित रहती है ।

सत्य, शिव व सुन्दर की स्थापना के लिए अज्ञेय ने पौधे का आदर्श अपने सम्मुख रखा है । जिस प्रकार पौधा सड़ा, गला, कूड़ा कचरा जो भी उसकी जड़ो व पाले में डाल दिया जाता है, भोगता है, लेकिन उससे जो पुष्प निकलता है, वह रूप, रस, गन्ध व शिवत्व से मण्डित होता है । अशुच को शिवता प्रदान करना तथा असुन्दर को उपयोगी बनाना इन पुष्प पौधों से जानने की शिक्षा कवि अज्ञेय देता है । कवि के हृदय की उदारता व उनका अपना जीवन सत्य इसी में आकर अपना गन्तव्य पाता है-

सड़ा दे दो
गला दे दो
पचा दे दो
कचरा दो, **राख दो**, **अशुच दो**, **उच्छिष्ट दो**
वह तो है सृजन-रत
उसे सब रस है
और इस हेतु (हम जाने या न जाने यह)
हम सारे फूल हैं
घास फूस डाल पात
लता-क्षुप
औषधि, **वनस्पति**, **हुमाली बन वीथियाँरूप सत्य**, **रस सत्य**, **गन्ध सत्य**, **रूप शिव।**
(इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ. 85-86)

19.2.10 अस्तित्ववादी

19.2.10.1 व्यक्तिगत महत्व

हिन्दी के प्रयोगवाद व नयी कविता के मूल में अस्तित्ववादी दर्शन प्रतिष्ठित है । अस्तित्ववाद आधुनिकता की देन है । अस्तित्ववाद में व्यक्ति की जो महत्ता स्थापित हुई है, वही महत्ता अज्ञेय के काव्य में भी प्रदर्शित हुई है । व्यक्ति की महत्ता का समाज में पूर्ण रूप से विलय हो जाना समाज व व्यक्ति दोनो के लिए अहितकर होगा । अस्तित्ववादी दर्शन में समाज का विकास व्यक्ति के जागरूक विवेक पर भी निर्भर है । अज्ञेय भी मानते हैं कि निज की इयत्ता खत्म करके नई दिशा-तलाश नहीं की जा सकती है । यह बात उनकी इस कविता में देख सकते हैं-

"किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं है
स्थिर समर्पण है हमारा
हम सदा से द्वीप है स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं है
क्योंकि बहना रेत होना है ।।"
हम बहेंगे तो रहेंगे नहीं

पैर उखडेंगे । प्लवन होगा । ढहेंगे सहेंगे । वह जायेंगे ।
और फिर हम पूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते है ?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे
अनुपयोगी ही बनायेंगे ।। " (हरी घास पर क्षण भर, पृ. 251)

यहाँ अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति की इयत्ता का खत्म होना सब कुछ का खत्म हो जाना है । अज्ञेय को व्यक्ति के सामर्थ्य पर विश्वास है । आज का व्यक्ति यद्यपि अविश्वास अनास्था, घुटन, संत्रास से ग्रस्त है तथापि सामाजिक परिवर्तन व मूल्यमानों की स्थापना में भी वही सक्षम है । आज का व्यक्ति घुटन, पीडा, असहाय, अजनबी व अकेलापन महसूस करते हुए भी समाज में रहने व जीने के लिए अभिशप्त है अर्थात् एक तरह से अपने अस्तित्व के प्रति सचेत भी है । यदि समाज से उसका द्वंद्व रहेगा तो उसका अस्तित्व भी नहीं रहेगा । उसे अपनी सार्थकता, अपना अस्तित्व समाज के मध्य ही सिद्ध करना है ।

19.2.10.2 परिवेशज यथार्थ

नई कविता में जो अनास्था निराशा, अनिश्चय दिखाई देता है वह अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है । आज का मानव अपने वादों व मानवमूल्यों के विघटन के कारण उत्पन्न अराजकता से गुजर रहा है । बुद्धि वैभव के अपार भण्डार का अधिकारी होते हुए भी नया कवि विषम सामाजिक यथार्थ के मध्य सफल नहीं हो पाता । अपनी इस उपेक्षा ओर लौकिक स्तर पर अभावों के बोझ को ढोते हुए उसके मन का उत्पीड़न अनास्था में परिवर्तित होने लगता है । असल में अज्ञेय की कविता जब यंत्रयुग के खतरे को व्यक्त करती है । तब वह केवल मशीन का खतरा नहीं है बल्कि वह आधुनिक युग में होने वाली जीवन की दुर्गति का खतरा है जहाँ जीवन अभूतपूर्व ढंग से खत्म हो रहा है । जहाँ आसपास घुटन है, त्रास है और आत्मा की अनुकरण की मोहमयी प्यास है यानि जीवन का अभूतपूर्व संकट अस्तित्ववादी दर्शन के अनुरूप अज्ञेय आधुनिक युग की विसंगति और मानव जीवन पर मंडाराते संकट को चेतना के स्तर पर महसूस करते हैं । अज्ञेय कहते हैं -

'उद्यम की कड़ी-कड़ी में बँधते जाते मुक्तिकाम
मानव की आशाएँ ही पल-पल
उसको छलती जाती है । । (अरी ओ करूणा प्रभामय पृ. 45)

19.2.10.3 मृत्युबोध

अस्तित्ववादियों ने मृत्यु चर्चा बहुत अधिक की है । उनकी धारणा है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व को तभी प्रमाणित कर सकता है, जब मृत्यु से साक्षात्कार कर ले । आज के युग में विसंगति व अनिश्चितता है । इससे मृत्यु का भय सदैव छाया रहता है । परिणामत: नया कवि मृत्यु के सम्बन्ध में सोचता है । अज्ञेय के ' आँगनके पार द्वार' संग्रह के 'चक्रान्त शिला' खण्ड में कुछ इस प्रकार की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है ।

19.2.10.4 क्षणबोध

अस्तित्ववादी दर्शन के 'मृत्युबोध' के साथ 'क्षणबोध' का प्रभाव अज्ञेय की कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । इस दर्शन में भी प्रत्येक क्षण की स्वतन्त्र सत्ता है, प्रत्येक क्षण का महत्त्व है । मनुष्य प्रत्येक क्षण को भोगने के लिए लालायित रहता है । अज्ञेय कहते हैं-

"साँस का पुतला हूँ मैं
जरा से बँधा हूँ
और मरण को दे दिया गया हूँ
पर एक जो प्यार है न उसी के द्वारा
जीवनमुक्त मैं किया गया हूँ
काल की दुर्वह गदा को एक
कौतुक भरा बाल क्षण तोलता है । (आँगन के पार द्वार, पृ. 30)

इस कविता में प्रेम के एक क्षण की अनुभूति तथा मृत्युबोध दोनों की अनुभूति हुई है डॉ. धर्मवीर भारती ने घनीभूतक्षण का अचानक उद्गम नहीं माना है । उनकी दृष्टि में कितने ही क्षण है, कितनी ही स्थितियाँ है जो प्रत्यक्ष असम्बद्ध लगती है, पर कुल मिलाकर हमारे चेतन, अर्द्धचेतन मन में लहर पर लहर इस एक बिन्दु को उभारती रहती है और संपूर्ण जीवन प्रक्रिया एक क्षण से सम्बद्ध हो जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव अज्ञेय काव्य पर भी अधिक पड़ा है ।

19.2.10.5 अज्ञेय के काव्य में अतियथार्थ चिन्तन

अज्ञेय की कविता पर अतियथार्थवाद का भी प्रभाव पड़ा है । अतियथार्थवाद प्रथम विश्वयुद्ध की राजनीतिक व सामाजिक चहल पहल के पश्चात् पलायनवादी और रोमांटिकवाद के विद्रोह में विकसित हुआ, उसी प्रकार अज्ञेय की कविता मार्क्सवादी प्रभाव अथवा समाजवादी आदर्शो को साहित्य क्षेत्र से निष्कासित करने की प्रतिक्रियास्वरूप विकसित हुई । अतियथार्थवाद सामाजिक नैतिक या धार्मिक आदर्शो के विरूद्ध था । अज्ञेय की कविता भी परम्परा, नैतिकता तथा धर्म की विद्रोही है । आज का कवि अपने अस्तित्व के आगे की नियति को मिथ्यावंचना और भ्रम मात्र समझता है ।

अतियथार्थवाद की तरह अज्ञेय के यहाँ भी कभी-कभी सामाजिक जीवन से विमुख व निरपेक्ष रहकर अपने मन की गहन पर्तों को उधेड़ कर उसमें छिपी हुई दमित वासनाओं को चित्रित करने में यौन अश्लीलता विद्यमान रहती है । एक मुख्य बात यह है कि अज्ञेय ने जहाँ पर यौन चित्रण किये हैं वहाँ उनकी भाषा तत्सम संस्कृत प्रधान हो गई और वह तथाकथित अश्लीलता हो गये जिसे भदेस कहते हैं । अतियथार्थवाद में वैयक्तिक अहं को भी अभिव्यक्ति दी गई है । अज्ञेय के काव्य में वैयक्तिक अहं की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । अज्ञेय का अहं रूढ़िगत अवधारणाओं को नकारता है तथा वर्तमान परिवेश के संदर्भ में एक क्रांतिकारी भूमिका निभाता है ।

19.3 अज्ञेय के काव्य का अभिव्यक्तिपक्ष (शिल्प)

अनुभूति (संवेदना) के साथ अभिव्यक्ति (शिल्प) का अविभाज्य सम्बन्ध है । किसी भी रचना का शिल्प और तंत्र भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि वह वस्तु जिसका संप्रेषण होना है । शिल्प के पारम्परिक एवं बहुप्रचलित उपकरणों को भी विशिष्ट प्रयोग के द्वारा नवीन संस्कार दिया जा सकता है । शिल्प के मुख्य उपकरण बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत, भाषा, शब्द और छंद आदि माने गये हैं । यहाँ शिल्प के इन्हीं उपकरणों के संदर्भ में अज्ञेय के काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार किया जा रहा है ।

19.3.1 बिम्ब योजना

बिम्ब शब्द मानस-प्रतिमा का पर्याय है । जीवन और जगत् की अनुभूति हमें बाह्य संवेदनों से प्राप्त विभिन्न बिम्बों के रूप में ही होती है । अज्ञेय ने बिम्बों का प्रयोग अपनी भाषा में मूर्तिकरण की क्षमता बढ़ाने, चिन्तन को अधिक प्रेषणीय बनाने, वस्तु को अधिक ग्राह्य एवं स्पष्ट करने, उसे प्रतीक से युक्त कर संप्रेषण में सहायक बनाने आदि के लिए किया है । ऐन्द्रिय-बिम्बों के अतिरिक्त प्राकृतिक, पौराणिक वैज्ञानिक, प्रगतिसूचक, मनोवैज्ञानिक, प्रतीक समन्वित बिम्बों की अवधारणा उनके काव्य में हुई है। 'अरी ओ करूणा प्रभामय' में तो अनेक कविताएँ बिम्बात्मक ही हैं । गति की दृष्टि से गत्यात्मक एवं स्थिर, स्पर्श पर आधृत कोमल एवं कठोर आकार के आधार पर विराट एवं लघु आदि अनेक प्रकार के बिम्ब अज्ञेय के काव्य में प्राय: सर्वत्र विद्यमान है । अज्ञेय द्वारा प्रयुक्त प्रमुख विश्वों का विवेचन, यहाँ संक्षेप में किया जा रहा है ।

साध्य और साधन रूप बिम्ब

अज्ञेय ने साध्य रूपों में बिम्बों का प्रयोग प्राय: कम ही किया है । साध्य रूप में बिम्बांकन का एक उदाहरण है 'शरद पूर्णिमा' कविता । कवि इन पंक्तियों में शरद पूर्णिमा को रूपायित करता है-

चाँद चितेरा / आँक रहा है शारद नभ में / एक चीड़ का खाका ।" (अरी ओ करूणाप्रभामय : 'रांसेन्सु' की अज्ञेय द्वारा अनूदित कविता, पृ. 115)

यहाँ कवि का मूल उद्देश्य शरत पूर्णिमा का बिम्ब प्रस्तुत करना है । वह किसी विचार को हमारे सामने नहीं प्रस्तुत करना चाहता है । इस बिम्ब को प्रस्तुत करने में कल्पना का प्रयोग हुआ है । शरत् चन्द्रिका में एक चीड के खाके का दर्शन कवि कल्पना से ही करता है । पाठक अपनी ग्रहण कल्पना से यह समझ लेता है कि किस प्रकार आकाश सफेद बादलों के टुकड़ों से घिरा हुआ है ।

प्रकृति सम्बन्धी बिम्ब

किसी भाव या विचार की पृष्ठभूमि में प्रकृति के नाना रूपों के बिम्ब अज्ञेय के काव्य में आये हैं । अनेक कविताएँ प्रकृति के किसी एक खण्ड एवं विश्रृंखल बिम्ब से युक्त हैं । आकाश, क्षितिज, सूर्य, चन्द्र, तारे, बादल. इन्द्र-धनुष, वन, पर्वत, नदी, सागर, तालाब, खेत, खलिहान, दलदल, तट, आग, द्वार सरोवर, झील, धूप, किरण, शैवाल आदि प्रकृति के अनेक रूपों के खण्ड चित्र अज्ञेय के काव्य में देखे जा सकते हैं । प्रकृति के ये बिम्ब कहीं अलंकृत हैं, कहीं मानवीकृत तथा कहीं प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उन्हें

चेतनसत्ता के रूप में अंकित किया गया है । ऋतुराज कविता में प्रकृति का मानवीकृत रूप भी ध्यान देने लायक है । एक स्थल पर सूर्य में कुरर पक्षी का आरोप करके कवि ने संध्याकालीन धूप का बहुत ही प्रभावशाली रूपांकन किया है । परिणामस्वरूप विश्व बड़ा प्रभावी बन पड़ा है ।

सूप-सूप भर /धूप-कनक /यह सूने नभ में गयी बिखर/ चौधाया बीन रहा है /उसे अकेला एक कुरर । (अरी ओ करूणा प्रभामय, 'धूप' कविता)

सूप में भरकर धूप रूपी कनक को नभ-रूपी आँगन में बिखेरा जाना तथा सूर्य रूपी अकेले कुरर पक्षी का उसे बीनते जाना संध्याकालीन प्रकृति का एक चेतन बिम्ब उपस्थित कर देते हैं । धूप पर आरोप से स्वर्ण अथवा गेहूँ के दानों का रूपक ही नहीं बनता, धूप की पीली पड़ती छवि भी आँखों के सामने आ जाती है । इसी तरह 'रहा है उसे अकेला एक कुरर से सूर्य के द्वारा धूप-रूपी दानों चुनना ही निरूपित नहीं होता, क्रमशः धूप के विलीन होने और संध्याबेला के गहराने का संकेत भी मिलता है ।

इसी प्रकार भादों की उमस, 'माघ', 'उषा के समय', 'रजनीगंधा', 'पावस प्रात', 'शिलंड', 'बैशाख की आधी', 'दूर्वाचल', 'चक्रांत शिला', 'महानगर कुहरा', 'सागर मुद्रा', 'नन्दा देवी' आदि अनगिनत कविताओं में किसी न किसी रूप में प्रकृति के बिम्बों की उपस्थिति देखी जा सकती है ।

ऐन्द्रिय बिम्ब

रूप-रंग, ध्वनि, गंध, स्पर्श और रस से सम्बन्धित बिम्बों का अज्ञेय ने संश्लिष्ट प्रयोग किया है । लाल, नीला, उजला, काला, पीला, हरा, रूपहला, पूरा, धूसर आदि वर्णो से युक्त बिम्ब अनेक स्थलों पर आये हैं । रंग संवेदना की दृष्टि से संभवतः अज्ञेय को लाल रंग सर्वाधिक प्रिय है । इसके विभिन्न शेड्स का चित्रण दृष्टव्य है-

1. थाल पर धरे लाल आम
2. लाल अंगारे से डह डह इस / पंचमुख गुडहल के फूल को

ध्वनि-बिम्बों की दृष्टि से अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' कविता का विशेष महत्त्व है । इस कविता में अनेक बिम्बों का सफल प्रयोग हुआ है । उदाहरण के लिए-अन्न की सोंधी खुदबुद, नयी वधू की सहमी-सी पायल ध्वनि, नौका पर लहरों की अविराम थपक, गोधूलि की लघु टुनटुन, प्रलय का डमरू नाद आदि दूसरे स्थलों पर भी अनेक ध्वनि-बिम्ब ध्यानाकर्षक है जैसे-चट-चट-चटाक का सहमा, हिम खण्ड का तड़कना, मर्मर कछार के झाऊ का, खड़-खड़ पलास का तिप् पहाड़ी काक की डाक हाक्-हाक् आदि ।

यद्यपि अज्ञेय ने आर्द्र स्निग्ध, कठोर तथा मिश्रित आदि अनेक रूपों में स्पर्श बिम्बों का प्रयोग किया है किन्तु तप्त-स्पर्श के अंकन में उनकी प्रवृत्ति विशेष रूप से रमी है । तप्त-स्पर्श के कुछ उदाहरण ये हैं-"एक भट्टी", "एक आवाँ स्वतः तप्त", "भाप के अग्नि गर्भ बादल", "मेरा श्वास है उत्तप्त", "उमस में वेकल, अचल है पात चल दल के", अनुभव की भट्टी में तपे हुए कण दो कण, झुलसती लू अनुभव का दाह, अनुभूति का तेजाब, जली हुई छाया, झुलसे हुए पत्थर आदि । इस प्रकार प्रायः सभी ऐन्द्रिय संवेदनाओं का प्रयोग अधिकांश स्थलों पर अनुभूतियों के संदर्भ में किया है, फलस्वरूप उनका ऐन्द्रिय बोध स्थूलता की सीमा का अतिक्रमण कर जाता है ।

19.3.2 प्रतीक विधान

प्रतीक व्युत्पत्तिपरक अर्थ है, वह वस्तु जो किसी अन्य वस्तु का बोध कराये, प्रतीक के विषय में अज्ञेय ने गम्भीरता से विचार किया है । उपमानों के सम्बन्ध में नयेपन की जंग के अतिरिक्त उन्होंने नये प्रतीक सृजन को काव्य के लिए आवश्यक माना है । जब तक कोई कवि अपने साहित्य में प्रतीकों की सृष्टि करता रहता है, तब तक स्वस्थ रहता है, जब वैसा करना बन्द कर देता है तो जड़ हो जाता है । प्रतीक अनिवार्य तथा अनेकार्थ सूचक होते हैं । अर्थ के जितने अधिक स्तर एक साथ झलकें, प्रतीक उतना ही अधिक प्रभविष्णु होते हैं । प्रतीकों से युक्त काव्य इसीलिए विशेष अर्थ-गर्भित हो उठता है ।

अज्ञेय के काव्य में प्रतीकों का जमकर प्रयोग हुआ है । उनके अधिकांश काव्य-संकलनों का नामकरण भी प्रतीकार्थ रखने वाली कविता के आधार पर हुआ है । "हरी घास पर क्षण भर", "बावरा अहेरी", "इन्द्रधनु रौंदे हुए थे", "आँगन के पार द्वार", "कितनी नावों में कितनी बार" आदि में क्रमश: हरी घास, अहेरी, इन्द्रधनु, द्वार, नाव आदि प्रतीकार्थ रखते हैं एवं विभिन्न आशयों को द्योतित करते हैं । अज्ञेय के काव्य में प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों की संख्या सर्वाधिक है । नदी, द्वीप, सागर, तट, आंगन, पार, डगर, पगडण्डी, आकाश, सूर्य, तारे, बादल, इन्द्रधनु शिशिर, धूलिकण, नाव, तिनका, बून्द, किरणें, भोर आदि प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों का प्रयोग अलग-अलग सन्दर्भो में हुआ है । अज्ञेय के काव्य में हरी घास एक विशिष्ट प्रतीक है । इसको कवि ने मन की उन्मुक्तता एवं समर्पण का प्रतीक बनाया है । "हरी घास पर क्षण भर" से आशय यह है कि हम थोड़ी देर के लिए ऐसे उन्मुक्त वातावरण में आए, जहाँ मन भी मुक्ति का अनुभव करे । कवि अपनी प्रेयसी को "हरी घास सी अन्त: स्मित अन्त: संयत होकर सहज मिलने" के लिए कहकर हरी घास कह सहज समर्पण का प्रतीक बना देता है ।

कवि के प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों में एक महत्वपूर्ण प्रतीक है मछली । "हम निहारते रूप काँच की पीछे हाँफ रही है मछली" (अरी जो करूणा प्रभामय) "सागर आंक कर फिर आँक एक उछली हुई मछली" - (सुनहले शैवाल), अभी-अभी जो उजली मछली भेंट गई है सेतु पर खड़ी वहीं-वहीं तो लक्ष्य रही अवचेतन, अनपहचान मेरी इस यात्रा का- (आत्मनेपद) आदि पंक्तियों में मछली का प्रतीक रूप में प्रयोग ध्यातव्य है । सोन मछली कविता में काँच बंधन का एवं हाँफती मछली जिजीविषा का प्रतीक है । काँच बाह्य परिवेश एवं मछली आन्तरिक स्वरूप को भी व्यंजित करता है । प्रत्येक व्यक्ति सत्य को काँच में देखता है, इसलिए सत्य रूपी मछली हाँफ रही है । हम इस रूप को महत्त्व देते हैं, रूप के पीछे अस्तित्त्व रूपी मछली को नहीं ।

जिन प्रतीकों के माध्यम से आत्मान्वेषण रहस्य-दर्शन, जीवन-सत्य आदि की प्रतीति होती है, उन्हें दार्शनिक प्रतीक की संज्ञा दी जा सकती है । अज्ञेय के काव्य में ऐसे प्रतिकों की संख्या भी कम नहीं है । सागर, आँगन के पार, द्वारहीन द्वार, मछली, नदी के द्वीप, सन्नाटा, हरा-अन्धकार, सागर के झाग से उछली हुई बून्द, महाशून्य का शिविर, महामौन की सरिता, असाध्य वीणा, चक्रांत शिला, काल की गदा, काली शिला, धवल शिला, आकाश, वृत्त, सूर्य, किरणें, तट, झरना, पत्ता, द्वीप, धुंध-ढकी गहरी वापिका, लघु अंजलि आदि को इस वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इनमें से असाध्य वीणा

साधारणतया नहीं सधपाने वाली जीवन-वीणा का प्रतीक है । इसे कोई केश कम्बली जैसा साधक ही अपने अहंकार को विलीन करके साध पाता है । चक्रांत-शिला काल का प्रतीक है ।

अज्ञेय ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी किया है । एकलव्य, द्रोणाचार्य, मुनिजन, दिति कन्या, असुल प्रजापति, रावण, रवि, चुम्बी, गरूड, अहल्या-राम, मनु, वासुकि, इन्द्र, कुंती इत्यादि पौराणिक प्रतीक हैं । 'इतिहास की हवा' कविता में एकलव्य, द्रोणाचार्य एवं मुनिजन का प्रयोग हुआ है ।

असाध्य वीणा' कविता में वासुकि का प्रतीक-गर्भित प्रयोग दृष्टव्य है-

वज्रकीर्ति में मंत्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीट तरू से इसे गढ़ा था-
उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कंधों पर बादल सोते थे.....
और सुना है-जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताललोक
उसकी गन्ध-प्रवणशीलता से फन टिका नाग वासुकि सोता था (असाध्यवीणा और अज्ञेय पृ.34)

हठयोग की साधना में योगी कुण्डलिनी शक्ति को जगाता है । कुण्डलिनी मूलाधार में स्थित होती है । योगियों की दृष्टि में कुण्डलिनी वह मूल शक्ति है जो मेरूदण्ड के निम्नतम बिन्दु पायु और उपस्थ के मध्य त्रिकोणाकार अग्निचक्र में सर्पिणी की भाँति साढ़े तीन कुण्डली मार कर सोती है । इन पंक्तियों में वासुकि के प्राचीन किरीट तरू की जड़ में सोते रहने की बात कवि ने कही है । ऊपर की पंक्तियों को यदि विशिष्ट सन्दर्भ दे दिया जाये तो यहाँ वासुकि को कुण्डलिनी का प्रतीक माना जा सकता है । वज्रकीर्ति ने किरीटी तरू से असाध्य वीणा को गढना किरीट तरू का जो रूपांकन कवि ने किया है इससे सहज ही उसका सम्बन्ध विराट तत्त्व से जुड़ जाता है । इस तरू के कन्धों पर बादल सोते थे और इसकी जड पाताल तक जाती थी । आकाश से पाताल तक किरीट तरू की सत्ता विद्यमान थी । उस विराट-सत्ता की जड़ में वासुकि सोता था । यह ठीक वैसा ही है जैसा कि योगियों की दृष्टि में मनुष्य की चेतना के मूल में कुण्डलिनी शक्ति है और शिखर-भाग में अनावृत्त रहस्य लोक । "उसके कानों में हिमशिखर रहस्य कहा करत थे अपने" से उसी अनावृत रहस्य लोक का संकेत मिलता है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रतीक-विधान की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य पर्याप्त पुष्ट और समृद्ध है।

19.3.3 अप्रस्तुत विधान

साधारणतया 'अप्रस्तुत' शब्द उपमान' का पर्याय है । आजकल में 'उपमेय' और 'उपमान' के स्थान पर 'प्रस्तुत' और 'अप्रस्तुत' का अधिक प्रयोग होता है । इसका कारण यह है कि 'उपमान' शब्द अपने आप में जितने व्यापक अर्थ का बोधक है 'अप्रस्तुत' से उससे अधिक व्यापक अर्थ की प्रतीति होती है । रामदहिन मिश्र के अनुसार 'अप्रस्तुत योजना' में बाहर से लाई जाने वाली सारी वस्तुओं का ग्रहण हो जाता है । चाहे अप्रस्तुत विशेष्य हो अथवा विशेषण, क्रिया हो अथवा मुहावरा, चाहे कुछ हो इसके भीतर सब समा जाते

हैं। प्रयोगवादी कविता आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में नये उपमानों को काव्य में लाने की चर्चा बड़े जोर-शोर से चली थी । इसके सूत्रधार अज्ञेय ही थे । इस सम्बन्ध में उनकी एक प्रसिद्ध कविता है- 'कलगी बाजरे की' । इस कविता में पुराने उपमानों के घिस जाने की चर्चा की गई है । निरन्तर उपयोग से परम्परागत उपमानों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । तब नये उपमानों एवं प्रतीकों की रचना आवश्यक हो जाती है ।

यद्यपि अज्ञेय के प्रारम्भिक काव्यों में छायावादी अप्रस्तुतों का प्रयोग ही अधिक हुआ है। 'इत्यलम्' तक झझा, साध्य रश्मि, तारा, उल्काकुल, निकुंज, उच्छवास, इन्दु एवं इसी प्रकार के उपमानों की संख्या अधिक है । किन्तु 'इत्यलम्' की भूमि में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि वे आत्माभिव्यंजना के दूसरे माध्यमों से जूझ रहे हैं । इसी संग्रह से नवीनता के प्रति उनका झुकाव बढ़ने लगा है । अज्ञेय की अप्रस्तुत योजना में मूर्तामूर्त विधान के सभी मूल तत्व मिल जाते हैं जो इस प्रकार है -

मूर्त के लिए अर्मूत अप्रस्तुत

यद्यपि छायावाद काल में इस प्रकार के अप्रस्तुतों की भरमार रही, किन्तु अज्ञेय की कविता में इनका प्रयोग नयी भंगिमा के साथ हुआ है । यहाँ नये सन्दर्भो के कारण अमूर्त अप्रस्तुत महत्त्वपूर्ण हो गये हैं-

"**पार्श्व गिरि का नम्र चीड़ों में डगर चढ़ती उमंगों -सी**
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा ।। ([19] इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 82)

प्रस्तुत उद्धरण में चीड़ के वन में डगर के चढ़ने का वर्णन डगर उमंगों सी चढ़ती बतलाई गई है । उमंग या उत्साह में आदमी बढ़ता ही जाता है । प्राय: सम्भावित से अधिक । इसी प्रकार चीड़ के वन में डगर के चढ़ने की कोई विशेष सम्भावना नहीं थी, किन्तु सम्भावना के विपरीत वह चढ़ती गई है । चीड़ वन के सन्दर्भ में डगर के चढ़ने के लिए 'उमंगों-सी' अर्मूत अप्रस्तुत काफी समर्थ और सटीक है ।

अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत

"यह महाशून्य का शिविर" कविता में कवि महाशून्य के अनुभव को प्रस्तुत करना चाहता है । ऐसे अवसर पर मूर्त अप्रस्तुतों की काफी आवश्यकता थी । अतएव कवि मूर्त अप्रस्तुत के रूपकत्व के साथ ही इस कविता का आरम्भ करता है : -

यह महाशून्य का शिविर
असीम छा रहा ऊपर ।

असीम शिविर के समान महाशून्य ऊपर छाया हुआ है और रात्रि की इस गहन शून्यता में "पृथ्वी पर महामौन छाया हुआ है । यह महामौन ही इस समय एक मात्र सक्रिय प्रतीत हो रहा है । महामौन जैसे अमूर्त के लिए दिग्विहीन सरिता का अप्रस्तुत काम में लिया गया है ।

मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत

मूर्त अप्रस्तुत के द्वारा किसी मूर्त बिम्ब को नया अर्थ-गौरव देने में अज्ञेय कुशल है । एक रूपाकार पर दूसरे रूपाकार के अभिन्नत्व से कभी-कभी साधारण चित्र भी विशेषत रूप से अलंकृत हो उठते हैं, इस दृष्टि से यहाँ कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

घिर गया नभ, **उमड़ आये मेघ काले**

भूमि के कंपित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहरा, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष ।

'आँगन के पार द्वार' संग्रह की 'बना दे चितेडे' चक्राएं शिला खण्ड की अनेक कविताओं में ही नहीं, 'असाध्य वीणा' कविता में ही मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं ।

अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत

कभी-कभी किसी अमूर्त वस्तु के सौन्दर्यबोध के लिए अमूर्त उपमान ही अधिक सहायक होते हैं । ऐसे अवसरों पर अज्ञेय ने अमूर्त उपमानों को ही प्रयोग किया

"धूप
माँ की हँसी के प्रतिबिम्ब से शिशुवदन पर
हुई भासित ।" (इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ. 83)

इस उदाहरण में कवि ने अमूर्त धूप के लिए अमूर्त 'हँसी के प्रतिबिम्ब' का प्रयोग किया है। यहाँ अप्रस्तुत विधान का आधार प्रभाव-साम्य है । 'धूप में स्निग्धता एवं अपनत्व का भाव भरने के लिए कवि ने ऐसा किया है । 'धूप कवि को शिशु की निश्छल हँसी के समान प्रतीत होती है ।

19.3.4 छन्द सौन्दर्य

काव्य-विषयक चिन्तन के सन्दर्भ में अज्ञेय ने छंद पर भी विचार किया हैं वे छन्द की बँधी हुई परिपाटी को नहीं स्वीकारते । सामान्यत: अक्षरों की संख्या, मात्रा अथवा वर्ण गणना एवं यनि-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है, किन्तु अज्ञेय के अनुसार 'छन्द का अर्थ केवल तुक या बँधी हुई स्वरमात्रा या वर्ण संख्या नहीं है..... छन्द योजना का ही नाम है । जहाँ भाषा की गति नियन्त्रित है वहाँ छन्द है । छन्द और लय सम्बन्धी अपनी मान्यताओं का अज्ञेय ने सर्वत्र पालन किया है ऐसा नहीं कहा जा सकता । यद्यपि उन्होंने छंद के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं, किन्तु आरम्भिक रचनाओं में आई छन्द-योजना परम्परागत छन्द-विधान से प्रभावित है । उन पर पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवियों का प्रभाव भी देखा जा सकता है । कुछ कविताओं पर प्रसाद के "आँसू-छन्द का एवं कामायनी" के 'चिन्ता' सर्ग में व्यवहृत छन्द का प्रभाव लक्षित होता है । गुप्त जी की 'हा' । शैली एवं तुर्को का आग्रह भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है । कहीं-कहीं बच्चन जी के छन्द का प्रयोग मिलता है-

मैंने कहा, कंठ सूखा है
दे दे मुझे सुरा का प्याला,
मैं भी पीकर आज देख लूँ
यह तेरी अंगूरी हाला । (इत्यलम् पृ. 66)

16-16 मात्राओं के इस छन्द में कुछ वैसा ही 'मधुशाला' वाला प्रवाह एवं शब्द विधान है। 'प्याला और 'हाला' भी वही है । इसके अतिरिक्त अज्ञेय की आरम्भिक छन्द-योजना पर श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, महादेवी वर्मा आदि का प्रभाव भी लक्षित किया जा सकता है ।

परम्परागत छन्दों के अन्तर्गत ही लोकगीतों को भी लिया जा सकता है । कवि ने कई गीतों में लोकधुन लाने का प्रयत्न किया है । 'काँगड़े की छोरियाँ' कविता स्पष्टत: लोकधुन पर आधृत है । इसके अतिरिक्त 'पानी बरसा', आशी: (इत्यलम) 'कतकी पूनों' "अकेली न जैयो यमुना के तीर" (हरी घास पर क्षण भर) बसन्त की बदली (बावरा अहेरी), चातक पिउ बोलो (इन्द्र धनु रौंदे हुए ये) आदि कविताएँ भी लोकधुन पर किए गए प्रयोगों से युक्त है । 'पानी बरसा' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

"ओ पिया पानी बरसा ।
ओ पिया पानी बरसा ।. . .
ओठ को ओठ, वक्ष को वक्ष -
ओ पिया, पानी ।
मेरा हिया तरसा
ओ पिया पानी बरसा । (इत्यलम्, पृ. 204-205)

इस गीत में पहली पंक्ति टेक की शक्ति है । लय के अनुरूप 'पिया पर पहली यति है । दुहराते समय 'ओ पिया', 'पानी' पर ही एक बार विराम लिया जाता है । बीच के बन्दों में काफी हेर-फेर है । आरम्भिक रचनाओं के बाद कवि मुक्त छन्दों पर उतर आया है । अज्ञेय ने सर्वाधिक प्रयोग इसी प्रकार के छन्द का किया है ।

अज्ञेय की कविता प्राय: सर्वत्र लयात्मक है । जो कविताएँ गद्यात्मक हैं वहाँ भी स्वर ध्वनियों से आतंरिक लय उत्पन्न कर लिया गया है । लय उत्पन्न करने के साधनों में नादात्मक, अनुकरणात्मक एवं स्फाटोत्मक शब्दों का सहारा लेने के साथ-साथ कवि ने काकू की मदद भी ली है । अज्ञेय सृष्टि की सारी घटनाओं में लय की उपस्थिति देखते हैं ।

मुख्यत: अज्ञेय उद्दाम, तेज एवं द्रुत लय के नहीं, मंद एवं शांत लय के कवि है ।

19.3.5 काव्य - भाषा

अज्ञेय "भाषा को संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिशाली और समृद्ध उपकरण" मानते हैं । एक संस्कारी, सृजनात्मक एवं प्रयोजनवादी काव्य-भाषा के निर्माण के लिए जितना प्रयत्न अज्ञेय ने किया सम्भवतः और किसी नये कवि ने नहीं किया । वे आत्मनेपद में लिखते हैं "जो सृजक अभिव्यक्ति के लिए जूझेगा, भाषा उसे निराश नहीं करेगी । भाषा कल्पवृक्ष है । जो उससे आस्थापूर्वक मांगा जाता है, भाषा वह देती है ।

भाषा के जिस रूप का अज्ञेय ने वरण किया है उसमें तत्सम् शब्दों की बहुलता तथा भाषा का आभिजात्य भले ही दिखाई पड़ता हो, वे बोलचाल की शब्दावली से युक्त सहज भाषा की तलाश करते प्रतीत होते हैं । इसका प्रमाण यह है कि तत्सम् शब्दों के अतिरिक्त उनकी भाषा में अनेक देशज, अरबी, फारसी, अंग्रेंजी के तथा हल्के-फुल्के व्यंजक शब्दों के प्रयोग देखे जा सकते हैं ।

ठेठ देहाती एवं देशज शब्दों में चिरी चिरैया, दीठ, विऊंटा, ऐडां (पथ) मचिया, कुलिया मुँहझौंसी, झगडेल, साँझ, पाँख, जोखम, इक्कड़, असाढ़, अकास इक्ला, लोंढा, डाँगर, गोयठा, चोला, ऊँटी, सुरमुच, कनियाँ, तलैया, खोखल, फुदकी, दहगंल, फलसुधनी आदि

शब्दों को उनके काव्य में स्थान मिला है । ग्राम्य गीत शैली पर लिखे गीतों में आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी दृष्टव्य है । "काँगड़ों की छोरियाँ" कविता में ऐसे कई प्रयोग हुए हैं । छोरियाँ, तिजोरियाँ, चोरियाँ, गोरियाँ क्यारियाँ पुतलियाँ आदि शब्दों में काँगड़ीपन आ गया है । इन शब्दों के प्रयोग से कवि की भाषा बोलचाल की सहज भाषा के करीब तो आई ही है उसकी भावाभिव्यंजकता भर बढ़ी है । स्याह मुख चिमनियों के लिऐ मुँहझौंसी चिमनियाँ, पशु के लिए डांगर, पक्षियों के लिए चिरी चिरैया आदि शब्द विशिष्ट परिवेश के चित्रण में सहायक है । ठेठ देहाती एवं देशज् शब्दों से निर्मित बैशाख की आँधी की एक तस्वीर देखिए-

हहर-हहर घहराया
काला बादल
लेकिन पहले आया
झक्कड . . .
आया पानी
अरी धूल झगडेल
चढ़ी पछवा के कन्धों पर तू इतराती
लेकर चिकोटी अब भी :
बस एक स्नेह की बूँद से हुई पस्त
पैरों में बिछ-बिछ जाती । (इन्द्र धनु रौंदे हुए ये, पृ. 26)

इस उदाहरण में प्रयुक्त बद्दल, झक्कड़, झगडैल, पछवा आदि शब्दों ने बैशाख की आँधी के अकृत्रिम रूप को स्पष्ट कर दिया है । बद्दल खाने कहने से घने मस्त, बेपरवाह बादल का चित्र सामने आता है । झंझा के स्थान पर झक्कड़ प्रयोग नया ही नहीं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिक समर्थ है । झाड़ने, तोड़ने. फोड़ने, उखाड़ने, गिराने आदि का भाव इसमें कहीं अधिक है । इसके अतिरिक्त बद्दल और झक्कड़ शब्द गहराने की ध्वनि का बिम्ब भी प्रस्तुत कर देते हैं । पछवा, झगडैल इतराती आदि शब्द भी उपर्युक्त सन्दर्भ में बिल्कुल सही प्रतीत होते हैं । नये कवियों में मुक्तिबोध ने विदेशी शब्दों का प्रयोग सम्भवतः सर्वाधिक किया है । अज्ञेय के काव्य में विदेशी शब्दों की उतनी अधिकता तो नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु आवश्यक होने पर उन्होंने अरबी-फारसी तथा अँग्रेजी के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है । अरबी-फारसी से गुजरणा, मुलम्मा, हाशिया, फरियाद, अल्ला कमरकल्ला, सलीव शोक, जिम्मा, बेबस, साकी, शायर, सितम, मुल्ला, इश्तहार, अरमान, मंजिल, इन्सान आदि तथा अंग्रेजी से रेल, पार्क, मोटर, कलैण्डर, फेम, डाइनामाइट, जैण्टलमैन, थियटेर आदि शब्द उनके काव्य में सहज भाव से आए है ।

अज्ञेय की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है ।

'असाध्य वीणा कविता में भी तत्सम शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है, जैसे-प्रियवंद, गुफागेह, गिरि-प्रान्तर, वजकीर्ति, मन्त्रपूत, प्राचीन किरीट तरू, करिशुण्ड आदि, किन्तु यहाँ तद्भव, देशज तथा हल्के- फुल्के व्यंजक शब्दों के प्रयोग से भाषा सहजता नहीं खो पाई है ।

तत्सम शब्द बहुल वाक्य रचना का उद्देश्य गम्भीर मनोभावों एवं वातावरण को चित्रित करना है ।

डॉ. नामवरसिंह ने अज्ञेय की भाषा में आए शब्दों का छायावादी कवियों के कल्पना कलित तथा कुसुम-कोमल शब्द चयन के विरूद्ध अनगढ़ ठोकरों के समान कहा है तथा उनके निम्नांकित शब्दों को तालिका के रूप में उपस्थित किया है- "निविडान्धकार, एक अकिंचन, निष्प्रभ ,अनाहत अज्ञात, द्युति किरण, आसन्न पतन बिन जमी ओस की अन्तिम ईस्तत्करूण, स्निग्ध कातर शीतलता अस्पष्ट किन्तु अनुभूत बुभुक्षा के कुलाहल का असफ़ालन, प्रस्वेद-श्लथ संभार, आत्म-लय के रूद्रताण्डव का प्रमाथी तत्प आवाहन, घनावृत्त ऐक्य" आदि ।

नादात्मक शब्दों के प्रयोग के सन्दर्भ में भी कवि की कुशलता प्रकट हुई है । डाकू हाक् हाक् अडड़ाता, खड़खड़ गुड्डुप, हहरूना, तिपतिप, पट-पट, थाप, ढरकन, फुरकन सरसर, क्रेकार, साँय-साँय, घुरघुराहट, छप-छड़ाप, गर्जन, घुर्घग्र, चीख, भूंक, कृक्का, चिचियाहट, टाप, चहक, खुदबुद, छुल-छुल, गमक दुनदुन इत्यादि नादात्मक शब्दों का विशिष्ट सन्दर्भ में सफल प्रयोग कवि ने किया है ।

19.4 सारांश

प्रयोगवाद के प्रयोक्ता व सूत्रधार अज्ञेय ही रहे है । प्रयोगवादी समस्त प्रवृत्तियों घोर वैयक्तिकता, यथार्थवाद, क्षणवाद, मानवता आदि के दर्शन उसके समस्त काव्य में होते है। अज्ञेय भारतेन्दु व निराला के बाद काव्य प्रयोगों के क्षेत्र में सर्वाधिक सक्रिय रहे है । इनके काव्य संगम में छायावाद, प्रगतिवाद व प्रयोगवाद तीनों की त्रिवेणी प्रवाहित है । काव्य में शब्द के माध्यम से अर्थ का विधान होता है । शब्द विधान का सम्बन्ध शिल्प से है और अर्थ का वस्तु से । जिस प्रकार शब्द और अर्थ एक अविभाज्य बंधन में बँधे रहते हैं, उसी प्रकार का सम्बन्ध शिल्प और वस्तु में होना चाहिए ।

रहस्यवाद, प्रेम व नारी चित्रण, राष्ट्रीय भावना, मानवतावाद, बुद्धिवाद, निर्वैयक्तिकरण, यथार्थवाद आत्मसमर्पण व आत्मत्याग, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, अस्तित्ववाद, व्यष्टि का महत्व और परिवेशज यथार्थ अज्ञेय के काव्य को आनुभूतिक धरातल पर व्यापकता प्रदान करते हैं ।

क्षणबोध, **मृत्यु बोध**, **यथार्थवादी चिन्तन**

अज्ञेय काव्य में संवेदना (वस्तु) के कई स्तर विद्यमान है । कोई भी कवि अपनी अनुभूतियों को जिन माध्यमों से प्रस्तुत करता है वे ही शिल्प के उपकरण होते हैं । अज्ञेय मुख्यत: शिल्पी कलाकार है, अतएव उनके काव्य-शिल्प में प्रयोगों की विविधता है। उनकी प्रतीक योजना भी हिन्दी काव्य के विकास की एक उल्लेखनीय कड़ी है । अज्ञेय ने पारम्परिक एवं बहु प्रचलित उपकरणों को अपने विशिष्ट प्रयोगों के द्वारा नवीन संस्कार दिया है । अज्ञेय के काव्य में बिम्ब विधान उनकी विविधतापरक दृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है । साध्य और साधन रूप में उनका बिम्ब विधान दर्शनीय है । उन्होंने प्रकृति के बिम्बों को मानव तथा चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है । ध्वनिबिम्ब को भी उन्होंने बहुतायत से अपनाया है । अपने प्रतीक विधान में अज्ञेय ने व्यंग्य परक एवं

सामान्य जन-जीवन से जुड़े हुए और प्रतीकों की अवधारणा अपने काव्य में की है । प्राकृतिक प्रतीकों की संख्या सर्वाधिक है, पौराणिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया है । अप्रस्तुत विधान में अज्ञेय ने विभिन्न उपमानों को अत्यधिक उत्साह से प्रस्तुत किया है। प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी अप्रस्तुत विधान का प्रयोग अधिक दिखाई देता है । अज्ञेय के काव्य में शिल्प की दृष्टि से उनके विविध प्रयोग उनकी विशेषता को बताते हैं। नयी कविता में लयात्मकता उत्पन्न करना उनके शिल्प की विशेषता है । भाषा सौन्दर्य की दृष्टि से अज्ञेय से जनसामान्य एवं अभिजात्यवर्ग दोनों की भाषा को सम्मान दिया है। अज्ञेय ने विविध शब्दों का प्रयोग काव्य की लयात्मकता, सुन्दरता बढ़ाने में ही किया है जो उनके शिल्प सौन्दर्य का परिचायक है । संक्षिप्ततः अज्ञेय का सम्पूर्ण काव्य भाव सौन्दर्य, वस्तु सौन्दर्य और कल्पना शिल्प सौन्दर्य के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट रहा है ।

19.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अज्ञेय काव्य में आये बिम्ब विधान की विवेचना कीजिए.
2. "अज्ञेय के उपमानों में नयापन है" इस कथन में आलोक में अज्ञेय काव्य में अप्रस्तुत योजना पर एक लेख लिखिए
3. "अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रणेता व नयी कविता के प्रतिनिधि कवि है" इस कथन की उनके काव्य के संदर्भ में समीक्षा कीजिए
4. अज्ञेय काव्य में संवेदना व शिल्प की विवेचना कीजिए
5. टिप्पणी लिखिए
   (क) अज्ञेय काव्य में अस्तित्ववाद
   (ख) अज्ञेय काव्य में भाषा

19.6 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. उमाकान्त गुप्त- नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
2. डॉ. कृष्णदेव शर्मा, डॉ. माया अग्रवाल -आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय अनिता प्रकाशन, नई दिल्ली
3. प्रो. रामस्वरूप चतुवेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल - हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद, ऋषभचरन जैन व संतति प्रकाशन, नई दिल्ली
5. संपादक - रमेशचन्द्र शाह, असाध्यवीणा व अज्ञेय नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
6. हरिचरण शर्मा, नये प्रतिनिधि कवि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
7. चन्दकान्त बांदिवडेकर - अज्ञेय की कविता एवं मूल्यांकन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा

8. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद निराला अज्ञेय / लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
9. संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - अज्ञेय नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
10. रमेश ऋषिकल्प- अज्ञेय की कविता परम्परा व प्रयोग अभिरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली
11. नन्द किशोर आचार्य - अज्ञेय की काव्य तितिर्षा: सूर्य प्रकाशन बीकानेर
12. नामवर सिंह- कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
13. अज्ञेय-आत्मनेपद
14. अज्ञेय-भवन्ती
15. डॉ. केदार शर्मा : अज्ञेय के नये प्रयोग, अनुपम प्रकाशन जयपुर

इकाई-20 दुष्यन्त कुमार का काव्य-साये में धूप

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 गजल लेखन का इतिवृत्त
20.3 काव्य वाचन : साये में धूप
20.4 प्रसंग सहित व्याख्या
20.5 सारांश
20.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
20.7 संदर्भ ग्रंथ

20.0 उद्देश्य

दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित 'साये में धूप' की गजलों की व्याख्या विवेचना के माध्यम से आप-

- गजलों में व्यक्त विषय-वस्तु का विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- महत्वपूर्ण पद्यावतरणों के शैल्पिक सौंदर्य से परिचित होते हुए यह भी जान सकेंगे कि दुष्यन्त कुमार सहज भाषा-शिल्पी के रूप में हमारे सामने आये है
- पद्यावतरणों की व्याख्या के माध्यम से कवि की मानसिकता और उसकी सहजाभिव्यक्ति से परिचित हो सकेंगे ।

20.1 प्रस्तावना

दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित और प्रस्तुत 'साये में धूप' उनकी अन्तिम काव्य-यात्रा के रूप में सामने आयी है । इसमें दुष्यन्तजी द्वारा रचित 52 गजलों को स्थान दिया गया है और इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 1975 में राधकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से हुआ । दुष्यन्त जी के इससे पूर्व काव्य-संग्रह उन्हें नयी कविता का प्रतिष्ठित कवि प्रमाणित करते हैं और उसी क्रम में यह गजल-संग्रह उनकी प्रतिभा का उत्तमांश प्रस्तुत करता है । इसमें गजल हैं । गजल एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा है । इसमें गजलकार अपनी वेदना को व्यक्त करता है और प्रेम, उससे उत्पन्न पीड़ा और इश्क आदि का वर्णन करता है । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि दुष्यन्त कुमार ने गजल की परम्परागत परिभाषा को त्यागकर गजल को नया स्वरूप दिया है । उन्होंने स्वयं कहा है कि "गजल को केवल प्रेम और सौंदर्य से जोड़कर प्रस्तुत करना मुझे रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ । भले ही इसका शाब्दिक अर्थ प्रेम-चर्चा से लिया जाता हो, किन्तु मैंने गजल का विषय प्रेम नहीं रखा है, अपितु अन्तर की कसक को ही अपनी गजलों की विषय-वस्तु बनाया है ।" प्रसिद्ध साहित्यकार कमलेश्वर ने सारिका, मई व 1976 में यह लिखा था कि "हिन्दी के बहुत से कवियों ने गजल को अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की कोशिश की, निराला से शमशेर बहादुर तक यह कोशिश जारी रही, लेकिन कोई भी सफलतापूर्वक और

असरदार ढंग से गजल नहीं कह सका । चुपके-चुपके यह बात मानी जाने लगी कि हिन्दी में गजलों का स्थान नहीं बन सकता । यह हिन्दी कवियों के लिए एक चुनौती थी । इस चुनौती को दुष्यन्त कुमार ने पूरे आत्मविश्वास के साथ स्वीकार किया और हिन्दी को ऐसी गजलें दी, जो किसी भी भाषा के लिए ईर्ष्या का विषय बन गयीं । यही नहीं, दुष्यन्त ने गजलों को रूमानियत की आदिम गुफाओं से निकालकर सीधे आम आदमी की जिन्दगी से जोड़ दिया ।"

'साये में धूप' सचमुच हिन्दी कवियों द्वारा प्रस्तुत गजल के इतिहास में अपना कीर्तिमान प्रस्तुत करता है ।डॉ. धर्मवीर भारती ने सारिका, मई 1976 में दुष्यन्त स्मृति अंक के अन्तर्गत दुष्यन्त की इन गजलों के लिए जो टिप्पणी की है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस टिप्पणी में 'साये में धूप' की अधिकांश विशेषताएँ स्वत: ही आ गयी हैं । उन्होंने लिखा है- "आखिर क्या था उन गजलों में, जो इस तरह इतनी गहराई में झकझोर गया, उनकी मंजी हुई जुबान, कसे हुए छन्द, बंकिम भंगिमा, नया तेवर, कसी हुई अभिव्यक्ति? यह सब तो था ही, पर सबसे बड़ी बात यह थी कि वह एक ऐसे आदमी की प्रामाणिक पीड़ा भरी आवाज थी, जो अपने इस मुल्क को, अपनी इस दुनियास को बेहद प्यार करता रहा था, जो इसके बेहतर सपनों और उजले भविष्य के प्रति अखण्ड आस्थावान रहा है, भविष्य के सपनों में जी-जान से जिया है, जिसने देखा है बेबसी और लाचारी से एक-एक कर उन सपनों को बिखरते हुए और उनका दर्द पूरी शिद्दत से महसूस करते हुए, उसने चिरपरिचित बिम्बों को एक नये संदर्भ में पुनर्जीवित कर दिया, लेकिन न तो उसने छद्म आशावाद में पलायन किया और न एक बेईमान किस्म की झूठी शब्दाडंबरमयी आक्रामकता में, सुविधाओं और पद-प्रतिष्ठा से लैस चंद आलोचक एक झूठा मुखौटा लगाकर एक बने बनाये पूर्वाग्रह के साथ, जो एक नकली विद्रोह साहित्य-चिन्तन और उससे उदभूत तीसरे दर्जे का घटिया काव्यजाल पाठकों पर थोप रहे थे, उस कृत्रिम काव्य-संसार में एक प्रामाणिक दर्द भरी आवाज थी इन गजलों की । खुरदरे कागज पर रंगबिरंगी पुस्तक मालाएँ छापकर, अपने गुट की रेवड़ियाँ बाँट-बाँटकर, एक मिथ्या काव्यधारा को पाठक के गले मढ़कर वाहवाही लूटने की कोशिश करने वाले चंद परस्पर प्रशंसालिप्त यशकामी साहित्यिक नेतागिरी के आकांक्षी लोग दुष्यन्त जी की उस अकेली उपलखि के समक्ष कितने बौने, कितने दयनीय और कितने हास्यास्पद साबित हुए।'

21.2 गजल लेखन का इतिवृत्त

दुष्यन्त कुमार हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखक और कवि रहे हैं, किन्तु उनकी पहचान हिन्दी गजल के संदर्भ से अधिक की गयी है । ठीक भी है, गजल एक स्थापित काव्य-विधा है जो अरब के रेगिस्तानों से चलकर ईरान की सरजमीन से होते हुए भारत की धरती पर अवतरित हुई । भारत की सोंधी मिट्टी और मौसमों से महकती हुई हवा गजल के स्वागत के लिए जैसे तैयार थी । भारत के उत्तरांचल में बोली जाने वाली मीठी और लचीली बोलियाँ गजल को अपने अन्दर समेट लेने के लिए बेताब थीं । हैदराबाद दक्खन के शासक गजल को अपनाने के लिए आतुर थे । भारतीय भाषाओं और बालियों में

श्लोक, पद, दोहे, सोरठे, कुंडलियाँ, गीत पहले से ही स्थापित छंद के रूप में उपस्थित थे। इस कारण गजल को स्वीकार करने की फिजां लगभग तैयार थी । राजदरबारों, मेलों-ठेलों और बाजारों से लेकर पीरों-फकीरों की खानकाहों में खड़ी बोली (उर्दू हिन्दी, हिन्दवी) के नुकूश तेजी से उभर रहे थे । सभ्यताओं का मेल अपना रंग रहा था । गजल का छंद भारतीय संगीत के नियमों के भी समतुल्य था । संगीत में मौजूद सम और विषम गजल में काफिया, रदीफ के रूप में विद्यनान थे । ऐसी साजगार और जीवन्त फिजां में गजल की आमद हुई और इतिहास की करवटों के साथ गजल भारतीय साहित्य का अटूट अंग बन गयी ।

हजरत निजामुद्दीन औलिया की दिल्ली स्थित खानकाह में ध्यानमग्न रहने वाले उनके प्रिय शिष्य और महान कवि, संगीतकार हजरत अमीर खुसरो ने उर्दू-हिन्दी गजल का पहला प्रयोग किया । इस गजल की शिल्प दो सभ्यताओं के मिलन की अनोखी दास्तान बयान करती है । खुसरो के बाद कबीर के यहाँ भी गजल की शैली में लिखे गये शेर नजर आते हैं-

न पल बिछड़े पिया हमसे न हम बिछडें प्यारे से
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ।
कबीरा इश्क का माता दुइ को दूर कर दिल से
जो चलना राहे नाजुक है हमन सर बोझ भारी क्या ।

इस प्रारम्भिक दौर के बाद दौरे जहाँगीरी (जहाँगीर का काल) दौरे शाहजहानी (शाहजहाँ का काल) और कुली कुतुबशाह (उर्दू के पहले गजल ग्रंथकार अथवा साहिबे दीवान कवि) के काल में गजल के सुन्दर उदाहरण सामने आते हैं, जो हिन्दी-उर्दू गजल की नींव प्रतीत होते है । अमीर खुसरो से उर्दू-हिन्दी गजल जो सिलसिला आरम्भ हुआ, वह कुली कुतुबशाह, वली दक्खनी, पण्डित चन्द्रभान, मुल्ला वज्ही, नसरती, जाफर, जटल्ली से होता हुआ उर्दू में निरन्तर विकास के सोपान तय करता रहा और मीर दर्द, मीर तकीमीर मोमिन, गालिब, जोक, दाग, इकबाल, सीमाब, यगाना, फिराक, फैज, नासिर काजमी जैसे उत्कृष्ट गजलकारों को अदबी दुनिया से परिचित कराया । यह क्रम आधुनिक काल में भी जारी है और शहरयार, बशीद बद्र, अहमद मुशताक, राजेन्द्र बानी, मखमूर सईदी, इरफान सिद्दीकी, शीन काफ, निजाम, शाहिद मीर इस सिलसिले के प्रतिनिधि कवि हैं । जबकि अमीर खुसरो के बाद हिन्दी में गजल की विधा भक्तिकाल के कवि कबीरदास और तुलसी के यहाँ झलक दिखाती हुई लगती है । भक्तिकाल और रीतिकाल में गजल के छंद के बजाय दोहा, पद, सोरठा आदि सशक्त रूप से उभरे और हिन्दी की पहचान को स्थापित करने में अपनी भूमिका निभाई ।

हिन्दी गजल का चेहरा एक बार फिर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युग में उभरकर सामने आया और कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् 1850-85) एक सशक्त गजलकार के रूप में सामने आये । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'रसा' उपनाम से गजलें लिखीं जिनकी भाषा उर्दू की फारसी परम्परा के ज्यादा करीब है । हुस्न और प्रेम के साथ उनके यहाँ सूफियाना तर्ज के शेर भी मिलते हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन ने भी गजलें लिखी हैं । हिन्दी में प्रगतिशील कविता और बाद

में आधुनिक प्रयोगवादी कविता ने गजल की सम्भावना को ही लगभग समाप्त कर दिया। प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर ने गजलों की उपेक्षा कर दी । 1960 के आसपास हिन्दी कविता में यथार्थवादी छन्दमुक्त कविता हिन्दी की पहचान बनकर सामने आयी । 1970 के आसपास कवियों ने पूरी ईमानदारी और तीव्रता से बहुत सी बातों को महसूस किया और गजल उनके सामने सशक्त रूप लेकर सामने आयी । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उर्दू गजल का चमकता हुआ प्रवाह अमीर खुसरो से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय भाषाओं के कवियों को लुभाता रहा है । इसी माहौल में हिन्दी गजल का 'डोला' अदब की सरज़मीन पर उतरा । यह 1970 का वह पड़ाव था, जो आज मंजिल का निशान बनकर जगमगा रहा है । दुष्यन्तकुमार का आगमन इसी माहौल में हुआ । उनकी गजलों का संकलन 'साये में धूप' गजलों की ऐसी ही जगमगाहट लिए हुए है ।

गजल लिखने के सम्बन्ध में दुष्यन्त कुमार का अपना वक्तव्य जो 'साये में धूप' में प्रकाशित हुआ था, उनके गजलगो होने की सृजनात्मक बुनियाद को उजागर करता है- "जिन्दगी में कभी कभी ऐसा दौर आता है, जब तकलीफ गुनगुनाहट के रास्ते बाहर आना चाहती है । उसमें फँसकर गमे-जाना और गमे-दौरां तक एक हो जाते हैं । ये गजलें दरअसल ऐसे ही एक दौर की देन हैं ।.... ...यहाँ मैं साफ कर दूँ कि गजल मुझ पर नाजिल नहीं हुई । मैं पिछले पच्चीस वर्षो से इसे सुनता और पसन्द करता आया हूँ और मैंने कभी चोरी छुपे इसमें हाथ भी आजमाया है, लेकिन गजल लिखने या कहने के पीछे एक जिज्ञासा मुझे अक्सर तंग करती रही है । और वह है कि भारतीय कविपयो में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्जा गालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए गजल का माध्यम ही क्यों चुना? और अगर गजल के माध्यम से गालिब अपनी निजी तकलीफ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं, तो मेरी दुहरी तकलीफ (जो व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी) इस माध्यम से ही सही, एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक क्यों नहीं पहुँच सकती?. ....मुझे अपने बारे में कभी मुगालते नहीं रहे । मैं मानता हूँ मैं गालिब नहीं हूँ । उस प्रतिभा का शतांश भी मुझ में नहीं है । लेकिन मैं यह नहीं मानता कि मेरी तकलीफ गालिब से कम है या मैंने उसे कम शिद्दत से महसूस किया है । हो सकता है अपनी-अपनी पीड़ा को लेकर हर आदमी को यह वहम होता हो.....लेकिन इतिहास मुझसे जुड़ी हुई मेरे समय की तकलीफ का गवाह खुद है ।.. ..बस.. .... ..अनुभूति की इसी जरा सी पूँजी के सहारे मैं उस्तादों और महारथियों के अखाड़े में उतर पड़ा ।" "उस्तादों" और महारथियों के अखाड़े में उतरने की बात कहकर दुष्यन्त कुमार ने दरपरदा यह स्वीकार भी किया है कि उनकी कार्यस्थली भोपाल गजलों का शहर है । शैरी भोपाली, कैफ भोपाली, अख्तर सईद खाँ और ताज भोपाली जैसे प्रखर गजल गायक दुष्यन्त के लिए यकीनन प्रेरणा का स्त्रोत रहे होंगे । अनूठे गजलकार ताज भोपाली से दुष्यन्त कुमार के अन्तरंग सम्बन्ध भी थे । इस तरह हिन्दी गजल, भोपाल और दुष्यन्तकुमार एक दूसरे के पूरक बने और दुष्यन्त कुमार के संक्षिप्त गजल संग्रह 'साये में धूप' ने हिन्दी गजल को स्थायित्व प्रदान किया । साये में धूप के 19 संस्करण सन् 1999 तक प्रकाशित हो चुके हैं । 2006 ई. में इस संकलन की तीसरी आवृत्ति सामने आयी है ।

20.3 काव्य वाचन : साये में धूप

काव्य-वाचन शीर्षक के अन्तर्गत दुष्यंतकुमार के 'साये में धूप' संग्रह से कतिपय चुनी हुई गजलें प्रस्तुत की जा रही हैं । इन गजलों के अध्ययन और मनन से यह विदित हो सकेगा कि दुष्यन्त कुमार ने किस मानसिकता, किस तरह की पीड़ा और किन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर गजलों का लेखन किया है ।

(1)

कहाँ तो तय था चिराँगा हरेक घर के लिए,
कहीं चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए ।
न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए ।
खुदा नहीं, न सही, आदमी का ख्वाब सही,
कोई हसीन नजारा तो है नजर के लिए ।
वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिए ।
तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।
जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए ।

(2)

कैसे मंजर सामने आने लगे हैं,
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं ।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं ।
वो सलीबों के करीब आए तो हमको,
कायदे कानून समझाने लगे हैं ।
एक कब्रिस्तान में घर मिल रहा है,
जिसमें तहखानों से तहखाने लगे हैं ।
मछलियों में खलबली है, अब सफीने,
उस तरफ जाने से कतराने लगे हैं ।
मौलवी से डाट खाकर अहले मकतब,
फिर उसी आयत को दोहराने लगे हैं ।
अब नई तहजीब के पेशे-नजर हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं ।

(3)

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है ।
एक चिनगारी कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तों,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है ।
एक खँडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल सी
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है ।
एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है ।
निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में, जा-जाके बतियाती तो है ।
दुख नहीं कोई कि अब उप्लब्धियों के नाम पर,
और कुछ हो या न हो, आकाश-सी छाती तो है ।

(4)

अपाहिज व्यथा को वहन कर रहा हूँ,
तुम्हारी कहन थी, कहन कर रहा हूँ ।
ये दरवाजा खोलो तो खुलता नहीं है,
इसे तोड़ने का जतन कर रहा हूँ ।
अँधेर में कुछ जिन्दगी होम कर दी,
उजाले में अब ये हवन कर रहा हूँ ।
वे सम्बन्ध अब तक बहस में टँगे हैं,
जिन्हें रात-दिन स्मरण कर रहा हूँ ।
तुम्हारी थकन ने मुझे तोड़ डाला,
तुम्हें क्या पता क्या सहन कर रहा हूँ ।
मैं अहसास तक भर गया हूँ लबालब,
तेरे आँसुओं को नमन कर रहा हूँ ।
समालोचकों की दुआ है कि मैं फिर,
सही शाम से आचमन कर रहा हूँ ।

(5)

भूख है तो सब कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में है, जेरे बहस ये मुद्दआ ।
मौत ने तो धर दबोचा एक चीते की तरह,
जिन्दगी ने जब छुआ तब फासला रखकर छुआ ।
गिड़गिड़ाने का यहीं कोई असर होता नहीं,
पेट भरकर गालियाँ दो, आह भरकर बददुआ ।
क्या वजह है प्यास ज्यादा तेज लगती है यहाँ
लोग कहते हैं कि पहले इस जगह पर था कुआँ ।

आप दस्ताने पहनकर छू रहे हैं आग को,
आपके भी खून का रंग हो गया है साँवला ।
इस अँगीठी तक गली से कुछ हवा आने तो दो,
जब तलक खिलते नहीं, ये कोयले देंगे धुआँ ।
दोस्त, अपने मुल्क की किस्मत पे रंजीदा न हो,
उनके हाथों में है पिंजरा, उनके पिंजरे में सुआ ।
इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात,
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ ।

(6)

होने लगी है जिस्म में जुंबिश तो देखिए,
इस परकटे परिन्द की कोशिश तो देखिए ।
गूंगे निकल पड़े हैं, जुबाँ की तलाश में,
सरकार के खिलाफ ये साजिश तो देखिए ।
बरसात आ गई तो दरकने लगी जमीन,
सूखा मचा रही है ये बारिश तो देखिए ।
उनकी अपील है कि उन्हें हम मदद करें,
चाकू की पसलियों से गुजारिश तो देखिए ।
जिसने नजर उठाई वही शख्त गुम हुआ,
इस जिस्म के तिलिस्म की बंदिश तो देखिए ।

(7)

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ
वो गजल आपको सुनाता हूँ ।
एक जंगल है तेरी आखों में,
मैं जहाँ राह भूल जाता हूँ ।
तू किसी रेल-सी गुजरती है,
मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ ।
हर तरफ एतराज होता है,
मैं अगर रोशनी में आता हूँ ।
एक बाजू उखड़ गया जब से,
और ज्यादा वनज उठाता हूँ ।
मैं तुझे भूलने की कोशिश में,
आज कितने करीब पाता हूँ ।
कौन ये फासला निभाएगा,
मैं फरिश्ता हूँ सच बताता हूँ ।

(8)

अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार ।

आप बचकर चल सकें ऐसी कोई सूरत नहीं,
रहगुजर घेरे हुए मुरदे खड़े हैं बेशुमार ।
रोज अखबारों में पढ़कर ये खयाल आया हमें,
इस तरफ आती तो हम भी देखते फस्ले-बहार ।
मैं बहुत कुछ सोचता रहता हूँ पर कहता नहीं,
बोलना भी है मना, सच बोलना तो दरकिनार ।
इस सिरे से उस सिरे तक सब शरीके जुर्म हैं,
आदमी या तो जमानत पर रिहा है या फरार ।
हालते इंसान पर बरहम न हों अहले वतन,
वो कहीं से जिन्दगी भी माँग लाएँगे उधार ।
रौनके जन्नत जरा भी मुझको रास आई नहीं,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार ।
दस्तकों का अब किवाड़ों पर असर होगा जरूर,
हर हथेली खून से तर और ज्यादा बेकरार ।

(9)

जिंदगानी का कोई मकसद नहीं है,
एक भी कद आज आदमकद नहीं है ।
राम जाने किस जगह होंगे कबूतर,
इस इमारत में कोई गुम्बद नहीं है ।
आपसे मिलकर हमें अकसर लगा है,
हुस्न में अब जज़्ब-ए-अमजद नहीं है ।
पेड़-पौधे हैं बहुत बौने तुम्हारे,
रास्तों में एक भी बरगद नहीं है ।
मैकदे का रास्ता अब भी खुला है,
सिर्फ आमदरफ्त ही जायद नहीं है ।
इस चमन को देखकर किसने कहा था,
एक पंछी भी शायद यहाँ नहीं है ।

(10)

पक गई हैं आदतें, बातों से सर होगी नहीं,
कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं ।
इन ठिठुरती उँगलियों को इस लपट पर सेंक लो,
धूप अब घर की किसी दीवार पर होगी नहीं ।
बूँद टपकी थी मगर वो बूँदो-बारिश और है,
ऐसी बारिश की कभी उनको खबर होगी नहीं ।
आज मेरा साथ दो, वैसे मुझे मालूम है,
पत्थरों में चीख हरगिज कारगर होगी नहीं ।
आपके टुकड़ों के टुकड़े कर दिए जाएँगे पर,

आपकी ताजीम में कोई कसर होगी नहीं ।
सिर्फ शायर देखता है कहकहों की असलियत,
हर किसी के पास तो ऐसी नजर होगी नहीं ।

20.4 प्रसंग सहित व्याख्या

गजल : एक

कहाँ तो तय था चिराँगा हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए ।
न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए ।
खुदा नहीं, न सही, आदमी का ख्वाब सही,
कोई हसीन नजारा तो है नजर के लिए ।
वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिए ।
तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।
जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए ।

प्रसंग- प्रस्तुत गजल दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित 'साये में धूप' कृति की पहली गजल है। इसमें दुष्यन्त जी ने स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की उस तस्वीर को पेश करने की कोशिश की है, जिसकी आजादी से पूर्व लोगों ने जोर-शोर से घोषणा की थी । आजादी से पूर्व सभी के लिए सुविधाएँ प्रदान करना और रोशनीभरी दुनिया सौंपने का वायदा किया गया था, किन्तु आजादी के बाद यह नहीं हो पाया । इसी से सम्बन्धित भाव इस गजल में व्यक्त किए गए हैं ।

व्याख्या-दुष्यन्त कुमार कह रहे हैं कि स्वतंत्रता से पूर्व देश को आजाद कराने वाले कर्णधारों ने देश की जनता को यह आश्वासन दिया था कि आजादी के बाद हम स्वतंत्र होंगे, हमारी भावनाएँ स्वतंत्र होंगी और हमारे विचारों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायेगा । देश के प्रत्येक घर को वह रोशनी प्राप्त होगी, जिसका वह हकदार है । आजादी के बाद देखने में आ रहा है कि जो आश्वासन दिया गया था, वह पूरा नहीं हो पाया है । पूरे देश के लिए रोशनी प्रदान करना तो दूर रहा, यहाँ तो एक शहर के लिए भी रोशनी उपलब्ध नहीं हुई है, अर्थात् कहीं भी सुख और आनन्द के साथ-साथ प्रकाश की लहर दौड़ती हुई दिखाई नहीं दे रही है । आज तो स्थिति यह हो गयी है कि वृक्षों की छाया में भी धूप का अहसास होता है । तात्पर्य यह है कि वृक्ष सामान्यत: छाया देते हैं, शीतलता प्रदान करते हैं, किन्तु हमारे देश के कर्णधारों और प्रशासकों ने ऐसी कोई छाया प्रदान

नहीं की है । हमें जो सब्जबाग दिखाये गये थे, वहीं हम धूप जैसी तपन अनुभव कर रहे हैं । यहाँ से अब कहीं और चले जाना ही उचित है ।

कवि कह रहा है कि हमारे देशवासी बड़े संतोषी हैं । अगर उन्हें शरीर ढँकने के लिए कमीज जैसा वस्त्र भी उपलब्ध नहीं है, तो कोई बात नहीं, उन्हें तो इतनी सहनशक्ति प्राप्त है कि वे अपने पैरों को सिकोड़कर ही अपने पेट को भी ढँक लेंगे । भाव यह है कि जैसे-तैसे करके विवशता में अपना जीवन बिता लेंगे । वास्तव में हमारे यहाँ के गरीब लोग इस तरह की जीवन-यात्रा करने के आदी हो गये हैं । ठीक है, हमारे देश में यदि हमारा कोई खुदा नहीं है, अर्थात कोई सार-सँभाल करने वाला नहीं है, तो कोई बात नहीं, आदमी होने का अहसास या सपना ही हमारे लिए पर्याप्त है । हमारे देशवासियों को विवशता में जीने की जो आदत पड़ी है, उससे तो हमारी नजर को कोई हसीन-सा नजारा दिखा दे, वही पर्याप्त है, भले ही वह हसीन नजारा हमें प्राप्त हो या न हो । आगे की पंक्तियों में बताया गया है कि हमारे प्रशासक और बड़े-बड़े कर्णधार पत्थर हो गये हैं और पत्थर कभी पिघला नहीं करते हैं, किन्तु कवि है कि वह एक प्रभावशाली आक्रोशभरी आवाज सुनने के लिए बेचैन है । हमारे देश का निजाम इतना कठोर हृदय हो गया है कि वह तो हर व्यक्ति की जुबान को बन्द करने की ताकत रखता है । व्यंजना यह है कि आम आम आदमी को अपनी जुबान में ताजगी और आक्रोश लाना चाहिए । वास्तव में हम भारतवासी अपनी जमीन पर ही अपने ही बगीचे में जी लें, यही हमारे लिए काफी है। हमें किसी और जमीन की या किसी और गली की आवश्यकता नही है । दूसरे की जमीन पर यदि कोई छतनार वृक्ष भी है, तो हमें उसकी छाया की आवश्यकता नहीं है । हमें तो हमारी ही जमीन, हमारा ही बगीचा चाहिए । संकेत यह है कि हम देशवासियों को अपनी देशभक्ति की भावना से भरकर अपने ही वतन में जैसे-तैसे रहते हुए जीवन बिताना चाहिए । कवि ने ऐसा कहकर यह संकेत भी कर दिया है कि सहनशक्ति की एक सीमा होती है और पत्थरदिल कभी पिघला नहीं करते हैं । उन्हें पिघलाने के लिए एक असरदार आवाज की आवश्यकता होती है ।

टिप्पणी-

(1) प्रस्तुत गजल में कवि ने स्वतंत्रता के पश्चात् देश में विकसित आम आदमी की स्थिति की ओर सही जुबान में इशारा कर दिया है ।

(2) यह वह गजल है, जो आम आदमी की विवशता, निर्धनता और असहाय स्थिति को उजागर करती हुई उसे अपने भीतर से सोये हुए विश्वास को जगाने की प्रेरणा देती है ।

(3) गजल की शैली पूरी तरह प्रभावकारी है । इसमें उर्दू शब्दावली का प्रयोग बड़ी सटीकता के साथ किया गया है ।

गजल : दो

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है ।
एक चिनगारी कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तों,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है ।

एक खँडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है ।
एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है ।
निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में, जा-जाके बतियाती तो है ।
दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर,
और कुछ हो या न हो, आकाश-सी छाती तो है ।

प्रसंग-प्रस्तुत गजल दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित 'साये में धूप' कृति से ली गयी है । इसमें दुष्यन्त कुमार ने एक प्रकार से आदमी की पीड़ा की ओर संकेत करते हुए उसके भीतर चलने वाले हक और आम आदमी की कुलबुलाहट को स्पष्ट करते हुए यह व्यक्त किया है कि आम आदमी के पास भले ही जीवन जीने के साधन उपलब्ध न हों, किन्तु उसके पास आकाश की तरह फैली हुई चौड़ी छाती तो है । संकेत यह है कि आदमी के भीतर विश्वास और वह चेतना होनी चाहिए, जिससे वह अपने आपको बचाये रख सके ।

व्याख्या-कवि कह रहा है कि हमारे देश में उच्च पदस्थ लोग आम आदमी को सांत्वना देने के उद्देश्य से मीठी-मीठी बातें करते हैं, उन्हें तरह-तरह के आश्वासन देते हैं । इस प्रकार की बातों से ठण्डक तो दिल को पहुँचती है, किन्तु हम जिस जीवनरूपी नदी में यात्रा कर रहे हैं, उस यात्रा के लिए जो नाव हमें प्राप्त हुई है, वह भले ही पुरानी मान्यताओं की तरह जर्जर हो, किन्तु इतने पर भी उसमें संघर्ष की लहरों से टकराने की क्षमता तो है । संकेत यह है कि आम आदमी कितना ही कमजोर और विवश हो, किन्तु अपनी जीवन-नौका को लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए वह निरन्तर संघर्ष करता रहता है । एक प्रकार से कवि संघर्षक्रान्त जीवन का कायल है । इसलिए वह कहता है कि हे मेरे दोस्तों और अजीज लोगों ! कहीं से कोई ऐसी चिनगारी तलाश कर ले आओ, जिससे व्यक्ति की जिजीविषा बनी रहे और उसके मन में पड़े हुए सपने साकार हो सकें । ऐसा करना इसलिए आवश्यक है कि हमारे देश के आम आदमी के मन रूपी दीपक में भले ही तेल न हो, किन्तु तेल में भीगी हुई वर्त्तिका तो है । संकेत यह है कि आदमी कितना ही अकेला, पीड़ित और विवश हो, किन्तु उसकी आत्मा में विश्वास के तेल में भीगी हुई भावनाएँ तो हैं ।

कवि कह रहा है कि हमारा हृदय एक खण्डहर के समान हो गया है और एक जंगली फूल की तरह हम अपने जीवन की बगिया में खिले हुए हैं । इस स्थिति में आदमी जो पीड़ा भोग रहा है, वह भले ही गूंगी हो, अर्थात् अपनी वेदना को व्यक्त करने की क्षमता उसमें न हो, फिर भी वेदना से भरकर भी वह एक आशा का गीत तो गा ही सकता है । आज तो जीवन की संध्या आ गयी है, जैसे किसी ने सारे नगर पर संध्या की एक चादर फैला दी है, किन्तु ध्यान रहे कि यह संध्या की चादर अर्थात् जीवन में आये दुखों के कारण व्याप्त अँधेरा भी सूर्योदय की प्रतीक्षा में तो है । रात के अँधेरे में पड़े हुए लोग जैसे सूर्य के उदित होने की आशा करते हैं, वैसे ही हमने अपनी आशा को पूरी तरह समाप्त नहीं होने दिया है । आज भी यह सपना मन में चल रहा है कि कभी तो इस अँधेरे के पार

जाने की राह मिलेगी और हमें सूर्योदय के दर्शन होंगे । कवि का कथन है कि एक मैदान में लेटी हुई नदी बिना कुछ बोले, जो प्रवाहित होती रहती है, वह पत्थरों से या पत्थरों की ओट में जाकर टकराने की क्षमता तो रखती है । संकेत यह है कि अकेलेपन में भी व्यक्ति संघर्ष करता हुआ पत्थरों से टकराती हुई नदी की तरह जीवन बिताता रहता है । हमें इस बात का दुख नहीं है कि हमारी उपलब्धि क्या है या क्यों नहीं है? हमें इससे ही संतोष है कि हमने भले ही कुछ भी अच्छा या अपने लिए उपलब्ध न किया हो, किन्तु फिर भी हमें इसी बात का संतोष है कि हमारे पास आकाश की तरह फैली हुई चौड़ी और सब कुछ सहन करने की छाती तो है ही । कवि ने संकेत दिया है कि संघर्षों, पीड़ाओं और विवशताओं को झेलने की क्षमता हममें अभी भी विद्यमान है ।

टिप्पणी-

(1) इस गजल में दुष्यन्त कुमार ने आस्था, जिजीविषा और संघर्ष को मानव-जीवन के लिए आवश्यक बतलाया है । ऐसा भाव उन्होंने भारत के आम आदमी की स्थिति को देखकर ही व्यक्त किया है । ठीक भी है, आशा, विश्वास और संघर्ष के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता है ।

(2) इस गजल में 'आकाश सी छाती' में उपमा अलंकार का सार्थक प्रयोग हुआ है । इस प्रयोग में भाषा की लाक्षणिकता भी देखते ही बनती है ।

(3) "यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है' पंक्ति में कवि का आस्थावाद पूरी तरह मुखरित हुआ है, किन्तु यह आशावाद कृत्रिम नहीं है, इस आस्था ने निराशा से ही जन्म लिया है । ठीक भी है, निराशा में कब तक कोई रह सकता है? उसे किसी न किसी आस्था के सम्बल की आवश्यकता तो पड़ती ही है ।

गजल : **तीन**

अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार ।
आप बचकर चल सकें ऐसी कोई सूरत नहीं,
रहगुजर घेरे हुए मुरदे खड़े हैं बेशुमार ।
रोज अखबारों में पढ़कर ये खयाल आया हमें,
इस तरफ आती तो हम भी देखते फस्ले-बहार ।
मैं बहुत कुछ सोचता रहता हूँ पर कहता नहीं,
बोलना भी है मना, सच बोलना तो दरकिनार ।
इस सिरे से उस सिरे तक सब शरीके जुर्म हैं,
आदमी या तो जमानत पर रिहा है या फरार ।
हालते इंसान पर बरहम न हों अहले वतन,
वो कहीं से जिन्दगी भी माँग लाएँगे उधार ।
रौनके जन्नत जरा भी मुझको रास आई नहीं.
मैं जहन्तुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार ।
दस्तकों का अब किवाड़ों पर असर होगा जरूर,
हर हथेली खून से तर और ज्यादा बेकरार ।

प्रसंग-प्रस्तुत गजल दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित 'साये में धूप' कृति से ली गयी है । इस गजल के अन्तर्गत दुष्यन्त कुमार ने यह भाव व्यक्त किया है कि आज सामाजिक जीवन में चारों तरफ दर्द की दरारें पड़ी हुई हैं, किन्तु वे दरारें किसी को दिखाई नहीं देती हैं । इस विज्ञापन की दुनिया में लोगों ने उन दरारों को जैसे उपेक्षित कर दिया है ।

व्याख्या-दुष्यन्तकुमार कह रहे हैं कि स्वातंत्र्योत्तर वर्षो में हमारे देश की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में जो परिवर्तन हुआ है, उसमें दर्द की मात्रा अधिक है । आम आदमी सुखपूर्वक जी नहीं पा रहा है, अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहा है, क्योंकि सम्पूर्ण समाज में अभावों से उत्पन्न दरार ही दरार दिखाई दे रही हैं । जिस किसी घर को देखो, वहाँ की हर दीवार में एक दरार है, किन्तु वह दरार आधुनिक सभ्यता की विज्ञापनी मनोवृत्ति के कारण जैसे छिपाई जा रही है । ऐसी स्थिति में आप किसी आम आदमी की पीड़ा से बचकर निकलना चाहें, तो यह सम्भव नहीं है । चारों तरफ बेशुमार मुर्दे पड़े हुए हैं अर्थात् हताशा, निराशा और बेबसी का आलम चारों ओर बिखरा पड़ा है । अखबारों में नित्य-प्रति अच्छे-अच्छे सपने दिखाने वाले विज्ञापन छपते हैं। हम उन्हें देखते रहते हैं और यह सोचकर रह जाते हैं कि आज आम आदमी के जीवन में भी यदि ऐसी बहारों की फसल आ जाती, तो हमारे जीवन में भी कुछ अच्छा परिवर्तन हो जाता । संकेत यह है कि विज्ञापनी मनोवृत्ति और चौंकाने वाली कृत्रिम सभ्यता ने जीवन को ढँक लिया है ।इससे आम आदमी का जीवन उपेक्षित हो गया है,उसकी पीड़ाएँ और उसके स्वप्न चूर-चूर हो रहे हैं और वह किसी भी स्थिति में अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रहा है । स्थिति यह हो गयी है कि आदमी सोचता बहुत है, किन्तु विवश है, कुछ कह नहीं पाता है । कारण यह है कि राजनैतिक व्यवस्था ने हमारी सामाजिक व्यवस्था को इस कदर बदल दिया है कि यहाँ अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता भी बाधित हो रही है, फिर कोई सच कहना चाहे, तो वह तो सम्भव ही नहीं है ।

उपर्युक्त क्रम मे ही दुष्यन्त कुमार आजादी के पश्चात् देश और समाज में हुए परिवर्तन और उससे उत्पन्न विषम स्थितियों की ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं कि चारों ओर एक सिरे से दूसरे सिरे तक सभी लोग अन्याय, अनाचार और भ्रष्टाचार जैसे अपराधों में शामिल हैं । आज अपराधी व्यक्ति भी जोड़-तोड़ बिठाकर या तो जमानत पर रिहा हो जाता है, या फिर फरार हो जाता है । संकेत यह है कि अत्याचारियों को न तो उचित दण्ड मिलता है और न पीड़ितों को उचित न्याय । कवि कह रहा है कि आज इन्सान की हालत इतनी अस्त-व्यस्त और बिखरी हुई हो गयी है कि वह क्रोध का पात्र नहीं रहा है, क्योंकि हमारे देश के कर्णधार इस अस्त-व्यस्त जिन्दगी से मुक्ति के लिए भी शायद कोई और जिन्दगी उधार लाकर उसे सौंप देंगे । कहने का अभिप्राय यह है कि आज हमारे इन्सान की स्थिति व्यवस्थित नहीं है, वह अव्यवस्थित और अनचाही जिन्दगी जी रहा है । ऐसी स्थिति में यदि कोई हमें स्वर्ग की खुशनुमा जिन्दगी भी प्रदान करे या उसके दर्शन कराये, तो वह हमें अच्छी नहीं लगती है, क्योंकि उस खुशनुमा जिन्दगी को जीने की आदत इन्सान को नहीं रही है । स्थितियों इतनी विषम और बोझिल हो गयी हैं कि आदमी जिस स्थिति में रह रहा है, चाहे वह भले ही जहन्नुम की स्थिति क्यों न हो,

उसी में खुश है । संकेत यह है कि आदमी की व्यवस्था उसके जीवन का अंग बन गयी है । अन्त में कवि कह रहा है कि आज कोई बन्द दरवाजों और किवाड़ों पर दस्तक भी देता है, तो उसका असर जरूर होगा । कारण यह है कि ऐसी अव्यवस्थित, उपेक्षित और दर्दभरी व अन्याययुक्त जिन्दगी की किवाड़ों पर यदि आदमी दस्तक दे, तो निश्चित रूप से उसका प्रभाव होगा । ऐसा करने में भले ही उसकी हथेली खून से तर-ब-तर हो जाये और वह कितना ही बैचैन हो जाये, तो भी निश्चित रूप से उसे अपनी विवश जिन्दगी से छुटकारा ' मिल सकता है । कवि का संकेत है कि पराजित मनोवृत्ति लेकर विवशता और असहायता को आधार बनाकर जीना उचित नहीं है । हमें अपनी विवश और असहाय जिन्दगी से मुक्ति के लिए उन बन्द दरवाजों और उन किवाड़ों को तोड़ना होगा, जिनके कारण हम अस्त-व्यस्त जीवन जी रहे हैं ।

टिप्पणी-

(1) इस गजल में एक ओर तो कवि ने सामाजिक जीवन में आम आदमी की पीड़ा की स्थिति को संकेतित किया है और दूसरी ओर विज्ञापनी मनोवृत्ति और आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध पर व्यंग्य भी किया है ।

(2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता स्वतंत्र भारत में बाधित हो, यह कवि को काम्य नहीं है । इसलिए वह 'बोलना भी है मना' जैसी बात कहता है ।

(3) आधुनिक समाज में आपराधिक मनोवृत्ति के बढ़ते हुए स्वरूप से चिन्तित होकर कवि ने गजल की अन्तिम पंक्तियों में तीखा व्यंग्य किया है और हमारी सामाजिक व्यवस्था और प्रशासनिक पद्धति की बखिया उधेड़ने की कोशिश की है ।

(4) गजल के अन्त में कवि ने क्रांतिधर्मी चेतना का सहारा लेकर प्रगतिशील दृष्टि अपनाते हुए व्यक्ति की वास्तविक स्वतंत्रता जो सोयी पड़ी है, उसे जगाने की प्रेरणा दी है ।

गजल: चार

होने लगी है जिस्म में जुंबिश तो देखिए,
इस परकटे परिन्द की कोशिश तो देखिए ।
गूंगे निकल पड़े हैं, जुबाँ की तलाश में,
सरकार के खिलाफ ये साजिश तो देखिए ।
बरसात आ गई तो दरकने लगी जमीन,
सूखा मचा रही है ये बारिश तो देखिए ।
उनकी अपील है कि उन्हें हम मदद करें,
चाकू की पसलियों से गुजारिश तो देखिए ।
जिसने नजर उठाई वही शख्त गुम हुआ,
इस जिस्म के तिलिस्म की बंदिश तो देखिए ।

प्रसंग-प्रस्तुत गजल दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित 'साये में धूप' कृति से ली गयी है । इस गजल के अन्तर्गत दुष्यन्त कुमार ने यह भाव व्यक्त किया है कि विवश, असहाय और दर्द का मारा इन्सान जब भीतर से शक्ति बटोरकर खड़ा होता है, तब वह क्रांतिधर्मी

भावना को अपनाता हुआ विवश होकर भी बहुत कुछ कर सकता है । इस स्थिति से व्यवस्था हिलने लगती है और उसकी वास्तविकता सामने आने लगती है ।

व्याख्या-दुष्यन्त कुमार कह रहे हैं कि आम आदमी का जगना आवश्यक है । व्यवस्था में फैली हुई अव्यवस्था को दूर करने के लिए उसे अपने शरीर में, अपने मन में गति लानी होगी, अर्थात् आम आदमी सब-कुछ सहते-सहते जिस जड़ता को प्राप्त हो गया है, उसे छोड़कर उसे सही अर्थ में जगना होगा और अपने अधिकारों के लिए उठ खड़ा होना होगा। जिस प्रकार पर कटा हुआ पक्षी बार-बार उठने और उड़ने की कोशिश करता है और अन्ततः सफल भी हो जाता है. वैसा ही प्रयत्न हमारे समाज के आम आदमी को करना होगा । जब ऐसा होगा, तो निश्चित रूप से जो लोग बोल भी नहीं पाते थे, वे भी बोलने लगेंगे । हमारे समाज में जिन लोगों की जुबान बन्द कर दी गयी है और वे गूंगे होकर जी रहे हैं, उन्हें भी जुबान प्राप्त हो जायेगी । ऐसा करने से ही हम सरकार के खिलाफ खड़े हो सकते हैं और उसे सही रास्ते पर लाने के लिए विवश कर सकते हैं । आज तो स्थिति यह है कि बरसात भी आती है. तो उससे जमीन सूखी की सूखी रह जाती है । व्यंग्य यह है कि सरकार आश्वासनों की वर्षा करके जनता को गुमराह करने में लगी रहती है । ऐसी वर्षा का क्या अर्थ है जिससे जीवन में हरियाली तो न आये, उल्टे सूखा अर्थात् अभावों का विस्तार होता चला जाये? आज यह अपील की जा रही है कि जनता सरकार की मदद करे, सरकार को सहयोग दे । यह स्थिति तभी सम्भव है, जब सरकार भी जनता की ओर ध्यान दे । जनता तो पसलियों की तरह है और यदि सरकार जो चाकू की तरह जीवन को काटती रहती है, वह जनता से यह अपील करे कि वह उसकी सहायता करे, यह ठीक वैसा ही है, जैसे कि कोई शक्तिशाली व्यक्ति कमजोर आदमी से मदद के लिए कहे । हमारे समाज में और शासन-व्यवस्था में स्थिति यह हो गयी है कि यदि कोई व्यक्ति या आम आदमी नजर उठाकर कुछ कहने का साहस करता है, तो वह गुम हो जाता है अर्थात् उसका अस्तित्व ही नहीं रहता है । हमारे प्रशासन और उससे जुड़ी हुई व्यवस्था ने ऐसा तिलिस्म बना रखा है कि उसे तोड़ना आम आदमी के वश की बात नहीं है ।

टिप्पणी-

(1) इस गजल में दुष्यन्त कुमार ने वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था की वास्तविक स्थिति का उद्घाटन किया है । उसने यह बतलाने की कोशिश की है कि जब तक सोया हुआ आम आदमी जगेगा नहीं, तब तक उसे अपने अधिकार प्राप्त नहीं होंगे ।

(2) प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुए दुष्यन्त कुमार ने जनजागृति की ओर इशारा किया है । चाकू और पसलियाँ जैसे मामूली प्रतीकों में गहरा अर्थ भर दिया गया है । तिलिस्म प्रयोग भी बहुत ही आकर्षक और सार्थक बन पड़ा है । 'भजिस्म के तिलिस्म की बंदिश' जैसे प्रयोग से कवि के अनुभूत को सही अभिव्यक्ति प्राप्त हो गयी है

(3) 'बरसात आ गयी तो दरकने लगी जमीन' जैसा प्रयोग आलंकारिक दृष्टि से विरोधाभास की सूचना दे रहा है, किन्तु कवि का मन्तव्य स्पष्ट है । बारिश से सूखा दूर होता है, किन्तु हमारी राजनैतिक व्यवस्था आश्वासनों की वर्षा करके जो

हरियाली दिखाना चाहती है, वह दिखती तो नहीं है, उल्टे आश्वासन मिथ्या प्रमाणित हो जाते हैं और चारों ओर सूखा ही सूखा अर्थात् स्थिति ज्यों की त्यों बनी रह जाती है । आज हमारे देश में यही हो रहा है । इस स्थिति की ओर कवि ने बड़ी सीधी सरल शब्दावली में बेपर्द शैली का सहारा लेकर अपनी बात कह दी है ।

20.5 सारांश

'साये में धूप में' जो गजल संगृहीत हैं, उनमें दुष्यन्त जी ने आम आदमी की पीड़ा, उसकी जीवन-स्थिति, उसकी निर्धनता और साथ ही साथ भारत के राजनीतिज्ञों की स्वार्थपरता, वायदाखिलाफी अवसरवादिता और जनता को दिये गये आश्वासनों को भुलाकर अपनी जेब भरने की मनोवृत्ति पर कहीं स्पष्ट, कहीं व्यंग्य से और कहीं संकेतों से प्रहार किया है । कहने का अभिप्राय यह है कि दुष्यन्त जी की गजलों में उनकी प्रगतिशील चेतना भी देखने को मिलती है, आम आदमी की जिन्दगी के यथार्थ बिम्ब भी देखने को मिलते हैं और आवश्यकतानुसार पुरानी और सड़ी-गली परम्पराओं को तोड़कर नयी जमीन पर कदम बढ़ाने का साहस भी देखने को मिलता है । लोकतंत्र, लोकतंत्र की स्थिति, लोगों द्वारा किये जा रहे व्यवहार आदि का चित्रण तो इन गजलों में देखने को मिलता ही है, साथ ही साथ मानव-जीवन की विशद् व्याख्या भी इन गजलों में की गयी है ।

20.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्नांकित गजलों की सप्रसंग व्याख्या करते हुए आवश्यक टिप्पणी प्रस्तुत कीजिये-

   1. कहाँ तो तय था चिराँगा हरेक घर के लिए,
      कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।
      यहीं दरख्तों के साये में धूप लगती है,
      चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए ।
      न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
      ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए ।
      खुदा नहीं, न सही, आदमी का स्वाब सही,
      कोई हसीन नजारा तो है नजर के लिए ।
      वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
      मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिए ।
      तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
      ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।
      जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
      मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए ।
   2. इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
      नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है ।

एक चिनगारी कहीं से ढूँढ़ लाओ दोस्तों,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है ।
एक खँडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है ।
एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है ।
निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में, जा-जाके बतियाती तो है ।
दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर,
और कुछ हो या न हो, आकाश-सी छाती तो है ।

3. कैसे मंजर सामने आने लगे हैं,
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं ।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं ।
वो सलीबों के करीब आए तो हमको,
कायदे कानून समझाने लगे हैं ।
एक कब्रिस्तान में घर मिल रहा है,
जिसमें तहखानों से तहखाने लगे हैं ।
मछलियों में खलबली है, अब सफीने,
उस तरफ जाने से कतराने लगे हैं ।
मौलवी से डाट खाकर अहले मकतब,
फिर उसी आयत को दोहराने लगे हैं ।
अब नई तहजीब के पेशे-नजर हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं ।

4. जिंदगानी का कोई मकसद नहीं है,
एक भी कद आज आदमकद नहीं है ।
राम जाने किस जगह होंगे कबूतर,
इस इमारत में कोई गुम्बद नहीं है ।
आपसे मिलकर हमें अकसर लगा है,
हुस्न में अब जच्च-ए-अमजद नहीं है ।
पेड -पौधे हैं बहुत बौने तुम्हारे,
रास्तों में एक भी बरगद नहीं है ।
मैकदे का रास्ता अब भी खुला है,
सिर्फ आमदरफ्त ही जायद नहीं है ।
इस चमन को देखकर किसने कहा था,
एक पंछी भी शायद यहाँ नहीं है ।

2. काव्य-वाचन के लिए दी गयी गजलों में व्यक्त दुष्यन्त कुमार के विचारों पर टिप्पणी कीजिए और बताइये कि कवि का मूल संदेश क्या है?
3. गजल-लेखन का इतिवृत्त प्रस्तुत करते हुए दुष्यन्त कुमार की गजलों का महत्व और वैशिष्ट्य उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए ।

20.6 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य : अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
2. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी, नयी कविता की रचना-प्रक्रिया पुस्तक संस्थान प्रकाशन ।
3. डॉ. हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल पद्म प्रकाशन, जयपुर ।
4. डॉ. हरिचरण शर्मा, परम्परा और प्रगति की भूमिका पर नयी कविता आर्य प्रकाशन गृह करौल बाग,नई दिल्ली ।
5. सारिका, दुष्यन्त कुमार स्मृति अंक, मई 1978
6. दुष्यन्त कुमार : आधुनिक रचनाकार और माध्यम की तलाश, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय का लेख ।
7. डॉ. प्रेमशंकर - रचना का अन्त:संघर्ष और दुष्यन्तकुमार

इकाई-21 दुष्यन्त कुमार के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 कवि और कृतित्व-परिचय

21.2.1 कवि-परिचय

21.2.2 कृतित्व परिचय

21.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

21.3.1 समसामयिक जीवन से गृहीत विषय

21.3.2 सामाजिक व्यवस्था की अव्यवस्था

21.3.3 आम आदमी का दर्द

21.3.4 मूल्यहीनता

21.3.5 सुख-दुख की सहज अभिव्यक्ति

21.3.6 जीवनास्था और जिजीविषा

21.3.7 पौराणिक संदर्भो का आधुनिकीकरण

21.3.8 समसामयिक राजनीति

21.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

21.4.1 काव्य-भाषा

21.4.2 अलंकृति

21.4.3 प्रतीक और बिम्ब

21.4.4 छन्द-विधान और काव्य-रूप

21.5 सारांश

21.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

21.7 संदर्भ ग्रंथ

21.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

- दुष्यन्तकुमार के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- नयी कविता में दुष्यन्तकुमार की स्थिति और उनके प्रदेय से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे ।
- दुष्यन्तकुमार के कृतित्व से पूर्णत: परिचित होकर उनके काव्य के अनुभूति पक्ष का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे ।

- दुष्यन्तकुमार के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से परिचित हो सकेंगे एवं उनके द्वारा लिखी गयी गजलों और उनकी उर्दू शैली से अवगत हो सकेंगे ।
- नयी कविता में दुष्यंतकुमार के महत्व और योगदान से अवगत हो सकेंगे ।

21.1 प्रस्तावना

दुष्यन्तकुमार त्यागी स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के एक सशक्त कवि के रूप में सामने आये । यथार्थ और मानवता के साथ आस्थावादी चिन्तन और जिजीविषा इनके काव्य का मूल स्वर रहा है । एक प्रकार से वे न केवल दर्द के कवि थे, अपितु मानवीय पीड़ा और विशेषकर आम आदमी की पीड़ा और उसकी संत्रस्त स्थितियों के सूक्ष्मद्रष्टा थे । फलतः: उनके काव्य में व्यक्ति समष्टि के समक्ष समर्पित होता दिखाई देता है । यही कारण है कि उनकी कविता से पाठक को आत्मीयता का अनुभव होता है । दुष्यन्त जी नयी कविता के कवि हैं, किन्तु वे नयी कविता की रूढ़ियों से मुक्त होकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ हिन्दी जगत् के सामने आये हैं । इनकी कविता भोग और काम से मुक्त है और अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव भी इनकी कविता पर तनिक भी नहीं है । शिल्प की दृष्टि से भी वे नये कवियों के निकट हैं । यद्यपि उन्होंने नाटक, काव्य-नाटक, रेडियो- नाटक, उपन्यास, संस्मरण और समीक्षा-साहित्य भी लिखा है, किन्तु वे कवि के रूप में अधिक जाने-पहचाने गये हैं ।

21.2 कवि और कृतित्व-परिचय

21.2.1 कवि-परिचय

दुष्यन्तकुमार का जन्म 27 सितम्बर, सन् अगअ में हुआ था । इनके पिता श्री भगवत सहाय जी ने दुष्यन्त को पाठशाला में प्रवेश दिलाते समय इनकी उम्र दो वर्ष कम लिखा दी थी । भारत के सबसे अधिक जनसंख्या वाले राज्य उत्तरप्रदेश में बिजनौर नामक एक जिला है, जिसे साहित्य-जगत् में खड़ीबोली की जन्मभूमि के रूप में जाना जाता है । इसी जिले की नजीवाबाद तहसील में राजापुर कस्बे के समीप नवादा गाँव में दुष्यनाकुमार का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । सन् 1952 में दुष्यन्त जी ने प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी, इतिहास और दर्शनशास्त्र विषयों को चुनकर बीए. की परीक्षा पास की और सन् 1954 में एम.ए. हिन्दी की परीक्षा पास की । अपने महाविद्यालयीय जीवन में दुष्यन्तजी को साहित्य से लगाव हो चला था । प्राचीन कवियों में उन्हें सूर, तुलसी तथा छायावादी काव्य-परम्परा के कवियों में निराला का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा। इसके पश्चात् इनके प्रिय कवि हरिवंशराय बच्चन रहे और राष्ट्रीय भावनाओं के कवि रामधारी सिंह दिनकर से भी ये पर्याप्त प्रभावित रहे । इन्होंने सन् 1958 में ऑल इण्डिया रेडियो, दिल्ली में एक सामान्य कर्मचारी के पद पर सरकारी नौकरी की । सन् 1960 में आकाशवाणी के भोपाल केन्द्र में आ गये । वहाँ इन्होंने सहायक प्रोड्यूसर के रूप में कार्य किया । नौकरी से सस्पेंड होकर भी ये सृजनरत रहे और अपने आर्थिक जीवन को सुनिश्चित करने के लिए पैतृक व्यवसाय कृषि भी करने लगे । ऐसे साहित्य

मनीषी, श्रम के प्रतीक दुष्यन्त कुमार जी का देहान्त 44 वर्ष की अवस्था में सन् 1975 के दिसम्बर माह की 29 तारीख को हो गया ।

21.2.2 कृतित्व-परिचय

स्वर्गीय दुष्यन्तकुमार प्रारम्भ से ही लेखन-कार्य में रुचि रखने लगे थे । प्रारम्भ में इन्होंने 'पहेली पहचान' शीर्षक में जो रचनाएँ प्रस्तुत कीं, उन्हें इन्होंने 'परदेशी' नाम लिखा । इनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं- 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का बसन्त', 'साये में धूप' और कुछ ऐसी कविताएँ, जो इनकी डायरी में लिखी हुई मिलीं। इनका एक काव्य-नाटक भी है जो 'एक कण्ठ विषपायी' नाम से प्रकाशित हुआ है और बहुत चर्चित और प्रशंसित भी हुआ है । इनकी काव्य-कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है:-

सूर्य का स्वागत- 'सूर्य का स्वागत' कृति में संकलित कविताओं में मानव-जीवन सम्बन्धी अनेक विषयों का विवेचन कविता के माध्यम से किया गया है । कवि अनुभव करता है कि चारों ओर घृणा का साम्राज्य फैला हुआ है और मनुष्य के सम्बन्ध बिगड़ते जा रहे हैं। घृणा का भाव निर्जीव वस्तुओं तक फैल गया है । 'अभी तो' शीर्षक रचना में दुष्यन्त ने मनुष्य की इसी प्रवृत्ति का आकलन ख्यिा है । पारस्परिक स्वार्थपरता, अवसरवादिता के कारण मानवीय सम्बन्धों में विकृतियाँ आती जा रही हैं । समाज में बिखरन, टूटन और घुटन व्याप्त है । इस सबसे निकलकर कवि आस्था का प्रकाश लेकर हिन्दी जगत् के सामने आता है । वह आस्था के सूर्य का स्वागत करता है । आलोच्य कृति में दुष्यन्त ने एक ओर मध्यवर्गीय मानव-जीवन को लेकर उसके मन के द्वंद और उस द्वंद में पिसते हुए विश्वास को व्यक्त किया है, तो दूसरी ओर एक नौजवान की आस्था का अलख भी जगाया है ।

आवाजों के घेरे- 'सूर्य का स्वागत' के पश्चात् 'आवाजों के घेरे' शीर्षक से सन् 1963 में इनकी दूसरी काव्य-कृति सामने आयी । इस कृति में 51 कविताओं को स्थान दिया गया है । कविताओं में विषय-वैविध्य तो है ही, साथ ही साथ आसपास के समूचे परिवेश का चित्रांकन भी है । 'आवाजों के घेरे' काव्य में जो कविताएँ संकलित हैं, उनमें पहले से ही आस्था और जिजीविषा का कायल कवि दुष्यन्त अपनी आस्था को और अधिक व्यापक रूप देता दिखाई देता है । वे अवसरवादियों और स्वार्थान्ध लोगों पर व्यंग्य भी करते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राएँ उनके पास नहीं हैं, वे तो साधारण आदमी की बात करते हैं । मध्यमवर्गीय व्यक्ति की जिन्दगी के चारों ओर के वातावरण को 'आवाजों के घेरे' में विषय-वस्तु के रूप में सुना गया है । 'आवाजों के घेरे' में कहीं-कहीं गांधीवाद का प्रभाव भी झलकता है । यही कारण है कि गांधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का कुछ कविताओं में साहित्यिक रूपान्तर भी किया गया है ।

जलते हुए वन का बसन्त- इस रचना में दुष्यन्त कुमार ने 45 रचनाओं को स्थान दिया है । इस काव्य-संकलन में भी आम आदमी की वेदना, बेचैनी, सम्बन्धों का खोखलापन तथा सामाजिक, राजनीतिक व नैतिक मूल्यों के पराभव की कहानी सीधी सरल भाषा में चित्रित की गयी है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में आदमी की असलियत के चित्रांकन के साथ

दुष्यन्त ने मानवता के पुनरुद्धार हेतु संकल्पशक्ति का वरण करने की पुरुषोचित शक्ति-साधना पर बल दिया है । यह काव्य-संग्रह तीन खण्डों में विभक्त है । इनके नाम हैं- इतिहास बोध, देश-प्रेम तथा चक्रवात । इस काव्य-संग्रह में भी दुष्यन्त जी ने अपने काव्य-विषय का चयन जनसामान्य के दैनिक जीवन से किया है । आजकल प्रत्येक स्थान पर जो भीड़ दिखाई देती है, जिसमें केवल अपनत्व का भाव लिए लोग अजनबियों की तरह विचरण करते हैं, जैसी स्थितियों का चित्रांकन प्रभावी ढंग से किया गया है । रेल-यात्रा में लोग मानवता को ताक में रखकर किस प्रकार एक-दूसरे से शत्रुवत् व्यवहार करते हैं, इसका सुन्दर विवेचन 'एक सफर पर' रचना में किया गया है । सम्पूर्णत: कह सकते हैं कि दुष्यन्त कुमार ने अपने इस काव्य-संकलन 'जलते हुए वन का बसन्त' में विषय-वैविध्य का परिचय दिया है । इसमें देश-प्रेम की भावना व्यक्त हुई है, मानवता का जयघोष किया गया है और मानव के समक्ष मुँह खोले खड़ी समस्याओं की विकरालता और उससे उत्पन्न स्थितियों का चित्रण भी किया गया है ।

साये में धूप- 'साये में धूप' दुष्यन्तजी का अन्तिम काव्य-संग्रह है । इसमें 52 गजलों को स्थान दिया गया है । इसका प्रकाशन सन् 1975 में हुआ था । यह वह गजल-संग्रह है जिसने दुष्यन्त जी को सर्वाधिक प्रतिष्ठा और सम्मान दिलाया । गजल एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा की श्रेणी में आती है । इसमें अपनी वेदना को मिर्जा गालिब ने भी व्यक्त किया था और उसे सर्वसामान्य की बात बताकर चित्रित किया था । हिन्दी में निराला, शमशेर बहादुर सिंह, शील, नीरज, रामदरश मिश्र, रघुवीर सहाय, त्रिलोचन आदि ने भी अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए गजल को आधार बनाया था । गजल का शाब्दिक अर्थ प्रेम-चर्चा है । दुष्यन्त जी की गजलों में प्रेम की चर्चा तो है ही, साथ ही साथ आम आदमी की तकलीफ, देश की महँगाई, गरीबी, भुखमरी, बेकारी, भ्रष्टाचार, लापरवाही आदि से उत्पन्न आम आदमी की फटेहाल जिन्दगी का चित्र प्रस्तुत किया गया है । इस संग्रह की प्रथम गजल ही फटेहाल, निराश, उदास, घुटन, बेचैनी, विवशता और देश-प्रेम के प्रति कवि की जीती-जागती भावना का प्रतीक है । 'साये में धूप' की गजलों में एक ओर मानव-जीवन की विशद् व्याख्या की गयी है. तो दूसरी ओर भाषागत विशिष्टता के भण्डार का भी अभाव नहीं है । इस संग्रह की गजलों की भाषा उर्दू और हिन्दी के मिश्रण से आम भाषा हो गयी है ।

एक कंठ विषपायी- 'एक कंठ विषपायी' दुष्यन्त कुमार का काव्य-नाटक है । इसे गीतिनाट्य भी कहा गया है । इसके अन्तर्गत शिवपुराण की 'सती-दाह' कथा की पौराणिक कथा को कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया है । इस प्राचीन कथानक के धरातल पर आधुनिक नये भावबोध को प्रस्तुत किया गया है । सम्पूर्ण काव्य-नाटक का कथानक चार अंकों में विभाजित है । पहले अंक में दक्ष और उनकी पत्नी वीरिणी का वार्तालाप चित्रित है । वार्तालाप शंकर को यज्ञ में निमंत्रित न करने को लेकर है । दूसरे अंक में शंकर के अतिरिक्त अन्य सभी देवता ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र व वरुण आदि एकत्र होते हैं, यज्ञस्थल ध्वस्त हो जाता है । सारे अंक में दो बातें वर्णित हैं- एक तो यज्ञ की ध्वस्तताजन्य परिस्थिति और दूसरे, शंकर का मृत्यों के प्रति आक्रोश । इसी अंक में सर्वहत नाम का एक नया पात्र भी अवतरित होता है । यह दक्ष का भृत्य है, किन्तु सारी

घटनाओं का सहज भोक्ता भी है । तीसरे अंक में शंकर से वरुण और कुबेर का मिलना उनकी उत्तेजना को और बढ़ा देता है, किन्तु शंकर के मोहान्ध हृदय में आक्रोश जन्म लेते अवश्य हैं, किन्तु सती का शव उनका ध्यान खींच लेता है । काव्य-नाटक के चौथे अंक में युद्ध की भूमिका दिखाई देती है । अन्त में युद्ध टल जाता है और स्थिति शांत हो जाती है । स्पष्ट है कि एक कंठ विषपायी के चारों अंकों में कथा पूरी तरह मूल चेतना से सम्बद्ध है । कथा का आधार बाह्य से अधिक आन्तरिक है । इस काव्य-नाटक में अतीत की कथा को प्रतीकों के सूत्रों में पिरोकर जहाँ एक ओर वर्तमान युग की समस्याएँ प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत की गयी हैं, वहाँ वे कलात्मक वैभव पाकर चमक भी गयी हैं। निश्चय ही यह काव्य पौराणिकता में आधुनिक बोध का संयोजन हे ।

21.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

किसी भी कवि का अनुभूति पक्ष उसके वर्ण्य-विषय से सम्बद्ध होता है । दुष्यन्त कुमार सामान्यत: नयी कविता के प्रतिष्ठित कवियों में परिगणित हुए हैं । वे सप्तकों से बाहर के कवि हैं, फिर भी उनके काव्य में प्रयोगशीलता व प्रगतिशीलता विद्यमान है । काल की दृष्टि से वे नयी कविता के कवि हैं, पर वे उनकी मान्यताओं के प्रति मोहित नहीं रहे हैं । उनकी कविता का विषय बहुत विस्तृत और गहराई को छूने वाला है । उन्होंने काव्य में सतही धरातल को स्पर्श करना अनुपयोगी माना है । जीवन के प्रत्येक पहलू से आपने काव्य-विषय चुने हैं । विषय ऐसे हैं, जो अध्येता के हृदयतारों को झकझोर जाते हैं । आवरणप्रियता से वे मुक्त रहे हैं । उनके काव्य में खुलापन है । पौराणिक कथ्य के द्वारा उन्होंने आधुनिक युगबोध को व्यक्त किया है । प्रजातांत्रिक विद्रूपताओं, असमानताओं, अभावों, आदमी का दर्द, दुख, बेचैनी, छटपटाहट, अनिश्चितता का बोध, धुरीहीनता अंधाविश्वास परम्पराओं का मोह और द्रोह, आशा-निराशा, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, सत्य, अहिंसा, शांति, प्रेम, दया, ममता, मानवता, मूल्यों का परिवर्तित परिवेश व चिन्ताओं से पूरित जिन्दगी की व्याख्या करते हुए कवि ने अपने काव्य में कोरी भावुकता से विराम लिया है । कहने की आवश्यकता नहीं कि दुष्यन्त कुमार का विषय-चयन प्राय: उतना ही व्यापक है, जितना स्वत: नयी कविता का क्षेत्र । ऐसी स्थिति में दुष्यन्त कुमार के काव्य के अनुभूति पक्ष के लिए निम्नांकित शीर्षकों को आधार बनाकर विवेचन किया जा रहा है ।

21.3.1 समसामयिक जीवन से गृहीत विषय

दुष्यन्त कुमार ने अपने काव्य में समसामयिक जीवन से जुड़े हुए विषयों को ही काव्य का आधार बनाया है । दुष्यन्त कुमार आधुनिक युगबोध के कवि हैं । उन्होंने अपने काव्य के निमित्त मानव-जीवन की विचारणीय समस्याओं को कविताओं के वर्ण्य-विषय के रूप में चुना है, अनावश्यक विषयों को स्थान नहीं दिया है । समसामयिक जीवन से गृहीत विषयों को उनके यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने काल्पनिकता और कृत्रिमता से अपनी कविताओं को मुक्त बनाये रखा है । हमारे परिवेश में आज आम आदमी दुख-दर्द से कराह रहा है, अनेक समस्याओं से जूझ रहा है और चाहे-अनचाहे उसे

सबके साथ रहते हुए भी अकेलेपन की थोड़ा झेलनी पड़ रही है । इन सब स्थितियों को समसामयिक जीवन और परिवेश में देखकर दुष्यन्त कुमार ने कविताबद्ध किया है । अकर्मण्यों में कर्मरत होने का भाव जगाने का प्रयास भी दुष्यन्त ने किया है । इसके साथ ही दुष्यन्त ने आम आदमी को ही नहीं, सभी देशवासियों को संघर्षरत होकर कार्य करने की प्रेरणा दी है । निराश, हताश और टूटे हुए मन वाले व्यक्तियों को आस्था से भरा है, आदर्शों को खोखला मानकर जीवन के लिए यथार्थ और व्यावहारिक दर्शन प्रस्तुत किया है । इसके साथ ही दीन-दुखियों, पीड़ितों और असहायों के प्रति मानवीय संवेदना के धरातल पर उतरकर उन्हें करुणा और सहानुभूति प्रदान की है । इसके अतिरिक्त आज समसामयिक जीवन और परिवेश में जो स्वार्थपरता, अवसरवादिता और संकीर्ण मनोवृत्ति व्याप्त है, उस पर उन्होंने खुलकर व्यंग्य किए हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि उनके काव्य में समसामयिक जीवन से चयनित विषयों को आधार बनाकर कविता की शक्ल में ढाला गया है ।

21.3.2 सामाजिक व्यवस्था की अव्यवस्था

दुष्यन्त कुमार ने गहराई से अनुभव किया है कि आजादी के पश्चात् हमारी सामाजिक व्यवस्था शिथिल पड़ती गयी है । एक प्रकार से सामाजिक व्यवस्था में जो संगठन, सहयोग, सहानुभूति और निर्माणकारी भावनाएँ होनी चाहिए, वे समाप्त हो गयी हैं । परिणामत: सामाजिक व्यवस्था अव्यवस्था का शिकार होती जा रही है । कवि का स्वप्न एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना है । स्वस्थ समाज में लोग समानता, भाईचारे, पारस्परिक सहयोग से जीवन-यापन करते हैं । दुष्यन्त ने इस समाजवादी समाज-व्यवस्था के विविध पहलुओं पर दृष्टिपात किया है । उन्होंने चित्रित किया है कि आज भी समाज वर्गों में बँटा हुआ है । ऊँच-नीच, पूँजीपति, गरीब, सामान्य और विशिष्ट का भेद आज भी विद्यमान है । वर्तमान परिवेश में भेदभाव और घृणा का भाव निरन्तर विस्तार पाता जा रहा है । उन्होंने 'सूर्य का स्वागत' में लिखा है-

नफरत औ भेदभाव
केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रह गया है अब

ऐसा भेदभाव जनतंत्र के लिए शुभ नहीं है । वर्ग-वैषम्य से पीड़ित सर्वसामान्य के प्रतिनिधि बनकर आये 'एक कंठ विषपायी' के सर्वहत का यह विचार कवि की इसी धारणा को व्यक्त करता है-

बतलाओ- मुझमें या शिव में क्या अन्तर है?
यही न कि मैं तो सर्वहत हूँ
साधारण हूँ-
और वो विशिष्ट देवता हैं, शिवशंकर हैं ।
किन्तु प्यास दोनों की एक-सी है ।

21.3.3 आम आदमी का दर्द

दुष्यन्त नये कवियों में आम आदमी के दर्द के कवि हैं । उनकी कविता यातना से ही उत्पन्न हुई है । उनकी कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य सामान्य मनुष्य का दर्द ही है । यह वह दर्द है, जो अभावों और दबावों से उत्पन्न हुआ है । कवि की सम्पूर्ण काव्य-यात्रा में आम आदमी का दर्द ही सदैव उसके साथ रहा है । हाँ, 'साये में धूप' गजल-संकलन का इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान है । दुष्यन्त की कविता में जिस दर्द की अभिव्यंजना हुई है. वह प्रेमजनित नहीं है, बल्कि सामाजिक समस्याओं से उद्भूत है । 'साये में धूप' की प्रत्येक गजल में इसी आम आदमी की जिन्दगी का दर्द गूँजता दिखाई देता है । उदाहरणार्थ यह अंश देखिए-

रोज जब रात को बाहर का गजर होता है
यातनाओं के अँधेरे में सफर होता है ।

\+ + +

ये धुएँ का एक घेरा कि मैं जिसमें रह रहा हूँ
मुझे किस कदर नया है, मैं जो दर्द सह रहा हूँ ।

दुष्यन्त जी ने दर्द को छिपाया नहीं है, क्योंकि वे इसी पीड़ा से आस्था के सूर्य को उदित होते हुए देखते हैं । 'सूर्य का स्वागत' में भी दुष्यन्त जी ने आदमी के करुण क्रन्दन के बीच उसके दर्द को व्यापकता से चित्रित किया है । इसी संग्रह में पक्षियों के कलरव में भी, मनुष्यों की चीख और कराहों में भी दुष्यन्त को दर्द की अनुभूति होती है । दुष्यन्त का मन यह मानता है कि दर्द से मन तो परिस्कृत होता ही है, साथ ही साथ इसी से जिजीविषा और प्रकाश के नक्षत्र भी निकलते हैं । 'आवाजों के घेरे' में यही आम आदमी का दर्द कुछ और व्यापकता लेकर सामने आया है । इस संग्रह की कविताओं में दुष्यन्त को चारों ओर घायलों, पीड़ितों का कोलाहल और मर्मभेदी आवाज सुनाई देती है । एक प्रकार से ऐसी ही दर्दभरी आवाजों के घेरे में कवि घिर गया है । इस संकलन में दृष्टान्त, एक मनस्थिति, निर्जन, सृष्टि, भविष्य की वन्दना, आत्मकथा और हम जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं ।

21.3.4 मूल्यहीनता

स्वातंत्र्योत्तर भारत में मूल्यहीनता अपने पैर पसारती जा रही है । आजादी के बाद कुछ वर्ष तो हम आजादी का उत्सव मनाते रहे, किन्तु धीरे-धीरे हम अपने सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को भूल गये । परिणामस्वरूप शाश्वत जीवन-मूल्य उपेक्षित हो गये और मूल्यहीनता प्रारम्भ हो गयी । तात्पर्य यह है कि मूल्यों का अवमूल्यन हुआ और जो मूल्य नहीं थे, वे मूल्य बनकर सामने आ गये । दुष्यन्त के काव्य में इस मूल्यहीनता और उससे परिवर्तित स्थितियों का चित्रण अनेक कविताओं में हुआ है । युवा पीढ़ी और बुजुर्ग पीढ़ी के बीच जो सांस्कृतिक मूल्यों का हास हुआ है और एक नयी दरार पैदा हुई है, उसका अंकन दुष्यन्त की अनेक कविताओं में देखने को मिलता है । शताब्दियों से जो नैतिक मूल्य और रीति-रिवाज हमारे जीवन का आधार थे, वे अब नहीं रहे हैं । ऐसा लगता है कि आज हमारे पैरों तले की जमीन ही नहीं बदली है, अपितु जीवन के मूल्य

पनघट की सुन्दरियों की तरह अचानक बदलते जा रहे हैं । मूल्यों का यह विघटन शहरी और ग्रामीण दोनों स्तरों पर हुआ है । दुष्यन्त ने लिखा है-

ओसारों में बैठे हुए बूढ़े बर्राते हैं,
लोटे में जल भरकर महरियाँ नहीं आतीं
स्वागत नहीं करते बच्चे - राहगीरों पर
कुत्ते लहकाते हैं ।

आज व्यक्ति जिस मूल्य-संकट के दौर से गुजर रहा है, उसकी अभिव्यक्ति 'जलते हुए वन का बसन्त' की कविताओं में बखूबी देखने को मिलती है । इस मूल्यहीनता के संदर्भ में दुष्यन्त जी यह संकेत देते हैं कि जो परिस्थितियाँ हमारे सामने हैं, उन्हें हमें शान्ति, अहिंसा और सहअस्तित्व जैसे शाश्वत मूल्यों का उपयोग कर सामाजिक जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

21.3.5 सुख-दुख की सहज अभिव्यक्ति

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सुख-दुख की अभिव्यक्ति सदैव से होती रही है । दुष्यन्त जी का काव्य भी इसका अपवाद नहीं है । दुष्यन्त ने सुख-दुख को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया है । छायावादी कविता में भी सुख-दुख की अभिव्यक्ति हुई थी, किन्तु वहाँ सुख-दुख को क्षणिक कहकर टाल दिया गया था । दुष्यन्त की मान्यता है कि दुख व्यापक है, उसे टाला नहीं जा सकता है और जो टल नहीं सकता, वह वरेण्य है । कवि ने दुख के महत्व को स्वीकार किया है । वे दुख को इसलिए भी सहज और स्वीकार्य मानते हैं कि सुख तो कपूर की टिकिया की तरह उड़ जाता है और दुख काफी समय तक रहता है, जो स्थायी बनने पर ही सुखोपलब्धि करा सकता है । दुख की व्यापकता आदमी के व्यक्तित्व का परिष्कार करती है और उसे नयी दिशा ग्रहण करने में प्रेरणा भी देती है । दुष्यन्त के विचार में दुख के बिना जीवन निकल हो जाता है । उन्होंने लिखा है-

खण्ड-खण्ड होकर जिसने, जीवन-विष पिया नहीं
सुखमय सम्पन्न मर गया जो जग में आकर
रिस-रिसकर जिया नहीं
उसकी मौलिकता का दम्भ निरा मिथ्या है
निष्फल सारा कृतित्व, उसने कुछ किया नहीं ।

उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि के काव्य में सुख-दुख के स्वरूप को स्पष्ट करने में हमारी विशेष सहायता करती हैं । एक वाक्य में दुष्यन्त ने दुख को सुख की ओर अग्रसर करने वाला महत्त्वपूर्ण घटक माना है ।

21.3.6 जीवनास्था और जिजीविषा

दुष्यन्तकुमार ने अपने जीवन में अनेक संघर्ष झेले और उन्हें झेलते-झेलते वे अनेक बार हताश-निराश भी हुए, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने निराशा को ही सब-कुछ मान लिया । वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति आशा और निराशा, आस्था और अनास्था के

पाटों के बीच पिसता रहता है । नयी कविता में बहुत से कवियों ने इन स्थितियों का चित्रण किया है । दुष्यन्त कुमार की कविता भी इसका अपवाद नहीं है । सामान्यत: उन्हें आस्था और जिजीविषा का कवि कहा जा सकता है, किन्तु उनकी जीवनास्था और जिजीविषा के मूल में निराशा ही प्रेरक बिन्दु के रूप में रही है । यह निराशा ही उन्हें आशा के सूत्र थमाती रही है । 'मोम के घोड़े' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है । इस कविता में वे अनुभव करते हैं कि उनके सपनों की दुनिया पर मोम फैल गया है और वे निराश हैं, किन्तु वे इसी निराशा से आशा की ओर भी बढ़े हैं । निराशा के चरम बिन्दु पर पहुँचकर व्यक्ति आशा की ओर बढ़ता ही है । 'निर्जन सृष्टि' कविता में कवि की जो अनुभूति व्यक्त हुई है, वह क्षणमात्र की अनुभूति है । जो लोग दुष्यन्त के काव्य में केवल आस्था या केवल निराशा देखते हैं, वे भ्रम के शिकार हैं । 'सूर्य का स्वागत से' 'साये में धूप' तक की यात्रा में दुष्यन्त की यही भावना रही है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित है कि दुष्यन्त जी ने केवल निराशा को ही गले लगाया है । निराशा को उन्होंने भोगा, स्वीकार किया और संघर्ष का सूत्र मानकर आशा की ओर जिजीविषा के साथ बढ़े हैं । उन्होंने 'सूर्य का स्वागत' के अन्तर्गत लिखा है-

उदास बालक-बालिकाओं सुनो
समय के सामने सीना तानो

ये पंक्तियाँ कवि के काव्य और जीवन दोनों में ही साहस, पौरुष, कर्म और जिजीविषा को स्पष्ट कर देती हैं । दुष्यन्त जी कर्म और संघर्ष के धरातल पर खड़े रहे हैं, इसलिए उन्हें निराशा की स्थिति में भी आशा पर गहरी आस्था रही है । उन्होंने लिखा है-

ईश्वर की शपथ इस अँधेरे में
उसी सूरज के दर्शन के लिए
जी रहा हूँ मैं कल से अब तक -सूर्य का स्वागत

दुष्यन्त जी को सूर्य उगने का विश्वास है, जो एक प्रकार से आशामय जीवन और उज्ज्वल भविष्य का संकेतक है । इसलिए वे प्रतीक्षा सह रहे है । 'अभी तो' शीर्षक रचना में वे आस्था और जिजीविषा से युक्त होकर ही यह कह सके हैं-

यों उतावले मत हो,
रचेगा जरूर
सूरज है
तुमने बनाया है । - सूर्य का स्वागत

वस्तुत: दुष्यन्त जी आस्थावान कवि हैं । उनके जीवन और काव्य का विषय निराशा भले ही हो, किन्तु उनकी निराशा आशा के रूप में आयी है । 'साये में धूप' जैसी कृति उनके आस्थावादी दर्शन की ही कृति है । उनका यह कहना कि "न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे", "खुदा नहीं न सही, आदमी का ख्वाब सही", "दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर और कुछ हो या न हो, आकाश की छाती तो है" आदि पंक्तियाँ (साये में धूप) उनकी कविता में आशा और विश्वास को प्रमाणित कर देती हैं । एक वाक्य में कह सकते हैं कि

दुष्यन्त आस्था, कर्म और संघर्षो से जूझने वाले कवि के रूप में ही अधिक जाने और समझे जा सकते हैं ।

21.3.7 पौराणिक संदर्भो का आधुनिकीकरण

दुष्यन्त कुमार के काव्य में जो कविताएँ उपलब्ध है उनमें अनेक स्थानों पर पौराणिक और धार्मिक संदर्भो का सहारा लिया गया है । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पौराणिक और धार्मिक संदर्भ केवल इनकी आवृत्ति मात्र के लिए नहीं चुने गये हैं, अपितु इनके माध्यम से आधुनिक बोध को अभिव्यक्ति दी गयी है । 'एक कण्ठ विषपायी' पूरा का पूरा काव्य इसी प्रकार का है । इसमें कवि ने पारम्परिक प्रसंग को आधार बनाकर या कहें कि पौराणिक संदर्भ को स्वीकार करते हुए आधुनिक संदर्भो को निरूपित किया है । यही वह काव्य है, जिसके अन्तर्गत कवि ने यह बतलाया है कि पौराणिक कथा और पौराणिक पात्र आधुनिक बोध के भी निरूपक हो सकते हैं । वर्तमान जीवन की वास्तविकता को उभारने के लिए पौराणिक संदर्भ को नया जामा पहना दिया गया है । परिणामस्वरूप 'एक कण्ठ विषपायी' की कथा को नये संदर्भ में देखा जाना उचित होगा । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस नाट्यका-व्य को पौराणिक कथा का आधुनिक नाट्य-शैली में रूपान्तर माना है । उनका यह दृष्टिकोण उचित प्रतीत नहीं होता है । कारण यह है कि इसमें पौराणिक कथा का नाट्य-शैली में रूपान्तर मात्र नहीं है, सही अर्थ में तो यह युगबोध को निरूपित करने वाली नाट्य-कृति है । प्रजातांत्रिक विद्रूपताओं, युद्ध की समस्या, भूख की समस्या, पूँजीपतियों व नेताओं के आचार-व्यवहार, जनता के जीवन की अनिश्चितता आदि का ही निरूपण इस काव्य-नाटक में हुआ है । यह निरूपण ही पौराणिक संदर्भो को आधुनिक बोध से जोड़ देता है । धर्म के धरातल पर भी दुष्यन्त ने धर्म का आधुनिकीकरण करने की कोशिश की है । उनके द्वारा रचित 'गौतम बुद्ध' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है । इस कविता में बौद्ध धर्म की मान्यताओं पर मार्मिक व्यंग्य किए गए हैं । दुष्यन्त जी की दृष्टि में हर छोटे को बड़ा करना धर्म है । धर्म परम्पराओं पर आश्रित नहीं होना चाहिए । परिस्थितियों से उसकी संगति बिठाना आवश्यक है । बौद्ध धर्म की अनेक भ्रांतियों और विशेष रूप से उसकी परिस्थितियों से उत्पन्न प्रतिकूलताओं की कवि ने व्याख्या की है और एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । दुष्यन्त जी ने बौद्धों के अष्टांगी मार्ग का खण्डन किया है और उसे असामयिक बतलाया है । वे कहते हैं-

दुख है मूल आज भी, जिसकी
मात्रा की कुछ शर्त नहीं है
संघ धम्म की शरण
लाख सिर पटके, कोई अर्थ नहीं है । -आवाजों के घेरे

21.3.8 समसामयिक राजनीति

सन् 1947 में देश आजाद हुआ । सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास के लिए प्रजातंत्र की स्थापना हुई । इस स्थापना के साथ यह घोषणा भी की गयी कि अब सम्पूर्ण देश को सुख-शांति

प्राप्त हो सकेगी और जनतंत्र के माध्यम से घर-घर का विकास हो सकेगा और सर्वत्र शांति और आनन्द की रश्मियाँ फैलती नजर आयेंगी । कवि दुष्यन्त ने अनुभव किया कि आजादी प्राप्त होने के बाद जो स्वप्न दिखाया गया था और जिस प्रजातंत्र के माध्यम से सम्पूर्ण देश और समाज को सुख-शांति का निर्झर प्रदान करने की बात कही गयी थी, वह निष्फल सिद्ध हुई । 'साये में धूप' कृति के अन्तर्गत दुष्यन्त ने समसामयिक राजनीति और राजनीतिज्ञों की स्थिति तथा जनता के प्रति उनके व्यवहार को भी अपनी कविता का विषय बनाया है । उन्होंने एक स्थान पर लिखा है-

कहाँ तो तय था चिराग हरेक के घर के लिए
कहीं चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए । - 'साये में धूप'

चुनाव जीतने पर जनता को दिये गये आश्वासनों को राजनेता किस प्रकार भूल जाते हैं और जनहित व राष्ट्रहित को भुलाकर अपनी स्वार्थपूर्ति में संलग्न हो जाते हैं, इसे भी दुष्यन्त ने अनुभव किया और अपनी कविताओं के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति दी है । जलते हुए वन का बसन्त काव्य-संग्रह के अन्तर्गत कवि ने लिखा है-

जनता की सेवा करने के भूखे
सारे दल भेड़ियों से टूटते हैं,

किन्तु चुनाव जीतने के पश्चात् वे सब भूल जाते हैं । वे दायित्वबोध और जनतंत्र व जन- समाज के लिए कुछ भी नहीं करते हैं । ऐसी स्थिति देखकर कवि दुष्यन्त ने राष्ट्र-नियामकों पर व राजनेताओं पर मार्मिक व्यंग्य भी किया है-

तुम्हारा आभारी हूँ रहनुमाओं
तुम्हारी बदौलत मेरा देश
यातनाओं से नहीं,
फूलमालाओं से दबकर मरा है । - जलते हुए वन का बसन्त

भ्रष्टाचार भी प्रजातंत्र की एक ज्वलन्त समस्या है । दुष्यन्त ने इसके स्वरूप को 'एक कण्ठ विषपायी' नाटक में सर्वहत के संवादों से उजागर कर दिया है । उन्होंने लिखा है-

ऐसे लोग अहिंसक कहाते हैं
मांस नहीं खाते
मुद्रा खाते हैं ।

वास्तव में 'एक कण्ठ विषपायी' का सर्वहत नामक पात्र जनता का प्रतिनिधि बनकर जनतंत्र में व्यक्ति की भूमिका को स्पष्ट करने में पूरी तरह सफल दिखाई देता है । उसका यह कथन द्रष्टव्य है, जिसमें जन-सामान्य की स्थिति का यथार्थ स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है-

शायद मैं राजा हूँ
शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ
या मैं इस राज्य की प्रजा हूँ
शायद मैं कुछ भी नहीं हूँ और सब कुछ हूँ । - एक कंठ विषपायी

इतना ही नहीं, 'साये में धूप' की अधिकांश गजलों में दुष्यन्त जी ने प्रजातंत्र की विद्रूपताओं पर व्यंग्य तो किया ही है, साथ ही साथ प्रजातंत्र की स्थिति देखकर पश्चाताप

भी व्यक्त किया है । यदि निम्नांकित पंक्तियाँ इस संदर्भ में पढ़ी जायें, तो स्थिति स्पष्ट हो सकती है-

दूकानदार तो मेले में लुट गये यारों - साये में धूप
तमाशबीन दूकानें लगाकर बैठ गये

21.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

अनुभूति का सम्प्रेषण अभिव्यंजना पक्ष से जुड़ा हुआ है । कवि जो अनुभव करता है, वही उसके अन्तस् में उमड़ता-घुमड़ता रहता है । जब यह घुमड़न अधिक बढ़ जाती है, तो अनुभूतियाँ बाहर आने के लिए कसमसाने लगती हैं । यही स्थिति अभिव्यक्ति पक्ष से जुड़ी हुई है । अभिव्यक्ति न केवल भाषा से होती है, अपितु वह प्रतीकों, अप्रस्तुतों और बिम्बों के माध्यम से भी होती है । यही कारण है कि अभिव्यंजना पक्ष में भाषा, प्रतीक, अप्रस्तुत, बिम्ब और छन्द को विशेष स्थान प्राप्त है । दुष्यन्त कुमार नयी कविता के सृष्टा हैं । उनके काव्य का अभिव्यंजना पक्ष भी उतना ही प्रभावपूर्ण है, जितना कि उनका अनुभूति पक्ष । उनके अभिव्यंजना पक्ष की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह उनके वर्ण्य-विषयों के अनुकूल है और अनुभूतियों का सहचर बनकर आया है। ऐसी स्थिति में कवि दुष्यन्त के अभिव्यंजना पक्ष का विवेचन जिन शीर्षकों से किया जा सकता है, वे अग्रलिखित हैं –

21.4.1 काव्य-भाषा

सामान्यत: भाषा विचारों की वाहिका कही जाती है । इस कथन से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता है । सामान्य व्यक्ति और साहित्यकार की भाषा में अन्तर होता है । सामान्य व्यक्ति अपनी बात को व्यक्त करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग करता है, उससे भिन्न भाषा संवेदनशील रचनाकार की होती है । दुष्यन्त कुमार ने अपनी भाषा को सहज बनाये रखा है । उनकी काव्य-भाषा में वैयक्तिक प्रयोग तो हैं, किन्तु उनकी कविता में पहचाना-सा एक आत्मीय भाषा का स्वरूप भी देखने को मिलता है । स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उनका व्यक्ति समष्टि के समर्पित हो गया है, इसलिए भी भाषा वैयक्तिक स्वरूप छोडकर आम आदमी की भाषा हो गयी है । उनकी काव्य-भाषा की प्रथम विशेषता यह है कि उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जो आम आदमी की भाषा है । जन-भाषा ही उनके यहाँ काव्य-भाषा का रूप लेकर आयी है । 'साये में धूप' की गजलों को इस दृष्टि से विशिष्ट माना जा सकता है । वास्तव में दुष्यन्त यह अनुभव करते रहे कि 'आम आदमी' एक मिली-जुली जुबान बोलता है, वह न तो शुद्ध उर्दू होती है, न शुद्ध हिन्दी, इसलिए मैंने उस भाषा की तलाश की है, जो हिन्दी को हिन्दी और उर्दू को उर्दू दिखाई दे और आम आदमी उसे अपनी जुबान समझकर अपना सके । उदाहरणार्श कुछ अंश देखिए, जो उनकी इसी प्रकार की भाषा को प्रमाणित कर देते हैं-

ये सच है पाँवों से बहुत कष्ट उठाये
पर पाँव किसी तरह राहों पै तो आए । - साये में धूप

कहने का अभिप्राय यह है कि दुष्यन्त की काव्य-भाषा आम आदमी की भाषा तो है ही, साथ ही साथ व्यंजना से भी परिपूर्ण है । अपनी भाषा को अधिक विश्वसनीय और आम आदमी की आत्मीय भाषा बनाने के लिए दुष्यन्त जी ने ऐसे प्रतीकों, ऐसे उपमानों और ऐसे वाक्यान्शों का प्रयोग किया है, जो भाषा को पूरी तरह आम आदमी से जोड़ देते हैं । 'सूर्य का स्वागत' में उन्होंने लिखा हैं-

मैं जो कवि हूँ, भावों अभावों के पाटों में पड़ा हुआ
एकाकी दाने-सा, कब तक जीता रहूँगा
कब तक कमरे के बाहर पड़े हुए गर्दखोर-सा
जीवन का यह क्रम चलेगा
कब तक जिन्दगी की गर्द पीता रहूँगा । - सूर्य का स्वागत

दुष्यन्त की भाषा में यह विशेषता भी मिलती है कि वे अपनी भाषा को प्रभावी और आत्मीयता प्रदान करने के लिए तो सहज रूप में प्रस्तुत करते ही हैं, साथ ही साथ पाठक के हृदय में उस भाषा में छिपे हुए भावों को सीधे उतारने की क्षमता भी रखते हैं । ऐसा करने के लिए उन्होंने आम भाषा से भरी हुई शब्दावली को काम में लिया है जो कहीं प्रतीक रूप में काम में ली गयी है, तो कहीं उपमान के रूप में । उन्होंने राजनैतिक दलों के लिए भेड़िये की उपमा दी है और परिवर्तित मूल्यों के निमित्त पनघट और सुन्दरियों की उपमा देकर भाषा को प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया है । इसी प्रकार 'दिन निकलने से पहले' कविता में पक्षियों की चीख, टीन के कनस्तर, अँगीठी, चक्की आदि सामान्य उपमाओं से अशांतिपूर्ण वातावरण को प्रस्तुत कर दिया है । अभिव्यंजना कौशल अर्थात् अभिव्यक्ति की बंकिमता दुष्यन्त की भाषागत उपलब्धि कही जा सकती है । इन्होंने अपनी अनुभूतियों को बिना किसी लाग-लपेट के आम आदमी की भाषा में प्रस्तुत किया है । फलत: अभिव्यक्ति और भाषा दोनों ही आत्मीय रूप लेकर सामने आयी हैं । भाषा सम्बन्धी ये विशेषताएँ उनके सभी काव्य-संग्रहों में देखी जा सकती है । इसके अतिरिक्त चित्रात्मकता भी उनकी भाषा की एक अतिरिक्त विशेषता है । अनेक स्थानों पर उन्होंने वर्ण्य-विषय और वर्णित अनुभूति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत कर दिया है । इस प्रकार कह सकते हैं कि दुष्यन्त की काव्य-भाषा आम आदमी से जुड़ी हुई, आत्मीय, सहज और व्यावहारिक भाषा है । उसमें न तो कृत्रिमता है, न बनावटीपन है । हाँ, अगर उसमें कुछ है, तो वह है सहजता, विश्वसनीयता, व्यंजनात्मकता, प्रतीकात्मकता, बंकिमता और चित्रोपमता ।

21.4.2 अलंकृति

अभिव्यक्ति को सप्राण और सजीव बनाने के लिए ही नहीं, अपितु अनुभूति की सही अभिव्यक्ति के लिए अनेक बार कवि अलंकृति का सहारा लेते हैं । ऐसा नहीं है कि अलंकृति का सहारा लिये बिना कविता नहीं हो सकती है, वह होती तो है, किन्तु जब कविता में अनुभूत के सम्प्रेषण के लिए अलंकृति स्वत: ही आ जाती है, तो उसे हम अलंकृति तो कहते हैं, किन्तु साथ ही सहज, स्वाभाविक अलंकृति भी कहें, तो अधिक उपयुक्त होगा । दुष्यन्त कुमार के काव्य में प्रयुक्त अलंकार सहज और स्वाभाविक रूप

से आये हैं । उन्होंने जिन अप्रस्तुतों का सहारा लिया है, वे भी कहीं तो परिवेश से जुड़े हैं, कहीं प्राकृतिक क्षेत्र से लिये गये हैं, कहीं पौराणिक संदर्भो से लिए गए हैं, तो कहीं जीवन के क्रिया-कलापों से भी लिए गए हैं । उनके अप्रस्तुत किसी एक प्रकार के नहीं हैं। कहीं वे मूर्त के लिए अमूर्त हैं, तो कहीं अमूर्त के लिए मूर्त हैं । इतना ही नहीं, अमूर्त के लिए अमूर्त और मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों का प्रयोग भी दुष्यन्त जी के काव्य में देखन को मिलता है । कलात्मक अप्रस्तुतों का प्रयोग भी दुष्यन्त जी ने पर्याप्त मात्रा में किया है । कलात्मक अप्रस्तुतों के क्षेत्र में भवन, मूर्ति, चित्र, संगीत आदि कलाओं को स्थान प्राप्त है । कलात्मक अप्रस्तुतों के प्रयोग न केवल उनके सभी काव्य-संग्रहों में मिलते हैं, अपितु 'साये में धूप' में भी उपलब्ध हैं । उदाहरणार्थ-

वो बात कितनी भली है जो आप करते हैं
सुनो तो सीने की धड़कन रवाब हो जाये

इसमें सीने की धड़कन के लिए रवाब अर्थात् वाद्ययंत्र को अप्रस्तुत के रूप में रखा गया है । इसी प्रकार कहीं उन्होंने स्थापत्य कला के क्षेत्र से पुल को उपमान के रूप में ग्रहण किया है । प्रकृति के क्षेत्र से जो उपमान गृहीत हैं, वे भी बड़े प्रभावशाली बन पड़े हैं । उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए-

जंगली फूल-सी सुकुमार औ निष्पाप
मेरी आत्मा पर बोझ बढ़ता जा रहा है प्राण

इसमें 'आत्मा' उपमेय के लिए 'जंगली फूल' उपमान रूप और गुण दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है । यह बड़ा ही सार्थक और सटीक उपमान है जिससे कविता की पंक्तियाँ प्रभावी रूप लेकर पाठक के सामने आयी हैं । उदाहरण बहुत हैं, किन्तु इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनके अप्रस्तुत विधान में सभी क्षेत्रों से गृहीत उपमानों को स्थान मिला है । पौराणिक अप्रस्तुत दुष्यन्त जी की 'सूर्य का स्वागत' संग्रह में तो मिलते ही हैं, 'आवाजों के घेरे' में भी मिलते हैं । इनके काव्य में प्रमुखत: मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का ही प्रयोग हुआ है ।

21.4.3 प्रतीक और बिम्ब

अनुभूति की अभिव्यंजना के लिए दुष्यन्त कुमार ने अनेक प्रकार के प्रतीकों को काम में लिया है । इन्होंने पारम्परिक और नूतन दोनों ही प्रकार के प्रतीकों को अपनाया है । इनकी कविता में पौराणिक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, कलात्मक प्रतीक, वैज्ञानिक प्रतीक, यौन प्रतीक और जन-जीवन से गृहीत प्रतीक पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । प्राकृतिक प्रतीकों में पहाड़ी उपलब्धि का प्रतीक है, तो पेड़-पौधे और काँटे बाधाओं और समस्याओं के प्रतीक हैं । इसी प्रकार फूलों से लदी लता सुख-सौंदर्य की प्रतीक है, जिसकी आकांक्षा तो कवि किए हुए है, किन्तु वह प्राप्ति की रेखा से दूर है । प्राकृतिक प्रतीकों की संख्या सर्वाधिक है । जहाँ तक पौराणिक प्रतीकों का प्रश्न है, 'आवाजों के घेरे' संकलन में 'दृष्टान्त' कविता में अभिमन्यु आधुनिक मानव का प्रतीक बनकर आया है । इसी कविता में युद्धस्थल को हृदय का प्रतीक बतलाया गया है और कौरव-सेना मन के कलुषित पक्ष की प्रतीक है । 'सूर्य का स्वागत' संग्रह में आयी 'कुण्ठा' शीर्षक कविता में कवि ने

पौराणिक प्रतीक कुन्ती के कर्मसादृश्य पर कुण्ठा का चित्रण किया है और यह लिख दिया है कि ग"र्भवती है /मेरी कुण्ठा - क्वाँरी कुन्ती" गर्भावस्था में क्वाँरी कुन्ती की जो स्थिति थी. वही स्थिति कवि को अभिव्यक्ति से पूर्व अन्दर ही अन्दर घुमड़ने वाली कुण्ठा की लगती है । अत: रूपक के आधार पर कुन्ती पौराणिक प्रतीक के अन्तर्गत आता है । कलात्मक प्रतीकों में संगीत और चित्रकला से प्रतीक अधिक लिए गए हैं । वैज्ञानिक प्रतीक भी 'सूर्य का स्वागत' की 'दिग्विजय का अश्व' कविता में देखने को मिलते हैं । इस कविता में अश्व मशीन का प्रतीक है, मशीन में भी अश्व-शक्ति होती है । इसी साम्य पर कवि ने इसे सार्थक रूप में चुना है । वैज्ञानिक प्रतीकों की संख्या बहुत कम है, किन्तु सर्वाधिक प्रतीक जन-जीवन से लिए गए हैं । 'एक और प्रसंग' कविता में आयी हुई ये पंक्तियाँ देखिए जो जन-जीवन से गृहीत प्रतीकों से युक्त हैं-

आँखों में भरकर आकाश
और हृदय में उमंग
काँपती उँगलियों में सहज थरथराती हुई
छोटी-सी पतंग
+ + +
साँवली लकीरों के साँपों ने घेर लिया
कट गयी पतंग
अन्धकार का अजगर लील गया
एक -एक पंख ।

इस उदाहरण में पतंग इच्छाओं का प्रतीक है, जो आशाओं से युक्त है । साँप विभीषिकाओं का प्रतीक है और अजगर निराश कुण्ठा आदि का प्रतीकार्थ लिए हुए है । पतंग जन-जीवन से गृहीत प्रतीक है ।

प्रतीकों की भाँति ही दुष्यन्त कुमार के काव्य में बिम्ब-प्रयोग भी बड़ा प्रभावकारी बन पड़ा है । दुष्यन्त के काव्य में दृश्यबिम्ब तो मिलते ही हैं, साथ ही साथ संवेदनापरक विश्व भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं । संवेदनापरक बिम्बों में गंध,बिम्ब - रस-बिम्ब, गति-बिम्ब, ध्वनि-बिम्ब के अच्छे प्रयोग दुष्यन्त ने किये हैं ।

गंध बिम्ब- कोलाहलों में भी जब हवा महकती थी
तो मुझे मालूम हो जाता था
कि चम्पा के पास कहीं मेरी प्रतीक्षा है

गति बिम्ब- गाते नहीं पंछी
झुण्ड के झुण्ड दुर्भाग्य की तरह
मेरे शीश पर मँडराते हैं ।

इसके अतिरिक्त दुष्यन्त कुमार के काव्य में स्पर्श बिम्ब और ध्वनि बिम्ब भी मिलते हैं। प्रकृति बिम्ब, पौराणिक और ऐतिहासिक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब भी दुष्यन्त कुमार की कविताओं में देखे जा सकते हैं । जीवन के क्रिया-कलापों से उठाये गये बिम्बों की कमी भी दुष्यन्त की कविता में नहीं है । दुष्यन्त ने कविता को आम आदमी के जीवन की वस्तु बनाने के उद्देश्य से जीवन के विविध क्रिया-कलापों और वस्तुओं आदि को

बिम्बस्वरूप को प्रयुक्त किया है । 'साये में धूप' कृति के अन्तर्गत इस प्रकार के बिम्ब पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । उदाहरणार्थ एक गजल का यह शेर लिया जा सकता है-

इस अहाते के अँधेरे में धुआँ-सा भर गया
तुमने जलती लकड़ियाँ शायद बुझाकर फेंक दीं

मध्य और निम्न वर्ग का व्यक्ति जिस प्रकार अपना जीवन बिता रहा है और जिस कठिनाई के साथ उसे अपने दिन काटने पड़ रहे हैं, उसके बिम्ब भी दुष्यन्त की कविताओं में देखने को मिलते हैं । 'जलते हुए वन का बसन्त', 'साये में धूप', 'आवाजों के घेरे' में इस प्रकार के बिम्ब देखे जा सकते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्ब और प्रतीक की दृष्टि से दुष्यन्त कुमार का काव्य पर्याप्त समृद्ध, अकृत्रिम और प्रभावपूर्ण बन पड़ा है ।

21.4.4 छन्द-विधान और काव्य-रूप

छन्द कविता का व्यावहारिक तत्त्व है । नयी कविता के कवियों ने अधिकांशत: मुक्त छन्द का प्रयोग किया है । इतने पर भी यह स्पष्ट है कि नये कवियों ने कहीं-कहीं पारम्परिक छंदों को भी काम में लिया है -और कहीं-कहीं पारम्परिक शास्त्रीय छंदों को तोड़-मरोड़कर नये छंदों का निर्माण भी किया है । जहाँ तक दुष्यन्तकुमार का प्रश्न है, उन्होने अधिकांशत: तो अपनी अभिव्यक्ति के लिये मुक्त छन्द को ही काम में लिया है, या फिर शेरोशायरी और गजल पद्धति को अपनाया है । हाँ, अपवादस्वरूप यदि कहीं कहीं लयात्मकता लाने के लिए पारम्परिक छन्द को अपना लिया गया है, तो वह एक तरह से सहज प्रयोग ही कहा जायेगा । छन्दों के क्षेत्र में इन्होंने गीत-कविता के छन्द भी अपनाये हैं । उनके गीतों में मुक्तक का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है । मुक्तकों में सम छन्द का प्रयोग उल्लेखनीय है । 30 मात्राओं के एक छन्द का यह उदाहरण देखिए जो उनकी प्रारम्भिक कविताओं में आया है-

वही जिसके लिए तुमको सुमन पाषाण लगते थे
मलय की मुग्ध वातास के भी बाण लगते थे
कि जिसकी याद में पागल जवानी कसमसाती थी
नयन की नींद बेसुध व्योम के चक्कर लगाती थी ।

इसमें सम छन्द का प्रयोग हुआ है, यह 30 मात्राओं का छन्द है । कहीं-कहीं दुष्यन्त ने तीन पंक्तियों की त्रिपदी का प्रयोग भी किया है । यह प्रयोग 'सूर्य का स्वागत' में देखने को मिलता है । मुक्तक छन्द का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया गया है, किन्तु सचाई यह है कि इनके द्वारा प्रयुक्त मुक्त छन्द दो प्रकार के हैं- एक तो वे, जो लय की समानता वाले मुक्त छन्द हैं और दूसरे वे, जो लयहीन मुक्त छन्द हैं । मुक्त छन्द का प्रयोग इनके लगभग प्रत्येक संग्रह में उपलब्ध है । शेर उर्दू का लोकप्रिय छन्द है । इसे भी दुष्यन्त ने अपनी कविताओं में बहुत अधिक स्थान दिया है । दुष्यन्त जी की गजलों में प्रयुक्त शेर छन्द में 'रदीफ' (शेर के अन्तिम एक-से शब्द) तथा काफिया (अन्तिम शब्दों से पहले समान ध्वनि वाले शब्द) प्राय: एक-से ही हैं । रदीफ और

काफिये की यह एकता 'साये में धूप' की गजल के प्रथम शेर में ही उपलब्ध है । अन्य शेरों में रदीफ और काफिये भिन्न-भिन्न हैं । उदाहरणार्थ-

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए ।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए ।
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए ।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए ।
मेरे सीने में नहीं, तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए । - साये में धूप

जहाँ तक काव्य-रूप का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि दुष्यन्त के द्वारा रचित काव्य-नाटक 'एक कण्ठ विषपायी' विशिष्ट और प्रभावशाली बन पड़ा है । इसे कुछ लोगों ने गीतिनाट्य कहा है, तो कुछ ने काव्य-नाटक, किन्तु डॉ. हरिचरण शर्मा ने इसे गीतिनाट्यात्मक प्रबन्ध स्वीकार किया है । उनका कथन है कि "यह 'अन्धायुग' की परम्परा का ही प्रबन्ध है- गीतिनाट्यात्मक प्रबन्ध ।"

21.5 सारांश

सम्पूर्ण विवेचनोपरान्त स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि दुष्यन्त कुमार नयी कविता के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं । यद्यपि उनकी कविताओं को सप्तकों में स्थान नहीं मिला, किन्तु वे अपने स्वतंत्र काव्य-सृजन, अपनी चिन्तना, भावना और प्रस्तुति के कारण अलग से पहचाने गये हैं । नयी कविता की अधिकांश विशेषताऐं उनके काव्य का वर्ण्य-विषय बनी हैं । वे आम आदमी के जीवन की स्थितियों, उनकी समस्याओं और स्थितियों के निरूपक कवि के रूप में हमारे सामने आये हैं । उनका सम्पूर्ण काव्य-सृजन उनके व्यक्तित्व के अनुकूल है और उनके काव्य-सृजन में 'एक कण्ठ विषपायी' और 'साये मे धूप' जैसी कृतियों का विशेष महत्त्व है । 'एक कण्ठ विष्पायीयदि ' गीतिनाट्यात्मक प्रबन्ध है, तो 'साये में धूप' आम आदमी की जिन्दगी का यथार्थ रूप प्रस्तुत करने वाला ऐसा सृजन है, जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकसित विकृत राजनीति, प्रजातंत्रीय व्यवस्था और उससे जुड़ी हुई स्थितियों का निरूपण किया गया है । कवि की अनुभूतियाँ जिस प्रकार की हैं, उसी के अनुरूप उन्होंने अभिव्यंजना शैली का भी प्रयोग किया है । कवि की अनुभूतियों में यदि सहजता, यथार्थता, अकृत्रिमता और विश्वसनीयता है, तो तद्नुरूप ही उनकी शैल्पिक संयोजना भी सहज, सरल अकृत्रिम और आम आदी की आत्मीयता प्राप्त करने वाली है ।

21.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "दुष्यन्त कुमार नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं । अत: उनके काव्य में वे सभी विशेषताएँ मिलती हैं, जो नयी कविता में उपलब्ध हैं" । इस कथन के संदर्भ से दुष्यन्त कुमार के काव्य की अनुभूतिपरक विशेषताओं का विवेचन कीजिए ।
2. दुष्यन्त कुमार के अनुभूति पक्ष में चित्रित समसामयिक परिवेश, समाज-व्यवस्था, मूल्यहीनता और राजनैतिक स्थितियों के जो चित्र निरूपित हुए हैं उन्हें उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।
3. दुष्यन्त कुमार के काव्य में प्रयुक्त भाषा-शैली की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए और आवश्यकतानुसार उदाहरण भी दीजिए ।
4. दुष्यन्त कुमार की काव्य-कृतियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए 'साये में धूप' के प्रमुख प्रतिपाद्य का उदाहरण सहित विवेचन कीजिए ।
5. "दुष्यन्त कुमार का काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति का समुचित समीकरण प्रस्तुत करता है ।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में दुष्यन्त कुमार के काव्य का मूल्यांकन कीजिए ।

21.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य: अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
2. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी, नयी कविता की रचना-प्रक्रिया: पुस्तक संस्थान प्रकाशन ।
3. डॉ. हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल : पद्म प्रकाशन, जयपुर ।
4. डॉ. हरिचरण शर्मा, परम्परा और प्रगति की भूमिका, पर नयी कविता : आर्य प्रकाशन गृह, करौल बाग, नई दिल्ली ।
5. सारिका, दुष्यन्त कुमार स्मृति अंक, मई 1978
6. दुष्यन्त कुमार: आधुनिक रचनाकार और माध्यम की तलाश, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय का लेख ।
7. डॉ. प्रेमशंकर - रचना का अन्त:संघर्ष और दुष्यंतकुमार

इकाई-22 रघुवीर सहाय का काव्य

इकाई की रुपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 कवि-परिचय

22.2.1 जीवन-परिचय

22.2.2 व्यक्तित्व परिचय

22.2.2.1 कवि रघुवीर सहाय

22.2.2.2 पत्रकार और सम्पादक रघुवीर सहाय

22.2.2.3 निबंधकार रघुवीर सहाय

22.2.2.4 कथाकार रघुवीर सहाय

22.2.3 कृतियाँ

22.2.3.1 काव्य कृतियाँ

22.2.3.2 गद्य कृतियाँ

22.3 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

22.3.1 चौड़ी सड़क गली पतली थी

22.3.2 हिलती हुई मुंडेरें हैं और चटखे हुए हैं पुल

22.3.3 मुझे कुछ और करना था

22.3.4 जब सीमा के इस पार पड़ी थी लाशें

22.3.5 राष्ट्रगीत में भला कौन वह

22.3.6 बड़े शहर में कई नागरिक रहते हैं

22.3.7 लोगों, मेरे देश के लोगों और उनके नेताओं

22.3.8 समय आ गया है जब तक कहता है सम्पादकीय

22.4 विचार-संदर्भ और शब्दावली

22.5 सारांश

22.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

22.7 संदर्भ ग्रंथ

22.0 उद्देश्य

यह इकाई नई कविता के प्रमुख कवि रघुवीर सहाय के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित है । इस इकाई के अध्ययन से आप-

- रघुवीर सहाय के जीवन से परिचित हो सकेंगे ।
- रचनाकार-व्यक्तित्व के निर्माण के प्रेरक तत्वों, परिस्थितियों, विकासक्रम और उनकी दिशाओं को समझ सकेंगे ।

- रघुवीर सहाय के कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- चुनी हुई कविताओं का वाचन और व्याख्याओं का आस्वादन कर सकेंगे ।
- ऐसे संदर्भ-ग्रंथों की सूची प्राप्त कर सकेंगे जो आपकी जान-वृद्धि में सहायक होगी ।

22.1 प्रस्तावना

रघुवीर सहाय अज्ञेय द्वारा संपादित दूसरा सप्तक के कवि थे । वे छायावादोत्तर हिन्दी कविता की जनवादी परम्परा के समर्थ संवाहक थे, क्योंकि उनकी रचना के केंद्र में आम जनता और उसकी समस्याएँ हैं । सहाय बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न रचनाकार थे, क्योंकि वे एक साथ कवि के अलावा पत्रकार, संपादक, निबंधकार, कहानीकार और उच्च कोटि के अनुवादक के रूप में भी ख्यात हुए।

रघुवीर सहाय अज्ञेय के बाद हिन्दी कविता की दिशा तय करने वाले एक विशिष्ट कवि के रूप में अपनी पहचान बनाते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग को पार करती हुई प्रगति-प्रयोग युग में आयी । प्रयोगवाद के पुरोधा कवि अज्ञेय थे और प्रयोगवाद की कोख से नई कविता का जन्म हुआ। नई कविता के कवियों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय आदि विशेष उल्लेखनीय नाम हैं । नई कविता पूर्ववर्ती कविता की जड़ता और फार्मूलाबद्धता के विरोध में आयी । नई कविता को स्थापित और व्याख्यात करने के लिए इसका शास्त्र भी रचा गया जिसके परिणामस्वरुप लक्ष्मीकांत वर्मा की नई कविता के प्रतिमान पुस्तक सामने आई । नामवर सिंह की 'कविता के नये प्रतिमान' तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी की नयी कविताएँ: एक साक्ष्य पुस्तक में नई कविता के विश्लेषण क्रम में रघुवीर सहाय और उनकी कविताओं को उदाहरण और प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत किया गया है । अत: सहाय नई कविता में विशेष चर्चित रहे हैं ।

रघुवीर सहाय नई कविता के क्षेत्र में एक विद्रोही कवि के रुप में सामने आए । आरंभ में नई कविता की पहचान एक आधुनिकता बोध, कुंठा, निराशा, और नये शिल्प ग्रहण के रूप में देखा गया, किंतु बाद में यह अनेक रुढ़ियों की शिकार हुई जिसकी ओर रघुवीर सहाय ने संकेत किया तथा उसकी अक्षमता को दिखाया । अत: सहाय नई कविता के क्षेत्र में नई कविता के एक नये विश्लेषक और कविता का एक नया स्वरुप स्थापित करने वाले कवि हैं । उन्होंने नई कविता को एक विद्रोही तेवर प्रदान किया, जिसके आधार पर नई कविता की नई व्याख्या आरंभ हुई। सहाय ने नई कविता को यथार्थ का ठोस धरातल प्रदान किया । उन्होंने कविता के माध्यम से यथार्थ के समग्र रुप का परिचय कराया तथा प्रेम, सौंदर्य और वैयक्तिकता से अधिक युगीन प्रवृत्तियों के चित्रण में रुचि ली । उन्होंने हिन्दी कविता को एक वैचारिक पृष्ठभूमि प्रदान की । उनकी पक्षधरता आम जनता के साथ है । जनता की समस्याओं, उसकी आशा- आकांक्षाओं का बड़ा मार्मिक और युगीन परिस्थितियों का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण किया । उनकी कविताओं में आजादी के मोहभंग का एहसास बड़ा तीखा है । उन्होंने पत्रकारिता और राजनीतिक चेतना को कविता में रूपायित किया तथा कविता के रूपवादी शिल्पवादी स्वरूप को खारिज किया और इस रूप में उनकी एक अलग पहचान बनी । सारांशतः कह

सकते हैं कि रघुवीर सहाय को बाईपास करके नई कविता का न तो इतिहास लिखा जा सकता है, न कई कविता की व्याख्या ही की जा सकती है ।

22.2 कवि परिचय

22.2.1 जीवन परिचय

रघुवीर सहाय का जन्म 9 दिसम्बर 1929 को उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में हुआ था । उनके पिता का नाम श्री हरदेव सहाय था । दादा लक्ष्मी सहाय पुलिस की नौकरी से अवकाश प्राप्त कर आर्यसमाजी बनकर सामाजिक कार्य में प्रवृत्त हुए । सहाय ने 1944 में मैट्रिक की परीक्षा पास की और 1946 में इंटर । उन्होंने अंग्रेजी में एम.ए. किया । आरंभ में रघुवीर सहाय का स्वभाव बड़ा अंतर्मुखी था । प्रभाकर माचवे के अनुसार- "उनके संकोची स्वभाव, मृदु-मंद मुस्कान, तरल-तौलकर शब्द बोलने की आदत में अज्ञेय की झलक दिखायी देती थी ।' सहाय में विनोदप्रियता भी थी जो बाद में चलकर उनकी रचनाओं में व्यंग्य के रूप मे विकसित हुई । चित्रकारिता में भी उनकी रुचि थी । एक दिन प्रभाकर माचवे ने अपने छोटे छोटे बेटे को बहुत डाँटा कि तुम दीवाल पर क्यों लकीरें खींचते हो तो उन्होंने कहा कि चित्र गेस्ट अंकल ने बनाये हैं यानी रघुवीर सहाय ने । किंतु उनके चित्र मिलते नहीं है इसका कारण है कि उनकी यह कला कविता के आगे विकसित नहीं हो सकी ।

यात्राएँ- पत्रकार होने के नाते सहाय को देश-विदेश की यात्रा करने का मौका मिला । भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद सहाय ने पाकिस्तान के गाँवों की यात्रा की थी जिसकी अनुभूमि को आधार बनाकर 'सीमा के पार का आदमी' शीर्षक से कहानी लिखी । पैदल आदमी कविता में भी इस अनुभूति का उपयोग हुआ है । 1970 मे सोवियत संघ, जर्मनी और इंग्लैण्ड की यात्रा की । 1971 में बंगलादेश के संघर्ष के संदर्भ में अध्ययन के लिए त्रिपुरा में मुक्तिवाहिनी के प्रशिक्षण केन्द्र की यात्रा की । 1975 में पाकिस्तान की पराजय की तीसरी वर्षगाँठ पर रूस द्वारा आमंत्रित होने पर दूसरी बार सोवियत संघ की यात्रा की । विभिन्न स्थानों की यात्राओं से जुड़ी अनुभूतियों ने रघुवीर सहाय के इन्द्रिबोध, भावबोध और विचारबोध को अधिक समृद्ध और पैना बनाया ।

22.2.2 व्यक्तित्व-परिचय

रघुवीर सहाय की साहित्यिक रुचि उन्हें अपने पिता से विरासत में मिली जिसे उन्होंने स्वयं विकसित किया । उनमें लेखकीय रचनात्मक प्रतिभा बड़ी प्रबल थी । 15 - 16 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने रचनात्मक लेखन आरंभ कर दिया था । 1946 में 'कामना' नामक अपनी पहली कविता लिखी ।" आदिम संगीत' कविता पहली बार " आजकल' के अगस्त 1947 अंक में छपी जो उनकी पहली प्रकाशित कविता के नाम से जानी गई । 1948 में पहली मुक्तछंद की कविता लिखी "नयावर्ष' जो 'कान्यकुब्ज कॉलेज' पत्रिका में छपी । "हमारी हिन्दी' कविता जनचेतना के जून-जुलाई अंक में छपी । इस कविता को लेकर हिन्दी सलाहकारों में हड़कंप मच गया । विद्यानिवास मिश्र, जो सूचना विभाग में उपनिदेशक थे, उन्होंने पत्रिका की सरकारी खरीद पर पाबंदी लगा दी । शिवसिंह सरोज ने

पत्रिका जलाने की धमकी दी । विरोधियों द्वारा सहाय से सीधा सवाल किया गया कि "कविता में हिन्दी अगर दुहाजू की बीबी है तो यह दुहाजू कौन है?' इस तरह इस कविता ने सहाय को विवाद के घेरे में ला दिया था क्योंकि इसमें सरकार की गलत भाषा-नीति और हिन्दी के सरकारी अधिकारियों की सरकार से साँठ-गाँठ का कथा चिट्ठा प्रस्तुत किया गया था क्योंकि ये लोग हिन्दी के विकास के नाम पर सुख-सुविधा प्राप्त कर माल बना रहे थे । अत: रघुवीर सहाय आरंभ से ही एक तेज- तर्रार रचनाकार के रूप में उभरकर आए । रघुवीर सहाय रसिकलाल पाठक नाम से 'प्रतीक' और 'कल्पना' में कॉलम लिखते थे ।

आरंभ से ही उनमें साहित्य के प्रति गहरी रुचि थी जिसका प्रमाण उनका सतत लेखन और लेखन के प्रति समर्पण भाव है । अपनी लेखन-प्रक्रिया को जारी रखने की उनमें बड़ी खाहिश थी । वे बड़े रचनाकार बनने की महत्वाकांक्षा भले न पालते हों, किंतु उनकी तीव्र इच्छा रही है कि वे लोगों के बीच चर्चित रहें । "लोग भूल गये है' में इसी बात का संकेत है । उनके व्यक्तित्व के बारे में भारतभूषण अग्रवाल का कहना है कि- " भीड़ से घिरा एक व्यक्ति-जो भीड़ बनने से इन्कार करता है और उससे भाग जाने को गलत समझता है - रघुवीर सहाय का साहित्यिक व्यक्तित्व है।'

रघुवीर सहाय किसी राजनीतिक दल से जुड़े नहीं थे, न राजनीति के पिछलग्गू थे, किंतु देश की राजनीतिक गतिविधियों पर हमेशा नजर रखते थे । उन्हें देश में एक सशक्त और समुचित नेतृत्व का अभाव दिख रहा था । उन्हें आभास होता था कि सही नेतृत्व के अभाव में देश फासिस्ट तानाशाही के खतरे से नहीं बच पाएगा । उन्होंने देश को आगाह कीया कि "संसद में महासहयोग कितना भी हो, यदि अगले वर्षो में कोई सार्वदेशिक नेतृत्व विकसित न हुआ तो सारी राजनीतिक सत्ता के समर्थन की राजनीति बन जाएगी। लोकतंत्र तानाशाही की एक भोली-भाजी शक्ल लेकर सामने आएगा ।' और, सहाय की यह भविष्यवाणी सही निकली जब 1975 में आपातकाल लागू किया गया, जिससे जनता के मौलिक अधिकार निलंबित हुए ।

लिखने की प्रेरणा- हर रचनाकार को लिखने की प्रेरणा कहीं न कहीं से अवश्य मिलती है। जब रघुवीरसहाय ने साहित्य-जगत में प्रवेश किया, तब वह 1947 का समय था जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम समाप्त हो रहा था और उसकी चिरप्रतीक्षित उपलब्धि आजादी हमारे हाथ में आने वाली थी जो 15 अगस्त 1947 को हाथ आ गई । वह एक ऐतिहासिक काल था जब सदियों की दासता से हम मुक्त हुए थे । भारतीयों के सपने साकार हुए और एक नई आशा के साथ नये विकास, नई उपलब्धि और एक सशक्त लोकतंत्र के निर्माण की ओर प्रयाण हमारा लक्ष्य था । भाषा, सामाजिक सत्य का आग्रह और आशा इन तीन चीजों ने सहाय को लेखन के लिए प्रेरित किया । उनकी स्वीकारोक्ति है- "हमें एक ऐतिहासिक सत्य की प्रतीति हुई कि अब हमारे बहुत से जो सत्ता और शक्ति के अधिकार हैं, वे भारत के ही लोगों के हाथ में आ गए हैं, इससे आगे के लिए एक तरह की उम्मीद तथा बहुत सी सामाजिक इच्छाओं की पूर्ति करने की आशा बँधती थी । इस प्रकार भाषा तथा एक सामाजिक सत्य के लिए आग्रह और फिर

आशा, जो चारों तरफ व्याप्त थी- ये लिखने के लिए प्रेरित करती थीं' (आजकल- मार्च, 1991/11) ।

रघुवीर सहाय की मान्यता थी कि कविता छप जाने से ही लोकप्रिय नहीं हो जाती । कविता को श्रोताओं में लोकप्रिय बनाने के लिए अच्छे ढंग से वाचन करना अनिवार्य है, जिसके लिए उन्होंने कवियों का एक दल बनाया था । यह दल मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी समारोह में गुप्तजी की रचनाओं को विशिष्ट स्वर, शैली और आरोह-अवरोह के साथ पढ़ता था । वे कहते थे कि हिन्दी में 'एमफैसिस' देने के लिए व्यवस्था नहीं है । प्रभाकर माचवे के अनुसार "वे चाहते थे कि बोलचाल की साधारण शैली में वे सामान्य शब्द विशेष में उच्चारण या स्वरभार से वह चमत्कार पैदा कर दे कि वह शब्द असामान्य बन जाए ।'

22.2.2.1 कवि रघुवीर सहाय

प्रयोगवाद और रघुवीर सहाय- हिन्दी में प्रयोजवादी आंदोलन का आरंभ अज्ञेय के संपादकत्व में प्रकाशित 'तारसप्तक' (1943) से हुआ । प्रयोगवादी आंदोलन ने शिल्प के परंपरागत उपकरण- भाषा, अलंकार, उपमान प्रतीक, छंद को अनुपयुक्त और अपर्याप्त घोषित किया । उपमानों के मैले होने की बात जोरदार ढंग से उठाई गई, किन्तु प्रयोगवाद की सीमा यह थी कि प्रयोग के नाम पर कविता अमूर्त्त होती गई और बाल्य यथार्थ से कटकर मन की अंधेरी गलियों में भटक गई । ध्यातव्य है कि सहाय ने मन की गलियों की यात्रा न कर बाहर की विस्तृत दुनिया की यात्रा की । प्रयोग संबंधी उनकी चिंता अन्य प्रयोगवादी कवियों से अलग है- "जिस मानवीय जीवन के सुख-दुख को, समस्याओं को, यातनाओं और महानताओं को हम जानते है, उसे व्यापक मानव के संबंध में बिना किसी विशेषण के मानव के संदर्भ में कैसे जानें और ऐसे जानें कि वह जानना कलाकृति हो जाए' (सीढ़ियों पर धूप में) । अतः प्रयोगवाद में जो कविता शिल्पवादी ढलान और चमत्कार के साँचे में ढलती जा रही थी, वहीं सहाय ने प्रतिरोध का माहौल पैदा किया और कविता को वस्तून्मुखी बनाया । उन्होंने अंतर्जगत के यथार्थ की जगह बहिर्जगत के ठोस यथार्थ को महत्व देकर कविता में उसका रुपायन किया । इसलिए उनकी कविता बहिर्मुखी यथार्थ का आईना है । फ्रायडियन विचार को न लेकर उन्होंने मार्क्सवाद को लिया ।

प्रगतिवाद और रघुवीर सहाय- रघुवीर सहाय प्रगतिशील लेखक-संघ के भी संपर्क में आए, जिससे वे जीवन और जगत के यथार्थ के बहुत निकट पहुँचे और यह प्रवृत्ति उनकी परवर्ती रचनाओं में क्रमशः गहराती गई । यद्यपि साम्यवाद से उनकी दलीय प्रतिबद्धता नहीं थी, तथापि वे मार्क्सवाद की प्रगतिशील विचारधारा से अवश्य सहमत थे । उनका कथन है- "कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाए और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाए । शमशेर बहादुर सिंह का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिंदगी में तीन चीजों की बड़ी जरुरत है. 'आक्सीजन, मार्क्सवाद और वह शक्ल जो हम जनता में देखते हैं ।' लेकिन उनका यह भी कहना है कि " मार्क्सवाद को कविता पर गिलाफ की तरह नहीं चढ़ाया जा सकता!'

यानी मार्क्सवादी विचारधारा को आत्मसात करके लिखा जाना चाहिए, उसे दिखावे के लिए ऊपर से ओढ़ा नहीं जाना चाहिए । कई मुद्दे पर वे प्रगतिशील लेखक- संघ से अलगाव घोषित करते है तथा कृष्णनारायण कक्कड़ और नरेश मेहता के साथ मिलकर "लखनऊ लेखक संघ' की स्थापना में शरीक होते हैं । लखनऊ लेखक-संघ का जो प्रपत्र तैयार किया गया उसके प्रथम पृष्ठ पर उन्होंने लिखा- ' 'सामाजिक विकास में समाज के अन्य सचेत अंगों की भाँति लेखक का भी दायित्व होता है ।... आज हमारे समाज में त्रास और कुंठा का वातावरण है और सांस्कृतिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं । ऐसी परिस्थिति में लेखकों का कर्तव्य है कि वे पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ जनचेतना के स्वस्थ विकास का प्रयत्न करें । हम मानते हैं कि कलात्मक सृजन का मूल स्रोत सामाजिक वास्तविकता है और परिवर्तनशील सामाजिक वास्तविकता के प्रति जागरूक रहना कलाकार का कर्तव्य है ।... युद्ध, शोषण, भय और आतंक समाज के स्वस्थ विकास में अवरोध अत्यन्त करते है । लेखकों का कर्तव्य है कि इन्हें उत्पन्न करने वाली शक्तियों का विरोध करते हुए शांति, समृद्धि और विचार-स्वातंत्र का पथ प्रशस्त करें' ('रघुवीर सहाय का कविकर्म' से उद्धत-पृ 10, ले. सुरेश शर्मा) ।

रघुवीर सहाय प्रगतिवादक समर्थक तो हैं, किंतु उन्हें इस बात से चिढ़ है कि प्रगतिवाद के नाम पर कितने असमर्थ लोग कवि बन गये और कविता उछालने लगे । प्रगतिवाद के बहुत से ऐसे कवि जो कि बिल्कुल कवि ही नहीं थे जिनमें कवि होने का कोई लक्षण नहीं था, कवि हो गए । इसी तरह से बहुत से ऐसे लोग, जिनको केवल एक नई चीज की नकल कर लेना संभव था-इसके अतिरिक्त उनके अंदर प्रतिभा या साहित्यिक इच्छा नहीं, वे सब प्रयोगवादी हो गए ।' (रघुवीर सहाय का कविकर्म- 141) ।

नई कविता आंदोलन और रघुवीर सहाय- रघुवीर सहाय नई कविता के कवियों में प्रमुख होते हुए भी अपनी अलग पहचान बनाते हैं । जैसे कई कविता से जुड़े होकर भी मुक्तिबोध ने नई कविता की सीमाओं तथा नये कवियों के व्यक्तिवादी-कलावादी जीवन-दर्शन और रचना-दृष्टि पर प्रहार किया, वैसे ही रघुवीर सहाय ने भी नई कविता की कतिपय जनविरोधी धारणाओं और सीमाओं पर गहरी चोटें की । उन्होंने नई कविता में चित्रित् दर्द, कुंठा, संत्रास, क्षण और अस्तित्वादी मान्यताओं पर प्रहार कर कविता की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जमीन की तलाश की जिसे नई कविता के आचार्यों और कवियों ने खिसकाने की कोशिश की थी । यह कवि का एक प्रगतिशील और शोधपरक दृष्टिकोण था । अत: नई कविता की आत्मपरकता का जबर्दस्त विरोध सहाय की कविता का प्रधान स्वर है । नये कवियों ने पीड़ा और कुंठा को अधिक हाइलाइट किया और कविता से आशा की किरण गायब होती गई । कुंठाग्रस्त नये कवियों को संबोधित करते हुए सहाय लिखते हैं-

तू हतविक्रम श्रमहीन दीन
निज तन के आलस से मलीन
माना यह कुंठा है युगीन
पर तेरा कोई धर्म नहीं?
यह रिक्तहस्त उन्मुक्त छंद

संस्मरणहीन जैसे सुगंध,
यह तेरे मन का कुप्रबंध.....
यह तो जीवन का मर्म नहीं **- (सीढ़ियों पर धूप में) ।**

अत: उक्त संग्रह से सहाय की कविता आत्मपरकता की खोल से बाहर निकलती है । नई कविता में अस्तित्ववादी चेतना का स्वर बड़ा प्रबल है । इसमें क्षणबोध ने क्षणवाद का रूप ले लिया था । यह क्षणवाद व्यक्ति को उसकी समस्त ऐतिहासिक चिन्तन परंपरा और भविष्य से काटता है । सहाय इस दुखवाद और क्षणवाद की धज्जियाँ उड़ाते हैं-

अपनी उन्मद जीवनगाथा से हम दंडित
माथे मुकुट व्यथा का बाँध
हम क्षण की महिमा से मंडित
हम वैज्ञानिक हैं हम पंडित हैं, हम खंडित
निश्चल पीड़ा आज हमारी
डाल दिए हैं अपने काँधे ।

जाहिर है कि रघुवीर सहाय नई कविता आंदोलन से अपना अलगाव घोषित करते है । उन्होंने एक वक्तव्य में भी कल है- ' 'नई कविता आदोलन से मेरा कोई मतलब कभी नहीं रहा और किसी तरह से मेरा उससे कोई लगाव नहीं है । क्योंकि नई कविता का जो आंदोलन कहा जाता है, उसमें कवि जो कर रहे थे, उस सबसे अलग मैं कुछ कर रहा था।'

.... अगर नई कविता के संचालकों ने अपने प्रकाशनों में मुझे शामिल किया है, तो इसलिए नहीं कि मुझे उनकी ज़रूरत थी, बल्कि इसलिए कि वे मेरा उपयोग करना चाहते थे और ऐसा कहते हुए मुझे अंतरंग मंडल में तो माना ही नहीं, उल्टे मेरे काव्य के बारे में प्रचार किया कि यह सहज कविता है' । (इंद्रप्रस्थ भारती- अप्रैल-जून 1991/318) । स्पष्ट है कि सहाय मुक्तिबोध की तरह नये कवियों के प्रगति विरोधी रवैये को पहचानकर उसका प्रतिरोध कर रहे थे । उक्त कविताएँ और वक्तव्य उन लोगों का भ्रम तोड़ते हैं जो रघुवीर सहाय को नई कविता के बने-बनाये ढाँचे को स्वीकारने वाला समझते हैं ।

साहित्य क्षेत्र में होने वाले आंदोलनों के विषय में सहाय की दृष्टि सकारात्मक नहीं है, क्योंकि उन आंदोलनों में प्राय: दिखावा, और होता है जिससे सर्जना- शक्ति कुंठित हो जाती है । वे कहते हैं- "मुझे बराबर यह लगा है कि ये जितने भी आंदोलन हुए हैं अर्थात् जितने नाम दिए गए हैं, उनके पीछे संगठन किया गया है, प्रचार किया गया है, सैद्धांतिक विश्लेषण किया गया है, सब बहुत दकियानूसी है । वास्तव में वे न तो रचनात्मक हैं और न आधुनिक है । बहुत करके वे कुछ सीमित स्वार्थों के कारण आपस में प्रतिस्पर्धा के कारण चलाए गए है और उनके वैचारिक आधार बहुलांश में बनावटी है । ऐसे आंदोलनों के सदस्यों के अंदर सामाजिक चेतना की जो आग होती भी है, वह आंदोलन स्वयं दबा देता है । अगर इन कविताओं में कोई सच्चाई थी भी तो उस आंदोलन को उचित ठहराने वाले सिद्धांतों और तर्कों-वितर्कों में वह दब गई है । ' (रघुवीर सहाय का कविकर्म-पृ. 140 - 41) ।

"**अकविता**" - नई कविता के तहत एक विकसित काव्यांदोलन था, जिसने परंपरा से स्वीकृत विषयों का निषेध कर नकार की मुद्रा अपनाई । अकविता ने राजनीति से परहेज, अनास्था, अराजकता, निषेध जैसे जीवन -दर्शन को अपनाकर मूल्यहीनता का झंडा फहराया । साहित्य में अराजकता और गतिरोध पैदा हो गया, दूसरी ओर राजनीतिक स्तर पर मोहभंग की स्थिति थी ही । इससे साहित्य का आशावादी पक्ष धूमिल होने लगा । ऐसे ही अराजक और अनास्था के माहौल में " आत्महत्या के विरुद्ध" कविता संग्रह प्रकाशित हुआ । उनका कहना भी है कि यह कविता उन्होंने अकविता के विरोध में लिखी। अकवियों में जगदीश चतुर्वेदी राजनीति और हड़ताल को मोटे विषय तथा प्रतिबद्धता को नागफाँस मानते हैं । रघुवीर सहाय राजनीति की अनिवार्यता घोषित करते हैं- "यह आपका राजनैतिक अधिकार है इस राजनीतिक अधिकांश के अनेक उपयोग हैं और आप राजनैतिक हैं, क्योंकि आप राजनैतिक नहीं होंगे तो आप अपने इन अधिकारों को शोषकों के लिए छोड़ देने को तैयार होंगे । " इस तरह सहाय साहित्य में राजनीतिक चेतना का होना अनिवार्य मानते हैं ।

देश राजनीतिक गुलामी से मुक्त तो हुआ, किन्तु आजादी का फल कुछ बुर्जुआ लोगों को ही मिल पाया । नई कविता इस युगीन संकट को धारदार तरीके से नहीं उभार पायी । नई कविता के आचार्य क्षणवाद, लघुमानववाद, नियतिवाद, ईमानदार अनुभूति जैसी पारिभाषिक शब्दावली गढ़कर उस पर बहस चला रहे थे जिससे नई कविता संकटपूर्ण यथार्थ के केंद्र से हटती जा रही थी । सहाय नई कविता के उन आचार्यो की जनविरोधी साजिश को भाँप चुके थे ।उन्होंने लिखा- "नई कविता को लेकर जितने प्रवृत्ति, मूल्यान्वेषण और सैद्धांतिक शिलान्यास की बात चली है, उससे थोड़ी आशंका होती है कि कहीं असली चीजें अनदेखी न रह जाएँ" (कल्पना-फरवरी- 1958) ।

नई कविता में लघुमानववाद की प्रतिष्ठा की गई थी, जिसमें मनुष्य की अक्षमता को विशेष उजागर किया गया था, उसका मुक्तिबोध ने भी विरोध किया तथा रधुवीर सहाय के भी यद्यपि सहाय भी जनता को एक मुश्किल रूप में देखते हैं । इसका कारण यह है कि जनता अनपढ़ और अंधविश्वासी है, किन्तु वे जनता से कटे नहीं हैं । वे अपने रचनाकार का जनता से एक रचनात्मक रिश्ता कायम रखते है ताकि जनता के जीवन में बदलाव उनका लक्ष्य है । जनता ही है जो बार-बार नेता के छल-कपट, धोखाधड़ी और शोषण का शिकार होती है जिसका वे चित्रण करते हैं । अत: सहाय एक जनप्रतिबद्ध कवि हैं । जनता के साथ अपने जुड़ाव को वे इस रूप में चित्रित करते हैं-

यही मेरे लोग हैं / यही मेरा देश है
इसी में रहता हूँ / इन्हीं से कहता हूँ
अपने आप ओर बेकार खुश और असहाय
लोग लोग लोग चारों तरफ हैं मार तमाम लोग
खुश और असहाय : उनके बीच में सहता हूँ
उनका दुख / अपने आप ओर बेकार (**आत्महत्या के विरुद्ध**- 33) **।**

नई कविता में अनुभव की प्रामाणिकता की बात जोरदार ढंग से उठाई गई थी, किन्तु कविता अनुभूति की निजता और स्वायत्तता की सीमा से ऊपर नहीं उठ सकी जिसके

कारण वह आलोचना की पात्र बनी । रघुवीर सहाय सर्जक की अनुभूति को एक सामूहिक और सार्वभौम अनुभूति बनाकर रचना में प्रस्तुत करने की हिमायत करते हैं । उनका कथन है- "जिस सत्य को हम देख पाये हैं उसे सब में देखें, जिनके हम हितैषी हैं - वह हमारा स्वानुभूत तो हो, सहानुभूत भी हो सीढ़ियों पर धूप में ' । यही वह दृष्टि है जो सहाय को नई कविता के अन्य कवियों से विशिष्ट और ऊँचे स्थान का अधिकारी बनाती है । वास्तव में सर्जक की अनुशभूति जब तक निजता का केंचुल उतारकर सार्वभौम नहीं बन जाती, तब तक सर्जक का लेखन सार्वभौम नहीं बन पाता । जाहिर है कि सहाय एकांगी और आत्मकेंद्रित लेखन को महत्व नहीं देते ।

राजनीतिक चेतना- पत्रकार की हैसियत से सहाय ने राजनीतिक जगत की सड़ांध देखी है। वे पतनशील राजनीति की खिल्ली उड़ाते हैं, राजनीतिक कविताएँ लिखते हैं, किन्तु सांगठनिक लगाव से इंकार करते हैं । 'यही कारण है कि उनकी राजनीति का वाम या दक्षिण कोई मोर्चा स्पष्ट नहीं होता । राजनीति की जरुरत वे महसूस करते हैं किन्तु उससे अधिक जरुरी वे साहित्यिक मोर्चे को मानते हैं - "राजनीति की ओर मेरा यह रवैया संकटकालीन रवैया कह लीजिए-कि 'वह बहुत जरुरी है' या 'वह फिजूल है' दोनों फतवे संकट से भागने के बहाने हैं- वह बहुत जरुरी है पर मैं भी अपने लिए बहुत जरूरी हूँ- अपनी उस कला-परंपरा के लिए जिससे मैं अपनी एक मूर्ति बनाता और ढहाता हूँ और आप कहते हैं कि कविता की है' (आत्महत्या के विरुद्ध-वक्तव्य) । यानी वे साहित्यिक मोर्चे पर रहकर ही राजनीतिक क्रूरता का विरोध करना चाहते हैं । वे कहते हैं संगठित राजनीति अत्यंत आवश्यक है, लेकिन उसके खिलाफ रचना भी आवश्यक है । वे किसी भी हालत में सत्ता का चारण बनना नहीं चाहते ।

जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है, वे उससे अलग रहने की बात नहीं करते, क्योंकि राजनीति हर जगह व्याप्त है किन्तु पार्टी का गुलाम बनना उन्हें कदापि पसंद नहीं । वे लिखते हैं - "लेखक के लिए राजनीति से अलग रहना हर हालत में बेमानी और बेईमानी है, परंतु राजनीतिक पार्टी का गुलाम हो जाना सिर्फ उसी हालत में बेईमानी है जब आप यह हरकत समाज के नाम पर कर रहे हों' (कल्पना- अगस्त 1965 / 77) । किन्तु राजनीति से जुड़कर भी वे अपनी सर्जनाशक्ति को राजनीति के हाथों गिरवी रखना नहीं चाहते ।

22.2.2.2 पत्रकार और सम्पादक रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय ने पत्रकारिता को जीवन का आधार बनाया । वे 1949 से 1951 तक दैनिक "नवजीवन' में उपसंपादक-सांस्कृतिक संवाददाता रहे । अज्ञेय द्वारा स्थापित 'प्रतीक' पत्रिका के 1951 - 1952 तक सहायक संपादक रहे । प्रतीक के बंद हो जाने पर 1953- 57 तक वे आकाशवाणी के समाचार विभाग में उपसंपादक नियुक्त हुए । 1955 में विमलेश्वरी सहाय से विवाह हुआ । 1957 में आकाशवाणी की नौकरी से इस्तीफा दे दिया । 'कल्पना' (हैदराबाद, 1957-58) के संपादक्-मंडल में रहे । 1959 में रघुवीर सहाय अंग्रेजी की 'वाक' पत्रिका के सहायक संपादक नियुक्त हुए । 1959-63 तक आकाशवाणी (दिल्ली) में विशेष संवाददाता रहे । 'नवभारत टाइम्स' दिल्ली में विशेष

संवाददाता के रूप में 1963-68 तक रहे । 'दिनमान' के समाचार संपादक 1968-69 तक रहे । 1969-82 तक 'दिनमान' के प्रधान संपादक रहे । 1982-90 तक स्वतंत्र लेखन किया ।

उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व उन्हें किसी नौकरी में स्थायी रूप से जुड़ने नहीं दिया । जहाँ भी मौका मिला वे संपादक के रूप में पत्रिका ओर स्थान बदलते रहे । उन्होंने संपादक का काम बड़ी सफलतापूर्वक किया । उन्होंने पत्रकार के रूप में जीवन-यात्रा शुरु की थी किंतु कवि के रूप में उनकी ख्याति शीर्ष पर पहुँची ।

22.2.2.3 निबंधकार रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय एक निबंधकार के रूप में भी ख्यात हैं । उनके निबंधों में साहित्यिक, राजनीतिक,आर्थिक तथा समसामयिक विषयों पर गंभीर विचार प्रस्तुत हुए हैं । वे कविता में जो बात नहीं कह पाये उसे निबंधों में बिना लाग-लपेट के स्वतंत्र रूप में लिख पाए हैं।

22.2.2.4 कहानीकार रघुवीर सहाय

सहाय नये कहानीकारों की श्रेणी में आते हैं । 'रास्ता इधर से है' उनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह है । कविता की तरह सहाय ने अपनी कहानियों में भी युगीन समस्याओं को चित्रित किया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि उनकी हर साहित्यिक विधा अपने समय से जुड़ी है । रघुवीर सहाय की कहानी भी कहानी के पुराने ढाँचे को तोड़ती है। उनकी कहानियों में भी काव्य, रेखाचित्र, रिपोतीज जैसी विशिष्टता देखने को मिलती है । राजेन्द्र यादव का कथन है कि - "अज्ञय रघुवीर सहाय, श्रीकांत, सर्वेश्वर की कुछ अपवादस्वरूप सशक्त कहानियाँ एक और रोचक अध्ययन प्रस्तुत करती है कि किस तरह किसी विधा की परंपरा और विषय की माँग कभी-कभी रचनाकार की सारी सजगता और सेंसर के बावजूद अपने को स्थापित करती है और जयशंकर प्रसाद जैसा व्यक्ति अपने सारे संस्कार छोड़कर 'गुण्डा' जैसी कहानियाँ लिखता है ।' (एक दुनिया समानान्तर-पृ. 47) ।

22.2.3 कृतियाँ

22.2.3.1 काव्य कृतियाँ

तारसप्तक में संकलित कविताएँ- अज्ञेय के संपादन में 1951 में संपादित दूसरा सप्तक में रघुवीर सहाय की पंद्रह कविताओं का संकलन किया गया, जिनमें बसंत, पहला पानी तथा प्रभाती प्रमुख हैं, जो ग्राम्य जीवन की प्रकृति का साक्षात्कार कराती हैं । सप्तक की उनकी कविताओं में एक रोमैंटिक और सौंदर्यजीवी कवि का भावुक मन अभिव्यक्त हुआ है । इनमें दैनन्दिन जीवन की सामान्य स्थिति का चित्रण तथा प्रेम और सौन्दर्य के प्रति एक मानवीय दृष्टि का एहसास है । इन कविताओं का स्वर गीतात्मक है जिसमें छायावादी संस्कार है किंतु अनेक कविताओं में बौद्धिकता भी है । सहाय ने इसके वक्तव्य में कहा है कि "विचार-वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन

और शक्ति देता है और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों ।' सहाय अपने आगे के काव्यसंग्रहों में निहित विचार तत्व की भूमिका इसी वक्तव्य में दे देते हैं । नई कविता के शास्त्रकार लक्ष्मीकांत वर्मा ने लिखा है कि "प्रारंभ से ही मैं सप्तक के कवियों से सहाय को भिन्न मानता रहा हूँ क्योंकि मैं रघुवीर सहाय और अज्ञेय के सामान्य तत्व को नहीं समझ पाता और इसलिए यह भी नहीं समझ पाता कि उन्हें सप्तक में क्यों रखा गया है । ' स्पष्ट है कि सहाय में अज्ञेय की तुलना में कुछ विशेष था, जिसे वर्मा जी रेखांकित करते हैं ।

सीढियों पर धूप में- (1960)

'सीढ़ियों पर धूप में' सहाय का प्रथम स्वतंत्र काव्यसंग्रह है जो 1960 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुआ । यह अत्यंत संवेदनशील कवि की रचना है । सहाय ने इसमें संघर्ष को जीवन का मर्म माना है । माला कविता में वे कहते हैं- 'गुँथी रहेगी माला, चाहे / जग सौरभ से भर न सके /जीवन की जय हो, यह जन / यह रण चाहे जय कर न सकें' । इन पंक्तियों के द्वारा वे जीवन की एकता और संघर्ष के प्रति आस्था व्यक्त करते , भले ही उन्हें जीवनयुद्ध में सफलता न मिले । इसमें दुख पर कई कविताएँ हैं, किंतु कवि हार नहीं मानता तथा उसे असली समझता है और नये कवियों के दुख को निकली । 'हमने यह देखा है' में अभावग्रस्त मध्यवर्ग का तीव्र एहसास है । इसी संग्रह के एक लेख में वे कहते हैं- "हम दुनिया में जितना कष्ट देखते हैं, लोगों की व्यथा का जितना अनुभव करते हैं, सब हमारी 'चेतना में निमज्जित होता जाता है, अपनी अनुभवशक्ति को हम पुष्ट होता हुआ पाते हैं । पुराने लोग कह गये कि सुख में ही ज्ञान का उत्स है । है तो, पर वह ज्ञान कैसा जो कर्म की प्रेरणा न दे, नहीं, जो कर्म करने पर बाध्य न करे ।' अत: सहाय दुख को सर्जनात्मक मानते हैं |

आत्महत्या के विरुद्ध (1967)

इसमें कुल 38 कविताएँ हैं जिनमें अधिकांश राजनीतिक चेतना से समन्वित है । आत्महत्या के विरुद्ध के प्रकाशन के साथ ही रघुवीर सहाय नई कविता के एक शीर्षस्थ कवि के रूप में उभरकर आए । यह नई कविता के इतिहास ओर सहाय के कविकर्म के संदर्भ में एक गुणात्मक परिवर्तन कासूचक है । इसलिए नेमिचंद्र जैन इसे "हिन्दी कविता की नई उपलब्धि' कहते हैं । बदलते युगीन परिवेश के साथ सामाजिक-राजनीतिक मूल्यों के हास पर इसमें गहरी चिन्ता व्यक्त की गई है तथा कवि की काव्यदृष्टि, उनकी जनपक्षधस्ता निखरकर सामने आई है । इस संग्रह के द्वारा सहाय अकविता की निषेधात्मकता, परंपरा के प्रति नकारभाव तथा रचनात्मक अराजकता का विरोध करते हैं। अकविता में सेक्टर संबंधी फूहड़ता बढ़ती जा रही थी तथा समाज-परिवर्तन जैसी उचदृष्टि गायब होती जा रही थी और कुंठा, घुटन के माहौल में उन्होंने स्वयं को आत्महत्या की स्थिति तक पहुँचा दिया था जिसका सहाय ने विरोध किया । इसमें नई कविता के स्वीकृत स्वरूप से अलग हटकर सहाय उसका एक नया स्वरूप गढ़ते हैं ।

यह अकविता की मूल्यहीनता और निषेध के विरोध में लिखी गई कविता है । इसमें लोकतंत्र के नाम पर लोकतांत्रिक-व्यवस्था को भ्रष्ट और कलंकित करने वाले नेताओं के चारित्रिक पतन को उघाड़ते हुए लिखा गया है । जिन विधानसभाओं और संसद भवन में

हमारे चुने हुए प्रतिनिधि जाते हैं उन पर लोकतंत्र की रक्षा का सबसे अधिक भार है, किन्तु वे ही अपना और लोकतंत्र का चरित्र भ्रष्ट करते हैं । इस संग्रह में राजनीतिक के साथ वैयक्तिक कविताएँ भी है, किन्तु युगीन समस्याओं पर अधिक भार है । रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है कि ' 'उत्तरकालीन रघुवीर सहाय के यहाँ प्रेम मूल स्वर नहीं है । जनता और लणौं से लगाव अधिक है ।' इन कविताओं पर पत्रकारिता का प्रभाव होने के कारण श्रीराम वर्मा इसे " अखबारी कविता' तथा समाचार को दृश्यात्मक रूप में प्रस्तुत करने के कारण सुरेन्द्र चौधरी ' 'काव्यीरपोर्ताज' कहते हैं । जो भी हो इस संग्रह ने सहाय के कवि रूप को ख्याति के शिखर पर पहुँचाया ।

हँसो-हँसो जल्दी हँसो (1975)

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" संग्रह में सहाय की जनपक्षधरता उनके पूर्ववर्ती संग्रहों की तुलना में अधिक साफतौर पर उभरती है । आजादी से उनका मोहभंग हुआ था और वे उन सत्ताधारियों के वर्ग-चरित्र को जान चुके थे, जो सत्ता और अर्श-व्यवस्था को अपने चंगुल से चाँपकर बैठे थे । आजादी प्राप्ति के बादभी हम आजाद नहीं हुए । हमारी बुनियादी जरूरतें पूरी नहीं हुईं । कवि हक की लड़ाई के साथ मुखर रूप में सामने आता है । इस संग्रह की कविताओं का शिल्प बदला हुआ है । सहाय शिल्पवादी नहीं है, इसके बावजूद वे शिल्प बदलते रहते है । उनका कथन है- "मेरा सर्जनात्मक सुख तो यह जानने में है कि मैंने अपने को कहाँ से तोड़कर अपने लिए कए नई बस्ती बसाई है और यह भी कमोबेश देख सकूँ वह नई सृष्टि मेरी पुरानी बस्ती को उजाड़कर बनी है तो क्या कहने ।" (लिखने का कारण) । इस संग्रह की कविताओं में भी राजनीतिक विषय है और जनसामान्य के प्रति संपृक्ति बढ़ गई है । वे जनता की बुनियादी समस्याओं के प्रति अधिक जागरुक हैं । नारेबाजी की शैली में लिखित पानी पानी जैसी कविता इसी संग्रह में है । इसकी अधिकांश कविताओं में छंदों का निर्वाह है । "हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की एक प्रतिनिधि और व्यंग्यात्मक कविता है, जिसमें यह दिखाया गया है कि हँसने पर व्यवस्था ने प्रतिबंध लगा दिया है क्योंकि हमारे हँसने पर उसे ऐसा लगेगा कि हम व्यवस्था का मज़ाक उड़ा रहे हैं ।

लोग भूल गये हैं (1982)

यह संग्रह साहित्य अकादमी द्वारा श्रेष्ठ हिन्दी काव्यकृति के रूप में 1984 में पुरस्कृत हुआ है । इस संग्रह की कविताओं में राजनीतिक रंग गहरा है तथा कवि सामाजिक न्याय और समता की वकालत करता है जिससे आम आदमी वंचित है । भूमिका में उनका कथन है- "न्याय और बराबरी के लिए हम जिस समाज की कल्पना करते है उनमें मानवीय रिश्तों की क्या शक्ल होगी, यह उस समाज के संघर्ष के दौरान ही तय होनी चाहिए । ये संबंध हृदय-परिवर्तन से नहीं बनेंगे, संघर्ष के नतीजों की बार- बार जाँच से बनेंगे ।' स्पष्ट है कि जहाँ कवि गांधी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत की अप्रासंगिकता दिखाते हुए मार्क्स के वर्ग-संघर्ष की उपयुक्तता और प्रासंगिकता को रेखांकित करते है । अंतिम समय में वे मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की ओर बढ़ रहे थे तथा वर्ग-संघर्ष से ही समाज-बदलाव को संभव मानते थे ।

कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (1989)

कुछ पते कुछ चिडियाँ में रघुवीर सहाय की 1933 से 1989 तक की कविताएँ संकलित हैं। इनमें 'आज की कविता', 'समाधि लेख' जैसी कविताएँ हैं जिनमें कवि की कविता संबंधी चिंता गहराती हुई दिखती है । पहली कविता में वे कहते हैं-

क्यों कलाकार को नहीं दिखाई देती अब
गंदगी गरीबी और गुलामी से पैदा?/
आतंक कहाँ जा छिपा भागकर जीवन से/
जो कविता की पड़ामें अब दिख नहीं रहा ?/
हत्यारों के क्या लेखक साझीदार हुए
जो कविता हम सबको लाचार बनाती है?

एक समय था -

'एक समय था' सहाय का अंतिम काव्य संग्रह है जो उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित हुआ । इसमें 1972- 1990 तक की कविताएँ संकलित हैं ।

22.2.3.2 गद्य कृतियाँ

कहानी-संग्रह-

रास्ता इधर से है, राधाकृष्ण प्रकाशन-दिल्ली (1972) ।

जो आदमी हम बना रहे हैं (1982) ।

निबन्ध-संग्रह

दिल्ली मेरा परदेश-रचनात्मक टिप्पणियाँ, दि मैलमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 19766 ।

लिखने का कारण-राजपाल एंड संस, दिल्ली-प्रथम संस्करण, 1978 ।

ऊबे हुए सुखी, वे और नहीं होंगे जो मारे जाएंगे, भँवर, लहरें और तरंग (1988) अर्थात (1994)

अनुवाद-

रघुवीर सहाय एक उच्च कोटि के अनुवादक थे । उनके अनुवाद इस प्रकार है-

शेक्सपियर के नाटक ' 'मैकबेथ' का हिन्दी में अनुवाद ।

इवां आंद्रिय, के उपन्यास " जेको' का हिन्दी अनुवाद ।

येर्गी आंद्रेजेचेवस्वास्की के उपन्यास पोविओ इ दियोमेत का हिन्दी अनुवाद ।

रोम्यां रोला के " विवेकानंद' का हिन्दी अनुवाद ।

लोकी के नाटक " दि हाउस ऑफ बर्नादडा आल्वा" का हिन्दी अनुवाद ।

जीवन के अंतिम समय में सहाय बहुत निराश और क्षुब्ध रहने लगे थे । अपने पुत्र कनाडा चले जाने पर वे बेहद दुखी थे । विश्व कविता उत्सव में उन्हें एकमात्र हिन्दी कवि के रूप में प्रस्तुत किया गया था और भारत भवन द्वारा उन्हें पुरस्कृत होने की भी संभावना थी, किन्तु उन्हें पुररकार न मिलने का दुख भी सालता रहा । उन्हें मृत्युबोध हो चुका था । उन्होंने लिखा था- एक दिन / मेरे जीवन में ही खत्म होने वाला / है यह खेल/ इस घर की दीवार पर मेरी तस्वीर होगी । 9 दिसम्बर को उनकी षष्ठिपूर्ति समारोह पर उनका भव्य अभिनंदन किया गया और 31 दिसंबर 1990 में उनका निधन हुआ ।

22.3 काव्यवाचन तथा संदर्भ-सहित व्याख्या

22.3.1 चौड़ी सड़क गली पतली थी

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी
धीरे- धीरे चला अकेले / सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया सड़क पर सब थे / सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी
खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर / दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आये / लोग सिमटकर आँख गड़ाये
लगे देखने उसको जिसकी तय था हत्या होगी
निकल गली से तब हत्यारा / आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा / छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी
भीड़ ठेलकर लौट गया वह / मरा पड़ा है रामदास यह
देखो-देखो बार-बार कह / लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी ।

सन्दर्भ- व्याख्येय "रामदास' शीर्षक कविता दूसरा सप्तक तथा नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर रघुवीर सहाय की ' 'हँसों हँसों जल्दी हँसो' काव्य संकलन से उद्धत है । इस कविता में कवि ने तथाकथित लोकतंत्र में आम आदमी की असुरक्षा और समाज में बढ़ती हत्या की राजनीति का लोमहर्षक चित्र खींचा है । यहाँ कवि ने देश में माफिया के बढ़ते प्रभाव तथा हत्या के समाचार को काव्य- विषय बनाया है ।

व्याख्या- हत्या, लूट, बलात्कार आदि आजादी के बाद विकसित वे अमानवीय घटनाएँ हैं, जिनका एक सार्वभौम रूप बन चुका है । आज हत्या एक आम बात हो गई है । आज व्यक्ति की संवेदना मर चुकी है; मानवीय मूल्य मर चुके हैं । निजी स्वार्थ हेतु दिन-दहाड़े किसी की भी हत्या का होना कानून-व्यवस्था की विफलता का सूचक है । सहाय की मानवीय संवेदना इन हत्याओं से बेहद- मर्माहत होती है और उसे वे कविता में एक सर्जनात्मक रूप देते हैं । "रामदास' कविता की पृष्ठभूमि यह है कि इसी नाम का एक आदमी है, जिसकी हत्या होने वाली है । हत्या होने की खबर पहले से सबको मालूम है । पूर्व - आयोजित इस घटना को अंजाम दिया जाता है । चौराहे पर रामदास खड़ा है, भीड़ को चीरकर हत्यारा आता है और सधे हाथ से रामदास को चाकू मारकर उसे यमलोक पहुँचाकर तीव्र गति से भाग जाता है ।

इतनी सी घटना ऊपर से बड़ी सरल दीखती है जिसे हम रोज समाचार-पत्रों में पढ़ते और जीवन में देखते हैं । किन्तु इस घटना के भीतर एक गहरा आशय निहित है । घर से निकलते समय असहाय और निहत्था रामदास चाहता है किसी को साथ ले ले, किंतु नहीं लेता, किसी से सहायता नहीं मांगता क्योंकि वह पहले से ही जानता है कि इस समाज में सभी मतलबी हैं, सामान्य आदमी की सहायता कोई नहीं करता । दूसरा कारण यह है कि प्रतिदिन की यातना, शोषण, भूखमरी से त्रस्त रामदास की जिजीविषा समाप्त हो गई है और वह सामने से चलकर मौत को अंगीकार करता है क्योंकि जीवन में बार-बार मरने से एक बार मरना बेहतर है-यानी तमाम यंत्रणाओं से मुक्ति।

कवि आजाद भारत में व्याप्त कानून-व्यवस्था की अराजकता और सत्ता की नपुंसकता को बेनकाब करता है । कवि यहाँ सत्ताधारी वर्ग या हत्यारे से सवाल नहीं करता, किन्तु "तय था हत्या होगी', के द्वारा आम जनता के प्रति व्यवस्था की लापरवाही और माफिया के बढ़ते निरन्तर प्रभाव को दिखाता है । जब हत्या की बात पहले से घोषित थी तब व्यवस्था क्या कर रही थी ? हत्यारे का नाम पहले से घोषित किया जाना इस बात का सबूत है कि हत्यारा कितना खूंखार और निर्भीक है तथा उसको व्यवस्था का संरक्षण प्राप्त है । जब्बर चोर सेंध में गावै, वाली बात । व्यवस्था कितनी अकर्मण्य है कि वह हत्यारे को पकड़ने और हत्या जैसी वारदातों को रोकने की पूरी कोशिश नहीं करती । इसका सीधा अर्थ यह है कि माफिया गिरोह के साथ व्यवस्था की साँठ-गाँठ है । देश में माफिया और हत्यारों को, व्यवस्था संरक्षण देती है तथा आम जनता को कुर्सी तक पहुँचने की सीढ़ी बनाकर उसे छोड़ देती है । सत्ता-प्राप्ति के बाद जनता से उसका कोई मतलब नहीं रह जाता । कवि ने "आत्महत्या के विरुद्ध' के वक्तव्य में लिखा है- "लोकतंत्र मोटे, बहुत मोटे तौर पर लोकतंत्र ने हमें इंसान की शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चाँप लिया है । 'वे इस बात से दुखी है कि लोकतंत्र में हत्या जैसे अपराध क्यों नहीं थम रहे हैं? अब कौन से अंग्रेज है जो हत्या करवा रहे हैं? सहाय ऐसे सवालों के कठघरे में व्यवस्था को खड़ा करते हैं ।

कविता का एक दूसरा अहम पक्ष है- घटना के चश्मदीद गवाहों की प्रतिक्रिया के अभाव का । रामदास की हत्या पूर्वनियोजित थी, जिसे सभी जानते भी थे, किन्तु हत्या के पूर्व और पश्चात जनता में जो आक्रोश और प्रतिक्रिया होनी चाहिए, वह नहीं हुई । इसका कारण यह है कि जनता भी नपुंसक है या वे हत्या जैसी घटना देखने -सुनने के इतने आदी है कि उनके दिमाग पर कोई असर नहीं होता । जनता का चुपचाप देखते रहना उकनी निष्क्रियता और असंगठित स्थिति को दर्शाता है । इसमें प्रतिरोध के अभाव के कारण का संकेत भी है कि जनता की शक्ति को निश्चित दिशा नहीं मिल पा रही है तथा क्रांति गतिरोध की स्थिति से गुजर रही है । कविता के भीतर से एक संकेत उभरता है कि जनता में संगठन का अभाव और उसकी निष्क्रियता के कारण ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं ।

विशेष-

1. इस कविता में हत्या के समाचार को कविता की शक्ल दी गई है ।कवि ने रागात्मकता और मानवीय संवेदना के क्षरण तथा मानवता के अवमूल्यन पर क्षोभ प्रकट किया है ।
2. कानून-व्यवस्था की नपुंसकता और शासन की अराजकता दिखाई गई है ।
3. अपराध का राजनीतिकरण द्रष्टव्य है ।
4. धूमिल ने भी आजाद भारत में अपराध को एक सदाबहार फूल के रूप में रेखांकित किया था । सहाय भी उसे दिखाते हैं ।
5. "रामदास" एक संज्ञा है जो आम आदमी का प्रतीक है ।
6. पूरी कविता में दृश्य बिम्ब है ।
7. "भीड़ ठेलकर लौट गया वह" में गत्यात्मक बिम्ब है ।
8. कविता में लय की रक्षा है । यह कविता कई बार काट-छाँट के बाद अस्तित्व में आई । सहाय का कहना है कि पहले प्रारूप में परिवर्तन वहाँ-वहाँ किया गया है जहाँ-जहाँ लय टूट रही थी या ढ़ीली पड़ रही थी । स्पष्ट है कि सहाय कविता में लय की रक्षा करना चाहते है जिससे कविता की पहचान बनी रहे ।

22.3.2 हिलती हुई मुंडेरें हैं और चटखे हुए हैं पुल

हिलती हुई मुंडेरे हैं और चटखे हुए हैं पुल
बररे हुए दरवाजे हैं और धँसते हुए चबूतरे
दुनिया एक चुरमुराई हुई सी चीज हो गई है
दुनिया एक पपड़ियाई हुई सी चीज हो गई है
लोग आज भी खुश होते हैं
पर उस वक्त एक बार तरस जरुर खाते हैं
लोग ज्यादातर वक्त संगीत सुना करते हैं
पर साथ-साथ ओर कुछ जरूर करते रहते हैं
कई मुसाहबत किया करते हैं, बच्चे स्कूल का काम
औरतें बुना करती हैं-दुनिया की सब औरतें मिलकर
एक दूसरे के नमूनों वाला एक अनन्त स्वेटर
दुनिया के चिपचिपाई हुई सी चीज हो गई है ।
लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगली खाते हैं
लोग या तो शिष्टाचार करते हैं या खिसियाते हैं
लोग या तो पश्चाताप करते हैं घिघियाते हैं
न कोई तारीफ करता है न कोई बुराई करता है
न कोई हँसता है न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है न कोई नफरत
लोग या तो दया करते हैं या घमंड

दुनिया एक फफूंदियाई हुई चीज हो गई है ।
लोग कुछ नहीं करते जो करना चाहिए तो लोग करते क्या हैं
यही तो सवाल है कि लोग करते क्या हैं अगर कुछ करते हैं
लोग सिर्फ लोग हैं, तमाम लोग, मार तमाम लोग
लोग ही लोग हैं चारों तरफ लोग, लोग, लोग
मुँह बाये हुए लोग और आँख चुंधियाये हुए लोग
कुढ़ते हुए लोग और बिराते हुए लोग
खुजलाते हुए लोग और सहलाते हुए लोग
दुनिया एक बजबजाई हुई सी चीज हो गई है ।

संदर्भ- प्रस्तुत 'दुनिया' शीर्षक कविता नई कविता के प्रतिनिधि कवि रघुवीर सहाय के "सीढ़ियों पर धूप में" - काव्य संकलन से उद्धत है । इस कविता में कवि ने इस संसार में फैली विसंगति, सड़ाँध, अलगाव, स्वार्थ-सापेक्ष संबंध और कई स्तरों पर संबंधहीनता का चित्रण किया गया है ।

व्याख्या- हिन्दी की नई कविता अस्तित्ववादी दर्शन की मूल स्थापना- अस्वीकृति, नकारवाद विसंगति बोध से प्रभावित है, किन्तु सहाय अपनी कविता पर इसका प्रभाव अस्वीकारते हैं । सजग रूप से न सही, किन्तु दुनिया कविता पर अस्तित्ववादी छाया अवश्य दिखती है जिसमें कवि दुनिया में हर जगह असंगति, सड़ांध, सर्जनात्मकता का कुंठित होना देखता है । कविता के प्रत्येक खंड में कवि एक ही बात कि दुनिया रहने लायक नहीं रह गई है, को अनेक दृष्टांतों और व्याख्याओं द्रारा समझा जाता है । कविता के आरंभ में कवि एक ऐसे घर का संकेत करता है जिसकी मुंडेरे हिल रही हँ, जिसके दरवाजे बररे हुए है, पुल चटखे हुए है, अर्थात नवनिर्मित राष्ट्र रुपी भवन के अंदरुनी और बाहरी-दोनों हिस्से क्षतिग्रस्त है । सहाय दृश्य संसार में आस्था रखते है इसलिए संसार की बदतर स्थिति को देख दुखी होते हैं । कबीर को भी संसार की बदतर स्थिति को देख रोना आता है । पर दुख और सड़न एक रचनाकार की, संसार के उत्थान के प्रति गहरी चिंताओं का द्योतक है ।

रघुवीर सहाय की कविता में आजाद भारत की परिस्थितियाँ, जिन्दगी के बदलते रुप और उसमें व्यक्ति की विवश स्थिति का यथार्थ परक चित्रण किया गया है । आजाद भारत का परिवेश इस कप मैं विकसित हुआ है कि उसमें आदमी अपने स्वार्थ के लिए खुशामद करता है और किसी का कोई कार्य कर देता है तो वह उस पर अपनी कृपा समझता है, सामने वाले व्यक्ति का हक नहीं माना जाता । कविता के तीसरे खंड में कवि संसार के लोगों को खुशामद, ईर्ष्या, चुगली, खिसियाहट, घिघियाहट, नफरत, घमंड, स्वार्थ जैसे तुच्छ चीजों में उलझा देखता है कि ये चीजें एक संपूर्ण दुनिया के निर्माण में बाधक हँ । ईर्ष्या, चुगली, पश्चाताप, स्वार्थ, घिघियाहट ये सभी प्रवृत्तियाँ आजाद भारत के परिवेश में घुली हूई हैं । कहीं भी सहज सच्चा प्यार और सहज व्यवहार नहीं है । लोग घमंड में चूर होकर घूमते है । अंत में कवि का कथन है कि दुनिया एक फफुंनदियाई हुई चीज हो गई है । फफूंदी लगना किसी चीज के सड़ने की पूर्व सूचना है । तात्पर्य यह है कि

दुनिया में सर्जनात्मकता का अभाव है, इसमें अस्वस्थता है । फफूंदी लगी चीज हानिकर और बेकार होती है, वैसे ही यह दुनिया निरर्थक हो गई है ।

इस कविता में दुनिया का संपूर्ण रुप नहीं, बल्कि संपूर्ण दुनिया का जो अत्यंत कुरुप और स्याह रुप है उसी को दर्शाया गया । पूरी कविता में एक ऐसा बिंब बनता है जो पाठक को एक ऐसी खौफनाक और- गली दुनिया में पहुँचाता है, जहाँ कुछ भी ग्राहय और प्राप्य नही है । यहाँ उल्लेख्य है कि जो रघुवीर सहाय अपने विचार में इतने प्रगतिशील है, इतने बड़े जनपक्षधर है, इसी ठोस दृश्य संसार में विश्वास करते हैं, किन्तु यहाँ इसी संसार को निषेध की दृष्टि से देखते हैं । इसे रघुवीर सहाय का अंतर्विरोध कहा जा सकता है । साथ ही मूड विशेष में अस्तित्ववादी दायरे में आना भी कारण हो सकता है शासन का वायदा किया गया था, जिसकी जगह यह बजबजाई, पपड़ियाई दुनिया सामने आई, जिसे देखते ही हम आँखें बंद कर लेते हैं । यह सच है कि कविता में रचित दुनिया को देख उब काई अवश्य आती है किंतु इस उबकाई भरी दुनिया को देखकर क्या पाठक के मन में एक स्वस्थ और सर्जनायुक्त संसार रचने का भाव पैदा नहीं होता । कवि यहाँ किसी काल्पनिक संसार या यूटोपिया की रचना नहीं करता, क्योंकि फिर वह आदर्शवाद हो जाएगा (जिससे सहाय बचते है) किन्तु कवि संसार का यथार्थ चित्रण करके हमें सोचने को बाध्य करता है । अत: इस कविता में निषेध के साथ प्रतिरोध और नवनिर्माण का प्रछन्न स्वर भी मौजूद है ।

विशेष

1. इस कविता में दुनिया के प्रति एक निषेधात्मक दृष्टिकोण है । दुनिया में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों चीजें हैं, किंतु यहाँ कवि बड़े निस्संग भाग से दुनिया के सड़े-गले प्रसंगों को ही चित्रित करता है । यथार्थ को संपूर्णता में देखने के आग्रह के कारण सहाय ने उसके विकृत रुप को भी देखा है ।
2. युग के सकारात्मक पक्षों को अनदेखा कर जिस विकृत संसार को कवि ने चित्रित किया है, उसके प्रति हमारे मन में वितृष्णा पैदा होती है किंतु उसके साथ हम यह भी सोचने को बाध्य होते हैं कि ऐसी बदतर स्थिति के लिए जिम्मेदार कौन है? इसका अंतिम निदान क्या है?
3. आजाद भारत के समग्र परिवेश को पहचानने का प्रयास है जिसमें रहने योग्य स्थितियाँ नहीं हैं ।
4. फफुंदियाई, बजबजाई जैसे शब्दों में अमरा भाव और दृश्य बिम्ब हँ । ये सारे शब्द परिवेश की निरर्थकता को उभार कर रख देते हैं । ऐसी भाषा कवि की अनुभव क्षमता की माप करती है ।
5. फफुंदियाई-सी, बजबजाई-सी आदि में उपमा अलंकार है ।

22.3.3 मुझे कुछ और करना था

मुझे कुछ और करना था / पर में कुछ और कर रहा हूं
मुझे कुछ और करना था इस अधूरे संसार में मुझे

कुछ पूरा करना था मकान मालिक से वायदे के अलावा मुझे
इस डरावने-समाज में रहकर चीखते रहने के अलावा कुछ
और मुझे
करना था इस ठसाठस भरे कमरे में हाथ में तश्तरी लिए
खड़े खड़े
खाते रहने के अतिरिक्त रिक्त तश्तरो के अतिरिक्त
तोड़ना था मुझे / बहुत कुछ इसी वर्ष
पर मैं बना रहा हूँ शीशे के साकने हजामत
गाना था गरजना था हँसना था मुझे शायद
कहीं शायद जाना था / शालन पकाना था समेटकर आस्तीन
हौंककर डराना था अकड़ू को / और भी बुलाना था बडबोले को
ललकारना था मुझे बाँके को
गोद में लेकर सुलाना था अपने हाथों पीटे हुए बच्चे को
मुझे कुछ और करना था हाँफते हुए नमस्ते करने के अलावा
आज सुबह
चकित नही रह जाना था मुझे देखकर
चालीस के आस-पास का समाज
पर मैं चकित हूँ कि कब से हो गए सब सफल लोग सफल
मैंने रोज-रोज देखी एक बड़ी जाति के जबड़े में जाती एक छोटी आस का
पाँच राज्य के अकाल में जीवित रह जाने की शर्म ढोते हुए
मुझे कुछ करना था / पर मैं पुस्तकालय में बैठा हूँ
एक बार खोजता हूँ एक परिचित मुँह एक बार लपककर
फिर
एक मोटी किताब / जानना था जानना था जानना था
किस वक्त देश का कामकाज हम उम्र लोगों के हाथ आ गया
पद मैने जाना कि यह समाज
विद्रोही वीरों का दीवाना है विरोध का नहीं ।

सन्दर्भ - प्रस्तुत, "मुझे कुछ और करना था" कविता नई कविता के कवि रघुवीर सहाय के काव्य-संग्रह "हँसो हँसो जल्दी हँसो" में संकलित है । इस कविता में कवि क्रान्तिकारी, कुछ मोहभंगी मुद्राएँ उभरी है तथा अपनी वर्तमान स्थिति से अलग हटकर कुछ क्रांतिकारी, कुछ सर्जनात्मक कार्य, जिसे अब तक नहीं किया जा सकता, को करने की तीव्र आकांक्षा व्यक्त हुई है ।

व्याख्या - सहाय का समग्र लेखन समाजसापेक्ष और युग-सापेक्ष लेखन का पर्याय है । इस कविता की भवभूति यह है कि हमें व्यक्तिगत सीमाओं और समस्याओं से ऊपर उठकर कुछ करना है जिससे एक ऊँचे आदर्श को मूर्त रूप दिया जा सके । आरंभ में ही ' अधूरे संसार' शब्द द्रष्टव्य है । यह संसार अधूरा इस अर्थ में है कि इसमें रहने वाले निवासियों के जीवन-स्तर में भयानक गैप है । मानव की समृद्धि, उसकी गरिमा की

स्थापना जब तक नहीं होगी तब तक वह अधूरी ही रहेगी । दूसरे शब्द हैं 'डरावने समाज'। हमारा समाज दहशत से भरा है, हमारा हक और हम असुरक्षित हैं इसलिए कवि का कहना है कि "हौंकर डराना था अकड़ू को/ बुलकारना था बड़बोले को / ललकारना था मुझे बाँके को । "मुझे कुछ और करना था' कविता को 'दुनिया' कविता से जोड़कर देखें , तो स्पष्ट होगा कि दुनिया कविता में जो निराशा और सड़ी-गली दुनिया दिखती है, वह मुझे कुछ और करना था कविता में एक नई और संपूर्ण दुनिया तथा एक भयमुक्त समाज-निर्माण का स्वप्न है । कवि उस संपूर्ण संसार निर्भाण की आकांक्षा व्यक्त करता है जो दुनिया अभी बनी ही नहीं है ।

कवि ने स्वयं को एक बुद्धिजीवी की हैसियत से यह दिखाया है कि उसके क्रियाकलाप वर्तमान समाज-व्यवस्था के अनुरूप नहीं हैं । अथवा वे जो कुछ कर रहे हैं, या लोग जो कर रहे है, वे पर्याप्त नही है इसलिए उनसे कुछ अलग हटकर करना अनिवार्य है । अपनी समाज-व्यवस्था में हम लगे अन्याय, जुल्म के शिकार हैं जिसे कवि रोज देखता है मैंने रोज-रोज देखी एक बड़ी जाति के जबड़े में जाती एक / छोटी आस का । इसमें व्यवस्था पर ऊँची जाति के वर्चस्व और मत्स्यन्याय के प्रभाव का संकेत है जिसमें छोटे आदमी की छोटी आशा बडे आदमी की महत्वाकांक्षा की शिकार हो जाती है । पाँच राज्यों में भयानक अकाल से बच निकलने को कवि पर्याप्त नहीं मानता, बल्कि अकाल से निबटने के लिए क्षेत्र-कार्य जैसा कुछ करने की मंशा थी-को व्यक्त करता है, किंतु कवि को अफसोस इस बात का है कि 'मैं पुस्तकालय में बैठा हूँ' । कवि के हाथ में एक मोटी किताब आती है । वह जानता है कि देश की बागडोर हम उम्र के हाथों में आ गयी किंतु कवि ने यह जाना कि यह समाज "विद्रोहियों का दीवाना है, विरोध का नहीं ।'

यही अंतिम पंक्ति पूरी कविता की 'लाईन' है जिसमें कवि यह दिखाता है कि किस तरह आजादी से पहले लोग विद्रोही जवानों के दीवाने थे, किंतु आजादी के बाद बुद्धिजीवी आत्मकेन्द्रित हो गए, उनके विरोध की धार कुंद हो गई । तात्पर्य यह कि वे विदेशियों के खिलाफ तो विद्रोहियों का समर्थन करते थे किंतु स्वदेशी शासकों की अव्यवस्था, सत्ता की विकास-विरोधी नीतियों का विरोध करने के बजाय हमने मौन साथ लिया है । हम विद्रोही वीरों के दीवाने तो हैं, विरोध के नहीं । जो व्यवस्था हम पर लादी गई उसे हमने सिर झुकाकर स्वीकार किया और शासक वर्ग को निरंकुश शासन भोगने दिया । कवि का संकेत है कि हम अन्याय, अव्यवस्था को जानकर भी उसका प्रतिरोध क्यों नही करते? हमारा आक्रोश क्यो ठंडा हो गया है? सिर्फ किताबी ज्ञान पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे हमें क्रियात्मक स्तर पर उतारना अनिवार्य है, अन्यथा ज्ञान की कोई उपयोगिता नहीं । वे अपने आस-पास के जीवन में बुद्धिजीवी की हिस्सेदारी निभाने की अनिवार्यता पर बल देते हैं ।

विशेष -

1. कवि के मध्य और बुद्धिजीवी वर्ग की आत्म केन्द्रित कार्य-शिथिलता और अकर्मण्यता की आलोचना की है ।
2. स्वतंत्र भारत में जाति विशेष के बढ़ते वर्चस्व का संकेत है ।

3. सामाजिक बदलाव के लिए जो कदम उठाने जाने चाहिए थे, वे नहीं उठाये जाने पर अफसोस व्यक्त है ।
4. सुधेश की "घटनाहीनता के विरुद्ध" कविता से यह कविता भावसाम्य रखती है, जिसमे आजादी मिलने के बाद भी आजादी की सार्थकता सिद्ध न होने तथा उसके खिलाफ कुछ घटित न होने जैसी घटनाहीनता के विरुद्ध आवाज उठाई गई है।

22.3.4 जब सीमा के इस पार पड़ी थी लाशें

जब सीमा के इस पार पड़ी थी लाशें
जब सीमा के उस पार पड़ी थीं लाशें
सिकुडीं ठिठरी नंगी अनजानी लाशें
वे उधर से इधर आ मरते थे
या इधर रो उधर जा मरते थे
यह बहस राजधानी में हमम करते थे
हम क्या रख लेंगे यह इस पर निर्भर था
किसका मरने से पहले उनको डर था
भूखमरी के लिए अलग- अलग अफसर था
इतने में दोनों प्रधानमंत्री बोले
हम दोनों में इस बरस दोस्ती हो ले
यह कहकर दोनों ने दरवाजे खोले
परराष्ट्र मंत्रियों ने दो नियम बनाये
दो पारपत्र उसको जो उड़कर आये
दो पार पत्र उसको जो उड़कर जाये
पैदल को हम केवल तब इज्जत देंगे
जब देकर के बंदूक उन्हें भेजेंगे
या घायल से घायल अदले बदलें
पर कोई भूखा पैदल मत आने दो
मिट्टी से मिट्टी को मत मिल जाने दो
वरना दो सरकारों का जाने क्या हो ।

सन्दर्भ - व्याख्येय कविता- ' 'पैदल आदमी', रघुवीर सहाय के' 'हँसो हँसी जल्दी हँसों कविता संग्रह से उदधृत है । रघुवीर सहाय नई कविता के एक प्रमुख कवि हे । यह एक व्यंग्यात्मक कविता है जिसमें कवि ने भारत -पाकिस्तान सरकार की स्वार्थपूर्ण नीतियों की शिकार दोनों देशों की आम जनता, जो पैदल आती जाती है और रास्ते में आतंकवाद की शिकार होती है, की दयनीय स्थिति और पीड़ा का अत्यंत मार्मिक और व्यंग्यात्मक चित्रण किया है ।

व्याख्या - भारत पाक की शत्रुता और संघर्ष जगजाहिर है । भारत और पाकिस्तान आपसी संबंध सुधारने की पहल तो करते हँ, किन्तु संबंध सुधर नहीं पाता, फलतः' उनका प्रयास एक नाटक बनकर रह जाता है । दोनों सीमाओं के पार पैदल आने-जाने वाले आम

आदमी आतंकवादियों की गोलियों के शिकार होते हैं जिसकी चर्चा राजधानी में होती है, किन्तु इसका कोई स्थायी समाधान नहीं निकल पाता । बड़ी संख्या. में मरने वाले ये लोग रोटी की तलाश में आने-जाने वाली सधारण जनता हैं । सत्ताधारी वर्ग इन नरहत्याओं पर घड़ियाली आँसू बहाकर उनके प्रति बौद्धिक सहानुभूति दिखाता है । वे दोनों देश दिखावे के लिए दोस्ती का हाथ बढ़ाते हँ, लेकिन यह दोस्ती एक कागजी प्रयासमात्र बनकर रह जाती है । वे नहीं चाहते कि उनके आपसी वैमनस्य का स्थायी समाधान हो, (मिट्टी से मिट्टी को मत मिल जाने दो / वरना दो सरकरों का जाने क्या हो)- क्योंकि वे समस्या को बनाये रखना चाहते हैं ताकि वे एक दूसरे देश पर हमले का नाटक कर अपनी नकली देशभक्ति का परिचय देकर जनता से वाहवाही लूटते रहें । कविता यह दिखाती है कि आदमी की दुर्गति के लिए आदमी ही जिम्मेदार है । मनुष्यता का अवमूल्यन और इंसानी रिश्तों का क्षरण हुआ है, जिसे सहाय रेखांकित करते हैं ।

रघुवीर सहाय मनुष्यता में आस्था रखने वाले रचनाकार हैं तथा उनके लेखन का प्रत्येक अंश उसी मानव की अस्तित्वगत समस्याओं तथा उनकी स्थितियों के अंकन से समन्वित है, जो इस कविता से स्पष्ट है । आतंकवाद का शिकार आदमी चाहे भारत का हो या पाकिस्तान का, पहले वह मनुष्य है, इसलिए सहाय ने एक व्यापक दृष्टि के तहत मानवमात्र को केंद्र में रखा है । सहाय के लिए जीवन और जगत की ठोस वास्तविकता ही एकमात्र सत्य का प्रतीक है ।

सहाय पत्रकारिता से गहरे रुप में जुड़े थे । पत्रकारिता-जगत के समाचार हत्या, लूट, आतंक को उन्होंने कविता का विषय बनाया । इस कविता में भी उन्होंने हत्या, आतंकवाद जो एक वैश्विक समस्या है, को चित्रित किया है ।

विशेष -

1. यहाँ कवि देश और काल की सीमा से परे होकर मानवीय अवदशा से पार्ड़ित है । यही सहाय की अनुभूति की ईमानदारी है जो न केवल 'सहानुभूत' है, बल्कि 'समानुभूत' भी, जिसकी उन्होने चर्चा की है ।
2. यह एक राजनीतिक चेतना की कविता है जिसमें सत्तावर्ग की स्वार्थपूर्ण नीतियों का पर्दाफाश है ।
3. दोनों सरकारों की विदेश नीतियों और कूटनीतिक चाल पर तीखा व्यंग्य है ।
4. शासकवर्ग की गलत नीतियों से पीड़ित आम आदमी की पीड़ा का मार्मिक एवं व्यंग्यात्मक कथन है ।
5. "मिट्टी से मिट्टी को मत मिलने दो" में दोनों सरकारों की छदम दोस्ती ओर विदेश नीति पर प्रहारक व्यंग्य है ।
6. कविता खबर की शैली में लिखित है ।
7. जब सीमा के इस पार खड़ी थीं लाशें... सिकुडी सिहरी नंगी अनजानी लाशें" में दृश्य बिम्ब और जुगुप्सा का भाव है ।

22.3.5 राष्ट्रगीत में भला कौन वह

राष्ट्रगीत में भला कौन वह / भारत-भाग्य विधाता है

फटा सुथ्रत्रा पहने जिसका' / गुन हरचरना गाता है ।
मखमल टमटम बल्लमतुरही / पगड़ी छत्र चँवर के साथ
तोप छुड़ाकर डोल बजाकर / जय जय' कौन कराता है ।
पूरब-पच्छिम से आते हैं / नंगे बूचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा, उनके / तमगे कौन लगाता है ।
कोन-कौन है वह जन-गण-मन- / अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन / जिसका / बाजा रोज बजाता है ।

सन्दर्भ - प्रस्तुत, अधिनायक शीर्षक कविता रघुवीर सहाय के काव्य-सग्रह " आत्महत्या के विरुद्ध' में संकलित है । यह एक व्यंग्य कविता है । इसमें भारत के राष्ट्रगीत के उस अंतविरोध को दिखाया गया है जिसमें आम जनता को जो महत्व और गरिमा दी गई है, उससे वह वंचित है ।

व्याख्या - किसी भी स्वतंत्र देश के लिए उसके राष्ट्रगान का होना अनिवार्य होता है । जब भारत आजाद हुआ तब जन-गण-मन को राष्ट्रगान के रुप में स्वीकार किया गया । इस राष्ट्रगान में जनता (जन-गण) को वास्तविक नायक, भारत का भाग्य-विधाता माना गया । इस गत में आम जनता को सम्मान और एक ऊँचाई देने का भाव है, किंतु इस भाव को हम राष्ट्र में व्यावहारिक स्तर पर फलित होते नहीं देखते । कवि अनेक सवाल पूछता है । वह भारत- भाग्य-विधाता कहाँ गया? क्या वास्तव में जनता उस सम्मान और ऊँचाई को प्राप्त कर पाया? क्या हमारे शासकों के दावों और घोषणाओं को लागू किया गया? सहाय इस राजनीतिक अंतर्विरोध को देखते ओर सवाल पर सवाल उछालते है । सिंहासन पर आरूढ़ शासक पूरे बाजे-गाजे के साथ अपना जयकार करवाता है और फटा सुथन्ना पहनकर हरचरना भारत का राष्ट्रगान गाकर झूठा गौरव प्राप्त करता है । वह राष्ट्रगीत का अर्थ नहीं समझता । आजाद भारत की जिस जनता को अधिनायक माना गया है, वह भयभीत और दूसरों का जयकार करने का विवश है । अत: जन- गण को शब्दों से सम्मान देने की निरर्थकता घोषित है । यहाँ भारत की गौरवशाली परंपरा का ढोल पीटने वालों की छदम और अंधराष्ट्र भक्ति तथा उनके दिखावे की पोल खुल जाती है ।

विशेष -

1. हरचरना आम जनता का प्रतीक है जो फटेहाल और भयभीत है, किंतु राष्ट्र की गौरवगाथा गाता है ।
2. "फटा सुथन्ना पहने" में बुनियादी आवश्यकता - "वस्त्र" की पूर्ति न होने का भाव है। कवि का संकेत है कि राष्ट्रगीत में हम जिस जनता को इतना सम्मान देते हैं, व्यावहारिक जीवन में वह वस्त्राभाव से जूझ रहा है । शासक की कथनी- करनी के अंतर्विरोध सामने आते हैं ।
3. यहाँ रघुवीर सहाय की प्रगतिशील दृष्टि व्यक्त हुई है ।

22.3.6 बड़े शहर में कई नागरिक रहते हैं

इस बड़े शहर में कई नागरिक रहते हैं

उनमें से एक दयाशंकर कहलाता है
वह नकलनवीसी करके एक कचहरी में
तनख्वाह एक सौ दस रुपये घर लाता है ।
उसका घर एक कोठरी एक बरामदा है ।
उसमें बीबी औ पाँचों बच्चे रहते हैं
वह भी रहता है रहता क्या है कोने में
बैठा अक्सर बेमतलब सर खुजलाता है ।
बच्चों को दोनों वक्त दाल-रोटी देकर
सर झुका दयाशंकर की बीबी कहती है
तुम भी खा लो थाली को वही फर्श पर रख
वह बड़े नेम से हर लुकमा चबलाता है ।
बच्चे छोटे हैं इतने छोटे मगर नहीं
किससे मिलकर रहना चाहिए डरकर
किससे वे खूब समझते हैं कब क्या कहना चाहिए
हाँ बच्चा है तो वह है जो तुतलाता है
उस रोज रात को बिस्तर पर कुछ शरमाकर
मुंशी की बीवी ने मुंशी से कहा सुनो
मेरा मन पूआ खाने को जब करता है
तब मुझको यह होना मुश्किल दिखलाता है
यह बात दयाशंकर ने दुख के साथ सुनी वह सात जनों के लिए कहाँ पूआ लाते
वह चुप हो करके लेट रहे इसलिए कि वह
माने बैठे थे पूआ पति घर लाता है ।
जब जदा देर कर इंतजार बीवी बोली
उठ पड़ो अभी हम लोग पका खायें पूआ
बच्चे सोते हैं मीठी नींद झगड करके
बस जो तुतला है कभी-कभी अकुलाता है ।
वह उठी अरे वह कितनी सुंदर लगती थी
दुबली कोई आवाज न होने दी उसने
ऐसे चुपचाप पकाये उसने चार पुए
जैसे पूआ ही मधुर मिलन कहलाता है ।
दोनों अपने- अपने हिस्से के पूए ले
जैसे थे जहाँ वहाँ पर बैठे खाते हैं
इतने में सब बच्चे एकदम से जगते हैं
उठ पडते हैं मुसकाते हैं सो जाते हैं ।

सन्दर्भ - प्रस्तुत "दयाशंकर" शीर्षक कविता नई कविता की जनवादी धारा की कवि रघुवीर सहाय के 'लोग भूल गए है' कविता संग्रह से उद्धृत है । इसमें कवि ने काव्यानायक दयाशंकर जो एक आम नागरिक का प्रतीक है, की पत्नी की खादृच्छा और

उनकी आर्थिक विवशता के संघर्ष को बड़ी मार्मिकता के साथ कथात्मक शैली में चित्रित किया है ।

व्याख्या - रघुवीर सहाय जनजीवन की उन बुनियादी समस्याओं पर दृष्टिपात करते हैं जिनका समाधान अब तक नहीं हो पाया है । इस कविता में काव्यनायक दयाशंकर को केन्द्र में रखकर उसकी आय की अपर्याप्तता और पूआ की खादृच्छा के अंत:संघर्ष को दिखाया है । काव्यनायक दयाशंकर एक शहरी नागरिक है, जो नकलनवीसी करके सौ रुपए,- प्रति माह कमाता है । एक रात उनकी पत्नी की पुए खाने की इच्छा जाग उठती है तथा सभी बच्चों के सो जाने पर दोनों दंपति चार पूए बनाकर खाते हैं, तभी सभी बच्चे दबे उठकर मुस्काते हैं और फिर सो जाते हैं । यह कविता भी अपनी बुनावट में बड़ी सरल किन्तु एक बड़ी समस्या को उभारती है । कवि ने कविता में अर्थ और नैतिकता का द्वंद दिखाया है । चूंकि काव्यनायक सभी बच्चों को पूए नहीं खिला सकता, इसलिए बच्चों के सो जाने पर पूए बनाकर खाना दयाशंकर और उनकी पत्नी की आर्थिक विवशता और उनके नैतिक पतन का संकेत है । किन्तु 'बुभुक्षित: किन्न करोति पापम्' की कहावत चरितार्थ होती है कि भूखे और जरुरतमंद की नैतिकता मर जाती है । दूसरा तथ्य यह है कि स्वतंत्र होने के इतने वर्षो बाद भी पूआ जैसी खाद्य चीज एक नागरिक की सामर्थ्य के बाहर है । माता-पिता को पूआ खाते देख बच्चों का मुस्कुराकर सो जाना बच्चे की समझदारी को दर्शाता है तथा यहाँ व्यंग्य का चरमोत्कर्ष है । बच्चे पूआ खाने को इसलिए उत्सुक नहीं होते कि वे परिस्थितियों से वाकिफ है कि उन्हें पुआ नहीं मिलेगा । उनकी भूख मर गई है ।

विशेष-

1. कविता कथात्मक है जिसमें लोककथा की शैली अपनाई गई है ।
2. कविता में अर्थ और इच्छा का द्वंद है ।
3. अर्थ और नैतिकता का संघर्ष है ।

22.3.7 लोगों, मेरे देश के लोगों और उनके नेताओं

लोगों, मेरे देश के लोगों और उनके नेताओं
मैं सिर्फ एक कवि हूं
मैं तुम्हें रोटी नहीं दे सकता न उसके साथ खाने के लिए गम
न मैं मिटा सकता हूँ ईश्वर के विषय में तुम्हारा सम्भ्रम
लोगों में श्रेष्ठ लोगों मुझे माफ करो
मैं तुम्हारा साथ आ नहीं सकता
यानी कि आप ही सोचें कि जो कवि नहीं है
कि लोग सब एक तरफ और मैं एक तरफ
और मैं कहूँ कि तुम सब मेरे हो
पूछिए, कौन हूँ मैं?
मैंने कोशिश की थी कि कुछ कहूँ उनसे
लेकिन जब कहा तुमको प्यार करता हूँ

मेरे शब्द एक लहरियाता दोगाना बन
उकड़ूं बैठे लोगों पर भिनभिनाने लगे
फिर कुछ लोग उठे बोले कि आइए तोड़े पुरानी-फिलहाल-मूर्तियाँ
साथ न दो हाथ दो सिर्फ उठा
झोले में बंद कर एक नयी मूर्ति मुझे दे गये
यानी कि आप ही देखें कि जो कवि नहीं हैं
अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ और उठाता हूँ
और आप कहते हैं कि कविता की है
क्या मुझे दूसरों को तोड़ने की फुरसत हैं?

संदर्भ - प्रस्तुत 'नेता क्षमा करें' कविता, रघुवीर सहाय के 'आत्महत्या के विरूद्ध' कविता संग्रह से उद्धत हो इस कविता में कवि ने देश के नेता के चरित्र और जनता की जड़ता के समक्ष अपना पक्ष तथा काव्य-रचना की जटिल प्रक्रिया को स्पष्ट किया है ।

व्याख्या - 'नेता क्षमा करें' कविता देश की जनता और उसमें रहने वाले लोगों को संबोधित है । कवि ने अपना पक्ष और अपनी स्थिति को स्पष्ट किया है कि मैं कविता के मोर्चे पर स्थित सिर्फ एक सामान्य कवि हूँ । मैं न तो रोटी दे सकता हूँ और न ईश्वर विषयक भ्रम मिटा सकता हूँ । नेता की शर्तों पर कवि उनके पक्ष में जाना नहीं चाहता । कवि ने नेता द्वारा शब्द-प्रयोग में चालाकी तथा शब्द के दोगलेपन को भी उभारा है । इसके अलावा निष्क्रिय और जड़ बैठे लोगों पर भी व्यंग्य किया है । कुछ लोगों के द्वारा पुरानी मूर्ति यानी पुरानी छवि तोड़ने और अपना समर्थन जुटाने हेतु हाथ उठाने को कहे जाने पर कवि दो टूक शब्दों में कहता है कि मैं स्वयं अपनी एक मूर्ति बनाता और तोड़ता हूँ अर्थात मेरी निजी छवि हमेशा एक जैसी नहीं रहती । उसे बार-बार बनाना-मिटाना पड़ता है और इस जटिल प्रक्रिया के पश्चात कविता अस्तित्व में आती है। वे दलीय राजनीतिक को इसलिए ग्रहण नहीं करना चाहते कि उससे रचनाकार की सृजनात्मकता बाधित होती है । कवि खुद अपनी सीमा में स्वयं को तोड़ता है, अपनी छवि बनाता-मिटाता है, ऐसी स्थिति में दूसरे की पुरानी छवि को तोड़ने की फुरसत उसके पास कहाँ है?

नेता के दोहरे चरित्र तथा शब्द-प्रयोग में चालाकी को दिखाया गया है । "लेकिन जब कहा तुमको प्यार करता हूँ/ मेरा शब्द एक लहरियाता दोगाना बन जाता है ' - के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि आज प्यार की बात करने वाला व्यक्ति एक छद्न भाषा का प्रयोग करता है । आज प्यार अपने विपरीतार्थक शब्द के रूप में प्रयुक्त हो रहा है, यानी शब्द-प्रयोग में भी एक छदम है, शब्द में भी दोगलापन है जिसे रघुवीर सहाय पसंद नहीं करते। वे नेता द्वारा प्रयुक्त शब्दों तथा कविता के स्तर पर दोहरे अर्थ वाले शब्दों के प्रयोग को पसंद नहीं करते, ताकि श्रोता में भ्रम पैदा न हो ।

इस कविता का विवेचन करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है- "सबसे पहले ध्यान देने योग्य है कविता का या चाहे तो कह लें कवि के कहने का 'टोन', 'स्वर' । निस्संदेह इसमें एक तरह का स्पष्ट 'रेटरिक' है, लेकिन क्या यह रेटरिक ऊँचे से ऊँचे चढ़कर बोलने वाले राजनीतिक कवियों का-सा है? क्यों वह कवि इतना आत्मीय साधारण पड़ौसी सा लगता

है, यह कहने के बावजूद कि वह हमारे लिए कुछ नहीं कर सकता?" (कविता के नये प्रतिमान) ।

विशेष

1. 'लहरियाता' शब्द का प्रयोग लहराने के अर्थ में किया गया एक नवनिर्मित शब्द है।
2. दोगाना, दोगलापन की जगह प्रयुक्त एक नवनिर्मित शब्द है ।
3. पुरानी मूर्ति, पुरानी छवि, पुरानी विचारधारा का प्रतीक है ।
4. 'झोले में बंद एक नई मूर्ति' का आशय है एक दायरे में बंद विचारधारा, एक ऐसी विचारधारा जस पर शर्तें लादी गई हों ।
5. 'उकडूं बैठने' में निष्क्रिय होने या जड़ होकर बैठने या परिवर्तन की इच्छा न रखने का भाव है जो कवि को कदापि पसंद नहीं है ।

22.3.8 समय आ गया है जब तक कहता है सम्पादकीय

समय आ गया है जब तब कहता है संपादकीय
हर बार दस बरस पहले मैं कह चुका होता हूं कि समय आ गया है
एक गरीबी, ऊबी, पीली, रोशनी बीबी
रोशनी , धुंध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य
डब्बाबंद शोर /गाती गला भींच आकाशवाणी
अंत में टड़ंग ।
अकादमी की महापरिषद की अनंत बैठक
अदबदाकर निश्चित कर देती है जब कुछ और नहीं पाती
तो ऊब का स्तर एक सीली उंगली का निशान डाल दस्तखत कर
तले हुए नाश्ते की तेलौंस मेज पर
नगर निगम ने त्यौहार जो मनाया तो जनसभा का
मटकता मंत्री मुसद्दीलाल महंत मंच पर चढ़ा
छाती पर जनता की
बसंती रंग जानते थे न पंसारी न मुसद्दीलाल
दोनों ने राय दी /कंधे से कंधा भिड़ा ले चलो /पालकी ।
दर्द दर्द मैंने कहा क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
नकली दरवाजे पीटते हैं जवान हाथों को
काम सर को आराम मिलता है : दूर
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर याद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ
नेहरु-युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन
अस्पताल में मरीज छोड़कर आ नहीं सकता तीमारदार

दूसरे दिन कौन बताएगा कि वह कहां गया
निष्कासित होते हुए मैंने उसे देखा था
अंग्रेजी की अवध्य गाय
जनता के लिए लड़ो या न लड़ो
भारत पाकिस्तान अलग- अलग करो
फिर मरो कढ़िलकर / भूल जाओ / राजनीति
अध्यापक याद करो किसके आदमी हो तुम
याद करो विद्यार्थी तुम्हें आदमी से / एक दर्जा नीचे
किसका आदमी बनना है - दर्द?
दस बरस बाद फिर पदारूढ़ होते ही
नेताराम पदमुक्त होते ही न्यायाधीश
कहता है-समय आ गया है-
मौका अच्छा देखकर प्रधानमंत्री
पिटा हुआ दलपति अखबारों से
सुंदर नौजवानों से कहता है गाता बजाता
हारा हुआ देश । / समय जो गया है
मेरे तलुवे से छनकर पाताल में /वह जानता हूँ मैं ।

संदर्भ- प्रस्तुत काव्यांश रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' संग्रह में संग्रहीत 'आत्महत्या के विरुद्ध' लंबी कविता से उद्धत है । इसमें नेहरु सरकार में पनपी नौकरशाही व्यवस्था, सरकार की हिन्दी भाषा-नीति का छद्न और आजादी के मोहभंग को अनेक कोणों से प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया गया है कि नेहरु सरकार हर मोर्चे पर विफल रही है ।

व्याख्या : धूमिल की 'पटकथा' की तरह इस कविता में आजादी के बाद की सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक, अस्पतालों की स्थिति, सरकार की भाषानीति, विदेशनीति आदि की कटु समीक्षा है । आजादी से पहले लोकतंत्र तथा समाजवाद के सपने दिखाये गये, किन्तु कुछ ही दिनों में आजादी और लोकतांत्रिक व्यवस्था की पोल खुल गई, जब गरीबी और बेरोजगारी गहराती गई तथा दूसरी ओर नव धनाढ्य वर्ग पैदा होता गया । भाषा के नाम पर घोटाले, विकास-योजनाओं के नाम पर धोखाधड़ी बढ़ती गई । नेहरु सरकार की विफलता को कवि ने आजादी के बाद जन्मे नरेन तथा आजादी से पहले जन्मे उसके पिता की विपन्नावस्था के द्वारा व्यक्त किया है । मिस्तरी बाप के साथ बेटा नरेन राजधानी से दूर छटपटाते कस्बे में एक फटा कोट, एक हिलती चौकी और एक लालटेन के बीच घिरे हुए, पेंच को कसने की कोशिश करता है, किन्तु विफल होकर वह निराशा झेलता है । नरेन और उसका पिता क्रमश: नयी और पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है । 'नेहरु युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन' -पंक्ति नेहरु युग में पनपी नौकरशाही व्यवस्था का खुलासा करती है । नरेन और उसके पिता इस तथ्य को जानते है कि पेंच की चूड़ियाँ मरी हुई हैं इसलिए कसने पर भी वे कसी नहीं जाती । प्रतीकार्थ यह है कि आजाद भारत का ढाँचा तो लोकतंत्र का लिया गया, लेकिन उसका भीतरी

हिस्सा घिसा हुआ था, इसलिए उसके पुर्जे कारगर नहीं थे । व्यवस्था रूपी मशीनरी का भीतरी हिस्सा अनुपयोगी है । मशीन के पेंच ढीले है । चूड़ियों के अभाव में पेंच काम नहीं करते । उसके पुर्जे आपस में सहयोग नहीं करते । नेहरू सरकार के लोकतांत्रिक ढाँचे के भीतर एक नौकरशाही विकसित हुई जिसे पैदा करने वाला मुसद्दीलाल जैसा व्यक्ति है, जो नेहरु युग की देन है । अत: नौकरशाही ने लोकतंत्र को विफलता की परिणति तक पहुँचाया और रामराज्य, समाजवाद तथा लोकतंत्र का वास्तविक रूप नहीं बन सका । कहना न होगा कि इसके लिए नेहरु सरकार पूर्णत: जिम्मेदार रही । 'चुनाव के बाद का भारत' लेख में रामविलास शर्मा ने लिखा है "कांग्रेस से शिकायत यह नहीं कि उसने समाजवाद नहीं लाया, बल्कि शिकायत यह है कि समाजवाद के रास्ते में जो रोड़े थे, उसे उसने दूर नहीं किये । 'अत: विकास योजनाएँ और धर्मनिरपेक्ष स्वच्छ शासन प्रणाली की जो घोषणायें हुई उन्हें मुसद्दीलाल जैसे नौकरशाहों ने नष्ट कर डाला । विकास की सारी संभावनायें समाप्त हो गयीं ।

नरेन और मिस्तरी पिता के यंत्रणा और घुटन का और सघन रूप तब समने आता है जब अस्पताल में पड़े मरीज को छोड़कर उसका संबंधी घर नहीं जा सकता, क्योंकि वह इस बात के लिए आश्वस्त नहीं है कि घर जाने के बाद उसका मरीज सुरक्षित रह सकेगा । संभव है कि दूसरे दिन उसका मरीज वहाँ से गायब कर दिया जाए (मृत्यु के कारण) । यह असुरक्षा बोध और चिकित्सा क्षेत्र की अव्यवस्था भी नेहरु युग की देन है । दहशत और असुरक्षा बोध से भरा हुआ आदमी न तो घर जा सकता है, न उसके मरीज को स्वस्थ करने की प्रक्रिया ही चल रही है । कैसी विडम्बना है कि अस्पताल में भी नौकरशाही है क्योंकि वहाँ भी मुसद्दीलाल जैसा नौकरशाह है जो डाक्टर को लिखता है कि इसे ठीक करो, तब डाक्टर मरीज का इलाज करता है ।

तीसरा मुद्दा सरकार की भाषानीति का है जो 'अंग्रेजी की अवध्य गाय' के द्वारा प्रकट होता है । अवध्य गाय में व्यंग्य है । सरकार अंग्रेजी को सुरक्षा देती है तथा अकादमी की महापरिषद की बैठक में खाना पूर्ति होती है और हिन्दी वहीं की वहीं बनी रहती है । चौथा मुद्दा सरकार की विदेशनीति का है जिसमें भारत पाक को अलग- अलग करने की बात है । नेहरू युग की इन तमाम विडम्बनाओं के बीच से एक दर्द उभरता है, जिसमें आदमी नित्य एक दर्जा नीचे हो रहा है । यानि मनुष्य की उपेक्षा और अवमूल्यन का संकेत है । कुल मिलाकर यह कविता सूत्र वाक्य छोड़ जाता है कि नेहरू सरकार हर मोर्चे पर विफल रही है ।

नामवर सिंह का कथन है कि रघुवीर सहाय की " आत्महत्या के वियद्ध' भी नाटकीय एकालाप ही है, किन्तु अपने कथ्य के अनुरूप ही संरचना में "समाधि लेख ' से थोड़ा भिन्न है । " आत्महत्या के विरुद्ध' में जिस वाक्यांश की आवृत्ति बात-बार होती है वह है "समय आ गया है' । हर संदर्भ में एक ही वाक्य अपनी आवृत्ति के बावजूद नया अर्थ ध्वनित करता है :: कहीं विडम्बना, कहीं खीज, कहीं गुस्सा और कहीं उपहासास्पदता । यह रघुवीर सहाय के भाषा प्रयोग की विशेषता है । कविता में आवृत्ति के लिए चुने हुए वाक्य में भी गहरी सूझ है । जीवन में रोज इसकी आवृत्ति दर्जनों बार सुनाई पड़ती है- वह आवृत्ति जो इसे निरर्थक बना देती है । ... आत्महत्या के विरुद्ध की लय में मंद

मंथरता नहीं, बल्कि आवेश में हाँफते हुए स्वर की त्वरा है- इसलिए एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के अंदर घुसा हुआ तीसरे वाक्य को आगे की ओर धक्का देता सा प्रतीत होता है।'

विशेष

1. यह नेहरु सरकार के मूल्यांकन की कविता है ।
2. इसमें वैचारिक तनाव है, जो लंबी कविता की विशेषता है । एक के बाद एक विचार कविता में अनुस्यूत हैं, जो कवि का काम्य है ।
3. मुसद्दीलाल नौकरशाह का प्रतीक है ।
4. टड़ंग का अर्थ है अंत में कुछ नहीं ।
5. 'छुओ / मेरे बच्चे का पेट' में स्पर्श बिंब है । एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन में बाप-बेटे की विपन्नता और दृश्य बिंब है ।

22.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

लहलही-लहलहाती हुई मुंडेरे- गिरने से बचने या ओट के लिए दीवार का वह ऊपरी उठा हुआ भाग, जो सबसे उपर की छत पर होता है, रेलिंग । बजबजाई- तरल पदार्थ का सड़कर बुलबुले छोड़ना । मुसाहबत-बड़े आदमी के यहाँ हमेशा उठना-बैठना, हमेशा हाजिरी देना । खूसट-नीरस । चीकट तकिया-तेल से मैला हुआ तकिया । दोगाना-दोगला शब्द के तर्ज पर नवनिर्मित दोगला का समानार्थी शब्द । सुथन्ना-ढीला पायजामा । बल्लम- वह सुनहला या रूपहला डंडा जिसे चोबदार राजाओं के आगे लेकर चलते हैं या उनकी बगल में खड़े हाते हैं । टमटम-घोड़ागाड़ी । हौंककर-गरजकर, हुंकार कर, हाँफकर । बोदा-कच्चा, अपरिपक्व। तीमारदार-रोगी की सेवा-सुश्रुषा का काम करने वाला । नांपैद- जो पैदा न हुआ हो । खैराती-मुफ्त । खिसियाते-गुस्सा होते । बररे-पुराना फटा दरवाजा जिससे चों-चों की आवाज आती है ।

22.5 सारांश

रघुवीर सहाय नई कविता के क्षेत्र में नए विश्लेषक और कविता को नया स्वरूप स्थापित करने वाले कवि है । प्रस्तुत इकाई में रघुवीर सहाय की 'रामदास', 'दुनिया', ' मुझे कुछ और कहना था', ' पैदल आदमी', ' आत्महत्या के विरुद्ध' दयाशंकर तथा नेता क्षमा करें शीर्षक कविताएँ तथा उनमें कुछ अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या की गई है । सहाय की कविताओं में परिवेश के प्रति विशेष सजगता उन कवियों के लिए एक चुनौती है जो परिवेश का महत्व न देकर व्यक्तिगत चिताओ को महत्व देते है । उनका परिवेशबोध समाजवादी और प्रगतिशील कवियों जैसा है । परिवेश का ही प्रभाव है कि उनकी कविताओं में राजनीतिक रंग गहरा है । उनकी कविता में जनजीवन का एक पूरा संसार मुखर हुआ है । इस संसार के साथ उनका संबंध कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है ।

22.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रघुवीर सहाय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए ।
2. नई कविता के संदर्भ में रघुवीर सहाय के काव्य का मूल्यांकन कीजिए ।

3. रघुवीर सहाय के काव्य की अंतर्वस्तु और शिल्प पर प्रकाश डालिए ।
4. "रघुवीर सहाय के काव्य में पत्रकारिता और कविता का समन्वय है" - स्पष्ट कीजिए।
5. निम्नांकित अवतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए तथा आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी दीजिए-

   (अ) "चौड़ी सड़क..... हत्या होगी ।"

   (ब) "जब सीमा के इस पार..... जाने क्या होगा ।"

   (स) "इस बड़े शहर में..... पति घर लाता है ।"

   (द) "समय आ गया है..... पाल की ।"

22.7 संदर्भ ग्रंथ

1. रघुवीर सहाय- दूसरा सप्तक में संकलित कविताएँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1951 ।
2. सीढ़ियों पर धूप में- 1960 - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960 ।
3. आत्महत्या के विरुद्ध - राजकुल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985
4. हँसो-हँसो जल्दी हँसो-नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 195 ।
5. दिल्ली मेरा परदेश-द मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1976
6. लोग भूल गये हैं - 1982
7. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- 1989
8. एक समय था-
9. लिखने का कारण- (निबंध संग्रह)-राजपाल एण्ड संस-दिल्ली- 1978 ।
10. सुरेश कुमार, संपादक- प्रतिनिधि कविताएँ- राजकुल प्रकाशन , नई दिल्ली, 1994

इकाई-23 रघुवीर सहाय का काव्य : अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 काव्य संवेदना

23.2.1 काव्यानुभूति

23.2.2 कविता और पत्रकारता का समन्वय

23.2.3 यथार्थ चित्रण

23.2.4 राजनीतिक संदर्भो का चित्रण

23.2.5 आजादी का मोहभंग

23.2.6 सामाजिक प्रतिबद्धता

23.2.7 अन्याय का विरोध

23.2.8 हिन्दी की पक्षधरता

23.2.9 नारी के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण

23.2.10 प्रकृति चित्रण

23.2.11 प्रेम चित्रण

23.2.12 बदलाव की आकांक्षा

23.3 काव्यशिल्प

23.3.1 काव्यरूप

23.3.2 काव्यभाषा

23.3.3 काव्य बिम्ब

23.3.4 काव्य प्रतीक

23.3.5 काव्य अलंकार

23.3.6 काव्य-शैली

23.3.7 लय और छंद

23.4 सारांश

23.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

23.6 संदर्भ ग्रन्थ

23.0 उद्देश्य

यह इकाई रघुवीर सहाय की रचनाशीलता से संबंधित है । इस इकाई से आप-

- छायावादोत्तर हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि में रघुवीर सहाय की काव्य-संवेदना से साक्षात्कार कर सकेंगे ।

- रचनाकार के बुनियादी सरोकारों से परिचित होने के साथ उनके समकालीन अन्य कवियों से भिन्नता बता सकेंगे।
- प्रयोगवाद, प्रगतिवाद तथा अन्य काव्यान्दोलनों से उनकी सहमति- असहमति को जान सकेंगे ।
- नई कविता के दुखवादी और अनास्थावादी तेवर से अलग हटकर रघुवीर सहाय के विद्रोही और आस्थावादी मूल्यों के समर्थन को बता सकेंगे ।
- रघुवीर सहाय के काव्य-स्वभाव, काव्य-प्रेरणा, काव्यदृष्टि और काव्य के उद्देश्य को जान सकेंगे ।
- कवि की कविता के शिल्प के सहज सौन्दर्य से साक्षात्कार कर सकेंगे, समकालीन काव्य परिदृश्य में सहाय का स्थान तथा उनके योगदान को जान सकेंगे ।

23.1 प्रस्तावना

रघुवीर सहाय दूसरा सप्तक के कवि हैं । कविता की गुणवत्ता और मूल्यवत्ता की दृष्टि से सहाय अज्ञेय और मुक्तिबोध के बाद हिन्दी कविता के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण कवि है। वे पत्रकारिता और कविता को साथ लेकर चलते हैं । उनकी विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने नई कविता की मान्यताओं से अलग हटकर नई मान्यताओं के आलोक में काव्य-रचना की । कविता के मूल प्रयोजन और शिल्प के प्रति एक विद्रोही तेवर लेकर काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए । आजादी के मोहभंग ने उनके स्वभाव, उनकी जीवन- दृष्टि, उनकी काव्यदृष्टि को अधिक विद्रोही बनाया ।युगीन यथार्थ को सहज शैली में व्यक्त करने में ही उन्होंने अपने लेखन की सार्थकता दिखाई । आरम्भ से ही उनमें साहित्य के प्रति गहरी रूचि थी जिसका प्रमाण उनका सतत लेखन और लेखन के प्रति समर्पण भाव है । उनमें अपनी लेखन-प्रक्रिया को जारी रखने की बड़ी ख्वाहिश है । वे बड़े रचनाकार बनने की महत्वाकांक्षा भले न पालते हों, किंतु उनकी तीव्र इच्छा रही है कि वे लोगों के बीच चर्चित रहें । "लोग भूल गये हैं' में इसी बात का संकेत है ।

रघुवीर सहाय की काव्य -संवेदना बहुआयामी है तथा यह क्रमश: विकसित और परिवर्तित होती रही है । यह परिवर्तन एक जीवंत रचनाशीलता का प्रमाण है । अपने काव्य-विकास के बारे में "लोग भूल गये है' की भूमिका में उन्होंने लिखा है- " मँझधार से कहें कि बीच भँवर से लिखी हुई कविता प्रकाशित कर देने का यह मेरा पहला अवसर है । इसके पूर्व आत्महत्या के विरुद्ध और ' 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' दोनों एक-एक निष्कृति के सूचक थे । उसके पहले "सीढ़ियों पर धूप में ' कविता के एक से अधिक पड़ावों तक सहेजकर ले जाई गई उपलब्धियों का संचय था । उसके भी पहले दूसरे सप्तक में संकलित रचनाएँ अत्यंत प्राथमिक वताओं के अयासमूलक दौर निकलते ही अपनी दुनिया में पैर रखने की कविताएँ थीं' । उन्होंने अपने काव्य के प्रेरणास्रोत के विषय में कहा था कि बच्चन की वेदना से उनका कंठ फूटा और बाद में गिरिजाकुमार के सफल- असफल रंग-संयोजन ने उन्हें कला के प्रति सजग बनाया । सहाय की आरंभिक तथा सप्तक की कविताओं में प्रेम, प्रकृति-प्रेम, मांसलता और आत्मचिंतन की प्रधानता है जो उनके उन्मुक्त और रोमानी व्यक्तित्व की सूचना देते हैं, किन्तु परवर्ती कविताओं में उनकी बर्हिमुखता बढ़ती

गई । सामाजिक -राजनीतिक यथार्थ के संपर्क में आने के साथ उनका वैयक्तिक और प्रकृति प्रेम लोकचिन्ता और लोकपीड़ा में परिवर्तित होता गया, जो उनके काव्यविकास का गुणात्मक पहलू है । दूसरे शब्दों में प्रेम और रोमांस की चिकनी सतह से होता हुआ कवि राजनीति और सामाजिक विषमता के खुरदुरे धरातल का स्पर्श करता है । वे समय की धड़कन से अपने को जोड़ते हैं तथा व्यक्ति के सीमित दायरे का अतिक्रमण कर व्यापक जीवन और समाज की हरता को चित्रित करने लगते हैं । जीवन के समग्र प्रवाह में उतरने की तड़प महसूस करते है । वे जीवन का टुकड़ा न लेकर संपूर्ण जीवन लेने की घोषणा करते हैं-

हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए ।

इन पंक्तियों में सहाय छायावाद तथा उन काव्यधाराओं का विरोध करते हैं जिनमें युग और जीवन के व्यापक चित्रण का अभाव है ।

वादमुक्तता- पाँचवें दशक से लेकर आठवें दशक तक हिन्दी कविता के इतिहास में विविध वादों का प्रचलन रहा । पाँचवें दशक में प्रयोगवाद, प्रगतिवाद का बोलबाला रहा । प्रयोगवाद की कुक्षि से नई कविता जन्म ले रही थी जो सातवें दशक में किसिम- किसिम की कविता के रूप में फूट पड़ी । चाहे हिन्दी भाषा का मुद्दा हो या सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रश्न हो, रघुवीर सहाय लोहिया के समाजवादी चिन्तन से प्रभावित थे, किन्तु वे किसी वाद से जुड़े नहीं । उन्होंने किसी सांगठनिक लगाव से इंकार किया है । साहित्यिक खेमेबाजियो से वे अलग रहे । इस रूप में उन्होंने एक ' 'वादमुक्त' तथा "स्वतंत्रचेता कवि' के रूप में अपनी पहचान बनाई है । उनकी विचारधारा के केंद्र में समाज था । वे समाजसापेक्ष लेखन करते थे तथा कविता के नाम पर चलने वाले दिखावे, स्वयं को स्थापित करने के लिए फतवे जारी करने जैसी तरकीबों के वे सख्त विरोधी थे ।

23.2 काव्य-संवेदना

23.2.1 काव्यानुभूति

काव्यानुभूति से तात्पर्य काव्य में निहित इंद्रियबोध, भावबोध और विचार बोध से है, जिनके द्वारा काव्य रचा जाता है । मनुष्य का इंद्रियबोध सबसे व्यापक होता है, भावबोध उससे कम और विचारबोध सबसे कम । इसी तरह मनुष्य के इंद्रियबोध में बहुत कम बदलाव आता है (विश्व भर के मनुष्यों के इंद्रियबोध में प्राय: समानता होती है), इंद्रियबोध की तुलना में भावबोध में अधिक परिवर्तनशीलता होती है तथा विचारबोध में सबसे अधिक। काव्यानुभूति काव्य का बुनियादी तत्व है । इसे कविता का भाव पक्ष या अनुभूति पक्ष भी कहते है । अनुभूति पक्ष अमूर्त होता है जिसका संबंध हमारे सोच और संवेदना से है । रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति अधिक व्यापक है जिसमें यथार्थ के समग्र रूप मिलते हैं, जिनका रेखांकन आगे किया जा रहा है ।

23.2.2 कविता और पत्रकारिता का समन्वय

रघुवीर सहाय साहित्यकार और पत्रकार के व्यक्तित्व को एक दूसरे से जोड़कर देखते हैं और दोनों प्रतिभाओं को एक दूसरे का पूरक मानते हैं । 'लिखने का कारण' में वे लिखते हैं- "पत्रकार और साहित्यकार में कोई अंतर है क्या? मैं मानता हूँ कि नहीं है । इसलिए नहीं कि साहित्यकार रोजी के लिए अखबार में नौकरी करते हैं, बल्कि इसलिए कि पत्रकार और साहित्यकार दोनों एक नये मानव-संबंध की तलाश करते हैं । दोनों ही दिखाना चाहते हैं कि दो मनुष्यों के बीच नया संबंध क्या बना? दोनों के उद्देश्य में पूर्ण समानता है । कृतित्व में समानता कमोबेश है । पत्रकार जिन तथ्यों को एकत्र करता है उनको क्रमबद्ध करते हुए उन्हें उस परस्पर संबंध से विच्छिन्न नहीं करता जिससे वे जुड़े हुए या क्रमबद्ध हैं ।.. साहित्यकार के लिए तथ्यों की जानकारी उतनी ही अनिवार्य है जितनी पत्रकार के लिए है, परंतु उन तथ्यों का गतानुगत क्रम उसके लिए अवध्य नहीं है, बल्कि तथ्यों के परस्पर संबंध को जान-बूझकर तोड़कर साहित्यकार उसे नये सिरे से क्रमबद्ध करता है और इस प्रकार से नये संपूर्ण सत्य की सृष्टि करता है जो एक नया यथार्थ है । एक संभव यथार्थ है । पत्रकार के लिए यथार्थ वही है जो संभव हो चुका है । साहित्यकार के लिए वह है जो संभव हो सकता है' (लिखने का कारण) ।

सहाय ने मीडिया की जिन विरोधी भूमिका को भी चित्रित किया है । मीडिया, जो स्वतंत्र होती है, सही समाचार देना उसका फर्ज होता है, किंतु उस पर सत्ता का वर्चस्व है इसलिए वह सत्ता के पक्ष में समाचार देती है । वह आँकड़ों को तोड़-मरोड़कर पेश करती है इसलिए सहाय उसे दूरदर्शन न कहकर दुदर्शन कहते हैं-

कल जब घर को लौट रहा था देखा उलट गई है बस
सोचा मेरा बच्चा इसमें आता रहा न इसमें हो वापस
टेलिविजन ने खबर सुनाई पैंतीस घायल, एक मरा
खाली बस दिखला दी खाली दिखा नहीं कोई चेहरा
वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिए हिया
उसके लिए समाचारों के बाद समय ही नहीं दिया
तब मैंने समझ लिया है आकाशवाणी में बनठन
बैठे हैं जो खबरोंवाले वे सब हैं जन के दुश्मन
उनको शक था दिखला देते अगर कहीं छत्तीस इंसान
साधारण जन अपने- अपने लड़के को लेता पहचान
ऐसी दुर्भावना लिए हैं जन के प्रति जो टेलिविजन
नाम दूरदर्शन है उसका काम किंतु है दुदर्शन

पत्रकारिता ने उनकी कविता को विस्तार और पैनी दृष्टि दी, कविता ने उनकी पत्रकारिता को काव्यत्व प्रदान किया । अत: पत्रकारिता की चर्चा किए बिना सहाय के कविकर्म और कविरूप को नहीं परखा जा सकता । आजादी के बाद के वे एकमात्र कवि हैं जिन्होंने पत्रकारिता को कविकर्म के लिए बाधक तत्व नहीं, बल्कि सहायक तत्व माना । रघुवीर सहाय ही एकमात्र कवि हैं जिने कविरूप और कविता पर पत्रकारिता इतनी अधिक हावी है । पत्रकारिता में समाचार तैयार करते समय उसे प्राय: कथात्मकता से जोड़ा जाता है

जिससे वह अधिक विश्वसनीय और आकर्षक बन सके। उक्त कविता में समाचार को कविता का विषय बनाकर समाचार की शैली में प्रस्तुत किया गया है ।

23.2.3 यथार्थ चित्रण

सहाय की आरंभिक कविताओं में प्रेम की पीड़ा और भाबुकता है, किंतु प्रगतिशील लेखक संघ के संपर्क में आने पर उनका वैयक्तिक और भाबुक प्रेम मानवीय प्रेम में परिवर्तित होता हैं । अभावग्रस्त जनता उनके प्रेम का आधार बनती है जहाँ वे लाखों का दर्द पहचानते है । वे लिखते हैं-

परिणय की पीड़ा के अतिरिक्त धरा पर दुख हैं बहुतेरे
दृग वातायन खोलो, आँसू के परदे सरकाकर देखो
कितने दुखग्रस्त अभागों से अब तक थे हम आँखें फेरे
उनके हित यह आँसू सिरजो / उनके सुख के सपने देखो
मेरे स्वर में अपना स्वर दें / उन स्वरहीनों की जय बोलो

रघुवीर सहाय यथार्थवादी रचनाकार हैं । उन्होंने जिस यथार्थ का चित्रण किया, वह निरा यांत्रिक नहीं, बल्कि उसे पाठक की संवेदना से जोड़कर प्रस्तुत किया है, ताकि वह हृदयंगम हो सके । यथार्थ संबंधी ऐसी समझ नई कविता के अन्य कवियों के यथार्थ चिंतन से भिन्न था । सहाय यथार्थ संबंधी निजी समझ को उसकी द्वंद्वात्मकता में देखते हैं । इसके अलावा वे यथार्थ को इकहरे रूप में नहीं, बल्कि उसकी समग्रता में पहचानते है । उन्होंने लिखा है- "समाज की समझ का मतलब है, समाज में मनुष्य और मनुष्य के बीच जितने गैरइंसानी रिश्ते हैं उनकी समझ कहाँ से पैदा होती है इसकी समझ और उनकी जड़ों तक पहुँच, इतिहास की समझ ।' (लिखने का कारण) । यानी सहाय इंसानी रिश्तों में जो असंगति है, उसके चित्रण मात्र को पर्याप्त न मानकर उसके कारणों तक जाकर उसका समाधान करने के पक्ष में हैं जो एक संपूर्ण यथार्थ-दृष्टि है । उन्होंने पुन: लिखा है- "क्योंकि इंसान और इंसान के बीच एक गैरबराबरी का रिश्ता है और इस रिस्ते को कोई आदमी मानता है कि ऐसे ही रहना चाहिए, तो वह कोई रचना नहीं कर सकता' (लिखने का कारण- 147) । इस तरह सहाय एक मार्क्सवादी विचारक थे जो सामाजिक रिश्तों की पहचान इतिहास और वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में देखते थे तथा सड़े-गले इंसानी रिश्तों में बदलाव चाहते थे ।

यथार्थ का जितना प्रबल आग्रह रघुवीर सहाय की रचनाओं में है, उतना नई कविता के अन्य कवियों में नहीं । चूंकि सहाय एक पीरवर्तनकामी रचनाकार हैं, इसलिए उन्होंने यथार्थ को महत्त्व दिया । उन्होंने कविता में अविश्वसनीय कल्पना और आदर्शवाद की स्थापना जैसी स्थिति पैदा नहीं होने दी । यथार्थ के विविध रूपों को लेते हुए उसकी समग्रता में उसका चित्रण किया । सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक-तमाम संदर्भों का चित्रण उनकी समग्र यथार्थ दृष्टि का प्रमाण है, चाहे रामदास कविता हो या नेताजी क्षमा करें, या आत्महत्या के विरुद्ध या अन्य कविताएँ । कलावादी जहाँ सौंदर्य को केवल प्रकृति और नारी तक सीमित कर देखते हैं वहाँ जनवादी कवि रघुवीर सहाय उस यथार्थ जगत में भी सौंदर्य देखते है जिसे देख कलावादी प्राय: मुँह विदका लेते हैं ।

23.2.4 राजनीतिक संदर्भो का चित्रण

आज साहित्य पर राजनीतिक प्रभाव को लेकर विशुद्ध साहित्यिकता की बात उठाई जाती है कि उसमें राजनीति और प्रचार का प्रवेश नहीं होना चाहिए, किन्तु रघुवीर सहाय अन्य रचनाकारों से अलग हैं । पत्रकार की हैसियत से सहाय ने राजनीतिक जगत की सड़ांध देखी है । वे पतनशील राजनीति की खिल्ली उड़ाते हैं, राजनीतिक कविताएँ लिखते हैं, किन्तु सांगठनिक लगाव से इन्कार करते हैं । यही कारण है कि उनकी राजनीति का वाम या दक्षिण कोई मोची स्पष्ट नहीं होता । राजनीति की जरुरत वे महसूस करते हँ, किन्तु उससे अधिक जरुरी वे साहित्यिक मोर्चे को मानते हैं- "राजनीति की ओर मेरा यह रवैया-संकटकालीन रवैया कह लीजिए- कि 'वह बहुत जरुरी है' या 'वह फिजूल है ' दोनों फतवे संकट से भागने के बहाने हैं- वह बहुत जरुरी है पर मैं भी अपने लिए बहुत जरुरी हूँ- अपनी उस कला-परंपरा के लिए जिससे मै अपनी एक मूर्ति बनाता और ढहाता हूँ और आप कहते है कि कविता की है' (आत्महत्या के विरुद्ध-वक्तव्य) । वे कहते है संगठित राजनीति अत्यंत आवश्यक है, लेकिन उसके खिलाफ रचना भी आवश्यक है । वे किसी भी हालत में सत्ता का चारण बनना नहीं चाहते ।

सहाय राजनेता की उस राजनीतिक चाल को समझते हैं जिसके द्वारा वे आम जनता को वश में करके गुलाम बनाते है । गुलामी कविता में वे लिखते हैं-

मनुष्य के कल्याण के लिए
पहले उसे इतना भूखा रखो कि वह और कुछ / सोच न पाए
फिर उसे कहो कि तुम्हारी पहली जरुरत रोटी है
जिसके लिए वह गुलाम होना भी मंजूर करेगा
फिर तो उसे यह बताना रह जाएगा कि
अपनों की गुलामी विदेशियों की गुलामी से बेहतर है
और विदेशियों की गुलामी वे अपने करते हों
जिनकी गुलामी तुम करते हो तो वह भी क्या बुरी है
तुम्हें तो रोटी मिल रही है एक जून ।

जनता के साथ छल, धोखा आज के नेता का चरित्र है । नेता भले अपने दल की प्रशंसा तथा दूसरे दलों की भर्त्सना करते हो - किन्तु वे सब एक ही थैली के चट्टे- बट्टे है । सहाय नेता के चरित्र को इस प्रकार चित्रित करते हैं-

टूटते -टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जाएगा कि
बीस साल / धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला- भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हाँ-हाँ करता हुआ हें-हें करता हुआ
दल का दल

पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खाएगा देश को

जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है, वे उससे अलग रहने की बात नहीं करते, क्योंकि राजनीति हर जगह व्याप्त है किन्तु पार्टी का गुलाम बनना उन्हें कदापि पसंद नहीं । वे लिखते हैं- "लेखक के लिए राजनीति से अलग रहना हर हालत में बेमानी और बेईमानी है, परंतु राजनीतिक पार्टी का गुलाम हो जाना सिर्फ उसी हालत में बेईमानी है जब आप यह हरकत समाज के नाम पर कर रहे हों' (कल्पना- अगस्त- 1965 / 77) । किन्तु राजनीति से जुड़कर भी वे अपनी सर्जनाशक्ति को राजनीति के हाथों लइरवी रखना नहीं चाहते । राजनीति के प्रति सजगता का ही प्रमाण है कि उन्होंने नेहरु- शासन की सीमाओं को दिखाया है । शासन में पनपी नौकरशाही अराजकता, संबंधवाद, स्वार्थ-सबकी कवि ने धज्जियां उड़ाई हैं । उन्होंने स्वीकार किया कि "राजनीति से मैंने अपने साहित्य को बहुत दिया-खास तौर से उस दौर में जब मैं दैनिक अखबार में था' ।

23.2.5 आजादी का मोहभंग

आजादी के मोहभंग ने अनेक कवियों को विद्रोही बनाया । "आत्महत्या के विरुद्ध' काव्य संग्रह के साथ रचनाकार कई रूपों में सामने आया है । इस संग्रह में वे तीन मोचां पर लड़ते दिखाई देते हैं- साह्यिइत्यक, राजनीतिक और समाजिक स्तर पर । साहिप्रइक्क स्तर पर अकविता का विरोध करते हुए सहज और पारदर्शी शिल्प की तलाश करते है, राजनीतिक स्तर पर वे पतनशील भ्रष्ट राजनीति की भर्त्सना करते है, सामाजिक स्तर पर वे शोषण का विरोध करते है । उनकी युगीन चिंताएँ बढ़ गई हैं । देश को खाता अन्याय, आजादी का मोहभंग, अपना मत न दे पाने की जनता की विवशता, लोकतंत्र की मृत्यु, मतदाता और भीड़ के रूप में जनता की तब्दीली, दलबदलू नेता के चरित्र, अकाल आदि का चित्रण करते हैं । इन कविताओं के चरित्र खासकर राजनीतिक हैं । आजाद भारत में पनपे हुए भ्रष्टाचार, अन्याय, पाखंड और राजनीति का यथार्थ रूप इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

बाँध में दरार / पांखड वक्तव्य में / घटतौल न्याय में
मिलावट दवाई में / नीति में टोटका / अहंकार भाषण में
आचार में खोट / हर हफ्ते मैंने विरोध किया / सचमुच
स्वाधीन हो जाने का इतना भय / एक दास जाति में

- आत्महत्या के विरुद्ध- 88

अर्थात आजाद भारत के समाज और राजनीति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया । मानवीय मूल्यों का हास हुआ ।

आजादी के मोहभंग ने नागार्जुन, मुक्तबोध, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, सर्वेश्वर, धूमिल, रघुवीर सहाय जैसे प्रगतिशील कवियों को जन्म दिया । आजादी से पहले जनता को जो सपने दिखाए गए थे वे ध्वस्त हो गए । समाज का सिर्फ बाहरी रूप बदला, उसका आंतरिक रूप यथावत रहा, इसलिए कवि देश की बदतर स्थिति पर असंतोष और आक्रोश व्यक्त करता है । सहाय का सब्र टूटता दिखाई देता है । वे लिखते हैं-

बीस वर्ष / खो गए भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में
वह
अपने बचपन की / आजादी / छीनकर लाऊँगा ।

(**मेरा प्रतिनिधि**, **प्रतिनिधि कविताएं-66**)

गुलामी और आजादी दोनों स्थितियों में जनमी पीढ़ी क्लेश में पली-पुसी तथा अंततः: भ्रम और उपदेश में खो गई, उनके सपने साकार नहीं हुए । उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिली, किन्तु आर्थिक-सामाजिक स्वतंत्रता नहीं मिली । सहाय राजनीतिक आजादी की निरर्थकता घोषित करते हुए समग्र आजादी की कल्पना करते हैं और इस बात पर बल देते हँ कि आजादी छीनकर लाऊँगा-यानी हक छीनना पड़ता है, गिड़गिड़ाने से यह नही मिलता । हक-प्राप्ति के लिए संघर्ष की अनिवार्यता घोषित की गई है कविता अत्यंत क्रमिक स्थितियों से आरंभ होकर आक्रोक्ष में समाप्त होती है ।

23.2.6 सामाजिक प्रतिबद्धता

रघुवीर सहाय रचनाकर के रूप में एक प्रतिबद्ध सामाजिक चिन्तक है । यद्यपि वे किसी प्रकार के सामाजिक संगठन से नहीं जुड़े हैं, तथापि उनका सामाजिक चिंतन एक प्रगतिशील कवि का चिंतन है जे उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है । उनके वक्तव्यों और काव्य - व्यवहार में यह चीज बार-बार झलकती है । 'लोग भूल गये है' की भूमिका में वे लिखते हैं- "आज के कवि का अपनी परीक्षा के लिए समाज के सामने आना,विशेष रूप से तब जबकि उसे समाज में अपने अस्तित्व को अर्थात् समाज से रिश्ते को समझने में हो रहा हो, उसे अहं के रचना विशेधी खतरे से बचायेगा' (निवेदन) । सहाय अपने समय के प्रगतिशील कवियों से भी असंतुष्ट रहे । वे प्रगतिशील कवियों की वस्तुपरकता और स्थूल दृष्टि पर प्रहार कर यह बताना चाहते हैं कि उनकी पीड़ा अंतःकरण से फूटी हुई पीड़ा नहीं, बल्कि आरोपित है । तात्पर्य यह है कि रचनाकार जिन्दगी में डूबकर रचना करे, वह युग और जीवन की गहराई में प्रवेश करे, तभी उसके रचना-कर्म की सार्थकता है । सहाय निरंतर कविता के सामाजिक धरातल की तलाश करते हैं । उन्हें हमेशा इस बात का एहसास है कि वे जो लिख रहे हैं, वह समाज के लिए है । व्यक्ति विशेष को भी यदि रचना में लिया तो समाजहित को ध्यान में रखकर ही । उन्होंने सामाजिक चेतना की कविताओं द्वारा कविता की सामाजिक जमीन को पुख्ता किया है । वे समाज के प्रति एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं।

23.2.7 अन्याय का विरोध

आम जनता की जिजीविषा और सामान्य जिन्दगी को सहाय ने काव्य का विषय बनाया। 'सहाय प्रगतिशील रचनाकार के रूप में कविता को समाजविरोधी तत्वों की खिलाफत का माध्यम मानते हैं । उनकी स्थापना है कि "रचना का जो मार्मिक और आत्यंतिक अर्थ है, वह किसी चीज को इस तरह बनाना है कि वह एक नई दुनिया की प्रतिनिधि हो रचना के और जीवन के, कर्म के और सानंद के आधारों के विरुद्ध जो कार्रवाई समाज में होती

है, कविता इसका विरोध करने के लिए ही लिखी जाती है' (आजकल- मार्च, 1991/5) । उनका मानना है कि कविता हमें अन्याय के प्रतिरोध के लिए साहस देती है, इसलिए वे कहते है कि "अत्याचारी के चेहरे गढ़ो, अत्याचार के नहीं' । यानी अत्याचारी की पहचान करना जरुरी है ताकि उसे समाप्त किया जा सके। अत्याचारी का चित्र उतारकर करुणा उपजाना प्रासंगिक नहीं । वे कविता द्वारा मनोरंजन या वाह- वाह वाली परंपरा के हिमायती नहीं है और न उस कविता को महत्व देते हैं जो नारी के अंगों-उपांगों की यात्रा करती है । वे लिखते हैं -

सन्नाटा छा जाए मैं जब कविता सुनाकर ऊठूँ
वाह-वाह वाले निराश हो जाएं (**कुछ पते कुछ चिट्ठियां- 1**5) ।

23.2.8 हिन्दी की पक्षधरता

रघुवीर सहाय जहाँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक मामलों पर पैनी नजर रखते है, वहीं हिन्दी भाषा की राजनीति करने वाले नेताओं, संसद में बैठे मठाधीशों और हिन्दी अधिकारियों को भी आड़े हाथों लेते हैं । भाषा के मुद्दे पर सहाय राम मनोहर लोहिया से सहमत थे जिन्होंने अंग्रेजी को नौकरशाहों की तथा हिन्दी को खुशहाल लोगों की भाषा कहा था । हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित तो किया गया, उसे कानूनी मान्यता भी प्राप्त हुई किन्तु पंद्रह वर्षो तक अंग्रेजी के बने रहने तथा बाद में उसे हटाने का जो कानून बना वह मामला यथावत रहा । सरकार की तुष्टिकरण की नीति के चलते हिन्दी अपनी घोषित संवैधानिक वजूद को प्राप्त नहीं कर सकी और अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ता गया । हिन्दी के सरकारी सलाहकार भी हिन्दी के संबंध में स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं कर पाए, क्योंकि वे सरकार के हाथों बिक चुके थे । फल यह हुआ कि हिन्दी के विकास के नाम पर अधिकारी लोग सुख-सुविधा बटोरने लगे, हिन्दी की बड़ी-बड़ी संस्थाओं के मठाधीश हिन्दी सेवा के नाम पर माल हथियाने लगे जिसे सहाय ने 'हमारी हिन्दी' कविता में व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित किया । उन्होंने नाम लिए बगैर हिन्दी के सरकारी अधिकारियों और नेताओं को 'दुहाजू' तथा हिन्दी को उसकी बीबी कहा -

हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
गहने गढ़ाते जाओ / सर पर चढ़ाते जाओ
घर में सब कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन भी और अंदर की कोठरी में पाँच सेर सोना भी
और संतान भी जिसका जिगर बढ़ गया है
जिसे वह मासिक पत्रिकाओं पर हगाया करती
और जमीन भी जिस पर हिन्दी भवन बनेगा
कहने वाले चाहे कुछ कहें
हमारी हिन्दी सुहागिन है सती है खुश है
उसकी साध यही है कि खसम से पहले मरे
और तो सब ठीक है पर हपले खसम उससे बचे

तब तो वह अपनी साध पूरी करे ।

23.2.9 नारी के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण

रघुवीर सहाय की कविता में नारी के विविध चित्र हैं, किन्तु अश्लील संबोधनों और अश्लील चित्रों से कोसों दूर । यह स्त्री दैनिक जीवन जीती हुई बुनियादी जरुरतों से जूझ रही है । कहीं दो बच्चों के साथ प्रधानमंत्री का पता पूछती खब्ती औरत है, कहीं बाढ़ में मारी गई सी है, कहीं तन्मय होकर रोटी खाती और धूप में लेटी नन्हीं लड़की है, कहीं हाथ में रेजगारी लिए चीजें खरीदती औरत है, कहीं वह अन्याय को सहने के लिए घुटने मोड़कर लेटी है, कहीं सहानुभूति और संवेदना की याचना करती अधेड़ औरत है, कहीं वह गोद में बच्चा लेकर बस में चढ़ रही है, तो कहीं दुबली- थकी अवस्था में खड़ी है । कहीं जाँघ पर बच्चे को डालकर गिरती पोटली संभालती माँ है । कवि का कथन है कि औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं, पुरूष गिडगिड़ाता है लेकिन औरत चुपचाप बेबसी को पी जाती है (लोग भूल गये हैं) ।

रघुवीर सहाय नारी की दयनीय स्थिति से क्षुब्ध और दुखी है । खड़ी स्त्री, चढ़ती स्त्री, एक लड़की पढ़िए गीता, स्त्री, अकेली औरत, बड़ी हो रही लड़की, जैसी कविताएँ द्रष्टव्य हैं । आज के समाज में विभिन्न समस्याओं और यातनाओं से आक्रांत स्त्री के प्रति वे इसलिए बेहद चिंतित है कि वह अपनी दुरवस्था से बेखबर क्यों है? यानी स्त्री अपनी व्यथा का कारण और उसके लिए उत्तरदायी स्थितियों तथा व्यक्तियों की पहचान क्यों नहीं करती? यह है नारी के प्रति सहाय की प्रगतिशील दृष्टि जहाँ वे उनकी विवश स्थितियों के चित्रण मात्र में सर्जक की दायित्वमुक्ति नहीं देखते, बल्कि उसके कारणों की तह तक जाते हैं-

ग्रीष्म फिर आ गया
फिर हरे पत्तों के बीच
खड़ी है वह / होंठ नम
और भरा-भरा सा चेहरा लिए
बदली की रोशनी सी नीचे को देखती
निरखता रह / उसे कवि / न कह
न हँस / न रो / कि वह
अपनी व्यथा इस वर्ष भी नहीं जानती (**आत्महत्या के विरुद्ध**- 55) ।

सहाय ने नारी के अस्तित्व-संकट और उसकी स्थितियों पर बहुत लिखा है । जैसे आज हत्या आम बात है, वैसे ही बलात्कार जैसी घटनाओं की बहुलता है । पुरूष प्रधान समाज में न तो स्त्री का हक सुरक्षित है, न उसका जिस्म । न वह आर्थिक रूप से सुरक्षित है, न उसके शरीर पर उसका हक है । नारी की दयनीय स्थिति उसके साथ बलात्कार जैसी घटना में प्रकट होती है जिसका अत्यंत मार्मिक चित्रण करते हैं जिसमें उसके रोने से, उसके बचपन से जवानी तक की सारी व्यथा-कथा मूर्त हो जाती है-

कई कोठरियाँ थीं कतार में
उनमें से किसी में एक औरत ले जायी गई

थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा (**हँसो हँसो जल्दी हँसो**)

सहाय ने भारतीय समाज में नारी की विडंबनात्मक स्थिति को इस रूप में चित्रित किया है जिसमें नारी की सीमा रसोईघर तथा प्रजनन तक सीमित है । उसकी कारुणिक स्थिति को व्यंग्य-विनोद की शैली में प्रस्तुत किया है-

पढ़िए गीता / बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घरबार बसाइए ।

23.2.10 प्रकृति-चित्रण

प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य का ऐसा स्रोत है, जिससे हर रचनाकार प्रभावित होता है । प्रकृति प्रति दृष्टिकोण हर युग में बदलते रहे हैं । आधुनिक हिन्दी कविता में छायावाद में प्रकृति के प्रति एक काल्पनिक और रोमैंटिक दृष्टिकोण अपनाया गया तथा प्रकृति कवियों के पलायन का आश्रय-स्थल तक बन गई । नई कविता प्रकृति के प्रति भिन्न दृष्टिकोण लेकर आई । परिवर्तित यथार्थ ने मानव और प्रकृति के बीच के संबंधों में भी परिवर्तन ला दिया । रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार- "नई कविता का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण तटस्थ रागात्मकता का है, जिसके अनुसार मानवीय जीवन-क्रम में प्रकृति का अनिवार्य महत्व है तो, पर स्वयं मनुष्य के बराबर नहीं' (हिन्दी नवलेखन-पृ. 8) । रघुवीर सहाय का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण रोमैंटिक न होकर यथार्थपरक है । उन्होंने प्रकृति पर ढेर सारी कविताएँ लिखी है किन्तु उनमें अविश्वसनीयता और कल्पना का अभाव है । उनमें कहीं भी अलंकरण नहीं, बल्कि प्रकृति मानव जीवन की समस्याओं के बीच प्रस्तुत है और मानव के साथ तटस्थ आत्मीयता दिखाती है । वसंत, वसंत आया, वसंत की हवाएँ, पानी, दौर, स्वीकार, चाँद की आदतें आदि प्रकृतिपरक कविताएँ है । एक उदाहरण देखिए-

ऊँचे तरुवर से गिरे
बड़े-बडे पियराये पत्ते
कोई छह बजे सुबह जैसे गरम पानी से नहाई हो-
खिली हुई हवा आई, फिरकी सी आई, चली गई ।
ऐसे फुटपाथ पर चलते-चलते-चलते
कल मैंने जाना कि वसंत आया

(वसंत आया-प्रतिनिधि कविताएँ-पृ. 24) ।

प्रकृति में आए परिवर्तन को देख कवि को वसंतागमन का एहसास होता है । कवि वसंत को देख भावविभोर या आत्मविगलित नहीं होता अपितु उसके आगमन को सामान्य मानकर तटस्थता बरतता है क्योंकि उनके लिए जीवन का यथार्थ महत्त्वपूर्ण है । अत:

उनका प्रकृति के प्रति एक गैररोमानी दृष्टिकोण है । बदले हुए परिवेश में बदले हुए सौन्र्यबोध का चित्रण है ।

आज विश्व की संस्कृति अपने ऊँचे मूल्यों से च्युत हो गयी है । यह अन्याय, फरेब और असत्य को पोषित करने वाली संस्कृति है । कवि विज्ञान के ध्वंसक चरित्र पर भी टिप्पणी करता है । समाजवादी देश प्रकृति की रक्षा करना चाहता है, साम्राज्यवादी देश उसका ध्वंस । इसमें दो शासन व्यवस्था के चिंतन का अंतर है । सहाय विज्ञान के आतंककारी चरित्र से आतंकित हैं । वे प्रकृति की रक्षा करना चाहते हैं जिसमें उनका प्रकृति प्रेम प्रकट होता है-

प्रकृति कठोर है आदमी हिंसक है
यही है यूरोप का रहस्य
सभ्यता में जो पर गोश्त ही गोश्त है
और छुरी काँटों में नम्रता ।

23.3.11 प्रेम-चित्रण

रघुवीर सहाय प्रेम को. मध्यवर्गीय विकृत मानसिकता से ऊपर उठाते हैं । उनके प्रेम में प्रियपात्र के प्रति उलाहना या शिकया का भाव नहीं है, जैसाकि प्रेम में प्राय: होता है और रीतिकालीन कविता तो इन प्रेम-शिक्यों से भरी हुई है । छायावाद में अशरीरी प्रेम है । पूँजीवाद में प्रेमी प्रेमिका से अनेक शिकायत करता तथा स्वयं को पाक-साफ मानकर सारा दोष प्रेमिका पर डाल देता है । सहाय एक कविता में माधवी को संबोधित करते हुए लिखते हैं -

माधवी,
या और भी जो कुछ तुम्हारा नाम हो
तुम एक ही दुख दे सकी थी
फिर भला ये और सब किसने दिये हैं
जो मुझे हैं और दुख, वे तुम्हें भी तो हैं ।

यहाँ कवि ने प्रेमिका पर एक ही दुख देने का आरोप लगाया है, किंतु जहाँ दुखों का अंबार है वह समाज और व्यवस्था ने दिया है । माधवी द्वारा दिए गए एक दुख को कवि गंभीरता से नहीं लेता तथा स्वयं को हताशा, निराशा की सीमा तक नहीं ले जाता, बल्कि समाज द्वारा दिए गए बड़े दुखों के सामने उसे गौण मानता है । इतना ही नहीं, वह अपने दुखों को प्रेमिका के दुख से जोड़कर उसके प्रति सहानुभूति दिखाता है (जो मुझे हैं और दुख, वे तुम्हें भी तो हैं) । सहाय की प्रेमदृष्टि पूँजीवादी व्यवस्था के उस प्रेम से नितान्त अलग है जिसमें प्रेमी सारा दोष प्रेमिका के मत्थे मढ़ देता है और उसकी व्यक्तिगत, सामाजिक विवशता नहीं समझता । सहाय के यहाँ प्रेम और प्रेमिका के प्रति एक मानवीय और सहानुभूतिमूलक दृष्टि है । वहाँ प्रेम में आने वाली बाधा का कारण प्रेमिका नहीं, बल्कि व्यवस्था है । अत: सहाय प्रेम-प्रक्रिया में बाधा के कारण तक जाते हैं और प्रेमिका द्वारा दिए गए दुख को जस्टीफाई करते हैं । यह एक प्रगतिशील कवि

का प्रेम है जहाँ अश्रुविगलित भावुकता और वासना का अभाव है तथा प्रेमिका के प्रति एक सहानुभूति और समानुभूतिमूलक सोच है ।

23.2.12 बदलाव की आकांक्षा

रघुवीर सहाय यथास्थितिवाद के समर्थक नहीं, व्यवस्था में परिवर्तन के हिमायती हैं, किन्तु यह परिवर्तन गांधी के हृदय- परिवर्तन का पर्याय नहीं है । वे आदर्शवादी और सुधारवादी परिवर्तन के समर्थक नहीं है । यह संघर्ष का दुर्गम रास्ता है । वे लिखते हैं- "न्याय और बराबरी के लिए हम जिस समाज की कल्पना करते हैं, उनमें मानवी रिश्तों की क्या शक्ल होगी, यह उस समाज के संघर्ष के दौरान ही तय होना चाहिए । ये संबंध हृदय परिवर्तन से नहीं बनेंगे, संघर्ष के नतीजों की बार-बार जाँच से बनेंगे' (लोग भूल गये हैं- भूमिका) । 'आत्महत्या के विरुद्ध' की भूमिका में वे लिखते है "सबसे मुश्किल और एक ही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं में लड़ूँ - किसी में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर - मगर अपने को अंत में मरने सिर्फ अपने ही मोर्चे पर दूँ- अपने भाषा के, शिल्प के और उस दो-तरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर जिसे साहित्य कहते हैं ।' सहाय एक रचनाकार के पक्ष को समझते हैं । शब्द, भाषा और शिल्प ही उनका मोची हो सकता है, इसलिए अंतत: वे इसी मोर्चे पर डटे रहने का संकल्प लेते हैं । रचनाकार शब्द के द्वारा जनता की चेतना को बदलता है, क्योंकि मानसिक बदलाव के बाद ही सामाजिक बदलाव संभव है । अत: सहाय व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव के समर्थक हैं ।

23.3 काव्यशिल्प

कविता का भावपक्ष और शिल्पपक्ष काव्य से परस्पर संबद्ध होते हैं । शिल्प कविता में अलग से चिपकाये नहीं जाते, किन्तु हमारी समीक्षा-दृष्टि उसका अलग रूप में विवेचन-विश्लेषण करती है, उसके अंगों-उपांगों का पृथक अध्ययन करती है जो एक वस्तुपरक दृष्टि है । चूंकि कविता अनुभूतियों का संश्लेषण तथा आलोचना उसका विश्लेषण है, इसलिए कविता के विशेष अध्ययन के लिए उसके अंगों का अलग-अलग अध्ययन अनिवार्य हो जाता है ताकि हम जान सकें कि किन तत्वों से वह बनी है ।काव्यशिल्प के बारे में सहाय का कथन है कि "मेरे पास एक तरह की एक और एक अतिरिक्त चेतना है, एक अतिरिक्त व्यथा है जिसे कि मैं हर चीज को उलट-पुलटकर नये ढंग से दुरास्त करने और नया बना देने की इच्छा रखता हूँ । वही तो शिल्प है । "यानी अनुभूतियों को कविता में इस तरह नियोजित करना कि वे अलग- अलग होकर भी संवेदना के स्तर पर आकर एक इकाई बन जाये और यही शिल्प है । सहाय शिल्प के प्रति सजगता को महत्त्व नहीं देते और कहते हैं- ' अपनी तरफ से हमको सचेत रहना चाहिए कि हम शिल्प के बहकावे में तो नहीं आ रहे है' (रघुवीर सहाय का कविकर्म- 150, सुरेश शर्मा) । स्पष्ट है कि सहाय कविता में शिल्प को उतना ही महत्व देते हैं जितना कि वह कविता की अतर्वस्तु को वहन करने के लिए आवश्यक है । उनके कथन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि भावपक्ष ही कविता के शिल्प का निर्धारक तत्व है तथा भावपक्ष अपना शिल्प स्वयं खोज लेता है ।

23.3.1 काव्यरूप

आधुनिक युग में प्रबंधात्मक चेतना का ह्रास हुआ है जिससे कवि की संवेदना प्रबंधों में न बँधकर लंबी कविताओं तथा खंड-खंड अनुभूतियों को व्यक्त करने वाली लघु कलेवर की कविताओं में व्यक्त हुई है । काव्यरूप का यह नया विकास युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में हुआ है । सामंती युग में महाकाव्य लिखे गए, पूँजीवादी युग में उपन्यास महाकाव्य का स्थानापन्न बना, किंतु क्रमश: गहराते युगीन अंतर्विरोध के कारण क्लासिक और प्रबंधात्मक चेतना का ह्रास हुआ । रघुवीर सहाय ने कोई प्रबंध काव्य नहीं लिखा, कुछ लंबी कविताएँ लिखीं- जैसे "आत्महत्या के विराद्ध', चेहरा किंतु यह भी उतनी लंबी नहीं, जितनी निराला की राम की शक्तिपूजा या सरोजस्मृति, या पंत की परिवर्तन या नागार्जुन की हरिजनगाथा कविता । उन्होंने छोटी-छोटी कविताएँ ही लिखी हैं, जिनमें खंडित अनुभूतियों को बड़ी तीव्रता के साथ चित्रित किया गया है । कुछ कविताएँ तो अत्यंत छोटी हैं जैसे- आओ जल भरें बरतन में, अगर कहीं मैं तोता होता, यही मैं हूँ, पानी के संस्मरण, बौर, प्रभु की दया आदि । 'वसंत' तो सिर्फ तीन पंक्तियों की कविता है ।

23.3.2 काव्यभाषा

भाषा, काव्यशिल्प का पहला और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण है । भाषा ही अमूर्त भाव और विचार को मूर्त रूप प्रदान करती है, इसलिए भाषा के बिना कोई भी साहित्यिक रचना अपना स्वरूप नहीं ग्रहण कर सकती । दण्डी ने कहा है कि 'यदि भाषा रूपी ज्योति नहीं होती तो सारा संसार अंधकारमय होता ।' वास्तव में भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हमारा अंतर्जगत इस नाना रूपात्मक संसार के संपर्क में आता है । सहाय का कथन है- "मैं काव्यभाषा को न तो काव्यशास्त्री की हैसियत से देख सकता हूँ और न आलोचक की तरह से । यह तो नहीं कहूँगा कि सब कुछ मैं सहज भाव से कर देता हूँ और मुझे पता नहीं चलता । ऐसा तो नहीं है । मैं जानता हूँ कि मैं क्या करने की कोशिश कर रहा हूँ । अपने वैचारिक आधार को जानता हूँ तो कविता करने के कारण जानता हूँ यानी कविता करते हुए मैं अपने वैचारिक आधार को पहचानता चलता हूँ जबकि यह भी सच है कि एक वैचारिक आधार पहले से रहता है । उसी तरह से यहाँ भी आवाजों की शक्ल में, बिंबों की शक्ल में शब्दों के अर्थो की शक्ल में शिल्प का एक नमूना-कुल मिलाकर पूरी रचना के रख-रखाव, तौर तरीके, रूझान तथा शक्ल, सबे संदर्भ में एक हल्का सा कभी-कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट नमूना- रचना करने से पहले रहता है ।'रघुवीर सहाय का कविकर्म-पृ 149 ।

जाहिर है कि सहाय काव्यशास्त्री या आलोचक की तरह काव्यभाषा की चीर-फाड़ नही करते, और न ही भाषा-प्रयोग और शिल्प में सजगता बरतते है 1 रघुवीर सहाय जनसंवेदना को जनभाषा में ढालते है । इन्होंने समकालीन हिन्दी कविता के अभिजात संस्कार और बनावटीपन के खिलाफ एक साहित्यिक जंग छेड़ी तथा सहज संप्रेष्य भाषा का प्रयोग किया । संवेदना और शिल्प की जटिलता तथा बारीकियों की जगह स्पष्टता

और सहजता की आग्रही उनकी भाषा जनतांत्रिक माहौल पैदा करती है । सहाय ने कविता की भाषा को नितांत पारदर्शी बनाया है, जिसमें कहीं भी उलझाव या शब्दाडंबर नहीं है । एक पत्रकार की हैसियत से उन्होंने भाषा को कृत्रिमता से दूर रखकर उसे सहज-संप्रेषणीय बनाया है । सुरेश शर्मा का कथन है- ' 'सहाय जी की काव्यभाषा नितांत निरावरण और दो टूक है । उसमें वक्तव्य है, विवरण है, संक्षेप है । उसमें प्रतीकों और बिम्बों का घटाटोप उलझन नहीं है । खबर में घटना और पाठक के बीच भाषा जितनी पारदर्शी होगी, खबर की संप्रेषणीयता उतनी ही बढ़ेगी । सहाय जी अपनी कविताओं में इसी पारदर्शी भाषा का प्रयोग करते हैं (प्रतिनिधि कविताएं' 6 - 7) ।

रघुवीर सहाय कविता के परंपरागत सौन्दर्यशास्त्र से अलग हटकर एक नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ते हैं । यह नयापन उनकी पत्रकारिता के कारण आई । सुरेश शर्मा के अनुसार- "सहायजी का सौंदर्यशास्त्र खबर का सौन्दर्यशास्त्र है । इसलिए उनकी भाषा खबर की भाषा है और अधिकांश कविताओं की विषयवस्तु खबरधर्मी है' (रघुवीर सहाय का कविकर्म- 05) । उनके यहाँ कभी कविता की भाषा पर पत्रकारिता की भाषा और कभी पत्रकारिता पर कविता की भाषा हावी होती दिखाई देती है । उन्होंने कविता को ऐसी भाषा से संयुक्त किया जो जीवंत तो है ही, रचनात्मक क्षमताओं से पूर्ण भी है । यह उनकी अपनी ईजाद की हुई भाषा है, जो पत्रकारिता की चपलता और कविता के काव्यत्व से सँवरकर निर्मित हुई है ।

रघुवीर सहाय अनेक देशी और ग्राम्य शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनमें स्थानीयता अपने गहरे रंग में उभरती है । रिरियाता, लिसलिसात, लहरियाता, पिंपियाता, नंगेबूचे, टोहो, तेलौंस, ललछौंह, मुस्टंडा, पपड़ियाई, भुरभुराई, फफुंदियाई, हुंहुंआता, हाहाहूती, दमदमाता आदि। रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है- "इस दृष्टि से रघुवीर सहाय आदर्श कहे जा सकते हैं, जहाँ तद्भवता और देशीपन न किसी प्रतिक्रिया में है और न किसी आदेश में, वह सिर्फ है और उसका होना अपने में पर्याप्त है ' (नई कविताएँ : एक साक्ष्य- 34) ये देशी शब्द अपने सहज और अकृत्रिम रूप में प्रयुक्त हैं, फैशन के रूप में नहीं ।

ऊपर से सरल दिखने वाली रघुवीर सहाय की अनेक कविताएँ अत्यंत कठिन हैं । परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार- " आज के भयावह यथार्थ का चित्रण करते हुए उस पर पर्दा न डालते हों, अमूर्त का सहारा न लेते हों, बयान में अधिक सहज दिखाई देते हों, पर उन्हें सरल कवि मानकर चलना कठिन होगा । उनकी सरलता की तहें हैं, उसमें अर्थमयी वक्रता भी छिपी है' (समकालीन कविता का यथार्थ- 11) । नंदकिशोर नवल का कथन है कि "अपनी तमाम कलात्मक वक्रताओं के साथ नागार्जुन की कविता स्थूल है, जबकि रघुवीर सहाय की कविता अपनी तमाम सरलताओं के साथ दुरुह । यह हिन्दी कविता को उनकी देन है कि उसमें उन्होंने सरलता के एक नये स्तर का उद्घाटन किया है' (इंद्रप्रस्थ भारती- अप्रैल-जून, 1991/324) । किन्तु नागार्जुन की कविता को स्थूल तथा सहाय की कुछ कविताओं के आधार पर उनके समग्र काव्य को दुरूह कहना उन दोनों कवियों द्वारा सही मूल्यांकन नहीं है ।

सहाय छायावाद की भाषादृष्टि का विरोध करते हैं जिसमें शब्द के कई अर्थ होते हैं । वे कविता में ऐसे शब्द प्रयोग के हिमायती हैं जिनके आर-पार सिर्फ एक ही अर्थ दिखायी

देता हो, जिससे किसी प्रकार का अर्थभ्रम या क्लिष्टता का बोध न हो तथा वह अर्थ अपने आप में स्वतंत्र हो । वे लिखते हैं-

शब्द, अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाय वहाँ होता हुआ
तुम तक पहुँचे
चीजों के आर-पार दो अर्थ मिलकर सिर्फ एक
स्वच्छंद अर्थ दे **(नया शब्द-आत्महत्या के विरुद्ध- 40) ।**

तथा वे एकार्थी शब्द का इसलिए प्रयोग करना चाहते हैं कि सत्ता उसका दुरुपयोग नहीं कर सके-

पुलिस के दिमाग में वह रहस्य रहने दो
वे मेरे शब्दों की ताक में बैठे हैं
जहाँ सुना नहीं उनका गलत अर्थ लिया और मुझे मारा
इसलिए कहूँगा मैं / मगर मुझे पाने दो
पहले ऐसी बोली/ जिसके दो अर्थ न हों **-प्र. क., 73 - 74**

प्रभाकर माचवे ने सहाय की तीन विशेषताएँ मानी है- 1. भाषा में बोलचाल का लचीलापन 2. गद्य जैसी रवानगी और ऊपर से दिखी देने वाली अति सरलता या सपाटबयानी और 3. कोई न कोई 'ट्विस्ट' देकर पाठक को शौक करने की नाटकीय इच्छा । दो टूक कहने की शैली रघुवीर सहाय को धूमिल जैसे निर्भीक कवि से जोड़ती है। सहाय कलात्मक, रसात्मक और काव्यात्मक भाषा की जगह बिल्कुल स्पष्ट और साफ-सुथरी भाषा का प्रयोग करते है, जिसके अंदर से भाव और विचार सीधे झाँकते दिखायी देते है । वे भाषा के चमत्कार द्वारा पाठक को चमत्कृत करने की कला से परहेज करते हुए सीधा प्रभाव डालने वाली भाषा का प्रयोग करते है । उन्होंने चिपचिपाहट-युक्त कलात्मक और बनावटी भाषा का अतिक्रमण करके युग की माँग के अनुसार वस्तुनिठ भाषा का प्रयोग किया ।

सहाय ने नये परिवेश के अनुकूल नई भाषा की खोज की- लहरियाता, पपड़ियाई, चिपचिपाई, फफुंदियाई, बजबजाई आदि शब्द द्रष्टव्य हैं, जो बदले हुए परिवेश को बड़ी तीव्रता से उभारते है । रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार "मामूली शब्द और मामूली अनुभव से एक नई शक्ति सक्रिय कर देना नई कविता की पहचान बनी है तो इसका बड़ा श्रेय रघुवीर सहाय को दिया जा सकता है ।' रघुवीर सहाय की भाषा क्रांति की भाषा है । उनकी आरंभिक भाषा की सहजता और दो टूक कहने की प्रवृत्ति को लक्ष्यकर ही अज्ञेय ने उनकी काव्यभाषा को 'शिखर के बदले शहर के चौक की ओर उन्मुख' कहा है ।

अनेक जगह सहाय की कविता इतनी गद्यात्मक हो जाती है कि वह कविता से बहुत दूर चली जाती है । वहाँ कविता वकतव्यधर्मी और साफ सपाट बन जाती है । यहाँ पंक्तियों की पुनरावृत्ति तथा किस्सागोई की प्रवृत्ति ने काव्यत्व को समाप्त कर कविता को एकदम सूचनात्मक बना दिया है -

राम ने कहा था
राम ने कहा था

राम ने कहा था.....
कि मोहन एक अच्छा लड़का है
वह रोज सबेरे उठता है
पैदल पढ़ने जाता है
विद्या से उसे बड़ा प्रेम है **(आत्महत्या के विरुद्ध- 66)** ।

चूँकि कलात्मक भाषा यथार्थ को सहज ढँग से उभार नहीं पाती और सहाय चाहते है कि आम जिंदगी और उसकी समस्याओं से हम सीधे रुबरु हों, इसलिए वे आमफहम भाषा का प्रयोग करते हैं । काव्यभाषा को वे साज-सज्जा से दूर रखते हैं । उनकी भाषा भले ही कलाभिरुचि वाले पाठक को सीधी और सपाट लगे, सहाय को इसकी परवाह नहीं, क्योंकि उनका उद्देश्य यथार्थ को आम जनता तक पहुँचाना है । सहाय भाषा की सर्जनात्मकता को उसकी पारदर्शिता में देखते हैं, न कि उसे संस्कृतनिष्ठ बनाकर कलात्मक बनाने में । कलात्मक भाषा से रचना और पाठक के बीच संप्रेषण का गैप बढ़ जाता है । अत: जो लेखक सहाय की भाषा को 'तहस-नहस', 'खंडित', और 'गद्यमय' कहते हँ उन्हें सहाय की भाषा-दृष्टि को जानना जरुरी है । गद्यमयता तो समकालीन हिन्दी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है बावजूद इसके, सहाय की बहुत सी कविताएँ लयात्मक हैं जिन्हें रेखांकित किया जाना चाहिए ।

इस प्रकार रघुवीर सहाय ने अन्य जनवादी कवियों की तरह भाषा के अभिजात संस्कार को तोड़कर उसे जनसुलभ बनाया जो उनका प्रशंसनीय योगदान है । उन्होंने समय की विसंगति और क्रूरता को रचना में ढालने के लिए एकार्थी और पारदर्शी भाषा की खोज की राजनीतिक जगत की भयावहता और विसंगति को पत्रकार की हैसियत से शब्दबद्ध किया। शब्द और साहित्य के मोर्चे से अन्याय का प्रतिरोध किया । कहीं-कहीं जो प्रतीकात्मकता और सहज अन्योक्ति पद्धति मिलती है उससे कवि की भाषा- क्षमता का प्रमाण मिलता है । शब्द की सत्ता में सहाय की गहरी आस्था रही है ।

23.3.3 काव्य बिम्ब

बिम्ब कविता के शिल्प पक्ष का एक महत्वपूर्ण उपकरण है । वैसे, बिम्ब हर युग की कविता में प्रयुक्त होते रहे हैं, किन्तु इसकी चर्चा पश्चिम में बिम्बवादी आन्दोलन के उदय के साथ होने लगी । बिम्ब भावों को मूर्त्त करने का एक माध्यम है । बिम्ब का संबंध रूपविधान से है । जैसे विभाव के द्वारा भाव व्यक्त होते है उसी तरह बिम्ब के द्वारा अमूर्त्त भाव मूर्त्त होते हैं । शुक्लजी के अनुसार कविता में अर्थग्रहण से काम नहीं चलता, वहाँ बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक मानसछवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है ।' चित्रात्मकता बिम्ब की विशेषता होती है किन्तु प्रत्येक चित्र बिम्ब नहीं होता। वे ही चित्र बिम्ब की संज्ञा धारण करते हैं जो इंद्रिय-संवेदन से संयुक्त होते हैं । इस विशेषता के चलते बिम्ब इंद्रियग्राह्य बन जाते हैं जिससे काव्य के आस्वाद में सुविधा होती है । इंद्रियों के आधार पर बिम्ब के पाँच भेद होते है जिनकी अभिव्यक्ति सहाय की कविता में द्रष्टव्य है-

(1) दृश्य बिम्ब (चाक्षुष बिम्ब) - दृश्य बिम्ब का सम्बन्ध हमारी दृष्टि-संवेदना से है । जब कवि किसी दृश्य का इस रूप में चित्रण करता है कि वह हमारे चक्षु के सामने मूर्त्त हो जाये, वहाँ दृश्य बिम्ब होता है । पत्रकारिता जगत से जुड़े होने के कारण रघुवीर सहाय की कविता में दृश्य बिम्ब का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । इसलिए नई कविता के कवियों में उनकी कविता सर्वाधिक बिम्बात्मक है । किन्तु ये बिम्ब कहीं भी आरोपित नहीं है । वे सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं । कुछ उदाहरण-

1. बंदूकें मकानों की तरफ मकानों में लोग
   सड़क पर एक एंबुलेंस एक लाश गाड़ी
   और एक पुलिस वैन (प्र.क. - 157) ।

(2) श्रवण बिम्ब - श्रवण बिम्ब का संबंध हमारी श्रवणेन्द्रिय से होता है । जब कविता में संगीत या कर्णकटु, कर्णमधु किसी भी ध्वनि का चित्रण हो, जिससे एक ध्वनि- चित्र बनता है तथा वह चित्र हमारे श्रवणेन्द्रियों से संबद्ध होकर हमारे मन में एक ध्वन्यात्मक अनुभूति पैदा करे वहाँ श्रवण बिम्ब होता है । इसे नाद-संवेद्य बिंब भी कहते हैं । कुछ उदाहरण देखिए-

1. ठेलों की खड़खड़ाहट दूधवालों के खनकते बर्तन
2. हाहाकार / उठता है घोषकर ।
3. तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
   जय जय कौन कराता है (प्र .क. - 33) ।

(3) घ्राण बिम्ब- घ्राण बिम्ब का संबंध मनुष्य की घाणेन्द्रिय से होता है । जब कवि कविता में हाथ या दुर्गन्ध का चित्रण करता है तथा उस गंध की हमें कविता के माध्यम से अनुभूति होती है वहाँ गंध बिम्ब होता है। कुछ उदाहरण-

1. कसे हुए गुलाब की गमक और गर्मियाँ आ रही हैं ।
2. गंध भीड़ से नहीं, स्त्री की पीठ से आती है ।
3. हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष (आ.ह.के.वि 18) ।
4. नीम में बौर आया / इसकी एक सहज गंध होती हो/
   मन को खोल देती है गंध वह (प्र.क.-33) ।
5. आती उड़ती गंध बोझ से थकती हुई सुवास ।

(4) आस्वाद्य बिम्ब- आस्वाद्य बिम्ब का संबंध हमारी जिह्वा या रसना से होता है । जब कविता में विभिन्न प्रकार के भोजन या किसी भी स्वाद का चित्रण होता है, जिसकी अनुभूति हमें कविता के माध्यम से होती है, वहाँ आस्वाद्य बिम्ब होता है । एक उदाहरण देखिए-

1. दोनों अपने अपने हिस्से के पूए लै
   जैसे थे जहाँ वहाँ पर बैठे जाते हैं (प्र. क. - 117) ।

(5) स्पर्श बिम्ब सबसे स्थूल होता है जिसका संबंध हमारी त्वचा से होता है । जब कविता में किसी प्रकार के स्पर्श, ठंडा, गर्म या पिन चुभोने का वर्णन हो जिसकी हमें कविता के माध्यम से अनुभूति हो, वहाँ स्पर्श बिम्ब होता है । जैसे-

1. महासंघ का मोटा अध्यक्ष

धरा हुआ गद्दी पर खुजलाता है अपस्थ ।

2. यह क्या है जो इस जूते में गड़ता है
   यह कील कहाँ से रोज निकल आती है ।
3. छुओ / मेरे बच्चे का मुँह ।

इनके अलावा वस्तु या व्यक्ति की स्थिरता या गत्यात्मकता के आधार पर स्थिर और गत्यात्मक बिम्बों की चर्चा की जाती है । स्थिर बिंब में वस्तु या व्यक्ति स्थिर होता है, उसमें कोई गति नहीं होती, किन्तु दृश्यात्मकता होती है । जैसे-

1. जब सीमा के इस पार पड़ी थीं लाशें
   जब सीमा के उस पार पड़ी थी लाशें
   सिकुड़ी ठिठरी नंगी अनजानी लाशें ।
2. खेत में सजी हुई क्यारियाँ थीं
   उनमें पानी भरा था ।

इसके विपरीत गत्यात्मक बिंब में वस्तु या व्यक्ति में गति या वेग होता है, जैसे

1. घोड़ा बिना सवार के
   गली में दौड़ता जाता है
   मुड़कर देखता है मुझे- (प्र.क. - 154) ।
2. और तिनका लेने फुर्र से उड़ जाती है चिड़िया ।

23.3.4 काव्य प्रतीक

बिंब की तरह प्रतीक भी कविता का एक शिल्पगत उपकरण है । किसी अमूर्त्त भाव या विचार की जगह उसका प्रतिनिधि स्थूल संकेत ही प्रतीक है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में- "जिस प्रकार किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर उसके स्वरूप और विभूति की भावना मन में आती है, उसी प्रकार काव्य में कुछ वस्तुओं द्वारा भावों या मनोविकारों को जाग्रत करना प्रतीक है । 'प्रतीक के अनेक प्रकार हैं जैसे-प्राकृतिक प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक, देशगत प्रतीक, सार्वभौम प्रतीक, सांप्रदायिक प्रतीक, राजनीतिक प्रतीक आदि । ध्यातव्य है कि सहाय की कविता में- प्रतीक बहुत कम आए हैं और जहाँ भी आए हैं वहाँ वे सायास प्रयुक्त नहीं हुए हैं । वे सहज रूप से आए हैं इसका कारण यह है कि सहाय कविता को दुराह बनाने के पक्ष में नहीं हैं, जबकि प्रतीक से कविता में दुर्बोधता आती है, वस्तुगत यथार्थ सहज रूप में संप्रेषित नहीं होता इसलिए वे प्रतीक-प्रयोग में उदासीन है । सहाय की कविता में प्रयुक्त प्रतीक इस प्रकार हैं-

'**पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ** -कविता में सहाय ने मरी हुई चूड़ियाँ का प्रयोग किया है, जो एक प्रतीक है । बीस बरस का नरेन, जो आलाद भारत में जन्मा-पला और अपने पिता जो मिस्तरी है, के साथ काम करता है । उसके पास एक फटा कोट, एक हिलती चौकी, एक लालटेन है, जिसकी मुद्धिम रोशनी में वह पेंच को कसने की विफल कोशिश करता है। दोनों जानते है कि पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ / नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन है । मरे हुए यानी अंदर से घिसे हुए पेंच कितना भी कसे जाने पर कारगर नहीं होते । मशीन के पुर्जे तभी एक दूसरे से जुड़कर काम कर सकते हैं जब

उनकी पेंच सही हो । प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि आजाद भारत का जो लोकतांत्रिक ढाँचा खड़ा हुआ, उसकी सारी पैंचें ढीली थीं, उनमें आपसी ताल-मेल का अभाव था/ है । इसलिए लोकतांत्रिक मशीनरी सही ढंग से काम नहीं कर पायी ।

मुसद्दीलाल- आजाद भारत में पनपी नौकरशाही का प्रतीक है । नेहरु युग में मुसद्दीलाल जैसे नौकरशाह पैदा हुए जिन्होंने भारत को लोकतंत्र के वास्तविक साँचे में ढलने नहीं दिया । पेंच में चूड़ियाँ नहीं बनने का कारण नौकरशाही है । अर्थात् लोकतंत्र की सफलता के लिए प्रगति, धर्मनिरपेक्षता, समतामूलक समाज तीनों घोषणाएँ नेहरु युग में हुई किन्तु मुसद्दीलाल जैसे नौकरशाहों ने उन्हें समाप्त कर डाला । नरेन युवा पीढ़ी तथा उसका बाप पुरानी पीढ़ी का प्रतीक है ।

झोले में बंद-दायरे में बँधी विचारधारा, ऐसी विचारधारा जिस पर शर्तें लादी गई हों ।

नयी मूर्ति- एक नयी विचारधारा, एक नयी छवि का प्रतीक है ।

23.3.5 काव्य अलंकार

अलंकार काव्य का एक शोभादायक तत्व है । भारतीय काव्यशास्त्र में शब्दालंकार, अर्थालंकार की बड़ी व्यापक चर्चा हुई है । आधुनिक युग में काव्यशिल्प के उपकरण कविता से क्रमश: निकलते गए और कवि की अनुभूति को सरल रूप में प्रकट करने की परिपाटी चल पड़ी । कविता में उपमा अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग होता रहा है तथा इसे अलंकारों की रानी कहा गया है, किंतु कवियों के सबसे प्रिय इस अलंकार के बारे में रघुवीर सहाय का कथन है- मैंने उपमा को "इसलिए छोड़ दिया कि वह मुझे बहकावे में डालती थी । जो चीजें कभी मेरे पास की नहीं हैं और शायद कभी मेरे काम की नहीं होंगी, उनमें से 'उपमा' 'एक है ।' उपमा के संदर्भ में एक और बात जानने की है कि उपमा हमेशा सामाजिक चेतना के दो स्तरों को एक दूसरे से तुल्य कर देती है, इसलिए यह बहुत खतरनाक चीज है और बहुत भटका सकती है । जिन दो चीजों की आप तुलना कर रहे हैं, हो सकता है कि वे दो बिल्कुल अलग- अलग दुनया की चीजें हों । अगर उन दोनों में एक साम्य कहीं आपको दिखता है तो हो सकता है कि वह साम्य दिशाहीन हो । अत: वह आपको विपरीत दिशा में भी ले जा सकता है ।' (सुरेश शर्मा के साथ लिए गए इंटरव्यू से, रघुवीर सहाय का कविकर्म- 50 - 51) । अत: स्पष्ट है कि अलंकारों के प्रति सहाय में कोई दिलचस्पी नहीं हे । इसके बावजूद उनमें कहीं- कहीं उपमा अलंकार सहज रूप से आए हैं, जैसे- पपड़ियाई-सी, बजबजाई सी, चुरमुराई सी, आदि ।

23.3.6 काव्यशैली

सहाय ने कविता में अनेक शैलियों के प्रयोग किए हैं । 'तैरते होटल में मस्ती के आठ दिन' विज्ञापन शैली की कविता है । राष्ट्रीय प्रतिज्ञा, बाराबंकी में नारेबाजी की शैली है । काबुल-स्वप्न, गुलामस्वप्न में स्वप्न शैली का प्रयोग है । कथात्मक शैली की सहाय की अनेक कविताएँ हैं, जैसे- मरघट, रामदास, दयाशंकर, हिंसा आदि । आधुनिक युग में विसंगति बहुत अधिक मात्रा में बढ़ी है जिससे व्यंग्य शैली को विकसित होने का विशेष अवसर मिला है । सहाय की ढेर सारी कविताएँ इस व्यंग्य शैली में उपलब्ध हैं । हिन्दी

को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के बाद अधिकारी ने हिन्दी को अपने जीवन यापन तथा सुख-सुविधा की भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जिस पर व्यंग्य करते हुए सहाय ने लिखा है-

हमारी हिन्दी दुहाजू की नई बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली ।
खोखली घोषणाओं और भाषण की शैली का एक दृष्टांत-
जनता ने नहीं किया है / हमने बहुत किया है
हम फिर से बहुत करेंगे / हमने बहुत किया है
पर अब हम नहीं करेंगे ।
नारेबाजी की शैव का उदाहरण-
पानी पानी / बच्चा बच्चा / हिन्दुस्तानी /
मांग रहा है /पानी पानी ।

23.3.7 लय और छन्द

नई कविता के आचार्यो ने अर्थ की लय की स्थापना की थी, किन्तु वास्तव में लय तो शब्द में होती है । नई कविता में मात्रिक और वर्णिक छंदों को नकारा गया तथा मुक्त, अतुकांत छंदों को प्रश्रय दिया गया । नये कवियों का कथन कि ' 'नये काव्य के लिए एक नई संगीतात्मकता, आधुनिक संवेदना का एक आवश्यक अंग है । ' सहाय शिल्प के अन्य उपकरणों की तरह छंद में कविता को सायास ढालने के पक्ष में नहीं है । उनका मानना है कि वकिता रचे जाने से पहले उसका छंद पहले से मन में मौजूद होता है- ' 'उदाहरण के लिए 'रामदास' कविता जब मैं लिख रहा था तब एक छंद मेरे मन में था । उसने लय को निर्धारित कर दिया था । ' सहाय की कविता में लय के प्रति आग्रह आरंभ से ही दिखता है । रामदास कविता में लय की रक्षा के लिए पंक्तियाँ काटी गई, जिसे सहाय ने स्वीकार किया है । अनेक कविताओं में कहीं तो पंक्ति के अंत में तुक है और कहीं आंतरिक लय है जिसे मुक्त छंद कहते है । कहीं उनकी कविताएँ छंदात्मक हैं और कहीं उनमें अनुप्रास की सफल योजना है । 'पहला पानी' कविता में मुक्तछंद है जिसमें आतीरक लय का निर्वाह है-

बिजली चमकी
सुरपति के इस लघु इंगित पर
लो यहाँ जामुनी बादल नभ में ठहर गये
अशीष दे रहे हाथों से ।

सुरेश शर्मा के अनुसार "स्पष्टत: रघुवीर सहाय कविता छंदविरोधी नहीं है । उनकी बाद की कविताओं में जहाँ परंपरित अर्थो में बिल्कुल छंद नहीं है, वहीं उनमें एक अनिवार्य लय की छंदात्मकता है ।" यद्यपि सहाय छंद के विशेषज्ञ थे जिसका प्रमाण यह है कि उन्होंने 'हा हा हा' तथा 'मैदान में' कविता की स्वरलिपि दी है, किन्तु कविता को जटिलता से दूर रखने के आग्रह ने उन्हें मुक्त छंद की ओर मोड़ा । रणजीत साहा के

अनुसार ' 'पंक्तियों को प्रभावी बनाने के लिए कभी गीत का न्यास लिया, कभी छंद का आश्रय लिया और कभी लोकधुन की शरण ली' ' (आजकल- 1991/74) ।

23.4 सारांश

इस प्रकार रघुवीर सहाय के काव्य का भावपक्ष और शिल्पपक्ष अत्यधिक समृद्ध है । उनके भावपक्ष में एक समानता है जो अनेक संदर्भो में प्रकट होती है । इस रुझान और स्वभाव का प्रश्न है कि उन्होंने पत्रकारिता को काव्यात्मक फलक दिया तथा कविता को पत्रकारिता जगत की ठोस और मार्मिक अनुभूतियों से समृद्ध किया । समाचार से कविता और कविता से समाचार में आवा-जाही उनकी अपनी विशेषता है । इसलिए उनके यहाँ कितनी ही सनसनीखेज घटनाओं का चित्रण है । वे मीडिया की विसंगतियों और उस पर सत्ता के वर्चस्व को दिखाते हँ । उन्होंने प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता की सीमाओं की ओर संकेत किया तथा अपनी मान्यताओं को स्थापित किया। वे व्यवस्था की जनविरोधी नीतियों को बेपर्द करते हैं और इस रूप में नागार्जुन, क्योर. मुक्तिबोध जैसे कवियों की श्रेणी में स्थान पाने के हकदार बनते है । उनकी सहानुभूति और समानुभूति उस वर्ग के साथ है, जो दलित है, जिनकी वाणी पर प्रतिबंध है तथा जिसकी आर्त्त-पुकार को व्यवस्था नहीं सुनती । इस प्रकार रघुवीर सहाय ने नयी कविता और समकालीन हिन्दी कविता को एक विस्तृत फलक और खुलापन दिया । भाषा के अभिजात संस्कार को तोड़कर उसे जनसुलभ बनाया जो उनका प्रशंसनीय योगदान है । उन्होंने समय की विसंगति और क्रूरता को रचना में ढाला ।

सहाय की कविताओं में परिवेश के प्रति विशेष सजगता उन कवियों के लिए एक चुनौती है जो परिवेश का महत्त्व न देकर व्यक्तिगत चिन्ताओं को महत्त्व देते है । उनका पीरवेशबोध समाजवादी और प्रगतिशील कवियों जैसा है । परिवेश का ही प्रभाव है कि उनकी कविताओं में राजनीतिक रंग गहरा है ।

रघुवीर सहाय यथार्थवादी कवि है जो यथार्थ के संपूर्ण रूप को स्वीकार करते और कविता में उसे रचते है । उनके यहाँ राजनीति से परहेज नहीं है । वे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को कविता में ढालते है । यथार्थ के प्रति समर्पण भाव उन्हें अन्य नये कवियों से अलग करता है । अपने लेखन के उत्तरार्द्ध में सहाय मानवीय चिंताओं और लोकतांत्रिक मूल्यों के बचाव के प्रति बेहद चिन्तित हो गये थे । यही कारण है कि प्रेम और प्रकृति से काव्यारंभ करने वाले सहाय लोकपीड़ा और लोकचिन्ता में अपने काव्य की परिणति करते हैं । उनकी कविता में जनजीवन का एक पूरा संसार मुखर हुआ है । इस संसार के साथ उनका संबंध कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है । पत्रकारिता जगत ने उनके संवेदना जगत को कहीं भी सीमित नहीं किया है । जनजीवन के सुख- दुख के इर्द-गिर्द ही उनकी कविता घूमती है ।

1947 के बाद भारत में आजादी की मोहभंगी मुद्राओं के साथ यथार्थ का जो जटिल रूप उभरा, उसका चित्रण करने में नई कविता विफल रही, क्योंकि वह समाजसापेक्ष लेखन से कटकर शिल्प के स्तर पर रूढ़िवाद की शिकार हुई और आंदोलनों के जंगल में भटक गई। सर्वेश्वर तथा रघुवीर सहाय जैसे जनवादी चेतनासंपन्न कवियों ने जटिल यथार्थ को

कविता में ढालने की जोखिम उठाई । इन्होंने नई कविता के शिल्पवादी रुझान की जगह अंतर्वस्तु पर विशेष बल दिया । 'कैसे कहा जाय' के स्थान पर 'क्या कहा जाय' का सिद्धांत अपनाया तथा अपने क्रांतिकारी विचारों को कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया । उन्होंने नेहरु युग की, लोकतांत्रिक-व्यवस्था लागू न कर पाने की विफलता को उभारा । उन्होंने जटिल यथार्थ के चित्रण में नई कविता को एकदम विफल घोषित किया । लक्ष्मीकांत वर्मा नई कविता के प्रतिमान निर्मित करने में लगे थे तथा उनकी कविताओं से उन प्रतिमान। का मेल नहीं था तब रघुवीर सहाय ने रसिकलाल ठाकुर नाम से टिप्पणी की- "नई कविता के प्रतिमानों के बारे में जहाँ इतनी अधिक चिंता प्रकट की जा रही है, वहाँ नई कविता के वे नमूने जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं, इस प्रतिमान-चर्चा से अद्भुत रूप से उदासीन दिखाई देते हैं ।'

रघुवीर सहाय कविता के उस परंपरागत ढाँचे को तोड़ते है, जिसमें रसबोध को प्रमुखता दी गई थी । वे कविता में भावुकता और रसवादी मान्यताओं की जगह वैचारिकता और संघर्ष को प्रश्रय देते हैं, जिससे आमजन की वैचारिक समझ पैनी बने और कविता तर्क करना सीख सके। उन्होंने हिन्दी कविता के बाहरी और भीतरी दोनों स्थितियों को बदला है । वे एक साथ कई मोर्चे पर भाव, भाषा, तथा सामंतवादी-पूँजीवादी ताकतों के खिलाफ लड़ते हैं । वे न तो भक्तिकाल की परोक्षसत्ता को स्वीकार करते है, न रीतिकाल के प्रशस्तिगान को, न भारतेंदू की राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति को और न छायावाद की अतिशय कल्पना और आत्मकेद्रितता को । उन्होंने न तो प्रगतिवाद की फार्मूलाबद्धता, न प्रयोगवाद की शिल्पधर्मिता और न नई कविता की जड़ता, क्षणवाद और कुंठा को लिया, बल्कि मुक्तिबोध, नागार्जुन और केदार जैसे प्रगतिशील कवियों के चिंतन, निर्भीकता और स्पष्ट काव्यशैली को ग्रहण कर पत्रकारिता और कविता का समन्वय करते हुए अपनी निजी पहचान बनाई । हिन्दी कविता के समक्ष जो नई चुनौतियाँ पैदा हो गई थी, उनसे सहाय टकराये थे । अज्ञेय की शोकसभा में सहाय ने कहा था- " अब उनके अधूरे कार्य को पूरा करने का भार हम पर पड़ा है' और उन्होंने उसे आगे बढ़ाया । उन्होंने नई कविता को विकसित करने के साथ उसे अधिक मुखर बनाया जिसे अज्ञेय नहीं कर पाये थे ।

उत्पीड़ित जनता के साथ उनकी गहरी सहानुभूति है जो एक प्रगतिशील कवि की विशेषता है । वे कविता को व्यक्तिगत तथा मनोरंजन की वस्तु न मानकर उसे सामाजिक और युगीन समस्याओं से जोड़ते हैं । उनकी दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की भागीदारी अपेक्षित है । साहित्यिक आंदोलनों से दूर रहकर अपनी समस्त रचनात्मक ऊर्जा को एक बेहतर सृजन के लिए समर्पित कर निरंतर अपने रचनालोक का विस्तार किया । रचना के माध्यम से युग के साथ एक गहरा रिश्ता कायम क्यि । रघुवीर सहाय का संपूर्ण लेखन जनवादी परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । वे लोकतंत्र के बचाव और मानव के उत्कर्ष की चिन्ता लेकर आते है । भ्रष्ट जनतंत्र की धज्जियाँ उड़ाते हैं, किन्तु एक आदर्श जनतंत्र में गहरी आस्था रखते हैं । सहाय की उपेक्षा करने वाले आलोचक उनकी प्रासंगिकता को अब स्वीकार रहे हैं ।

23.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नई कविता के संदर्भ में रघुवीर सहाय के काव्य का मूल्यांकन कीजिए ।
2. रघुवीर सहाय के काव्य की अंतर्वस्तु और शिल्प पर प्रकाश डालिए ।
3. 'रघुवीर सहाय के काव्य में पत्रकारिता और कविता का समन्वय है' - स्पष्ट कीजिए।

23.6 संदर्भ ग्रंथ

1. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
2. डॉ. सुरेश शर्मा - रघुवीर सहाय का कविकर्म-पीपुल्स लिटरेसी, 517 मटिया महल, नई दिल्ली ।
3. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - नई कविताएँ. एक साक्ष्य- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
4. इंद्रप्रस्थ भारती अप्रैल-जून- 1991, हिन्दी साहित्य अकादमी, दिल्ली ।
5. संपादक-सुरेश चंद्र शर्मा, आजकल- (मार्च 1991), प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस,नयी दिल्ली ।
6. परमानंद श्रीवास्तव-समकालीन कविता का यथार्थ-हरियाणा साहित्य अकादमी, 1988

ISBN-13/978-81-8496-115-7